किया हुआ करने वालो को प्रतिभान होता है ॥११७॥ ज्ञान और अज्ञान मे-प्रिय और अप्रिय मे विरक्त और अतिरिक्त-धर्म एव अधर्म-सुख-दुःख-मृत्यु-अमृत-ऊर्द्ध-तिर्यक् और अधोभाग ये सब उसी अदृष्ट का कारण होता है ॥११८॥ ज्येष्ठ परमेष्ठी ब्रह्मा का स्वायम्भुव यहाँ त्रेताओ मे पुन-पुन प्रत्येक विद्य वाला होता है ॥११६॥

व्यस्यते ह्येकविद्यस्तद्द्वापरेषु पुनः पुनः ।
ब्रह्मा चैतदुवाचादौ तस्मिन् वैवस्वतेऽन्तरे ॥१२०॥
आवर्त्तमाना ऋषयो युगाख्यासु पुनः पुनः ।
कुर्वन्ति सहिता ह्येते जायमाना. परस्परम् ॥१२१॥
अष्टाशीतिसहस्राणि श्रुतर्षीणा स्मृतानि वै ।
ता एव सहिता ह्येते आवर्त्तन्ते पुन पुनः ॥१२२॥
श्रिता दक्षिणपन्थान ये श्मशानानि भेजिरे ।
युगे युगे तु ताः शाखा व्यस्यन्ते तैः पुन पुनः ॥१२३॥
द्वापरेष्विव सर्वेषु सहिताश्च श्रुतर्षिभिः ।
तेषा गोत्रेष्विमाः शाखा भवन्तीह पुनः पुन ।
ताः शाखास्तत्र कर्त्तारो भवन्तीह युगक्षयात् ॥१२४॥
एवमेव तु विज्ञेय व्यतीतानागतेष्विह ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शाखाप्रणयनानि वै ॥१२५॥
अतीतेषु अतीतानि वर्त्तन्ते साम्प्रतेषु च ।
भविष्याणि च यानि स्युर्वर्ण्यन्तेऽनागतेष्वपि ॥१२६॥

द्वापरो मे बार-बार एक विद्य वाला व्यवस्यमान होता है। आदि मे वैवस्वत मन्वन्तर मे ब्रह्माजी ने यह बोला था ॥१२०॥ ऋषिगण बार-बार युगाख्याओ मे आवर्त्तमान होते हैं और परस्पर मे जायमान होते हुए इन सहिताओ को किया करते हैं ॥१११॥ अट्ठासी हजार श्रुतर्षि कहे गए है और वे ही सहिताऐ बार-बार आवर्त्तमान हुआ करती हैं ॥१२२॥

दक्षिण मार्गों का आश्रय होने वाले जिन्होंने श्मशानों का सेवन किया था युग-युग मे पुन पुन वे ही शाखाओ को किया करते हैं ॥१२३॥ यहाँ सब

वायु-पुराण
(दूसरा खण्ड)

सम्पादक —
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारो वेद, १०८ उपनिषद् षट दर्शन
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के
भाष्यकार

●

प्रकाशक :

संस्कृति-संस्थान, बरेली
(उत्तर-प्रदेश)

प्रथम बार] सन् १९६७ ई० [मू० ७) रुपया

प्रकाशक —

संस्कृति–संस्थान

बरेली (उ० प्र०)

★

सम्पादक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

★

सन् १९६७

★

मुद्रक

वृन्दावन शर्मा

जनजागरण प्रेस, मथुरा।

★

मूल्य ७) रु

दो शब्द

'वायु पुराण' की विशेषताओ का वर्णन प्रथम भाग की भूमिका मे विस्तारपूर्वक किया जा चुका है। इस दूसरे खण्ड मे जो महत्वपूर्ण विषय पाठको को मिलेगे उनसे [पूर्ववर्ती धारणाओ की और अधिक पुष्टि हो सकेगी। सृष्टि, प्रलय, जड-चेतन पदार्थों का क्रमश आविर्भाव, मानव-समाज का विकास, अनेकानेक राजवशो तथा उनकी शाखाओ का वर्णन आदि जो पुराणो का मुख्य उद्देश्य माना गया है, वह इसमे पूर्ण रूप से पाया जाता है। पाठक जैसे-जैसे इस पुराण का अध्ययन करते जायेगे उनको यह प्रतीत होता चला जायगा कि वास्तव मे इस दृष्टि से इस पुराण का स्थान अधिकाँश पुराण और उपपुराणो से बहुत ऊँचा है।

इस पुराण के प्रतिपादित विषय को अन्त तक देख जाने और विशेष कर इस दूसरे खण्ड के राज्य-वशो के विस्तृत वर्णन और सृष्टि तथा प्रलय के बुद्धिसगत विवेचन को पढने पर हमको उन लोगो की बातो पर कुछ आश्चर्य होता है जो इस पुराण को अठारह पुराणो मे न मानकर 'शिवपुराण' का एक अश मात्र बतलाते हैं। हमको तो इस पुराण को सम्पादन करने पर यह मालूम हुआ कि जहाँ अधिकाँश पुराणो के कलेवर का एक बडा भाग साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से लिखी गई कथाओ अथवा तीर्थ, व्रत, दान आदि के विधानो से भरा पडा है, वहाँ 'वायु-पुराण' मे इन बातो को कम से कम स्थान देकर उन बातो का ही दिग्दर्शन कराया है जो वास्तव मे पुराणो के वर्ण्य विषय माने गये हैं। सृष्टि, जगत और मानव जाति के विकास पर विचार करना ही पुराण रचना का मुख्य उद्देश्य बतलाया गया

है और वह हमको वायु-पुराण मे अ य पुराणा की अपेक्षा कहीं अधिक और सम वयात्मक रूप से दिखाई पडता है।

यद्यपि सभी पराणो मे अलङ्कार रूपक उपमा दृष्टा त आदि की लेखन शली पूर्ण मात्रा में अपनाई गई है जिससे कथा के रूप मे अपढ जनता को आकर्षित करके धम तत्वों की शिक्षा दी जासके तो भी इस दृष्टि से विभिन्न पुराणो के स्तर में बहुत अन्तर दिखलाइ पडता है। अन्य पुराणो ने जहां लोगो की रुचि और आकषण पर हा अधिक ध्यान दिया है वायुपुराण मे तथ्यों को प्रकट करने और प्राचीनता की एक प्रभावशाली झलक पाठकों को दिखाने की चेष्टा की है। इसमे विभिन्न राजवशो की वशावलिया का जितने विस्तार के साथ वरान किया गया है वह इतिहास की दृष्टि से भी बहुत कुछ महत्व रखता है और अनेक इतिहास लेखको ने उसके आधार पर प्राचीन ऐतिहासिक युगो का निर्णय करने में पर्याप्त सहायता प्राप्त की है। इसी प्रकार लोक परलोक नक स्वर्ग भुवन आदि का वर्णन इसमे कथा और रूपको के बजाय विवेचनात्मक ढङ्ग से ही किया है जिससे इसकी गम्भीरता और प्रामाणिकता की वृद्धि ही हुई है। जो पाठक ध्यान पूवक इसका अध्ययन करेंगे वे हमारा विश्वास है कि उपयुक्त निष्कर्षों पर पहुँचे बिना न रहेंगे।

—सम्पादक



विषय-सूची

अध्याय — पृष्ठ संख्या

४३ प्रजापतिवंश कीर्तन—
संहिताओं के निर्माता ऋषियों के नाम, याज्ञवल्क्य का नवीन संहिता निर्माण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्वशास्त्र, अर्थशास्त्र, और चौदह विद्याओं का विकास। ६

४४ पृथ्वी दोहन—
स्वायम्भुव, स्वारोचिष आदि-आदि १४ मन्वन्तरों का वर्णन, राजा पृथु द्वारा अन्न की कृषि का आरम्भ। ३८

४५ पृथुवंश कीर्तन—
विभिन्न मन्वन्तरों में पृथ्वी का दोहन करने वाले मनुओं का वर्णन, दक्ष प्रजापति द्वारा सृष्टि की वृद्धि। ६७

४६ वैवस्वत-सर्ग वर्णन—
मरीचि, कश्यप से देवों तथा परमर्षियों की उत्पत्ति। ७६

४७ प्रजापति वंशानुकीर्तन—
वैवस्वत-मन्वन्तर में देव, ऋषि, दानव, पितर, गन्धर्व, यक्ष आदि की सृष्टि और वृद्धि। ८१

४८ ऋषि वंशानुकीर्तन—
द्विज, विश्वेदेव, प्रजापति, मरुत, दानव, यक्ष, राक्षस, पितृ, भूत, पशु, पक्षी, नाग, अप्सरा आदि के अधिपतियों का वर्णन। १०५

अध्याय पृष्ठ-संख्या

४६ गन्धर्व मूर्छना लक्षण—
नाभाग कुप करपम मरुत्त राष्ट्रवधन तृणबिंदु, रैवत आदि राजाओं का वर्णन । ११६

५० गीतालङ्कार निर्देश—
वाक्य पद आरोहण अवरोहण वाद्य आदि का परिचय । १२८

५१ वैवस्वत मनुवंश वर्णन—
राजा इक्ष्वाकु के वंश में युवनाश्व मान्धाता अम्बरीष पुरुकुत्स मुचकुन्द हरिश्चन्द्र सगर दिलीप आदि राजाओं का वर्णन । १३५

५२ सोमोत्पत्ति वर्णन—
निमि के वंश के राजाओं का नाम 'जनक' कहा जाना । सीताजी के पिता सीरध्वज का उल्लेख । (२) चन्द्रमा द्वारा बुध की उत्पत्ति और महर्षि अत्रि द्वारा उसकी रोग मुक्ति आदि । १६७

५३ चन्द्रवंशकीर्तन—(१)
राजा पुरुरवा और उर्वशी की कथा । राजा एल द्वारा तीन अग्नियों का विभाजन जह्नु का गङ्गापान विश्वामित्र का वंश । १७८

५४ रजियुद्ध वर्णन—
धन्वन्तरि की उत्पत्ति रजि द्वारा दानवों का पराभव । १६५

५५ चन्द्रवंश कीर्तन—(२)
राजा मरुत नहुष ययाति की कथा । पुरु द्वारा ययाति की वृद्धावस्था ग्रहण करने का उपाख्यान । २१

अध्याय | पृष्ठ-संख्या

५६ कार्तवीर्य अर्जुन उत्पत्ति—
कार्तवीर्य अर्जुन द्वारा सातों द्वीपों की विजय, रावण को बाँधलाना, वशिष्ठ द्वारा शाप दिया जाना। २२६

५७ ज्यामघ वृत्तान्त कथन—
कार्तवीय द्वारा वनों का जलाया जाना। २३४

५८ विष्णुवंश वर्णन—
स्यमन्तक मणि की कथा। श्रीकृष्ण के वंश का वर्णन। २४१

५६ शम्भुस्तव वर्णन—
ऋषियों द्वारा विष्णु की विशेषताओं का वर्णन और कृष्ण अवतार लेने पर आश्चर्य। भृगु के शाप की कथा। बृहस्पति और शुक्राचार्य का विवाद। २७६

६० विष्णु माहात्म्य कीर्तन—
शुक्राचार्य और जयन्ती का समागम, बृहस्पति का दानवों को छल पूर्वक बहका देना। दश अवतारों का रहस्य। ३०६

६१ अनुषगपाद समाप्ति—
तुर्वसु के वंशधरों का वर्णन, अङ्ग-वङ्ग-पुण्ड्र-कलिङ्ग के राजागण, शकुन्तला पुत्र भरत, पाण्डव, जनमेजय और भविष्य के राजाओं का वर्णन। ३२६

६२ मन्वतर कथन—
देव शक्तियों द्वारा सृष्टि रचना का प्रारम्भ और उसका क्रम विकास, सब प्रकार के देव, ऋषि, तथा अन्य जीवों की उत्पत्ति, काल गणना आदि। ३७६

अध्याय — पृष्ठ संख्या

६३ शिवपुर वर्णन—
भू भुव आदि सात लोकों का वर्णन वराहक कल्प वाले अयुत कोटि अर्बुद निर्बुद आदि की गणना महालोक जन लोक आदि का विवरण नरक वर्णन चतुष्पद द्विपद तिर्यक आदि की गणना शिवपुर का परम ऐश्वर्य। — ३६५

६४ प्रलयादि पुन सृष्टि वर्णन
सप्त द्वीप समुद्र पर्वत आदि का नष्ट होकर पृथ्वी, जल तेज वायु आदि पञ्चतत्वों का एक एक करके दूसरे में लीन होते जाना। धर्म अधर्म और तीनों गुणों की स्थिति। — ४४८

६५ सृष्टि वर्णन—
प्रलय के पश्चात् सृष्टि की फिर से विकास कैसे होता है? सम विषय—व्यक्त अव्यक्त का कथन। ब्रह्मा की उत्पत्ति। वायु पुराण का महत्व। — ४६८

६६ व्यास संशय वर्णन—
निराकार ब्रह्म प्रकृति तथा भक्ति-मार्ग और ज्ञान मार्ग का निरूपण। अक्षर ब्रह्म से परे और कोई नहीं है वही सब कारणों कारण है। — ४८

६७ गया महात्म्य—
श्री सनत्कुमार द्वारा गया तीर्थ की प्रशंसा और महात्म्य। गया श्राद्ध द्वारा पितरों के उद्धार की कथा। — ४९५



वायु-पुराण

[दूसरा खण्ड]



॥ प्रकरण ४३—प्रजापति वंश कीर्तन ॥

भारद्वाजो याज्ञवल्क्यो गालकि सालकिस्तथा ।
धीमान् शतबलाकश्च नैगमश्च द्विजोत्तम ॥१॥
वाष्कलिश्च भरद्वाजस्तिस्त्र प्रोवाच सहिता ।
रथीतरो निरुक्तञ्च पुनश्चक्रे चतुर्थकम् ॥२॥
त्रयस्तस्याभवञ्छिष्या महात्मानो गुणान्विता ।
धीमाश्नन्दायनीयश्च पन्नगारिश्च बुद्धिमान् ।
तृतीयश्चार्यवस्ते च तपसा शसितव्रता ॥३॥
वीतरागा महातेजा- सहिताज्ञानपारगा ।
इत्येते बह्वृचा प्रोक्ता सहिता यै प्रवर्त्तिता ॥४॥
वैशम्पानगोत्रोऽसौ यजुर्वेद व्यकल्पयत् ।
षडशीतिस्तु येनोक्ता सहिता यजुषा शुभा ॥५
शिष्येभ्य प्रददौ ताश्च जगृहुस्ते विधानत ।
एकस्तत्र परित्यक्तो याज्ञवल्क्यो महातपा ।
षडशीतिश्च तस्यापि सहिताना विकल्पका ॥६
सर्वेषामेव तेषा वै त्रिधा भेदा प्रकीर्त्तिता ।
त्रिधा भेदास्तु ते प्रोक्ता भेदेऽस्मिन्नवमे शुभे ॥७

ऋषियो ने कहा—भारद्वाज—याज्ञवल्क्य—गालकि—सालकि—धीमान् शतबलाक—नैगम जो द्विजो मे श्रेष्ठ थे—वाष्कलि—भरद्वाज- इनने तीन सहिता कही फिर रथीतर ने चतुर्थ निरुक्त किया था ॥१॥२॥ उसके गुरुओ से

मन्दायनीय-पप्रगारि और बुद्धिमान् तृतीय प्राचार्य था। य तप स शमित दर्श वाले थे ॥३॥ य सब वीतराग महान् तज स युक्त और सहिताओं क नान न पारगामी थे। ये सब बहु वृच कहे गय है विद्वान स०ताम्रा का प्रवृत्त किया था ॥४॥ यह वशम्पायन गोत्र वाला था जिसन यजुर्वेद की विदाय कल्पना की थी। जिसने यजुवद की शुभ छयासी सहिताए कही थी ॥५॥ उनको शिष्यो के लिए दिया था और उन्होने विधानपूर्वक उन्हे ग्रहण किया था। वहाँ पर एक महा तपस्वी याज्ञवल्क्य परिवव थ। उसक भा छयासी सहिताम्रा के विकल्प थे ॥६॥ उन सबके तीन प्रकार क भेद प्रकाशित किए गए है। इस शुभ नवम भेद मे तीन प्रकार के भेद कहे गय है ॥७॥

उदीच्या मध्यदेशाश्च प्राच्याश्चव पृथग्विधा ।
श्यामाय नरुदीच्याना प्रधान सम्बभूव ह ॥८
मध्यदेशप्रतिष्ठानामारुणि प्रथम स्तुत ।
आलम्बिरादि प्राच्याना त्रयोदश्यादयस्तु त ॥९
इत्येते चरका प्रोक्ता सहितावादिनो द्विजा ।
ऋषयस्तद्वच श्रुत्वा सूत जिज्ञासवोऽब्रुवन् ॥१०
चरकाध्वयव केन कारणा ब्रूहि तत्त्वत ।
किञ्चीर्ण कस्य हेतोश्च चावकत्वञ्च भेजिरे।
इत्युक्त प्राह तेषा स चरकत्वमभूद्यथा ॥११
कार्यमासीदृषीणाञ्च किञ्चिद्ब्राह्मणसत्तमा ।
मेरुपृष्ठ समासाद्य तस्तदा त्विति मन्त्रितम् ॥१२
यो नोऽत्र सप्तरात्रेण नागच्छेद्द्विजसत्तमा ।
स कुर्याद्ब्रह्मवध्या व समयो न प्रकीर्तित ॥१३
ततस्ते सगणा सर्वे वशम्पाय नर्वजिता ।
प्रययु सप्तरात्रेण यत्र सन्धि कृतोऽभवत् ॥१४

उदीच्य मध्यदेश और प्राच्य पृथक् विध थे। उदीच्यो मे श्यामायनि प्रधान हुआ था ॥८॥ मध्यदेश के प्रतिष्ठानो मे अरुणि प्रथम कहा गया है।

आचार्यों में आदि आलम्बि थे वे श्योदशी आदि थे ॥९॥ ये सब द्विज जो कि महिनाओं के वादी थे चरक कहे गए थे। ऋषियों ने उनके वचन जो सुनकर जिज्ञासु होते हुये वे सूतजी से बोले ॥१०॥ चरक और आध्वर्यव किस से हुए ? इनका कारण तत्वपूर्वक बतलाइये। किसके हेतु से क्या चीर्ण और चाचकत्व का सेवन किया था ? इस प्रकार से कहे हुए उनमें जैसे चरकत्व उनका हुआ था कहा। ॥११॥ श्री सूतजी ने कहा—हे ब्राह्मण श्रेष्ठो ! ऋषियों का क्या कार्य था यह मेरु के पृष्ठ पर जाकर उन्होंने मन्त्रणा की थी ॥१२॥ हे द्विज सत्तमा ! जो यहाँ सात दिन तक नहीं आवे वह ब्रह्मवध्या करे। इसका समय नहीं कहा गया है ॥१३॥ इसके पश्चात गणों के साथ वे सब वैशम्पायन को छोड़ कर सात दिन में चले गये जहाँ कि सन्धि की हुई थी ॥१४॥

ब्राह्मणानान्तु वचनाद्ब्रह्मवध्यामचकार स ।
शिष्यानथ समानीय स वैशम्पायनोऽब्रवीत् ॥१५
ब्रह्मवध्याञ्चरध्वं वै मत्कृते द्विजसत्तमा ।
सर्वे यूय समागम्य ब्रूत मे तद्धितं वचः ॥१६
अहमेव चरिष्यामि तिष्ठन्तु मुनयस्त्विमे ।
बलञ्चोत्थापयिष्यामि तपसा स्वेन भावित ॥१७
एवमुक्तस्तत क्रुद्धो याज्ञवल्क्यमथाब्रवीत् ।
उवाच यत्त्वयाधीतं सर्वं प्रत्यर्पयस्व मे ॥१८
एवमुक्त स रूपाणि यजूंषि प्रददौ गुरो ।
रुधिरेण तथाक्तानि छर्दित्वा ब्रह्मवित्तम ॥१९
तत स ध्यानमास्थाय सूर्यमाराधयद्द्विजा ।
सूर्यं ब्रह्म यदुच्छिन्नं ख गत्वा प्रतितिष्ठति ॥२०
ततो यानि गतान्यूर्द्ध्वं यजूंष्यादित्यमण्डलम् ।
तानि तस्मै ददौ तुष्ट सूर्यो वै ब्रह्मरातये ।
अश्वरूपाय मार्तण्डो याज्ञवल्क्याय धीमते ॥२१

ब्राह्मणों के वचन से उसने ब्रह्मवध्या को किया था। इसके अनन्तर उस वैशम्पायन ने शिष्यों को बुलाकर कहा ॥१५॥ हे द्विज सत्तमो ! मेरे लिए

ब्रह्मवध्या को करो आप सब लोग आकर तद्धति वचन मुझे बोलो ।।१६।। याज्ञवल्क्य ने कहा—मैं ही करूँगा वे मुनिगण ठहरें। अपने तप से भावित होता हुआ मैं बल को उत्थापित करूँगा ।।१७।। इस प्रकार से कहे हुए वह क्रुद्ध होकर याज्ञवल्क्य से बोले कि जो भी तुमने पढ़ा है उस सबको मुझे अपण कर दो—यह कहा ।।१८।। इस प्रकार से कहे जाने वाले ब्रह्मवित्तम उसने रुधिर युक्त रूप यजु को छर्दि कर के गुरु को दे दिया था ।।१६।। इसके अन न्तर उसने हे द्विजो! ध्यान में स्थित होकर सूर्य की आराधना की थी। जो उच्छिन्न सूर्यब्रह्म था और आकाश में जाकर प्रतिष्ठित होता है। इसके पश्चात जो यजु ऊर्ध्व भाग में गए थे और आदित्य मण्डल में स्थित थे उनको सन्तुष्ट होने वाले सूर्य ने ब्रह्म रीति के लिए उसे दे दिया था। धीमान् याज्ञवल्क्य उस समय अश्व के रूप में थे। ऐसे याज्ञवल्क्य के लिए मार्तण्ड ने यजु दिए थे ।।२ ।।२१।।

यजूष्यधीयन्ते यानि ब्राह्मणा येन केन च ।
अश्वरूपाय दत्तानि ततस्ते वाजिनोऽभवन् ।।२२
ब्रह्महत्या तु यच्चीर्णा चरणाच्चरका स्मृता ।
वशम्पायनशिष्यास्ते चरका समुदाहृता ।।२३
इत्येते चरका प्रोक्ता वाजिनस्तान्निबोधत ।
याज्ञवल्क्य स्वशिष्यास्ते कण्ववैधेयशालिन ।।२४
मध्यन्दिनश्च शापेयी विदिग्धश्चाप्य उद्दल ।
ताम्रायणश्च वात्स्यश्च तथा गालवशैशिरी ।
आटवी च तथा पर्णी वीरणी सपरायण ।।२५
इत्येते वाजिन प्रोक्ता दश पञ्च च सस्मृता ।
शतमेकाधिक कृत्स्न यजुषा व विकल्पका ।।२६
पुत्रमध्यापयामास सुमन्तुमथ जैमिनि ।
सुमन्तुश्चापि सुत्वान पुत्रमध्यापयत्प्रभु ।
सुकर्माण सुत सुत्वा पुत्रमध्यापयत्प्रभु ।।२७

स सहस्र मधीत्याशु सुकर्माप्यथ संहिता ।
प्रोवाचाथ सहस्रस्य सुकर्मा सूर्यवर्चसः ॥२८

जिस किसी के द्वारा ब्राह्मण जिस यजु का अध्ययन करते हैं वे ग्रश्व-रूप वाले के लिये किये हुये हैं इससे वाजिन हुए और कहे भी जाते है ॥२२॥ जिन्होंने चरण से ब्रह्महत्या को चीर्ण किया था वे चरक कहे गए है। वे वैश-म्पायन के शिष्य हैं जो चरक कहे गये हैं ॥२३॥ इतने ये चरक कहे गये हैं अब उन वाजिनों को जान लो। याज्ञवल्क्य के वे शिष्य हैं जो कण्व वैधेयशाली है ॥२४॥ मध्यान्दिन-- शापेयी-- विदिग्ध - उद्दल--ताम्रायण-- वात्स--गालव-शैशिरी-आटवी-पर्णी-वीरणी-सपरायण---ये इतने वाजिन इस नाम से कहे गये हैं ये दश और पाँच कुल पन्द्रह होते हैं। यजुषों का पूर्ण विकल्प एकसौ एक है ॥२५॥२६॥ इसके अनन्तर जैमिनि ने सुमन्तु अपने पुत्र को पढ़ाया था। सुमन्तु प्रभु ने भी अपने पुत्र सुत्वान को पढ़ाया था। सुत्वा ने अपने पुत्र सुकर्मा को पढ़ाया था ॥२७॥ इसके पश्चात् सुकर्मा ने भी शीघ्र एक सहस्र संहिताओं का अध्ययन कर के सूर्य वर्चस सुकर्मा ने सहस्र को बोला था ॥२८॥

अनध्यायेष्वधीयानास्ताञ्जघान शतक्रतुः ।
प्रायोपवेशमकरोत्ततोऽसौ शिष्यकारणात् ॥२६
क्रुद्धं दृष्ट्वा ततः शक्रो वरमस्मै ददौ पुनः ।
भाविनौ ते महावीर्यौ शिष्यावयनवर्चसौ ॥३०
अधीयानौ महाप्राज्ञौ सहस्र संहिताबुभौ ।
एतौ सुरौ महाभागौ मा क्रुध्य द्विजसत्तम ॥३१
इत्युक्त्वा वासवः श्रीमान्सुकर्माणं यशस्विनम् ।
शान्तक्रोधं द्विजं दृष्ट्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥३२
तस्य शिष्यो भवेद्धीमान्पौष्यञ्जी द्विजसत्तमः ।
हिरण्यनाभः कौशिक्यो द्विजयोऽभून्नराधिपः ॥३३
अध्यापयत्तु पौष्यञ्जी सहस्रार्द्धन्तु संहिता ।
तेनान्योदीच्यासामान्या शिष्याः पौष्यञ्जिनः शुभाः ॥३४

शतानि पञ्च कौशिक्य सहितानाञ्च वीयवान्।
शिष्या हिरण्यनाभस्य स्मतास्ते प्राच्यसामगा ॥३५

अनध्याय के दिन म अध्ययन करने वाले उनको शतक्रतु (इन्द्र) ने मार दिया था। इसके पश्चात् शिष्य के कारण स इसने प्रायपवेश (भोजन का त्याग) कर दिया था ॥२६॥ इसके पश्चात् फिर इससे क्रुद्ध देख कर इन्द्र ने वरदान दे दिया था कि ये अमल वचन दोनो शिष्य महान् वीय वाले होंगे ॥३ ॥ हे द्विज सत्तम ! महा प्राज्ञ पढन वाले सहस्र सहिता वाले य दोनो सुर महान् भाग वाले है आप क्रोध न करें ॥३१॥ यह कह कर श्रीमान् इन्द्रदेव यशस्वी और क्रोध के शान्त हो जाने वाले द्विज सुकर्मा को देख कर वहा पर ही अन्तर्धान हो गए थ ॥३२॥ हे द्विज सत्तमा ! उसका शिष्य बहुत ही बुद्धिमान् और पौष्यञ्जी हुआ—हिरण्यनाभ–कौशिक्य और दूसरा नराधिप हुआ ॥३३॥ पौष्यञ्जी ने आधा सहस्र सहिता का अध्यापन किया था। इससे प्रयादीच्य सामान्य पौष्यञ्जी क शुभ शिष्य हुए और सहिताओं के पाँच सौ वीयवान् कौशिक्य हुये। हिरण्यनाभ के शिष्य प्राच्य सामग कहे गए है ॥३४॥

लोकाक्षी कुथुमिश्चैव कुशीती नाङ्गलिस्तथा।
पौष्यञ्जिशिष्याश्चत्वारस्तेषा भेदान्निबोधत ॥३६
राणायनीय स हि तण्डिपुत्रस्तस्मादन्यो मूलचारी सुविद्वान्।
सकतिपुत्र सहसात्यपुत्र एतान् भेदान् वित्त लोकाक्षिणस्तु ॥३७
त्रयस्तु कुथुमे पुत्रा औरसो रसपासर।
भागवित्तिश्च तेजस्वी त्रिविधा कौथुमा स्मृता ॥३८
शौरिद्यु शृङ्गिपुत्रश्चद्वावेतौ चरितव्रतौ।
राणायनीय सौमित्रि सामवेदविशारदौ ॥ ९
प्रोवाच सहितास्तिस्र शृङ्गिपुत्रो महातपा।
चल प्राचीनयोगश्च सुराल्श्च द्विजोत्तमा ॥४०
प्रोवाच सहिता षट्तु पाराशयस्तु कौथुम।
आसुरायणवशाख्यौ वेदवृद्धपरायणौ ॥४१

प्राचीनयोगपुत्रश्च बुद्धिमाश्च पतञ्जलि ।
कौथुमस्य तु भेदास्ते पाराशर्यस्य पट् स्मृता ।
लाङ्गलि शालिहोत्रश्च पट् पट् प्रोवाच सहिता ॥४२

पौष्यञ्जी के चार शिष्य थे उनके नाम लोकाक्षी–कुथुमि–कुशीती और लाङ्गल थे । अब उनके भेद बतलाये जाते है उन्हें आप लोग समझ लेवें ॥३६॥ तण्डि का पुत्र वह राणायनीय था । उससे अन्य मूलचारी था जो कि बहुत अच्छा विद्वान् था । सकति पुत्र सहमास्य पुत्र ये लोकाक्षी के भेद जानो ॥३७॥ कुथुमि के तीन पुत्र औरस–रसपारस और भाग वित्ति ये तीन प्रकार वाले तेजयुक्त कौथुम कहे गये हैं ॥३८॥ शौरिद्यु–शृङ्गिपुत्र दो ये चरित व्रत वाले थे । राणायनीय और सौमित्रि ये दो दोनो सामवेद के पण्डित थे ॥३६॥ महान् तपस्वी शृङ्गिपुत्र ने तीन सहिता कही थी । हे द्विजोत्तमो ! चैल, प्राचीन योग, सुराल इनने छै सहिता बोली थी, इनमे पाराशर्य और कौथुम भी हैं। आसुरायण और वैश नाम वाले दोनो वेद वृद्ध मे परायण थे ॥४१॥ प्राचीनयोग का पुत्र पतञ्जलि बडा बुद्धिमान था । कौथुम के वे भेद पाराशर्य के छै कहे गये हैं । लाङ्गलि और शालिहोत्र ने छै–छै सहिता बतलाई हैं ॥४२॥

भालुकि कामहानिश्च जैमिनिर्लोमगायिन ।
कण्डश्च कोलहश्चैव पडेते लाङ्गला स्मृता ।
एते लाङ्गलिन शिष्या सहिता यै प्रसाविता ॥४३
ततो हिरण्यनाभस्य कृतशिष्यो नृपात्मज ।
सोऽकरोच्च चतुर्विंशत्सहिता द्विपदा वर ।
प्रोवाच चैव शिष्येभ्यो येभ्यस्ताश्च निबोधत ॥४४
राडश्च महवीर्यश्च पञ्चमो वाहनस्तथा ।
तालक पाण्डकश्चैव कालिको राजिकस्तथा ।
गौतमश्चाजवस्तश्च सोमराजापतस्तल ॥४५
पृष्टन्न परिकृष्टश्च उलूखलक एव च ।
यवीयसश्च वैशालो अ गुलीयश्च कौशिक ॥४६
सालिमञ्जरिसत्यश्च कापीय कानिकश्च य ।

पराशरश्च धर्मात्मा इति क्रान्तास्तु सामगा ॥४७॥
सामगानान्तु सर्वेषा श्च द्यौ द्वौ तु प्रकीर्तितौ ।
पौष्यञ्जिश्च कृतिश्चैव संहितानां विकल्पकौ ॥४८
अथर्वाणं द्विधा कृत्वा सुमन्तुरददद्द्विजा ।
कबन्धाय पुन कृत्स्नं स च विद्याद्यथाक्रमम् ॥४९
कबन्धस्तु द्विधा कृत्वा पथ्यायक पुनददौ ।
द्वितीय वेदस्पर्शाय स चतुर्द्धाकरोत् पुन ॥५

मालुकि कामहानि जमिनि लोमगायिन बगड बोनह ये छ लाङ्गूल कहे गये हैं। ये लाङ्गलि के शिष्य है जिन्होने संहिताऐं प्रसाधित की हैं ॥४३॥ इसके पश्चात् हिरण्यनाभ के कृत शिष्य नृपात्मज हुए। द्विपदो म श्रेष्ठ उसने चौबीस संहिताऐं की है। और फिर उनको शिष्यों के लिये बोला था। जिन शिष्यों को बोला था उन्हें आप मुझसे जानलो ॥४४॥ राड महावीय पंचम वाहन तालक पारदक कालिक राजिक गौतम भाजवस्त सोम राजायतन, पृष्ठघ्न परिकृष्ट उलूखलक यवीयस वशाल अगुलीय कौशिक सालिम जरि सत्य कापीय कानिक और धर्मात्मा पाराशर ये सब सामगा परिक्रान्त हुए हैं ॥४७॥ समस्त सामगो मे दो भ यन्त श्रेष्ठ प्रकीर्तित हुए है। संहिताओं के विकल्पक वे दोनो पौष्यञ्जि और कृति हैं ॥४८॥ हे द्विजा ! सुमन्तु ने अथर्वा को दो करके दिया था। फिर कबन्ध के लिये सम्पूर्ण दिया था और उसने यथाक्रम उसे जाना है। कबन्ध ने भी दो प्रकार का करके उनमें से एक को फिर पथ्य के लिए दिया था। दूसरा वेदस्पर्श के लिये दिया था और फिर उसने उसे चार प्रकार का कर दिया था ॥४९॥५ ॥

मोदो ब्रह्मबलश्च व पिप्पलादस्तथैव च
शौल्कायनिश्च धर्मज्ञश्चतुर्थस्तपन स्मृत ।
वेदस्पर्शस्य चत्वार शिष्यास्त्वेते दृढव्रता ॥५१
पुनश्चत्रिविध विद्धि पथ्याना भेदमुत्तमम् ।
जाजलि कुमुदादिश्च तृतीय शौनक स्मृत ॥५२
शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकन्तु बभ्रवे ।

द्वितीया संहिता धीमान्सैन्धवायनसंज्ञिते ॥५३
सैन्धवो मुञ्जकेशाय भिन्ना सा च द्विधा पुन ।
नक्षत्र कल्पो वैतानस्तृतीय संहिताविधि ।
चतुर्थोऽङ्गिरस कल्प शान्तिकल्पश्च पचम ॥५४
श्रेष्ठस्त्वथर्वणो ह्येते संहिताना विकल्पना ।
षटश कृत्वा मयाप्युक्त पुराणमृषिसत्तमा ॥५५
आत्रेय सुमतिर्धीमान्काश्यपो ह्यकृतव्रण ।
भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वसिष्ठो मित्रयुश्च य ।
सावर्णि सोमदत्तिस्तु सुशर्मा शाशपायन ॥५६
एते शिष्या मम ब्रह्मन् पुराणेषु दृढव्रता ।
त्रिभिस्तिस्र कृतास्तिस्र संहिता पुनरेव हि ॥५७

वेदस्पर्श के दृढ व्रत वाले चार शिष्य हुए थे। ब्रह्मबल वाला मोद, पिप्पलाद, धर्म का ज्ञाता शौक्वायनि और चौथा तपन ये चारो के नाम बताये गये हैं ॥५१॥ फिर पथ्यों के तीन प्रकार के उत्तम भेद जान लो। एक जाजलि दूसरा कुमुदादि और तीसरा शौनक कहा गया है ॥५२॥ शौनक मे दो भेद करके उनमे से एक बभ्रु के लिये दिया था। द्वितीय जो संहिता था उसे उस परम बुद्धिमान् ने सैन्धवायन नाम वाले को दिया था ॥५३॥ सैन्धव ने मुञ्ज केश के लिये दी फिर वह दो प्रकार की भेद वाली हुई थी। नक्षत्र कल्प, वैतान, तृतीय संहिता विधि, चतुर्थ अङ्गिरस कल्प, पचम शान्ति कल्प होता है ॥४४॥ ये जो संहिताओ के विकल्पन हैं उनमे अथर्वण श्रेष्ठ होता है। हे ऋषि सत्तमा! छँ प्रकार से करके मैंने भी पुराण को कहा है ॥५५॥ आत्रेय, सुमति, धीमान्, काश्यप, अकृतव्रण, भारद्वाज, अग्निवर्चा, वसिष्ठ, मित्रयु, सावर्णि, सोमदत्ति, सुशर्मा, शाशपायन ये इतने पुराणो मे दृढव्रत वाले मेरे शिष्य थे। फिर तीनो ने तीन संहिताओं के तीन किये ॥५६।५७॥

काश्यप संहिताकर्त्ता सावर्णि शाशपायन ।
सामिका च चतुर्थो स्यात्सा चैषा पूर्वसंहिता ॥५८
सर्वास्ताहि चतुष्पादा सर्वाश्चैकार्थवाचिका ।

पाठान्तरे पृथग्भता वेदशाखा यथा तथा ।
चत साहस्रिका सर्वा शाशपायनिकामृते ॥५९
लोमहर्षणिका मूलास्तत काश्यपिका परा ।
सावर्णिकास्तृतीयास्ता यजुर्वाक्यार्थपण्डिता ॥६०
शाशपायनिकाश्चान्या नोदनार्थविभूषिता ।
सहस्राणि ऋचामष्टौ पटितानि तथव च ॥६१
एता पचदशान्याश्च दशाया दशभिस्तथा ।
वालखिल्या समप्रशा (पा) ससावर्णा प्रकीर्तिता ॥६२
अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश ।
आरण्यक सहोमच एता गायन्ति सामगा ॥६३

काश्यप सावर्णि और शाशपायन सहिताकर्त्ता हैं और यह पूर्व सहिता चौथी सामिका होती है। वे सब चार पादो वाली हुआ करती है और सभी एकार्थ की वाचिका भी होती हैं। वेद की शाखाए यथा तथा पाठान्तर मे पृथक होती है। शाशपायनिका के बिना सब चार सहस्र वाली है ॥५८॥५९॥ मूल लोमहर्षणिका है इसके पश्चात् काश्यपिका होती है। तृतीय सावर्णिका है वे यजु के वाक्यार्थ की पण्डित होती हैं ॥६०॥ अन्य जो शाशपायनिका शाखाऐ हैं वे नोदन के अर्थ से विभूषित होती हैं। ऐसे ये कुल आठ सहस्र छ सौ ऋचाऐ हैं ॥६१॥ ये अन्य पचदश है और दूसरी दश के साथ दश है बालखिल्या जो हैं वे समप्र पा ससावर्णा कही गई हैं ॥६२॥ आठ साम सहस्र और चौदह साम हैं। सामगा लोग इसको आरण्यक और सहोम गाया करते है ॥६३॥

द्वादशैव सहस्राणि छन्द आध्वयव स्मृतम् ।
यजुषा ब्राह्मणानाच यथा व्यासो व्यकल्पयत् ॥६४
सग्राम्यारण्यकन्तस्यात्सम प्रकरण तथा ।
अत पर कथानान्त पूर्वां इति विशेषणम् ॥६५
ग्राम्यारण्य सम ऋच ऋग्ब्राह्मणयजु स्मृतम् ।
तथा हारिद्रवीर्यागा खिलान्युपखिलानि च ।

तथैव तैत्तिरीयाणां परक्षुद्रा इति स्मृतम् ।।६६
द्वे सहस्रे शतन्यूने वेदे वाजसनेयके ।
ऋग्गणः परिसंख्यातो ब्राह्मणन्तु चतुर्गुणम् ।।६७
अष्टौ सहस्राणि शतानि चाष्टौ अशीतिरन्यान्यधिकश्च पाद ।
एतत्प्रमाणं यजुषामृचाञ्च सशुक्रियं साखिलं याज्ञवल्क्यम् ।।६८
तथा चरणविद्यानां प्रमाणं संहिता शृणु ।
षट् साहस्रमृचामुक्तमृचः षड्विंशति पुनः ।
एतावदधिकं तेषां यजुः कामं विवक्षति ।।६९
एकादश सहस्राणि दश चान्या दशोत्तरा ।
ऋचान्दश सहस्राणि अशीतिस्त्रिशतानि च ।।७०
सहस्रमेकं मन्त्राणामृचामुक्तं प्रमाणतः ।
एतावद्भृगुविस्तारमन्यच्चार्थर्विकं बहु ।।७१

बारह सहस्र छन्द आध्वर्यव कहे गये हैं। यजु का और ब्राह्मणों का अर्थात् ब्राह्मण भागों का जिस तरह व्यास अर्थात् विस्तार कल्पित किया है।। ।।६४।। वह सग्राम्यारण्यक तथा समन्त्रकरण होता है। इससे आगे कथाओं का तो पूर्वों यह विशेषण होता है ।।६५।। ग्राम्यारण्य और समन्त्र ऋक्-ब्राह्मण और यजु कहा गया है। इसी प्रकार से हारिद्रवीयों के खिलामि एवं उपखिलामि तथा तैत्तिरीयों के परक्षुद्रा कहा गया है ।।६६।। सौ कम दो हजार वाजसनेयक वेद में ऋक् गण की परिसंख्या की गई है, ब्राह्मण भाग तो चौगुना होता है ।।६७।। आठ सहस्र आठसौ अस्सी अन्यान्य और अधिक पाद होता है। यह प्रमाण यजु का और सशुक्रिय साखिल याज्ञवल्क्य ऋक् का है ।।६८।। उसी प्रकार से चरण विद्याओं का प्रमाण एवं संहिता का श्रवण करो। छैः सहस्र छब्बीस ऋचाओं का कहा गया है। इतना अधिक उनका यजु है जो काम को कहता है ।।६९।। ग्यारह हजार दशोत्तर और अन्य दश है। दस सहस्र तीन सौ अस्सी ऋक् है ।।७०।। ऋचाओं, मन्त्रों का एक सहस्र प्रमाण से कहा है। इतना ऋक् का विस्तार है और अन्य बहुत आथर्विक होता है ।।७१।।

ऋचामथवणा पच सहस्राणि विनिश्चय ।
सहस्रमन्यद्विज्ञयमृपिभिर्विशति बिना ॥७२
एतदङ्गिरसा प्रोक्तस्तेपामारण्यक पुन ।
इति सख्या प्रसख्याता शाखाभेदास्तथव च ॥७३
कर्त्तारश्चव शाखाना भेदे हेतुस्तथव च ।
सवम वन्तरेष्वेव शाखाभेदा समा स्मृता ॥७४
प्राजापत्या श्रु तिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृता ।
अनित्यभावाद्देवाना म त्रोत्पत्ति पुन पुन ॥७५
म वन्तराणा क्रियते सुराणा नामनिश्चय ।
द्वापरेपु पुनर्भेदा श्रु ताना परिकीर्त्तिता ॥७६
एव वेद तदान्यस्य भगवानृपिसत्तम ।
शिष्येभ्यश्च पुनर्दत्वा तपस्तप्तु गतो वनम् ।
तस्य शिष्यप्रशिष्यस्त शाखाभेदास्त्विमे कृता ॥७७
अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमासा न्यायविस्तर ।
धम शास्त्र पुराणच विद्यास्त्वेताश्चतुदश ॥७८

अथव ऋचाओ का पाँच सहस्र विनिश्चय होता है। बीस के बिना ऋषियो के द्वारा अन्य सहस्र जानना चाहिए ॥७२॥ यह अङ्गिरस ने कहा है फिर उनका आरण्यक होता है। यह सख्या प्रसख्यात की गई है और इसी प्रकार से शाखाओ के भेद भी बताए गये हैं ॥७३॥ शाखाओ के करने वाले और उनके भेद मे उसी प्रकार से हेतु सभी मन्वन्तरो म इस तरह से शाखाओ के भेद समान कहे गये है ॥७४॥ प्राजापत्य श्रति नित्य हैं उनके विकल्प ये कहे गये है। देवो के अनित्य भाव से मन्त्रो की उत्पत्ति बार-बार होती है ॥ ॥७५॥ मन्वन्तर सुरो के नाम का निश्चय किया जाता है। द्वापरो मे फिर श्रुतो के भेद कहे गये है ॥७६॥ इस प्रकार से उस समय मे ऋषि सत्तम भगवान् अन्य को शिष्यो के लिये फिर देकर तपस्या करने को वन मे चले गये थे। उनके शिष्य एव शिष्यो के शिष्य प्रशिष्यो ने ये समस्त शाखाओ के भेद किये

है ॥७७॥ अङ्ग वेद चार है। मीमांसा, न्याय विस्तार, धर्मशास्त्र और पुराण ये चौदह विद्याऐं है ॥७८॥

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रय ।
अर्थशास्त्र चतुर्थन्तु विद्यास्त्वष्टादशैव तु ॥७९॥
ज्ञेया ब्रह्मर्षय पूर्वन्तेभ्यो देवर्षय पुन ।
राजर्षय पुनस्तेभ्य ऋषिप्रकृतयस्त्रय ।
तेभ्य ऋषिप्रकृतयो मुनिभि शसितव्रतै ॥८०॥
कश्यपेषु वसिष्ठेषु तथा भृग्वङ्गिरोऽत्रिषु ।
पञ्चस्वेतेषु जायन्ते गोत्रेषु ब्रह्मवादिन ।
यस्मादृषन्ति ब्रह्माणन्तेन ब्रह्मर्षय स्मृता ॥८१॥
धर्मस्याथ पुलस्त्यस्य क्रतोश्च पुलहस्य च ।
प्रत्यूषस्य प्रभासस्य कश्यपस्य तथा पुन ॥८२॥
देवर्षय सुतास्तेषा नामतस्तान्निबोधत ।
देवर्षी धर्मपुत्रौ तु नरनारायणावुभौ ॥८३॥
वालखिल्या क्रतो पुत्रा कर्दम पुलहस्य तु ।
कुवेरश्चैव पौलस्त्य प्रत्यूषस्याचल स्मृत ॥८४॥
पर्वतो नारदश्चैव कश्यपस्यात्मजावुभौ ।
ऋषन्ति देवान् तस्मात्ते तस्माद्देवर्षय स्मृता ॥८५॥

आयुर्वेद, धनुर्वेद और गान्धर्व ये तीन हैं। अर्थशास्त्र चौथा है, ये अष्टादश विद्याऐं हैं ॥७९॥ पहिले ब्रह्मर्षियों को जानना चाहिए इसके पश्चात् देवर्षि फिर राजर्षि, ये ऋषियों की तीन प्रकृतियाँ होती है। शसित व्रत मुनियों के द्वारा उनसे ऋषि प्रकृतियाँ होती है ॥८०॥ कश्यप वसिष्ठ-भृगु-अङ्गिरा और अत्रि इन पाँचों गोत्रों मे ब्रह्मवादी उत्पन्न होते है। जिस कारण से ये सब ब्रह्मा को ऋष किया करते हैं इसीलिये ये ब्रह्मर्षि कहे जाते हैं ॥८१॥ धर्म-पुलस्त्य-क्रतु-पुलह-प्रत्यूष-प्रभास और कश्यप के देवर्षि पुत्र हैं, उनके जो नाम हैं वे अब जान लो। नर और नारायण ये दोनो धर्म के पुत्र देवर्षि है ॥८२॥८३॥ वालखिल्य क्रतु के पुत्र है, कर्दम पुलहका पुत्र है—कुवेर पुलस्त्य का और अचल

प्रत्यद का पुत्र कहा गया है ।।८४।। पर्वत और नारद ये दोनों कश्यप के आत्मज हैं। ये देवों को ऋषण करते हैं इसी कारण से वे देवर्षि कहे गये हैं ।।८५।।

मानवे वपये वने ऐलवंशे च ये नृपा ।
ऐला ऐक्ष्वाकनाभागा ज्ञया राजपयस्तु ते ।।८६।।
ऋषन्ति रञ्जनाद्य मात्प्रजा राजपयस्तत ।
ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृता ब्रह्मर्पयो मता ।।८७।।
देवलोकप्रतिष्ठास्त्र ज्ञेया देवपय शुभा ।
इन्द्रलोकप्रतिष्ठास्त सर्वे राजपयो मता ।।८८।।
अभिजात्या च तपसा मन्त्रव्याहरणैस्तथा ।
एव ब्रह्मपय प्रोक्ता दिव्या राजर्पयस्तु ये ।।८९।।
देवपयस्तथान्ये च तेषा वक्ष्यामि लक्षणम् ।
भूतभव्यभवज्ञान सत्याभिव्याहृत तथा ।।९०।।
सम्बुद्धास्तु स्वय ये तु सम्बुद्धा ये च ै स्वयम् ।
तपसेह प्रसिद्धा ये गर्भयश्च प्रणोदितम् ।।९१।।
म त्रव्याहारिणो ये च ऐश्वर्यात्सर्वगाश्च ये ।
इत्येते ऋषिभियु क्ता देवद्विजनृपास्तु ये ।।९२।।
एतान् भावानधीयाना ये चैत ऋषयो मता ।
सप्त ते सप्तभिश्चैव गुणै सप्तर्षय स्मृता ।।९ ।।

मानव वपय वश मे और ऐल वश मे जो राजा है वे ऐल-ऐक्ष्वाक और नाभाग राजर्षि जानने के योग्य हुए है ।।८६।। ऋषण करते हैं और प्रजाओं का रञ्जन करते हैं इसलिये इन्हें राजर्षि कहा गया है। ब्रह्म लोक प्रतिष्ठा वाले ब्रह्मर्षि माने गये हैं ।।८७।। देवलोक मे प्रतिष्ठा वाले शुभ देवर्षि कहे गये है। इन्द्र लोक मे प्रतिष्ठा वाले सब राजर्षि माने गये है ।।८८।। अभिजाति से और तप से तथा मन्त्रों के व्याहरणों से इस प्रकार से ब्रह्मर्षि दिव्य तथा राजर्षि कहे गये है ।।८९।। जो अन्य देवर्षि है उनके लक्षण मैं बतलाऊँगा। भूत भव्य भव का ज्ञान तथा सत्याभिव्याहृत भी बतलाया जायगा ।।९ ।। जो स्वय ही सम्बुद्ध हुए और जो स्वयं सम्बुद्ध है यहाँ जो तप से प्रसिद्ध हुए और जिन्होंने गर्भ मे

प्रणोदित किया, जो मन्त्रों के व्याहरण करने वाले है और जो ऐश्वर्य से सर्वत्र गमन करने वाले हैं, ये देव-द्विज और नृप ऋषियों से युक्त है। इन भावों का अध्ययन करते हुए और जो ये ऋषि माने गये हैं वे सप्त गुणों से युक्त सात ही हैं इसीलिए सप्तर्षि कहे गये है ।।९१।।९२।।९३।।

दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुष ।
वृद्धा प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रवर्तकाश्च ये ।।९४।।
षट्कर्माभिरता नित्य शालिनो गृहमेधिन ।
तुल्यैर्व्यवहरन्ति स्म अदृष्टै कर्महेतुभि ।।९५।।
अग्राम्यैर्वर्त्तयन्ति स्म रसैश्चैव स्वयकृतै ।
कुटुम्बिन ऋद्धिमन्तो बाह्यान्तरनिवासिन ।।९६।।
कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुन पुन ।
वर्णा श्रमव्यवस्थान क्रियन्ते प्रथमन्तु वै ।।९७।।
प्राप्ते त्रेतायुगमुखे पुन सप्तर्षयस्त्विह ।
प्रवर्त्तयन्ति ये वर्णा नाश्रमाश्चैव सर्वश ।
तेषामेवान्वये वीरा उत्पद्यन्ते पुन पुन ।।९८।।

दीर्घ आयु वाले—मन्त्रो के करने वाले—ईश्वर—दिव्य चक्षु वाले—वृद्ध—प्रत्यक्ष धर्म वाले—और जो गोत्रो के प्रवर्तक हैं—वह कर्मो मे रत रहने वाले नित्यशाली—गृहमेधी—अदृष्ट कर्मों के हेतुओ से तुल्य व्यवहार किया करते हैं। वे जो स्वय कृत अग्राम्य रसों से वर्त्तन किया करते है वे—कुटुम्बी-ऋद्धि वाले-बाह्य और अन्तर के निवास करने वाले कृतादिनाम वाले समस्त युगो मे बार-बार पहिले वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था जिनके द्वारा की जाती है। त्रेता युग के मुख के प्राप्त होने पर यहां पर पुन ये सप्तर्षि गए सबच वर्णों और आश्रमा का प्रवर्त्तन करते है उन्ही के वश मे वीर बार-बार उत्पन्न होते है ।।९४।। ।।९५।।९६।।९७।।९८।।

जायमाने पिता पुत्रे पुत्र पितरि चैव हि ।
एव समेत्या विच्छेदाद्वर्त्तयन्त्यायुगक्षयात् ।
अष्टाशीतिसहस्राणि प्रोक्तानि गृहमेधिनाम् ।।९९।।

अयम्णो दक्षिणा ये तु पितृयाणं समाश्रिता ।
दाराग्निहोत्रिणस्ते ो ये प्रजाहेतव स्मृता ॥१००॥
गृहमेधिनाञ्च सख्येया श्मशानान्याश्रयन्ति ते ।
अष्टाशीतिसहस्राणि निहिता उत्तरायणे ॥१०१॥
ये श्रूयन्ते दिव प्राप्ता ऋषयो ह्यूद्ध रेतस ।
मन्त्रब्राह्मणकर्त्तारो जायन्ते ह युगक्षये ॥१०२॥
एवमावर्त्तमानास्ते द्वापरेषु पुन पुन ।
कल्पाना भाष्यविद्याना नानाशास्त्रकृत क्षये ॥१०३॥
भविष्ये द्वापरे चव द्रोणिर्द्वैपायन पुन ।
वेदव्यासो ह्यतीतेऽस्मिन् भविता सुमहातपा ॥१ ४॥
भविष्यन्ति भविष्येषु शाखाप्रणयनानि तु ।
तस्म तद्ब्रह्मण ब्रह्म तपसा प्राप्तमव्ययम् ॥१ ५॥

पुत्र के उत्पन्न हो जाने पिता और पिता के विषय मे पुन इस प्रकार से प्रविच्छेद से मिलकर युग के क्षय पयन्त वर्णन किया करते है । व ऐसे गृहमेधी प्रठासी हजार कहे गए हैं ॥९९॥ प्रयमा के जो दक्षिण होते है वे पितृयाण म समाश्रित होते है । वे दाराग्निहोत्री हैं और जो प्रजा के हेतु रूप कहे गय है ॥१ ॥ जो गृहमेधी श्मशानो का प्राश्रय लते है उनकी सख्या करने के योग्य है वे भी प्रठासी हजार उत्तरायण म निहित होते हैं ॥१ १॥ जो ऊर्ध्व रेता ऋषि दिव्य लाक मे प्राप्त हो गये हैं और ऐसे सुने जाते हैं वे मन्त्र और ब्राह्मण के कर्ता युग के क्षय हो जाने पर उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१ २॥ इस प्रकार से द्वापरो मे पुन पुन आवर्त्तमान होते है और क्षय म कल्पो भाष्य विद्याओ के नाना प्रकार के शास्त्रो के करने वाले होते है ॥१ ३॥ भविष्य द्वापर मे फिर द्रोणि द्वैपायन सुमहातपा वेदव्यास इसके अतीत हो जाने पर होगे ॥१ ४॥ भविष्यो मे शाखा प्रणयन होगे । उसके लिए उस ब्रह्मा के द्वारा तप से अव्यय ब्रह्म प्राप्त किया गया था ॥१ ५॥

तपसा कम सम्प्राप्त कर्मणा हि ततो यश ।
यशसा प्राप्य सत्य हि सत्येनाप्तो हि चाव्यय ॥१ ६॥

अव्ययादमृत शुक्रममृताल् सर्वमेव हि ।
ध्रुवमेकाक्षरमिदं स्वात्मन्येव व्यवस्थितम् ।
बृहत्त्वाद्बृंहणाच्चैव तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ॥१०७॥
प्रणवाव स्थित भूयो भूर्भुवःस्वरिति स्मृतम् ।
ऋग्यजुः सामाथर्वरूपिणे ब्रह्मणे नमः ॥१०८॥
जगतः प्रलयोत्पत्ती यत्तत्कारणसंज्ञितम् ।
महतः परमं गुह्यं तस्मै सुब्रह्मणे नमः ॥१०९॥
अगाधापरमक्षय्य जगत्सम्मोहनालयम् ।
सप्रकाशप्रवृत्तिभ्या पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥११०॥
साङ्ख्यज्ञानवतां निष्ठा गतिः सङ्कदमात्मनः ।
यत्तदव्यक्तममृत प्रकृतिब्रह्म शाश्वतम् ॥१११॥
प्रधानमात्मयोनिश्च गुह्यं सत्त्वञ्च शब्द्यते ।
अविभागस्तथा शुक्रमक्षरं बहु वाचकम् ।
परमब्रह्मणे तस्मै नित्यमेव नमो नमः ॥११२॥

तपसे कर्म सम्प्राप्त किया और कर्म के द्वारा फिर यज्ञ का लाभ हुआ। यज्ञ से सत्य को पाकर फिर उस सत्य से अव्यय को प्राप्त किया ॥१०६॥ अव्यय से अमृत और अमृत से सभी शुक्र को प्राप्त किया। यह ध्रुव एकाक्षर अपनी आत्मा मे ही व्यवस्थित है। बृहत्त्व होने से और बृंहण होने के कारण से ही वह ब्रह्म ऐसे नाम से कहा जाया करता है ॥१०७॥ प्रणव के रूप मे अवस्थित फिर 'भूर्भुव स्व' ऐसा कहा गया है। उस ऋक्-यजु-साम और अथर्व के रूप वाले ब्रह्म के लिए नमस्कार है ॥१०८॥ इस जगत् की प्रलय और उत्पत्ति मे जो वह कारण की सज्ञा वाला कहा गया है वह महत् का परम गुह्य है उस सुब्रह्म के लिए नमस्कार है ॥१०९॥ यह जगत् अगाध-अपार अक्षय्य और सम्मोहन का घर है। सप्रकाश प्रवृत्तियो से पुरुषार्थ के प्रयोजन वाला होता है ॥११०॥ साख्य के ज्ञान वालो की निष्ठा-गति-आत्मा का सङ्कट जो वह अव्यक्त-अमृत-प्रकृति ब्रह्म-शाश्वत है वह प्रधान-आत्मयोनि-गुह्य और सत्त्व इन शब्दो से कहा जाता है। अविभाग शुक्र है और अक्षर बहुत का वाचक होता है। उस परम ब्रह्म के लिये नित्य ही नमस्कार है ॥१११॥११२॥

कृते पन क्रिया नास्ति कुत एवाकृतक्रिया ।
सकृदेव कृत सव यद्व लोके कृताकृतम् ॥११३॥
श्रोतव्य व ्रुतं वापि तथवासाधुसाधुता ।
ज्ञातव्यञ्चाथ मन्तव्य स्प्रष्टव्य भोज्यमेव च ।
द्रष्टव्यञ्चाथ श्रोत य ज्ञातव्य वाथ किञ्चन ॥११४॥
दर्शित यदनेनव ज्ञान तद्वं सुर्षिणाम् ।
यद्व दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमहति ।
सर्वाणि सर्वान्सर्वाश्च भगवानेव सोऽब्रवीत् ॥११५॥
यदा यत्क्रियते येन तदा तत्सोऽभिम यते ।
येनेद क्रियते पूव तदन्येन विभावितम् ॥११६॥
यदा तु क्रियते किञ्चित्केनचिद्वाङ मय कचित् ।
तेनव तत्कृत पूव कर्त्त णा प्रतिभाति व ॥११७॥
विरक्तञ्चातिरिक्तञ्च ज्ञानाज्ञाने प्रियाप्रिये ।
धर्माधर्मौ सुख दु ख मृत्युश्चामृतमेव च ।
ऊद्व न्तियगधोभागस्तस्य वादृष्टकारणम् ॥११८॥
स्वायम्भुवोऽथ ज्येष्ठस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिन ।
प्रत्येकविद्यम्भवति त्रेतास्विह पुन पुनः ॥११९॥

कृत मे क्रिया नही है फिर अकृत की क्रिया कसे हुई ? एक बार ही जो सब किया गया है वह लोक मे कृताकृत है ॥११३॥ श्रुत को सुनना चाहिए उसी प्रकार से असाधु साधुता है । जानना चाहिए—मानना चाहिए—स्पर्श के योग्य होना चाहिए-भोग करना चाहिए-देखना चाहिए-सुनना चाहिए—कुछ जानना चाहिए ॥११४॥ जो इसी के द्वारा देखा गया वह सुरर्षियो का ज्ञान है । जिसने वह देखा है वह कौन है वही ढूढने के योग्य होता है। सबको सबको भगवान ही है ऐसा वह बोल ॥११५॥ जिस समय मे जो जिसके द्वारा किया जाता है उस समय उसके द्वारा वह माना जाता है । जिसके द्वारा यह पहिल किया जाता है वह अन्य के द्वारा विभावित होता है ॥११६॥ जिस समय किसी के द्वारा कुछ वाड मय कही पार किया जाता है वह उसी के द्वारा पहिले

किया हुआ करने वालो को प्रतिभान होता है ॥११७॥ ज्ञान और अज्ञान मेन्रिय और अप्रिय मे विरक्त और प्रतिरिक्त-धर्म एव अधर्म-सुख-दु ख-मृत्यु-अमृत-ऊर्द्ध-तिर्यक् और अधोभाग ये सब उसी अदृष्ट का कारण होता है ॥११८॥ ज्येष्ठ परमेष्ठी ब्रह्मा का स्वायम्भुव यहाँ त्रेताओ मे पुन -पुन प्रत्येक विद्य वाला होता है ॥११९॥

व्यस्यते ह्यकविद्यन्तद्द्वापरेषु पुनः पुनः ।
ब्रह्मा चैतदुवाचादौ तस्मिन् वैवस्वतेऽन्तरे ॥१२०॥
आवर्त्तमाना ऋषयो युगाख्यासु पुन. पुनः ।
कुर्वन्ति संहिता ह्यते जायमाना. परस्परम् ॥१२१॥
अष्टाशीतिसहस्राणि श्रुतर्षीणा स्मृतानि वै ।
ता एव संहिता ह्यते आवर्त्तन्ते पुन पुनः ॥१२२॥
श्रिता दक्षिणपन्थानं ये श्मशानानि भेजिरे ।
युगे युगे तु ताः शाखा व्यस्यन्ते तैः पुन पुनः ॥१२३॥
द्वापरेष्विव सर्वेषु संहिताश्च श्रुतर्षिभिः ।
तेषा गोत्रेष्विमाः शाखा भवन्तीह पुनः पुन ।
ता. शाखास्तत्र कर्त्तारो भवन्तीह युगक्षयात् ॥१२४॥
एवमेव तु विज्ञेयं व्यतीतानागतेष्विह ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शाखाप्रणयनानि वै ॥१२५॥
अतीतेषु अतीतानि वर्तन्ते साम्प्रतेषु च ।
भविष्याणि च यानि स्युर्वर्ण्यन्तेऽनागतेष्वपि ॥१२६॥

द्वापरो मे बार-बार एक विद्य वाला व्यवस्यमान होता है। आदि मे वैवस्वत मन्वन्तर मे ब्रह्माजी ने यह बोला था ॥१२०॥ ऋषिगण बार-बार युगाख्याओ मे आवर्त्तमान होते है और परस्पर मे जायमान होते हुए इन संहिताओ को किया करते है ॥१२१॥ अट्ठासी हजार श्रुतर्षि कहे गए हैं और वे ही संहिताएँ बार-बार आवर्त्तमान हुआ करती हैं ॥१२२॥

दक्षिण मार्गो का आश्रय होने वाले जिन्होंने श्मशानो का सेवन किया था युग-युग मे पुन पुन वे ही शाखाओ को किया करते हैं ॥१२३॥ यहाँ सब

द्वापरो म श्रुतर्पियो के द्वारा सहिताए और उनके गोत्रो मे य शाखाए बार-बार होती है। यहाँ पर शाखाएँ वहाँ पर उनके करने वाले युग के क्षय स होते है ॥१२४॥ इसी प्रकार से जो व्यतीत हो गये है उनम और जो आगे होने वाले मन्वन्तर है उनमे सब जान लना चाहिए। सब मन्वन्तरो म शाखाओ के प्रणयन भी जान लने चाहिए ॥१२५॥ अतीतो मे अतीत होत हैं और साम्प्रतो मे अर्थात् वर्तमानो मे और जो भविष्य है वे अनागतो म वर्णित किय जाते है ॥१२६॥

पूर्वेण पश्चिम ज्ञय वर्त्तमानेन चोभयम् ।
एतेन क्रमयोगेन मन्वन्तरविनिश्चय ॥१२७॥
एव देवाश्च पितर ऋषयो मनवश्च ये ।
मन्त्र सहोद्ध गच्छन्ति ह्यावर्त्तन्ते च त सह ॥१२८॥
जनलोकात्सुरा सर्वे पशुकल्पात्पुन पनः ।
पर्याप्तकाले सम्प्राप्ते सम्भूता नव नस्य (?) तु ॥१२९॥
अवश्यम्भाविनार्थेन सम्बध्यन्ते तदा तु ते ।
ततस्ते दोषवज्जन्म पश्यन्ते रागपूर्वकम् ॥१३ ॥
निवर्त्तते तदा वृत्तिस्तेषामादोषदर्शनात् ।
एव देव युगानीह दशकृत्वा निवर्त्तते ॥१३१॥
जनलोकात्तपोलोक गच्छन्तीह्यनिवर्त्तनम् ।
एव दोयुगानीह व्यतीतानि सहस्रश ।
निधन ब्रह्मलोके व गतानि मुनिभिस्सह ॥१३२॥
न शक्यमानुपूर्व्येण तथा वक्तुं सविस्तरान् ।
अनादित्वाच्च कालस्य असङ्ख्यत्वाच्च सवश ।
मन्वन्तराण्यतीतानि यानि कल्प पुरा सह ॥१३३॥

पूव से पश्चिम जानना चाहिए और वर्तमान से पूर्व और पश्चिम दोनो को ही जान लेना चाहिए। इस क्रम के योग से मन्वन्तरो का विनिश्चय हुआ करता है ॥१२७॥ इसी प्रकार से देव पितर ऋषि और मनुगण ये सब मन्त्रो के सहित ऊर्द्ध भाग को चले जाया करते हैं और उनके साथ ही फिर आवर्त्त-

है ॥१४२॥ यहाँ पर समस्त प्राणी सूय की किरणों से दग्ध हो जाते है। ब्रह्मा को आगे करके देव-ऋषि और दानवो के साथ देवों के देव और युगे के ईश्वर महेश्वर मे प्रवेश किया करते है ॥१४३॥ यह ही कल्पादि मे बार-बार समस्त प्राणियों का लय होता है। यह ही देवर्षियों के साथ मनु की स्थिति का काल होता है ॥१४४॥ समस्त मन्वन्तरो की प्राप्ति सन्धि को समझलो। मैंने उसमें पहिले ही युगाख्या जो तुम्हारे सामने समुदिष्ट की थी ॥१४५॥ कृतत्रेतादि सयुक्त चतुर्युग कहा गया है। वह इकत्तर गुणा परिवृत्त मानिक मनु का एकाधिकार भगवान् प्रभु ने बतलाया था ॥१४६॥

एव मन्वन्तराणा तु सर्वेषामेव लक्षणम् ।
अतीतानागताना वै वर्त्तमानेन कीर्त्तितम् ॥१४७
इत्येष कीर्त्तित सर्गो मनो स्वायम्भुवस्य ह ।
प्रति सन्धिन्तु वक्ष्यामि तस्य वै चापरस्य तु ॥१४
मन्वन्तर यथा पूर्वमृषिभिर्देवतै सह ।
अवश्यम्भाविनार्थेन यथा तद्वै निवर्त्तते ॥१४६
अस्मिन् मन्वन्तरे पूर्वं त्रैलोक्यस्येश्वरास्तु ये ।
सप्तर्षयश्च देवास्ते पितरो मनवस्तथा ।
मन्वन्तरस्य काले तु सम्पूर्णे साधकास्तथा ॥१५०
क्षीणाधिकारा सवृत्ता बुद्धा पर्यायमात्मन ।
महर्लोकाय ते सर्वे उन्मुखा दधिरे गतिम् ॥१५१
ततो मन्वन्तरे तस्मिन् प्रक्षीणा देवतास्तु ता ।
सम्पूर्णे स्थितिकाले तु तिष्ठन्त्येक कृत युगम् ॥१५२
उत्पद्यन्ते भविष्याश्च यावन्मन्वन्तरेश्वरा ।
देवता पितरश्चैव ऋषयो मनुरेव च ॥१५३

इसी प्रकार से सभी मन्वन्तरों का लक्षण होता है। अतीत और अनागतों का वर्त्तमान के द्वारा किया गया है।१४७। यह स्वायम्भुव मनु का सर्ग बतलाया गया है। अब उसकी तथा दूसरे की प्रति सन्धि-बतलाऊँगा ॥१४८। जिस प्रकार से पहिले ऋषि और देवों के साथ मन्वन्तर अवश्यम्भावी अर्थ से

जाते वह निवृत्त होता है ॥१४६॥ इस मन्वन्तर में पहिले जो त्रैलोक्य के ईश्वर हैं—सप्तर्षि देव-पितर तथा मनुगण ये सभी सम्पूर्ण मन्वन्तर के समय में साधक होते हैं ॥१५ ॥ क्षीण अधिकार वाले हुए अपने पर्याय (पारी) को जानकर वे सब महर्लोक के लिए उन्मुख होते हुए गति को धारण किया करते थे ॥१५१॥ इसके पश्चात् उस मन्वन्तर प्रक्षीण हुए वे सब देवता एक कृत युग में पूरे स्थिति के समय में ठहरा करते हैं ॥१५२॥ जितने मन्वन्तर के ईश्वर हैं जैसे—देवता—पितर—ऋषि लोग और मनु उत्पन्न होते हैं और आगे होने वाले होते हैं ॥१५३॥

मन्वन्तरे तु सम्पूर्णे यद्यन्यद्वा कला युगे ।
सम्पद्यते कृत तेषु कलिशिष्टेषु वै तदा ॥१५४
यथा कृतस्य सन्तान कलिपूर्व स्मृती बुध ।
तथा मन्वन्तरान्तेषु आदिमन्वन्तरस्य च ॥१५५
क्षीणे मन्वन्तरे पूर्वे प्रवृत्त द्वापरे पुन ।
मुखे कृतयुगस्याथ तेषा शिष्टास्तु ये तदा ॥१५६
सप्तर्षयो मनुश्च व कालावेक्षास्तु ये स्थिता ।
मन्वन्तर प्रतीक्षन्ते क्षीयन्ते तपसि स्थिता ॥१५७
मन्वन्तरव्यवस्थार्थं सन्तत्यर्थञ्च सर्वश ।
पूर्ववत् सम्प्रवत्तन्ते प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ॥१५८
द्वन्द्वेषु सम्प्रवृत्तेषु उत्पन्नास्वौषधीषु च ।
प्रजासु च निकेतासु सुस्थितासु क्वचित् क्वचित् ॥१५९
वार्तायान्तु प्रवृत्ताया सद्धर्मे ऋषिभाविते ।
निरानन्दे गते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥१६०
अग्रामनगरे चैव वर्णाश्रमविवर्जिते ।
पूर्वमन्वन्तरे शिष्टे ये भवन्तीह धार्मिका ।
सप्तर्षयो मनुश्च व सतानाथ व्यवस्थिता ॥१६१

सम्पूर्ण मन्वन्तर में यदि अन्य कलियुग में सम्पन्न होता है। कलियुग में शिष्ट उनके होने पर उस समय कृत होता है ॥१५४॥ जिस प्रकार से बुधो

ने कृत की सन्तान कलिपूर्व बताई है उसी प्रकार से मन्वन्तरान्तों में मन्वन्तर का आदि हुआ करता है ।।१५५।। पूर्व मन्वन्तर के क्षीण हो जाने पर और फिर दूसरे के प्रवृत्त होने पर कृतयुग के मुख में और इसके अनन्तर जो उनके शिष्ट होते हैं वे उस समय में होते हैं ।।१५६।। सप्तर्षियों का समुदाय और मनु जो कालापेक्ष स्थित होते हैं वे सब मन्वन्तर की प्रतीक्षा किया करते हैं और तप में स्थित क्षीण होते हैं ।।१५७।। मन्वन्तर की व्यवस्था करने के लिए और सन्तति प्राप्त करने के वास्ते सब ओर में पूर्व की ही भाँति वृद्धि के सजन के प्रवृत्त हो जाने पर ये सम्प्रवृत्त हुआ करते हैं ।।१५८।। द्वन्द्वों के सम्प्रवृत्त होने पर और औषधियों के समुत्पन्न हो जाने पर और कहीं–कहीं पर प्रजाओं से निकेतों में सस्थित होने पर ।।१५९।। वार्त्ता के प्रवृत्त हो जाने पर तथा सद्धर्म के ऋषियों के द्वारा भावित होने पर–समस्त इस लोक के आनन्द रहित हो जाने पर एवं स्थावर (जड-अचेतन) और जङ्गम (चेतन) के नष्ट हो जाने पर ।।१६०।। ग्रामों और नगरों से रहित लोग के हो जाने पर तथा चारों वर्ण और आश्रमों से एकदम शून्य हो जाने पर पहिले मन्वन्तर के शिष्ट रहने पर यहाँ पर जो भी धर्म के मानने वाले व्यक्ति होतेहैं वे सप्तर्षियों के समूह और मनु सन्तान की वृद्धि करने के लिए व्यवस्थित हुए थे ।।१६१।।

प्रजार्थं तपता तेषां तपः परमदुश्चरम् ।
उत्पद्यन्तीह सर्वेषां निधनेष्विह सर्वश ।।१६२
देवासुरा पितृगणा मुनयो मनवस्तथा ।
सर्पा भूता पिशाचाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसा ।।१६३
ततस्तेषां तु ये शिष्टा शिष्टाचारान् प्रचक्षते ।
सप्तर्षयो मनुश्चैव आदौ मन्वन्तरस्य ह ।
प्रारभन्ते च कर्माणि मनुष्या दैवतैः सह ।।१६४
मन्वन्तरादौ प्रागेव त्रेतायुगमुखे ततः ।
पूर्वं देवास्ततस्ते वै स्थिते धर्मे तु सर्वश. ।।१६५
ऋषीणां ब्रह्मचर्येण गत्वाऽऽनृण्यन्तु वै तत ।
पितृणां प्रजया चैव देवानामिज्यया तथा ।।१६६

शत वर्षसहस्राणि धर्मे वर्णात्मके स्थिता ।
त्रयी वार्त्ता दण्डनीति धर्मान् वर्णाश्रमास्तथा ।
स्थापयित्वाश्रमाश्चैव स्वर्गाय दधिरे मती ॥१६७
पूर्व देवेषु तेऽवेव स्वर्गाय प्रमुखेष च ।
पूर्व देवास्ततस्ते व स्थिता धर्मेण कृत्स्नश ॥१६८

प्रजा की प्राप्ति करने के लिए तपश्चर्या करने वाले उनकी तपस्या अत्यन्त ही दुष्कर थी। यहाँ पर सब लोगो का निधन (मृत्यु) हो जाने पर सभी ओर उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१६२॥ देव तथा असुर–पितृगण–मुनि वृन्द तथा मनुगण–सर्प–भूत–पिशाच–गन्धर्व–यक्ष और राक्षस इसके पश्चात् उनमे जो शिष्ट थे वे शिष्टाचारो को किया करते हैं। मन्वन्तर आदि मे महर्षियो का समुदाय और मनु तथा देवो के साथ ही मनुष्य कर्मों का प्रारम्भ किया करते हैं ॥१६३ १६४॥ मन्वन्तर के आदि मे पहिले ही त्रेतायुग के मुख मे पहिले देव होते है इसके पश्चात् सभी ओर से धर्म स्थित हो जाने पर ऋषियो के ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करने से आनृण्य अर्थात् ऋण का चुकाया जाने को प्राप्त हुए फिर इसके अनन्तर सतान की समुत्पत्ति करके उसके द्वारा पितृगण की अनृणता (ऋण का अभाव) प्राप्त की फिर इसके अनन्तर इज्या का यजन करने से देवो की अनृणता प्राप्त की थी ऋषि–ऋण पितृ–ऋण और देव–ऋण ये तीन ऋणो का भार सभी के ऊपर रहना है जोकि ब्रह्मचर्य सन्तति और यज्ञ से क्रम से चुकाया जाया करता है ॥१६४ १६५ १६६॥ सौ सहस्र वर्ष तक वर्णात्मक धर्म मे स्थित होते हुए उन्होने त्रयी–वार्त्ता—दण्ड नीति वर्णों तथा आश्रमो के धर्मों को स्थापित करके और ब्रह्मचर्य–गार्हस्थ्य–वानप्रस्थ और सन्यास इन चारो आश्रमो की स्थापना करके फिर स्वर्ग के गमन करने की बुद्धि धारण की अर्थात् स्वर्ग म चले गये थे ॥१६७॥ पहिले देवो के और फिर उनके स्वर्ग के लिए प्रमुख हो जाने पर पहिले देव और इसके पश्चात् वे सब पूर्णतया धर्म के साथ स्थित हुए थे ॥१६८॥

मन्वन्तरे परावृत्ते स्थानान्युत्सृज्य सर्वश ।
मन्त्र सहोध्वङ्गच्छन्ति महर्लोकमनामयम् ॥१६९

विनिवृत्तविकारास्ते मानसी सिद्धिमास्थिता ।
अवेक्षमाणा वशिनस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥१७०
ततस्तेषु व्यतीतेषु सर्वेष्वेतेषु सर्वदा ।
शून्येषु देवस्थानेषु त्रैलोक्ये तेषु सर्वश ।
उपस्थिता इहैवान्ये देवा ये स्वर्गवासिन ॥१७१
ततस्ते तपसा युक्ता स्थानान्यापूरयन्ति वै ।
सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समन्विता ॥१७२
सप्तर्षीणा मनोश्चैव देवाना पितृभि सह ।
निघनानीह पूर्वेषामादिना च भविष्यता ॥१७३
तेषामत्यन्तविच्छेद इह मन्वन्तरक्षयात् ।
एव पूर्वानुपूर्व्येण स्थितिरेषानवस्थिता ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु या वदाभूतसम्प्लवम् ॥१७४
एग मन्वन्तराणान्तु प्रतिसन्धानलक्षणम् ।
अतीतानागतानान्तु प्रोक्त स्वायम्भुवेन तु ॥१७५

मन्वन्तर के परावृत्त होने पर सब ओर से स्थानो का त्याग करके मन्वो के साथ आमय रहित ऊर्ध्व महर्लोक को चले जाया करते हैं ॥१६९॥ समस्त प्रकार के विकारो के विशेष रूप से निवृत्त हो जाने वाले ये मानसी सिद्धि मे आस्थित होते हुए अवेक्षमाण और अपने आपको वश मे रखने वाले भूत सम्प्लव पर्यन्त ठहरा करते है ॥१७०॥ इसके अनन्तर उन सबके व्यतीत हो जाने पर और सर्वदा इन सब शून्य देवो के स्थानो मे त्रैलोक्य मे सभी ओर से उनमे स्वर्ग मे निवास करने वाले जो अन्य देव है वे सब यहाँ पर ही उपस्थित होते है ॥१७१॥ इसके पश्चात् वे सत्य व्रत के द्वारा—ब्रह्मचर्य के पूर्ण प्रतिपालन के द्वारा और श्रुत के द्वारा पूर्णतया सर्व समन्वित और तप से युक्त वे उन स्थानो को आपूरित किया करते है ॥१७२॥ सप्तर्षियो का—मनु का और पितृगण के साथ देवो की यहाँ पर मृत्यु पूर्व मे होने वालो की आदि से और भविष्यत् से होती है ॥१७३॥ उनका अत्यन्त विच्छेद यहाँ पर मन्वन्तर के क्षय से होता है। इस प्रकार से पूर्व की आनुपूर्वी से यह अनवस्थित स्थिति

प्रकार से यह स्वायम्भुव मनु का मन्वन्तर विस्तारपूर्वक तथा आनुपूर्वी से कह दिया है अब आगे फिर मैं क्या वर्णन करूँ ॥१८६॥

॥ प्रकरण ४४ पृथ्वी-दोहन ॥

क्रमं मन्वन्तराणान्तु ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ।
देवतानां च सर्वेषां ये च यस्यान्तरे मनोः ॥१
मन्वन्तराणां यानि स्युरतीतानागतानि ह ।
समासाद्विस्तराच्चैव ब्रुवतो मे निबोधत ॥२
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा ।
औत्तमस्तामसश्चैव तथा रैवतचाक्षुषौ ।
षडेते मनवोऽतीता वक्ष्याम्यष्टावनागतान् ॥३
सावर्णा पञ्च रौच्यश्च भौत्यो वैवस्वतस्तथा ।
वक्ष्याम्येतान् पुरस्तात्तु मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥४
मनवः पञ्च येऽतीता मानवांस्तान् निबोधत ।
मन्वन्तरं मया प्रोक्तं क्रान्तं स्वायम्भुवस्य ह ॥५
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनोः स्वारोचिषस्य ह ।
प्रजासर्गं समासेन द्वितीयस्य महात्मनः ॥६
आसन् वै तुषिता देवा मनुस्वारोचिषेऽन्तरे ।
पारावताश्च विद्वांसो द्वावेव तु गणौ स्मृतौ ॥७

श्री शांशपायन ने कहा—मैं मन्वन्तरों के क्रम को तत्त्व पूर्वक जानने की इच्छा करता हूँ और जिस मनु के अन्तर में जो सब देवता हुए हैं उनके क्रम को भी जानने की इच्छा रखता हूँ। ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—अतीत और अनागत मन्वन्तरों के जो भी देवता होते हैं उनको संक्षेप से और विस्तार से बताने वाले मुझसे सब कुछ समझ लो ॥२॥ अब तक छः मनु व्यतीत हुए हैं उनके क्रम से नाम ये हैं—सबसे पहला मनु स्वायम्भुव हुआ था उसके पश्चात्

स्वारोचिप मनु हुए फिर औत्तम तामस–रैवत और अन्त में चाक्षुप मनु हुए है। ये इतने ७ मनु तो अब तक व्यतीत हो चुके हैं। अब जो अनागत अर्थात् भविष्य में होने वाले आठ मनु हैं उनको वताऊँगा ॥३॥ पाँच सावर्ण–रौच्य-भौत्य तथा वैवस्वत ये आठ हैं। वैवस्वत मनु के पहिले इनको वताऊँगा ॥४॥ जो पाँच मनु अतीत हो चुके हैं उन मानवों को आप लोग जान लो। स्वायम्भुव का क्रान्त मन्वन्तर मैंने कह दिया है ॥५॥ इसके आगे जो स्वारोचिप मनु है उस द्वितीय महान् आत्मा वाले की प्रजा का सर्ग संक्षेप से बतलाऊँगा ॥६॥ स्वारोचिप मन्वन्तर में तुपिता और विद्वान् पारावत देव हुए थे उस समय ये दो ही गण कहे गये है ॥७॥

तुपितायां समुत्पन्ना क्रतो पुत्रा स्वरोचिप ।
पारावताश्च शिष्टाश्च द्वादशौतौ गणौ स्मृतौ ।
छन्दजाश्च चतुर्विशद् वास्ते वै तदा स्मृता ॥८
वैवस्यशोऽथ वामान्यो गोपा देवायतस्तथा ।
अजश्च भगवान् देवो दुरोणश्च महाबल ॥६
आपश्चापि महाबाहुर्महौजाश्चापि वीर्यवान् ।
चिकित्वान् निभृतो यश्च अ शोयश्चै व पठ्यते ।
इत्येते क्रतुपुत्रास्तु तदासन् सोमपायिन ॥१०
प्रचेताश्चै व यो देवो विश्वेदेवास्तथैव च ।
समञ्जो विश्रुतो यश्च अजिह्माश्चारिमर्द्दन ॥११
अजिह्मानमहीयाजो विद्यावन्तौ तथैव च ।
अजोपौ च महाभागौ यवीयश्च महाबल ॥१२
होता यज्वा च इत्येते पराक्रान्ता परावता ।
इत्येता देवता ह्यासन्मनुस्वारोचिषेन्तरे ॥१३
सोमपास्तु तदा ह्येताश्चतुर्विशतिदेवताः ।
तेषामिन्द्रस्तदा ह्यासीदं यश्च लोकविश्रुतः ॥१४

तुपिता मे क्रतु के स्वारोचिप पुत्र उत्पन्न हुए। और शिष्ट पारावत उत्पन्न हुए ये द्वादश थे। ये दो गण कहे गये हैं और छन्दज थे ने उस समय

मे चौबीस देव कहे गय है ।।८।। धवस्य–वामाय–गोपा–देवायन–भ्रज–भगवान् देव–दुरोण–महाबल–भ्राप–महाबाहु–महौजा–वीर्यवान्–चिकित्स्वान्–निभृत–भ्रशोय ये सब पढ़े जाते है। ये सब क्रतु के पुत्र उस समय मे सोमपायी हुए थे ।।६।।१)। प्रचेता देव–विवेदेवा–विश्रल–भ्रजिहन–भ्ररिमदन–भ्रनिह्मान–महीयान ये विद्यावान् थे दो भ्रजोष जो महाभाग थे–यवीय–महाबल–होता भ्रौर मज्वा ये सब परावत पराक्रान्त हुए हैं। ये सब स्वारोचिप मन्वन्तर म देवता थे ।।११।।१२।।१३।। उस समय मे ये चौबीस देवता सोमप थ। उस समय मे लोक विश्रत वैघ उनका इन्द्र था ।।१४।।

ऊर्जो वसिष्ठपुत्रस्तु स्तम्भः काश्यप एव च ।
भार्गवश्च तदा द्रोणो ऋषभोऽङ्गिरसस्तथा ।।१५
पौलस्त्यश्च व दत्तात्रिरात्रेयो निश्चहस्तथा ।
पौलहस्य च धावास्तु एते सप्तर्षयः स्मृता ।।१६
चत्र कविरुतश्च व कृतान्तो विभृतो रविः ।
बृहद्गुहो नवश्च व सुताश्च ते नव स्मृता ।।१७
मनोः स्वारोचिपस्यते पुत्रा वशकराः स्मृता। ।
पुराणे परिसङ्ख्याता द्वितीय चतदन्तरम् ।।१८
सप्तर्षयो मनुर्देवाः पितरश्च चतुष्टयम् ।
मूल मन्वन्तरस्यते नेषा चवान्तरे प्रजा ।।१६
ऋषीणा देवताः पुत्रा पितरो देवसूनव ।
ऋषयो देवपुत्राश्च इति शास्त्रविनिश्चय ।।२०
मनो क्षत्र विद्याश्च व सर्पिभ्यो द्विजातय ।
एतन्मन्वन्तर प्रोक्त समासाश्च तु विस्तरात् ।।२१

वशिष्ठ का पुत्र ऊर्ज–कश्यप का पुत्र स्तम्भ–भार्गव–द्रोण–आङ्गिरस–ऋषभ–पौलस्त्य–दत्तात्रि आत्रेय–निश्चल–पौलह का धावान् ये सप्तर्षि कहे गये हैं ।।१५।।१६।। चत्र–कवि–उत–कृतान्त–निभृत–रवि–बृहद्गुह–नव ये नौ पुत्र कहे गये हैं ।।१७।। मे स्वारोचिप मनु के ये वश कर पुत्र कहे गये हैं। पुराण म ये सब परिसख्यात है। यह द्वितीय भ्रन्तर होता है ।।१८।। इसके भ्रन्तर

मे प्रजा है ।।१६।। ऋषियो के देवता पुत्र है और पितर देव पुत्र होते है। ये सब ऋषि और देव पुत्र ही है ऐसा शास्त्र का विनिश्चय होता है ।।२०।। मनु से क्षत्र अर्थात् क्षत्रिय और वैश्य और सप्तर्षियों से द्विजाति हुए। यह मन्वन्तर संक्षेप से कह दिया गया है विस्तार नही कहा है ।।२१।।

स्वायम्भुवेन विस्तारो ज्ञेय स्वारोचिषस्य तु
न शक्यो विस्तरस्तस्य वक्तु वर्षशतैरपि ।
पुनरुक्तवहुत्वात् प्रजाना वै कुले-कुले ।।२२
तृतीयस्त्वथ पर्याय औत्तमस्यान्तरे मनो ।
पञ्च चैव गणा प्रोक्तास्तान् वक्ष्यामि निबोधत ।।२३
सुधामानश्च देवाश्च ये चान्ये वशवर्त्तिन ।
प्रतर्द्दनाः शिवा सत्या गणा द्वादश वै स्मृता ।।२४
सत्यो धृतिदमो दान्त क्षम क्षामो धृति शुचि ।
ईषोर्जश्च तथा ज्येष्ठो वपुष्माश्चै व द्वादश ।
इत्येते नामभि. क्रान्ता सुधामानस्तु द्वादश ।।२५
सहस्रधारो विश्वात्मा शमितारो बृहद्वसु ।
विश्वधा विश्वकर्मा च मनस्वन्तो विराड्यशा ।।२६
ज्योतिश्चै व विभाव्यश्च कीर्त्तिमान् वशकारिण ।
अन्यानाराविंतो देवो वसुविष्णो विवस्वसु ।।२७
दितक्रनु सुधर्मा च धृतवर्मा यशस्विन ।
केतुमाश्चै व इत्येते कीर्तितास्तु प्रमर्द्दना ।।२८

स्वायम्भुव से स्वारोचिष का विस्तार जान लेना चाहिए। वैसे उसका पूर्ण विस्तार सौ वर्षों मे भी बतलाया नही जा सकता है। कुल-कुल मे पुनरुक्ति का बाहुल्य प्रजाओ का होता है ।।२२।। तृतीय औत्तम मनु के अन्तर मे पर्याय होता है। इसमे पाँच गण कहे है उनको बतलाऊँगा उन्हे आप समझ लो ।।२३।। सुधामान और देव जो अन्य वशवर्ती है—प्रतर्दन—शिव और सत्य ये बारह गण कहे गये है ।।२४।। सत्य—दम—दान्त—क्षम—क्षाम—धृति—शुचि—ईषोर्जा—ज्येष्ठ—और वपुष्मान् ये बारह है। ये सब नाम से कहे गये है और

सुधामान बारह है ॥२५॥ सहस्रधार–विश्वात्मा–शमितार–बृहद्वसु–विश्वधा विश्व कर्मा–मनस्वन्त–विराजमना–ज्योति–विभा स–कीतिमान् ते वशकारी है। मन्यानाराधित–देव वसुविष्णु–विवस्वसु–दिन ऋतु–सुधर्मा–और धृतवर्मा ये सब यशस्वी हैं। केतुमान् ये प्रमदन कहे गये है ॥२६॥२७॥२८॥

हसस्वरोऽहिहा चैव प्रतदनयशस्करौ ।
सुदानो वसुदानश्च सुमञ्जसविपावुभौ ॥२९
जन्तुवाहृयतिश्च व सुवित्तसुनयस्तथा ।
शिवा ह्य ते तु विज्ञया यज्ञिया द्वादशापरा ॥३०
सत्यानामपि नामानि निवोधत यथामतम् ।
दिकपतिर्वाकपतिश्च व विश्व शम्भुस्तथव च ॥३१
स्वमृडीकोऽधिपश्च व वर्चोधा मुहसर्व्वश ।
वासवश्च सदास्वश्च क्षेमानन्दौ तथैव च ॥३२
सत्या ह्य ते परिक्रान्ता यज्ञिया द्वादशापरा ।
इत्येते देवता ह्यासन्नौत्तमस्यान्तरे मनो ॥३३
अजश्च परशुश्च व दिव्यो दिव्यौषधिश्च य ।
देवानुजश्चाप्रतिमो महोत्साहौशिजस्तथा ॥३४
विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्र सुवल शुचि ।
औत्तमस्य मनो पुत्रास्त्रयोदश महात्मन ।
एते क्षत्रप्रणेतारस्तृतीय चैतदन्तरम् ॥३५
औत्तमे परिसङ्ख्यात सग स्वारोचिषेण तु ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च तामसस्तान्निबोधत ॥३६
चतुर्थे त्वथ पर्याये तामसस्यान्तरे मनो ।
सत्या स्वरूपा सुधियो हरयश्चतुरो गणा ॥३७

हस स्वर–अहिहा–प्रतदन–यशस्कर–सुदान–वसुदान–सुमञ्जस–विप दोनो–जन्तुवाहृयति–सुवित्त सुनय–शिवा ये यज्ञिय दूसरे द्वादश जानने चाहिए ॥२९॥३ ॥ अब सत्यो के नाम भी यथामत जान लो। दिकपति–वाकपति–विश्व–शम्भु–स्वमृडीक–अधिप–वर्च्चोधा मुहा सवश–वासव–सदास्व क्षेम और

आनन्द ये सब बारह दूसरे यज्ञिय कहे गये हैं। औत्तम मन्वन्तरों में ये सब देवता थे। ॥३१॥३२॥३३॥ अज-परशु--दिव्य--दिव्यौषधि--नय--देवानुज--अप्रतिम--महोत्साहो शिज--विनीत--सुकेतु--सुमित्र--सुबल--शुचि ये महान् आत्मा वाले औत्तम मनु के तेरह पुत्र हुए थे। इन्होंने ही क्षत्र का अर्थात् क्षत्रियों का प्रणयन किया था और यह तृतीय अन्तर है। इस औत्तम मे स्वारोचिष के द्वारा यह सर्ग परिसख्यात हुआ है अब विस्तार से और आनुपूर्वी से तामस आता है उनको जान लो। ॥३४॥३५॥३६॥ इसके अनन्तर चौथे तामस मन्वन्तर के पर्याय में सत्य--स्वरूप--सुधिय--हरय ये चार गण हैं ॥३७॥

पुलस्त्यपुत्रस्य सुतास्तामसस्यान्तरे मनो ।
गणस्तु तेषा देवानामेकैक पचविशक ॥३८
इन्द्रियाणा शत यद्धि मुनय प्रतिजानते ।
सत्यप्राणास्तु शीर्षण्यास्तमश्चैवाष्टमस्तथा ।
इन्द्रियाणि तदा देवा मनोस्तस्यान्तरे स्मृता ॥३९
तेषा च प्रभुदेवाना शिबिरिन्द्र प्रतापवान् ।
सप्तर्षयोऽन्तरे चैव तान्निबोधत सत्तमा ॥४०
काव्यो हर्षस्तथा चैव काश्यप पृथुरेव च ।
आत्रेयश्चाग्निरित्येव ज्योतिर्धामा च भार्गव ॥४१
पौलहो वनपीठश्च गोत्रे वासिष्ठ एव च ।
चैत्रस्तथापि पौलस्त्य ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥४२
जनुश्चण्डस्तथा शान्तिर्नर ख्यातिर्भयस्तथा ।
प्रियभृत्यो ह्यवक्षिश्च पृष्ठलोढो दृढोद्यत ।
ऋतश्च ऋतबन्धुश्च तामसस्य मनो सुता ॥४३
पचमे त्वथ पर्याये मनोश्चारिष्णवेऽन्तरे ।
गणास्तु सुसमाख्याता देवताना निबोधत ॥४४
अमृता भाभूतरजोविकुण्ठा ससुमेधस ।
चरिष्णोस्तु शुभा पुत्रा वसिष्ठस्य प्रजापते ।
चतुर्दश च चत्वारो गणास्तेषान्तु भास्वरा ॥४५

स्वस्त्रविप्रोग्निभापश्च प्रत्येतिष्ठामृतस्तथा ।
सुमतिर्वाविरावश्च वाचिनोद स्नवस्तथा ॥४६
प्रविराशी च वादश्च प्राशश्चेति चतुर्दश ।
अमृताभा स्मृता ह्य ते देवाश्चारिष्णवेऽन्तरे ॥४७

पुलस्त्य पुत्र के सुत तामस मन्वन्तर मे थे । उन देवो के गण एक-एक पच्चीस थे ॥३८॥ जो इन्द्रियो के छो मुनि प्रति सात हैं, सत्यप्राण–शीघ्रग्य तथा आठवाँ तम है । उस समय मे इन्द्रिय उस मनु के अन्तर म देव कहे गये है ॥३९॥ उन प्रभु देवो का शिवि प्रताप वाला इन्द्र था । इस मन्वन्तर मे जो सप्तर्षि थे हे सत्तमा ! उनको अब आप लोग जान लो ॥४ ॥ काव्य हय काश्यप पृथु, आत्रेय अग्नि ज्योतिर्धामा भार्गव पौलह वनपीठ गोत्र मे वासिष्ट चत्र पौलस्त्य ये इस मन्वन्तर मे ऋषि थे ॥४१॥४२॥ जनु नरह शान्ति नर ख्याति भय प्रियभृत्य अवक्षि पृष्ठलोढ इढोद्यत ऋत ऋतबन्धु, ये तामस मनु के पुत्र थे ॥४३॥ इसके अनन्तर चारिष्णव मनु के पाँचव अन्तर पर्याय मे जो देवताओ के गण कहे गये हैं उन्हें अब जान लो ॥४४॥ अमृत भाभूत रज विकुण्ठ ससुमेधस चरिष्णु के शुभ पुत्र थे । वसिष्ठ प्रजापति के चौदह और चार उनके भास्वर गण थे । स्वस्त विप्र अग्निभास, प्रत्येतिष्ठामृत सुमति वाविराव वाचिनोद स्रव प्रविराशी वाद प्राश ये चौदह है । चारिष्णव मन्वन्तर मे ये अमृताभ देव कहे गये हैं ॥४५॥४६॥४७॥

मतिश्च सुमतिश्चव ऋतसत्यौ तथैव च ।
आवृतिर्विवृतिश्च व मदो विनय एव च ॥४८
जेता जिष्णु सहश्च व द्य तिमान् स्रवसस्तथा ।
इत्येतानीह नामानि आभूतरजसा विदु ॥४९
वृषभेत्ता जयो भीम शुचिर्दान्तो यशो दम ।
नाथो विद्वानजेयश्च कृशो गौरो ध्रुवस्तथा ।
कीर्तितास्तु विकुण्ठा वै सुमेधास्तु निबोधत ॥५०
मेधा मेधातिथिश्च व सत्यमेधास्तथैव च ।
पृश्निमेधाल्पमेधाश्च भूयो मेधाद्य प्रभु ॥५१

दीप्तिमेधा यशोमेधा स्थिरमेधास्तथैव च ।
सर्वमेधाश्वमेधाश्च प्रतिमेधाश्च य स्मृत ।
मेधावान् मेधहर्त्ता च कीर्त्तितास्तु सुमेधस ॥५२
विभुरिन्द्रस्तदा तेपामासोद्विक्रान्तपौरुप ।
पौलस्त्यो वेदवाहुश्च यजुर्नामा च काश्यप ॥५३
हिरण्यरोमाङ्गिरसो वेदश्रीश्चैव भार्गव ।
ऊर्द्ध्वबाहुश्च वासिष्ठ पर्जन्य पौलहस्तथा ।
सत्यनेत्रस्तथात्रेय ऋपयो रैवतान्तरे ॥५४
महापुराणसम्भाव्य प्रत्यङ्गपरहा शुचि ।
बलवन्धुर्निरामित्र केतुभृङ्गो दृढव्रत ।
चरिष्णवस्य पुत्रास्ते पञ्चमस्यैतदन्तरम् ॥५५

मति, सुमति, ऋत, सत्य, आवृति, विवृति, मद, विनय, जेता, जिष्णु, सह, द्युतिमान, स्रवस, ये इतने नाम आमत रजो के जान लो ॥४८॥४६॥ वृषभेत्ता, जय, भीम, शुचि, दान्त, यश, दम, नाथ, विद्वान, अजेय, कृश, गौर तथा ध्रुव ये विकुण्ठ कहे गये है। अब सुमेधा जान लो ॥५०॥ मेधा, मेधातिथि, सत्यमेधा, पृश्निमेधा, अल्पमेधा, भूयोमेधादय, प्रभु, दीप्तिमेधा, यशोमेधा, स्थिरमेधा, सर्वमेधा, अश्वमेधा, प्रतिमेधा, मेधावान्, मेधहर्त्ता ये सब सुमेधस कहे गये है ॥५१॥५२॥ उनका विक्रान्त पौरुष वाला उस समय मे विभु इन्द्र था। पौलस्त्य, वेदबाहु, यजु नाम वाला और काश्यप, हिरण्य रोमा, आङ्गिरस, वेदश्री, भार्गव, ऊर्ध्वबाहु, वासिष्ठ, पर्जन्य, पौलह, सत्यनेत्र, आत्रेय ये रैवत मन्वन्तर मे ऋषि थे ॥५३॥५४॥ महापुराण सम्भाव्य, प्रत्यङ्ग परहा, शुचि, बलवन्धु, निरामित्र, केतुभृङ्ग, दृढव्रत ये चरिष्णव के पुत्र थे। यह पचम मन्वन्तर है ॥५५॥

स्वारोचिषोत्तमश्चैव तामसो रैवतस्तथा ।
प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवस्तथा ॥५६
षष्ठे खल्वथ पर्याये देवा ये चाक्षुषेऽन्तरे ।
आद्या प्रसूता भाव्याश्च पृथुकाश्च दिवौकस ।

महानुभावलेखाश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥५७
दिवौकस सग एव प्रोच्यते मातृनामभिः ।
अत्रेः पुत्रस्य नप्तार आरण्यस्य प्रजापतेः ।
गणाश्च तेषां स्वानामेकको ह्यष्टक स्मृतः ॥५८
अन्तरिक्षो वसुहयो ह्यतिथिश्च प्रियव्रतः ।
श्रोता मन्ता सुमन्ता च आद्या ह्य ते प्रकीत्तिताः ॥५९
श्येनभद्रस्तथा पश्य पथ्यनेत्रो महायशाः ।
सुमनाश्च सुचेताश्च रवत सुप्रचेतस ।
द्युतिश्चैव महासत्व प्रसूता परिकीर्त्तिताः ॥६०
विजय सुजयश्चैव मनोद्यानौ तथव च ।
सुमति सुपरिश्चैव विज्ञातोऽश्यपतिश्च य ।
भाव्या ह्य ते स्मृता देवा पृथुकास्तु निबोधत ॥६१
अजिष्ठ शाक्यनो देवो वानपृष्ठस्तथव च ।
शाङ्कुर सत्यधृग्गुश्च विश्गुश्च विजयस्तथा ।
अजितश्च महाभाग पृथुकास्ते दिवौकस ॥६२
लेखास्तथा प्रवक्ष्यामि श्रृण्वतो मे निबोधत ।
मनोजव प्रधासस्तु प्रचेतास्तु महायशाः ॥६३
वातो ध्रुवक्षितिश्च व अदभुतश्चैव वीयवान् ।
भवनो बृहस्पतिश्चैव लेखा सम्परिकीर्त्तिताः ॥६४

स्वारोचिष तम तामस तथा रवत ये चारो मनु प्रियव्रत के अन्वय अर्थात् वंश थे ॥५६॥ अब छटे पर्याय से चाक्षुष मन्वन्तर मे जो देव थे वे आद्य प्रसूत भाव्य पृथुक दिवौकस और महानुभाव लेख थे पाँच देवगण कहे गये हैं ॥५७॥ यह मातृ नामो के द्वारा दिवौकस सर्ग कहा जाता है। अत्रि के पुत्र प्रजापति आरण्य के नाती हैं। उन देवो के गण एक-एक अष्टक कहा गया है ॥५८॥ अन्तरिक्ष वसदय अतिथि प्रियव्रत श्रोता मन्ता सुमन्ता ये आद्य कहे गये हैं ॥५९॥ श्येनभद्र पदद पथ्यनेत्र महायशा सुमना सचेता रवत सुप्रचेतस द्युति महासत्व य प्रसूत कीर्तित किये गये हैं ॥६०॥ विजय सुजय

इस प्रजापति दक्ष का पुत्र राजा था। स्वायम्भुव मनु ने अग्नि के कारण के प्रति दिया था ॥७३॥ इसके अनन्तर चाक्षुष के भविष्य मन्वन्तर को प्राप्त करके हे द्विजो ! इसके पश्चात् उपोद्घात के साथ पक्ष को बतलाऊँगा ॥७४॥ उत्तानपाद से चतुर सुनृत और वित्तभाविनी शुभ अधिधम में ध्रुव की माता हुई। शुचि स्मित वाली वह धर्म की पत्नी लक्ष्मी में उत्पन्न हुई थी ॥७४ ७५॥ उत्तानपाद ने ध्रुव—कीर्तिमान्—अयस्मान् तथा वसु को उत्पन्न किया था और शुचि स्मित वाली दो कन्याओं को जन्म दिया था। एक मनस्विनी और दूसरी स्वरा थी। उनके पुत्र कीर्तित किये गये हैं ॥७६॥ वीर्य वाले ध्रुव ने निराहार रहते हुए विपुल यश को चाहते हुए दस हजार दिव्य वर्ष तक तप किया था ॥७७॥ प्रथम त्रेता युग में वह स्वायम्भुव मनु का पौत्र था जिसने योग से आत्मा को धारण करते हुए महान् यश की प्रार्थना की थी ॥७८॥ ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर ज्योतिगणों का उत्तम स्थान उसको दिया था जो कि सम्प्लव पर्यन्त परम सुन्दर और अस्तोदय से रहित था ॥७९॥ उसकी अत्यधिक मात्रा वाली ऋद्धि और महिमा को देखकर दैत्यासुरों के आचार्य शुक्र ने भी इसके यश का बखान किया था ॥८०॥

अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो हुतम् ।
स्थिता सप्तर्षय कृत्वा यदेनमुपरि ध्रुवम् ।
ध्रुवे दिव समासक्तमीश्वर स दिवस्पति ॥८१
श्रुवात्पुष्टिञ्च भव्यञ्च भूमि सा सुपुवे नृपौ ।
स्वा छायामाह वै पुष्टिमव नारी तु ता विभु ॥८२
सत्याभिव्याहृते तस्य सद्य   भवत्तदा ।
दिव्यसहन नाच्छाया   पिता ॥८३
छायाया पुष्टिराधत्त प-   मपात् ।
...चीनगर्भं वृषक वृक-   त्तम् ॥८४
प्राचीनगर्भस्य भू   म्म् ।
...रधिय पुत्रमि   त्मनि ॥८५

वे नौ हैं ॥६७॥ और अभिमन्यु दशम था। नाड्वलेय मनु के पुत्र थे। ये सब चाक्षुष के पुत्र थे और यह छटवाँ मन्वन्तर है। उस महात्मा का यह सम्‌ बव स्वत ने परिसख्यात किया है। हे द्विजो! मैंने इसे विस्तार तथा आनुपूर्वी से कह दिया है ॥६८॥६९॥ ऋषियों ने कहा—चाक्षुष का दामाद कश्यप के वश मे उत्पन्न हुआ था। उसके अन्ववाय मे और जो भी कोई दूसरे हो उन्हें यथा तथा रूप से बतलाइये ॥७०॥ श्रीसूतजी ने कहा—आप लोग चाक्षुष का निसग जो है उसे सक्षेप से सनने के योग्य होते हैं। उसके अन्ववाय मे प्रतापवान्‌ व य पृथु हुआ था ॥७१॥ अन्य दक्ष और प्राचेतस प्रजाओ के पति थे। अभि प्रजा पति ने उत्तानपाद को पुन ग्रहण किया था ॥७२॥

दक्षकस्य तु पुत्रोऽस्य राजा ह्यासीत्‌ प्रजापते ।
स्वायम्भुवेन मनुना दत्तोऽत्रे कारण प्रति ॥७३
मन्वन्तरमथासाद्य भविष्य चाक्षुषस्य ह ।
षष्ठ तदनु वक्ष्यामि उपोद्घातेन व द्विजा ॥७४
उत्तानपादात्तनुरा सूनृता वित्तभाविनी ।
उत्पन्ना चाधिधर्मेण ध्रुवस्य जननी शुभा ।
धर्मस्य पत्न्या लक्ष्म्या व उत्पन्ना सा शुचिस्मिता ॥७५
ध्रुवश्च कीर्त्तिम तञ्च अयस्मन्त वसु तथा ।
उत्तानपादोऽजनयत्‌ कन्ये द्व च शुचिस्मिते ।
मनस्विनी स्वराञ्चव तयो पुत्रा प्रकीर्त्तिता ॥७६
ध्रुवो वर्षसहस्राणि दश दिव्यानि वीर्यवान्‌ ।
तपस्तेपे निराहार प्राथयन्‌ विपुल यश ॥७७
त्रेतायुगे तु प्रथमे पौत्र स्वायम्भुवस्य स ।
आत्मान धारयन्‌ योगात्‌ प्रार्थयन्‌ सुमहद्यश ॥७८
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो ज्योतिषा स्थानमुत्तमम्‌ ।
आभूतसम्प्लव ह्यस्तोदयविवर्जितम्‌ ॥७९
तस्यातिमात्रामृद्धि च महिमान निरीक्ष्य ह ।
दत्यासुराणामाचाय श्लोकमप्युशना जगौ ॥८

इस प्रजापति दक्ष का पुत्र राजा था। स्वायम्भुव मनु ने अत्रि के कारण के प्रति दिया था ।।७३।। इसके अनन्तर चाक्षुष के भविष्य मन्वन्तर को प्राप्त करके हे द्विजो ! इसके पश्चात् उपोद्घात के साथ पद्य को बतलाऊँगा ।।७४।। उत्तानपाद से चतुर सुनृत और वित्तभाविनी शुभ अविधर्म से ध्रुव की माता हुई। शुचि स्मित वाली वह धर्म की पत्नी लक्ष्मी से उत्पन्न हुई थी ।।७४-७५।। उत्तानपाद ने ध्रुव—कीर्तिमान्—अयस्मान् तथा वसु को उत्पन्न किया था और शुचि स्मित वाली दो कन्याओं को जन्म दिया था। एक मनस्विनी और दूसरी स्वरा थी। उनके पुत्र कीर्तित किये गये हैं ।।७६।। चौथे वाले ध्रुव ने निराहार रहते हुए विपुल यश को चाहते हुए दश हजार दिव्य वर्ष तक तप किया था ।।७७।। प्रथम त्रेता युग में वह स्वायम्भुव मनु का पौत्र था जिसने योग से आत्मा को धारणा करते हुए महान् यश की प्रार्थना की थी ।।७८।। ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर ज्योतिर्गणों का उत्तम स्थान उसको दिया था जो कि सम्प्लव पर्यन्त परम सुन्दर और अस्तोदय से रहित था ।।७९।। उसकी अत्यधिक मात्रा वाली ऋद्धि और महिमा को देखकर दैत्यासुरों के आचार्य शुक्र ने भी इसके यश का वर्णन किया था ।।८०।।

अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो व्रतम् ।
स्यितः सप्तर्षय कृत्वा यदेनमुपरि ध्रुवम् ।
ध्रुवे दिव समासक्तमीश्वर स दिवस्पति ।।८१
ध्रुवात्पुष्टिञ्च भव्यञ्च भूमि सा सुषुवे नृपौ ।
स्वां छायामाह वै पुष्टिभव नारी तु तां विभुः ।।८२
सत्याभिव्याहृते तस्य सद्य स्त्री साभवत्तदा ।
दिव्यसहन ताञ्छाया दिव्याभरणभूषिता ।।८३
छायाया पुष्टिराधत्त पञ्च पुत्रानकल्मषान् ।
प्राचीनगर्भं वृषक वृकञ्च वृकल वृतिम् ।।८४
पत्नी प्राचीनगर्भस्य भूवर्चा सुषुवे नृपम् ।
नाम्नोदारधिय पुत्रमिन्द्रो य पूर्वजन्मनि ।।८५

संवत्सरसहस्रान्ते सकृदाहारमाहरत् ।
एवं मन्वन्तरं युक्तमिन्द्रत्वं प्राप्तवान्विभुः ।।८६
उदारधेः सुतं भद्राजनयत्सा दिवञ्जयम् ।
रिपुं रिपुञ्जयं जज्ञे वराङ्गी सा दिवञ्जयात् ।।८७

शुक्राचार्य ने कहा था—अहो ! इस ध्रुव के तप का पराक्रम कैसा अद्भुत है और इसका श्रुत तथा हुत भी कितना विलक्षण है कि इस ध्रुव को आगे से भी ऊपर करके सप्तर्षिगण स्थित होते है। ध्रुव में समासक्त दिव है दिवस्पति ईश्वर है ॥८१॥ उस भूमि ने ध्रुव से भव्य और पुष्टि के रूपों का प्रसव किया था। विभु पुष्टि ने अपनी छाया से कहा कि नारी हो जाओ ॥८२॥ उसके सत्य अभिव्याहृत होने पर उस समय में वह तुरन्त ही स्त्री होगई थी जो कि छाया दिव्य सहनन से दिव्य भूषणों से विभूषित थी ॥८३॥ पुष्टि ने उस छाया मे पाँच निष्पाप पुत्र उत्पन्न किये थे। जिनके नाम—प्राचीन गर्भ—वृषक—वृक—वृकल और धृति थे॥८४॥ प्राचीन गर्भ की पत्नी भूवर्चा ने नृपको पुत्र उत्पन्न किया था जिसका नाम उदारधी था और जो पूर्व जन्म में इन्द्र था ॥८५॥ एक सहस्र वर्षों के अन्त में एकबार आहार ग्रहण किया था। इस प्रकार से विभु ने मन्वन्तर से युक्त इन्द्रत्व को प्राप्त किया था ॥८६॥ भद्रा उसने उदारधी के पुत्र दिवञ्जय को जन्म दिया था। वराङ्गी उसने रिपुञ्जय रिपु को उत्पन्न किया था ॥ ७॥

रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ।
व्यजीजनत् पुष्करिण्या वारुण्या चाक्षुषो मनुम् ।
प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मनः ।।८८
मनोरजायन्त दश नड्वलायां शुभाः सुताः ।
कन्यायां व महाभाग वैराजस्य प्रजापतेः ।।८९
ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् कविः ।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ।
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलाया मनोः सुता ।।९०
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् ।

अङ्ग सुमनस ख्याति क्रतुमङ्गिरस शिवम् ॥९१

अङ्गात् सुनीथापत्यं वै वेनमेक व्यजायत ।
अपचारेण वेनस्य प्रकोप सुमहानभूत् ॥९२
प्रजार्थमृषयस्तस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् ।
वेनस्य पाणौ मथिते सम्बभूव महान्नृप ।
वैन्यो नाम महीपालो य पृथु परिकीर्तित ॥९३
स धन्वी कवची जातस्तेजसा प्रज्वलन्निव ।
पृथुर्वैन्य सर्वलोकान् ररक्ष क्षत्रपूर्वज ॥९४

रिपु से वृद्दी ने सर्व तेज वाले चाक्षुष को उत्पन्न किया था और पुष्करिणी वारुणी मे चाक्षुष ने मनु को उत्पन्न किया था जो कि महात्मा अरण्य प्रजापति की आत्मजा थी ॥८८॥ मनु से नड्वला में दश शुभ पुत्र उत्पन्न किए थे जो महाभाग प्रजापति वैराज की कन्या थी ॥८९॥ ऊरु-पूरु-शतद्युम्न-तपस्वी सत्यवाक्-कवि-अग्निष्टुत-अतिरात्र और सुद्युम्न ये नौ हैं और दशम अभिमन्यु नड्वला में मनु के पुत्र हुए थे ॥९०॥ आग्नेयी ने ऊरु से महान् प्रभा वाले छै पुत्रो को जन्म दिया था जिनके नाम—अङ्ग—सुमनस—ख्याति—क्रतु—आङ्गिरस और शिव थे ॥९१॥ सुनीथा ने अङ्ग से एक सन्तान वेन को उत्पन्न किया था। वेन के अपचार के कारण से बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ था ॥९२॥ ऋषियों ने प्रजा के लिए उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया। उस समय वेन के हाथ के मन्थन किये जाने पर एक महान् नृप वैन्य नाम वाला महीपाल उत्पन्न हुआ था जो कि पृथु इस नाम से कहा गया है ॥९३॥ यह धन्वी—कवचधारी तेज से प्रज्वलित करता हुआ उत्पन्न हुआ। क्षत्र पूर्वज वैन्य पृथु ने समस्त लोकों की रक्षा की थी ॥९४॥

राजसूयाभिषिक्तानामाद्य स वसुधाधिप ।
तस्य स्तवार्थमुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥९५
तेनेयं गौर्महाराज्ञा दुग्धा सस्यानि धीमता ।
प्रजानां वृत्तिकामाना देवैर्श्च पिगणै सह ॥९६

पितृभिर्दानवश्च व गन्धर्वैरप्सरोगणैः ।
सर्वैः पुण्यजनश्च व वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥६७
तेषु तेषु तु पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ।
प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन लोकास्त्वधारयत् ॥६८
विस्तरेण पृथोर्जन्म कीर्तयस्व महामते ।
यथा महात्मना दुग्धा पूर्वं तेन वसुन्धरा ॥६९
यथा देवश्च नागश्च यथा ब्रह्मर्षिभिः सह ।
यथा यक्षः सगन्धर्वरप्सरोभिर्यथा पुरा ॥१००
तेषां पात्रविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च ।
तथा वत्सविशेषाश्च तन्न प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥१०१

राजसूय यज्ञ के द्वारा अभिषिक्त होने वाले राजाओं में वह वन्य सबसे पहले आद्य वसुधा का स्वामी हुआ था। उसके स्तवन करने के लिए परम निपुण सूत और मागध उत्पन्न हुए थे ॥६५॥ उस बुद्धिमान् महान् राजा ने इस गौ से सस्यों का दोहन किया था। वृत्ति की कामना वाले प्रजाओं के देव –ऋषि गणों के साथ–पितर–दानव–गन्धर्व–अप्सराओं के गण–समस्त पुण्य जन–विरुद् और पर्वतों के साथ उन उन पात्रों में दुह्य मान इस वसुन्धरा ने इच्छा के अनुसार क्षीर दिया था उससे लोकों को धारण किया था ॥६६॥६७ ॥६८॥ ऋषियों ने कहा—हे महामते ! विस्तार के साथ पृथु के जन्म का वर्णन करिये। जिस प्रकार से उस महात्मा ने इस वसुन्धरा का दोहन किया था। ॥६६॥ पहिले जिस तरह से देव–नाग–ब्रह्मर्षि–यक्ष–गन्धर्व और अप्सराओं के साथ उनके पात्र विशेषों को दोग्धा को और क्षीर को तथा वत्स विशेषों को इन सबको पूछने वाले हमको भली भाँति बतलाइये ॥१ ॥१ १॥

यस्मिश्च कारणे पाणिर्वेनस्य मथितः पुरा ।
क्रुद्धैर्महर्षिभिः पूर्वं तत् सर्वं कथयस्व नः ॥१ २
वर्णयिष्यामि वो विप्रा पृथोर्वैन्यस्य सम्भवम् ।
एकाग्रा प्रयतादचैव शुश्रूषध्वं द्विजोत्तमाः ॥१ ३

नाशुचेर्नापि पापाय नाशिष्यायाहिताय च ।
वर्णयेयमिमं पुण्यं नाव्रताय कथञ्चन ॥१०४
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।
रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणुयाद्योऽनसूयकः ॥१०५
यश्चेमं श्रावयेन्मर्त्यं पृथोर्वैन्यस्य सम्भवम् ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत् कृताकृतम् ।
गोप्ता धर्मस्य राजासौ बभूवात्रिसमः प्रभुः ॥१०६
अत्रिवंशसमुत्पन्नो ह्यङ्गो नाम प्रजापतिः ।
यस्य पुत्रोऽभवद्वेनो नात्यर्थं धार्मिकस्तथा ॥१०७

जिस कारण के होने पर पहिले वेनका हाथ मथा गया था और पहिले महर्षियों ने बहुत क्रुद्ध होकर उसके हाथ का मन्थन किया था वह सब हमको बतलाइए ॥१०२॥ श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! हे विप्रो ! मैं आपके सामने अब वैन्य पृथु के जन्म का वर्णन करूँगा। आप लोग सब एकाग्र मन वाले और प्रयत होते हुए श्रवण करो ॥१०३॥ जो अशुचि हो पापयुक्त-अहित अव्रत एवं अशिष्य हो उससे कभी भी इस परम पुण्य चरित्र का वर्णन नहीं करना चाहिये ॥१०४॥ स्वर्ग देने वाला, यश प्रदान करने वाला, आयु देने वाला, पुण्य और समस्त वेदों के द्वारा सम्मत यह ऋषियों के द्वारा परम रहस्य कहा गया है, जो असूया अर्थात् निन्दा न करने वाला हो, उसे ही यह श्रवण कराना चाहिये ॥१०५॥ जो मनुष्य वैन्य पृथु का जन्म चरित्र के इस वृत्तान्त को सुनावे उसे ब्राह्मणों को नमस्कार करके ही सुनाना चाहिये और फिर अपने कृत तथा अकृत का कुछ सोच नहीं करना चाहिये। यह राजा धर्म की रक्षा करने वाला अत्रि के समान प्रभु हुआ था ॥१०६॥ अत्रि के वंश मे उत्पन्न हुआ अङ्ग नाम वाला प्रजापति हुआ था। जिसका पुत्र वेन हुआ था, जो कि विशेष अधिक धार्मिक नहीं था ॥१०७॥

जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः ।
स मातामहदोषेण वेनः कालात्मजात्मजः ॥१०८

आप लोग सब भी मुझे तत्वसे पूर्ण महात्मा निश्चय रूप से समझें ।।११७।। समस्त लोको के प्रभु और विशेष रूप से धर्मो के स्वामी हमही है। मै इच्छा करता हुआ अर्थात् यदि मैं चाहूं तो इस पृथ्वी को जलादूं अथवा जलसे प्लावित करदू —सृजन करू या ग्रसन करू मुझमे यह सब शक्ति विद्यमान है। इसमे कुछ भी विचारणा नही करनी चाहिये ।।११८।। स्तम्भ होने के कारण से या मान की अधिकता से कोई अत्यन्त मोहित होजाने और उसका अनुनयन न किया जा सकता हो तो वेन नृप उसे ठीक कर देगा। इतना सुनकर महर्षिवृन्द बहुत क्रुद्ध होगये थे ।।११९।। तब तो महाबाहु उसको विस्फुरित अग्नि के समान निगृहीत करके उन्होने अत्यन्त क्रोधित होते हुए उसके वाम हस्तका मन्थन किया था ।।१२ ।। उसके प्रमथ्यमान होने वाले से पहिले जो प्रभिश्रुत हुआ है वह अर्थात् पृथु उत्पन्न हुआ। हे द्विजो! और अत्यन्त छोटा एक कृष्ण वर्ण वाला पुरुष भी उत्पन्न हुआ था ।।१२१।।

स भीत प्राञ्जलिश्च व स्थितवान् व्याकुलेन्द्रिय ।
तमार्त्त विह्वल दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रुवन् किल ।।१२२
निषादवंशकर्त्तासौ बभूवानन्तविक्रम ।
धीवरानसृजत्सोऽपि वेनकल्मषसम्भवान् ।।१२३
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुम्बुरास्तुवरा खसा ।
अधमरुचयश्चापि सम्भूता वेनकल्मषात् ।।१२४
पुनमहर्षयस्तस्य पाणि वेनस्य दक्षिणम् ।
अरणीमिव सरम्भा ममन्थुर्जातिमन्यव ।।१२५
पृथुस्तस्मात् समुत्पन्न करास्फालनतेजस ।
पृथो करतलाद्वापि यस्माज्जात पृथुस्तत ।
दीप्यमान स्ववपुषा साक्षादग्निरिवोज्ज्वलन् ।।१२६
आद्यमाजगव नाम धनुर्गृह्य महारवम् ।
शराश्च विभ्रद्रक्षाथ कवचञ्च महाप्रभम् ।।१२७
तस्मिञ्जातेऽथ भूतानि सप्रहृष्टानि सवश ।
समुत्पन्ने महाराजि वेनश्च त्रिदिवङ्गत ।।११८

वह अत्यन्त भयभीत हाथ जोड़े हुए व्याकुल इन्द्रियों वाला स्थित होगया था। उसको अत्यन्त आर्त्त और विह्वल देख कर ऋषियों ने कहा—बैठ जाओ अर्थात् निषण्ण हो जाओ ॥१२२॥ यह अनन्त विक्रम वाला निषाद वंश का करने वाला हुआ था। वेन के कल्मष से उत्पन्न होने वाले धीवरों का उसने भी सृजन किया था ॥१२३॥ और जो अन्य विन्ध्याचल में रहने वाले तुम्बर-तुवर-खर और अधर्म की रुचि वाले भी थे, वे भी सब वेन के कल्मष से उत्पन्न क्रोध वाले होते हुए बहुत सरम्भ से अरणी काष्ठ की भाँति वेन के दक्षिण हाथ का मन्थन करने लगे ॥१२५॥ करने पर आस्फालन तेज वाले उससे पृथु उत्पन्न हुआ। अथवा जिस पृथु के करतल से पृथु उत्पन्न हुआ था वह अपने शरीर से दीप्यमान होते हुए साक्षात् अग्नि के तुल्य जलता हुआ था ॥१२६॥ आद्य आजगव नाम वाले और महान् ध्वनि वाले धनुप को ग्रहण करके और रक्षा के लिये शरों को धारण करते हुए तथा महा प्रभा वाले कवच को धारण किये हुए था ॥१२७॥ उसके उत्पन्न होने पर सभी ओर से समस्त प्राणी बहुत प्रसन्न हुए थे। इस महान् राजा के समुत्पन्न होने पर वेन तो स्वर्ग को चला गया था ॥ १२८ ॥

समुत्पन्नेन राजर्षि स सत्पुत्रेण धीमता ।
पुरुषव्याघ्र पुन्नाम्नो नरकात्त्रायते तत १२९
त नद्यश्च समुद्राश्च रत्नान्यादाय सर्वश ।
समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम् ।
महता राजराज्येन महाराज महाद्युतिम् ॥१३०
सोऽभिषिक्तो महाराजा देवैरङ्गिरस सुतै ।
आदिराजो महाराज पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥१३१
पित्राऽपरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिता ।
ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥१३२
आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यत ।
पर्वताश्च विशीर्यन्ते ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥१३३

अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्धयन्त्यन्नानि चिन्तया ।
सर्वकामदुघा गाव पुटके पुटके मधु ॥१३४
एतस्मिन्नेव काले च यज्ञ पतामहे शुभे ।
सूत सुत्या समुत्पन्न सौत्येऽह्नि महामति ।
तस्मिन्नेव महायज्ञ जज्ञ प्राज्ञोऽथ मागध ॥१३५

वह राजर्षि श्रीमान् और सत्पुत्र थे उत्पन्न होने से वह पुरुषो मे व्याघ्र के समान रहने वाला पु नाम वाले नरक से फिर त्राण पा जाता है ॥१२६॥ समस्त नदियाँ—समस्त समुद्र सब ओर से रत्नो को लाकर और वहाँ आकर उस नराधिप वन्य का उन सबने अभिषेक किया था जो कि महान् राजा के राज्य से महान् राजा और महान् द्युति वाला था ॥१३ ॥ वह महान् राजा अगिरा के पुत्र देवो के द्वारा आधिराज—महाराज और प्रताप वाला वन्य पृथु अभिषिक्त हुआ था ॥१३१॥ उसके पिता के द्वारा अपरञ्जित उसकी प्रजा उसके द्वारा अनुरञ्जित हुई थी। तब मे ही अनुराग से इसका राजा यह नाम हो गया था ॥१३२॥ समुद्र मे अभियान करते हुए उसके जल स्तम्भित होगये थे और विशीर्ण होते है और ध्वजभङ्ग नही हुआ था ॥१३३॥ उस समय पृथ्वी अकृष्ट पच्या हो गई थी अर्थात् विना जुताई के ही फसल पदा करने वाली थी चिन्ता क ने मात्र से ही अन्नो की सिद्धि होती है। गौए समस्त कामो के दोहन करने वाली थी और पुटक-पुटक मे मधु था ॥१३४॥ इस ही काल मे शुभ पैतामह यज्ञ मे सौ य दिन मे सुति मे सूत उत्पन्न हुए जोकि महामति वाले थे। उस ही महायज्ञ मे प्राज्ञ मागध उत्पन्न हुए थे ॥१३५॥

ऐन्द्रेण हविषा चापि हवि पृक्त बृहस्पते ।
जुहावेन्द्राय देवेन तत सूतो व्यजायत ॥१३६
प्रमादस्तत्र सञ्जज्ञ प्रायश्चित्तञ्च कर्मसु ।
शिष्यहव्येन यत्पृक्तमभिभूत गुरोर्हवि ।
अधरोत्तरचारेण जज्ञ तद्वर्णवैकृतम् ॥१३७
यच्च क्षत्रात्समभवद्ब्राह्मण्या हीनयोनित ।
सूत पूर्वेण साधर्म्यतुल्यधर्म प्रकीर्तित ॥१३८

मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीवनम् ।
रथनागाश्वचरितं जघन्यञ्च चिकित्सितम् ॥१३६
पृथो स्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ सुरर्षिभिः ।
तावूचुर्मुनयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिवः ।
कर्मैतदनुरूपं वां पात्रं स्तोत्रस्य चाप्ययम् ॥१४०
तावूचतुस्तदा सर्वांस्तानृषीन्सूतमागधौ ।
आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयाव स्वकर्मभिः ॥१४१
न चास्य कर्म वै विद्वो न तथा लक्षणं यशः ।
स्तोत्रं येनास्य कुर्यावो राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः ॥१४२

ऐन्द्र हवि के द्वारा बृहस्पति का भी हवि युक्त हुआ। देव के द्वारा इन्द्र के लिए हवन किया था। इसके बाद सूत उत्पन्न हुए ॥१३६॥ वहाँ पर प्रमाद उत्पन्न हुआ और कर्मों में प्रायश्चित उत्पन्न हुआ। शिष्य के हव्य से जो पृक्त हो वह गुरु का हवि अभिभूत होगया। ऐसे अधरोत्तर चार से वर्णों की विकृति उत्पन्न हुई ॥१३७॥ जो क्षत्रिय से ब्राह्मणी में हीनयोनि से हुआ। पूर्व से साधर्म तुल्य धर्म वाला सूत प्रकीर्तित हुआ था ॥१३८॥ सूत का यह मध्यम धर्म है और क्षत्रोपजीवन है। रथ नाग चरित है और चिकित्सित जघन्य चरित होता है ॥१३६॥ सुरर्षियों के द्वारा वहाँ पर वे दोनों पृथु के स्तवन के लिए बुलाये गये थे और समस्त मुनियों ने उन दोनों से कहा कि तुम इस पृथु राजा की स्तुति करो। यह आप दोनों के अनुरूप ही कार्य है और यह राजा भी स्तोत्र का पात्र है अर्थात् यह राजा भी स्तवन के योग्य है ॥१४०॥ तब उन दोनों सूत और मागध ने उन समस्त ऋषियों से कहा—हम दोनों अपने कर्मों के द्वारा देवों को और ऋषियों को प्रसन्न करते हैं ॥१४१॥ हम इसके कर्म को नहीं जानते है और न उस प्रकार के लक्षण वाला इसका यश ही है। हे द्विज वृन्द! जिससे कि इस तेजस्वी राजा का स्तोत्र करें ॥१४२॥

ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु भविष्यैः स्तूयतामिति ।
दानधर्मरतो नित्यं सत्यवान् स जितेन्द्रियः ।
ज्ञानशीलो वदान्यस्तु सङ्ग्रामेष्वपराजितः ॥१४३

यानि कर्माणि कृतवान् पृथुश्चापि महाबल ।
तानि कीलेन बद्धानि स्तुवद्भि सूतमागधै ॥१४४
तत स्तवान्ते सुप्रीत पृथु प्रादात् प्रजेश्वर ।
अनूपदेश सूताय मगध मागधाय च ॥१४५
तदा च पृथिवीपाला स्तूयन्ते सूतमागध ।
आशीर्वाद प्रबोध्यन्ते सूतमागधबन्दिभि ॥१४६
त दृष्ट्वा परमप्रीता प्रजा ऊचुमहर्षय ।
एष वो वृत्तिदो वन्यो भवन्त्विति नराधिप ॥१४७
ततो वन्य महाभाग प्रजा समभिदुद्रुवु ।
त्वन्नो वृत्ति विधत्स्वेति महर्षेवचनात्तदा ।
सोऽभिद्रुत प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ॥१४८
धनुर्गृहीत्वा बाणाश्च वसुधामार्द यब्दली ।
अस्याद् नभय त्रस्ता गौभू त्वा प्राद्रव मही ॥१४९

ऋषियो के द्वारा वे दोनो नियुक्त किये गये थे कि कि आगे होने वाले कर्मों से इसका स्तवन करो । वह नित्य ही दान और धम मे रत है—सत्यवान् है और इन्द्रियो को जीतने वाला है । ज्ञानशील और वदान्य अर्थात् दाता है तथा सग्रामो मे पराजित न होने वाला है ॥१४३॥ महान् बल वाले पृथु ने भी जिन कर्मों को किया था वे सब स्तुति करने वाले सूत मागधो के द्वारा कील से बद्ध होते है ॥१४४॥ इसके अनन्तर स्तवन के अन्त मे प्रजेश्वर पृथु ने बहुत प्रसन्न होकर सत के लिये अनूप देश और मागध के लिये मगध देश दे दिया था ॥१४५॥ उस समय मे पृथिवीपाल सूत और मागधो के द्वारा स्तुत किये जाते हैं और सूत मागध बन्दियो के द्वारा आशीर्वादो से प्रबोधित किये जाते हैं ॥१४६॥ उसको देखकर अत्यन्त प्रसन्न महर्षियो ने प्रजा से कहा—आप सबका यह नराधिप वैन्य वृत्ति देने वाला होवे ॥१४७॥ इसके अनन्तर समस्त प्रजा महाभाग वन्य की ओर दौडी और कहा—आप हमारी वृत्ति करो । तब महर्षियो के वचन स प्रजाओ के द्वारा अभिद्रुत वह प्रजा के हित करने की इच्छा से उस बली न धनुप और बाणो क लकर वसुधा का आदन किया

वचन का ध्यान करो ॥१५५॥ उपाय से नती नीति प्रारम्भ किये हुए समस्त उपक्रम सिद्ध होते हैं। हे नृप ! मुझे मार कर भी आप प्रजाओं के पालन में समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥१५६॥

अवध्या भविष्यामि जहि कोपं महाद्युते ।
अवध्या च स्त्रियः प्राहुस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।
सत्त्वेव पृथिवीपाल धर्मं न त्यक्तुमर्हसि ॥१५७
एवं बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा राजा महामनाः ।
क्रोधं निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीद् ॥१५८
एकस्यार्थाय यो हन्याद्आत्मनो वा परस्य वा ।
एकं प्राणं बहून् वापि कामं तस्यास्ति पातकम् ॥१५९
यस्मिस्तु निहते भद्रे लभन्ते बहवः सुखम् ।
तस्मिन्हते शुभे नास्ति पातकं चोपपातकम् ॥१६०
सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां वधिष्यामि वसुन्धरे ।
यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ॥१६१
त्वां निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
आत्मानं प्रथयित्वेह धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥१६२
सा त्वं वचनमासाद्य मम धर्मभृतां वरे ।
सञ्जीवय प्रजा नित्यं शक्ता ह्यसि न संशयः ॥१६३

हे महान् द्युति वाले ! आप कोप को त्याग देवें—मैं अवध्या हो जाऊँगी। पशुओं तिर्यक् योनियों में भी स्त्रियाँ अवध्या ही कही गई हैं। हे पृथ्वीपाल ! ऐसा मानकर आप धर्म का त्याग करने के योग्य नहीं होते हैं। ॥१५७॥ महान् मन वाले राजा ने इस प्रकार के वाक्यों को सुनकर धर्मात्मा ने क्रोध को रोककर पृथ्वी से यह कहा—॥१५८॥ एक के अपने या पराये अर्थ के लिये जो कोई हनन किया करता है चाहे किसी के एक प्राण का हनन करे या बहुतों का हनन करे उसका बड़ा भारी अवश्य ही पातक हुआ करता है ॥१५९॥ हे भद्रे ! जिस हनन में बहुत से प्राणी सुख की प्राप्ति किया करते हैं। हे शुभे ! उसके मारे जाने पर पातक और उपपातक कुछ भी नहीं होता

है ॥१६०॥ हे वसुन्धरे ! वह मैं प्रजा के कारण तुझे मारूँगा। यदि तू अब मेरे जगत के हित करने वाले वचन को नहीं करेगी ॥१६१॥ मेरे शासन के विरुद्ध जाने वाली तुझे आज वाण से मारकर यहाँ आत्मा की प्रार्थना करके मैं प्रजा को धारण करूँगा ॥१६२॥ हे धर्म धारण करने वालों में श्रेष्ठ ! वह तू आज मेरे वचन को प्राप्त कर प्रजा को नित्य सञ्जीवित कर, तू समर्थ है—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१६३॥

दुहितृत्वञ्च मे गच्छ एवमेत महद्वरम्।
नियच्छे स्वान्तु धर्मार्थं प्रयुक्त घोरदर्शने ॥१६४
प्रत्युवाच ततो वैन्यमेवमुक्ता सती मही।
एवमेतदहं राजन् विधास्यामि न संशय ॥१६५
वत्सन्तु मम त गच्छ क्षरेय येन वत्सला।
समाञ्च कुरु सर्वत्र मा त्वं धर्मभृता वर।
यथा विष्यन्दमानञ्च क्षीरं सर्वत्र भावये ॥१६६
तत उत्सारयामास शिलाजालानि सर्वशः।
धनुष्कोट्या ततो वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिता ॥१६७
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमासीद्वसुन्धरा।
स्वभावेनाभवत्तस्या समानि विषमाणि च ॥१६८
न हि पूर्वनिसर्गे वै विषमे पृथिवीतले।
प्रविभाग पुराणां ग्रामाणां वापि विद्यते ॥१६९

स वत्समिरवा वत्सन्तु चाक्षुष मनुमीश्वर ।
पृथुर्दु दोह सस्यानि स्वतले पृथिवी तत ॥१७३

हे घोर दर्शने ! तू मेरी बेटी बन जा धर्म के लिये प्रयोग मे लाई हुई तुमको म इस प्रकार से यह एक बहुत बड़ा वरदान देता हूँ ॥१६४॥ उस तरह से कही गई पृथ्वी ने इसके पश्चात् बन्य से कहा—हे राजन ! इस तरह से मैं यह सब करूंगी इसमे कुछ भी सशय नहीं है ॥१६५॥ हे धम धारण करने वालो मे श्रेष्ठ ! आप मुझ उसे वत्स बनाकर दो जिससे मैं वत्सला होकर क्षरण करूँ और आप मुझे सब जगह सम कर देवें जिससे यह विश्वन्दमान क्षीर सवत्र भावित करू ॥१६६॥ इसके अनन्तर बन्य ने सब ओर से शिला के समूहो को उत्सारित किया था और यह वार्यं धनुष की कोटि से किया और उससे शल विशेष रूप से वद्धित हो गये थे ॥१६७॥ बीते हुए मन्वन्तरो मे यह वसुन्धरा विषमा थी। उसके स्वभाव से ही सम और विषम भाग हुए थे। ॥१६८॥ पहिले विसग मे इस विषम पृथ्वी के तल मे नगरो अथवा ग्रामो का कोई प्रविभाग नही है ॥१६९॥ चाक्षुष मन्वन्तर मे पहिले यह ऐसी आधार थी कि न तो यहाँ सस्य ही थे न औषधो की रक्षा होती थी न कृषि ही होती थी और न कोई वाणिज्य करने के भाग ही थे। फिर वैवस्वत मन्वन्तर मे इस सबका यहाँ जन्म हुआ था ॥१७ ॥ जहाँ-जहाँ पर समता थी वहाँ पर फिर वह सब हुआ और वहाँ पर ही सर्वदा प्रजा निवास किया करती थी ॥१७१॥ प्रजाओ का आहार-फल और मूल भी हुआ था। बन्य आदि राजा के होने के समय से लेकर इस लोक म इन सब वस्तुओ की उत्पत्ति हुई थी ॥१७२॥ समस्त औषधियो के प्रसन्न हो जाने पर महान् श्रम से उसने यह सब किया था। अधिपति पृथु ने चाक्षुष मनु को वत्स कल्पित करके स्वतल में सस्यो का पृथ्वी म दोहन किया था ॥१७३॥

सस्यानि तेन दुग्धानि वैन्येन तु वसुन्धराम् ।
मनुष्व चाक्षुष कृत्वा वत्सम्पात्रे च भूमये ।
तेनान्न न तेन ता व वर्तयन्ते प्रजा सदा ॥१७४

ऋषिभिः स्तूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
वत्सः सोमस्त्वभवत्तदा दोग्धा चापि बृहस्पतिः ॥१७४
पात्रमासीत्तु छन्दांसि गायत्र्यादीनि सत्तम ।
क्षीरमासीत्तदा तेषां तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ॥१७५
पुनः स्तुत्वा देवगणैः पुरन्दरपुरोगमैः ।
सौवर्णं पात्रमादाय अमृतं दुदुहे तदा ।
तेनैव वर्त्तयन्ते च देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥१७७
नागैश्च स्तूयते दुग्धा विषं क्षीरं तदा मही ।
तेषां च वासुकिर्दोग्धा काद्रवेया महौजसः ॥१७८
नागानां वै द्विजश्रेष्ठ सर्पाणाञ्चैव सर्वशः ।
तेनैव वर्त्तयन्त्युग्रा महाकाया महाविषाः ।
तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तु तदाश्रयाः ॥१७९
आमपात्रे पुनर्दुग्धा त्वन्तर्धानमियं मही ।
वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यक्षैः पुण्यजनैस्तथा ॥१८०
दोग्धा च रजतनाभस्तु पिता मणिवरस्य सः ।
यक्षात्मजो महातेजा वशी स सुमहातपाः ।
तेन ते वर्त्तयन्तीति परमर्षिरुवाच ह ॥१८१

उस राजा वैन्य ने इस वसुन्धरा से सस्यों का दोहन किया था। उस स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाया तब उस भूमण्डल स्वरूप पात्र से उस समय उस अन्न से वह समस्त प्रजा अपना वर्त्तन सदा किया करती है ॥१७४॥ फिर यह वसुन्धरा ऋषियों के द्वारा स्तुत होती है और पुनः दोहन की गई थी। उस समय सोम का वत्स हुआ था और बृहस्पति दोहन करने वाले बने थे ॥१७५॥ उस समय सभी और छन्द तथा गायत्री आदि पात्र बना था और उस समय उनका शाश्वत तप तथा ब्रह्म ही क्षीर हुआ था ॥१७६॥ इसके पश्चात् देवगण के द्वारा जिनमें पुरन्दर अग्रगामी थे, स्तवन करके उस समय में सुवर्ण निर्मित पात्र लेकर अमृत का दोहन किया गया था और उसी से इन्द्र आदि देवों ने अपने वर्त्तन (वृत्ति) किया था ॥१७७॥ नागों के द्वारा स्तुत हुई पृथ्वी ने

उस समय विष रूपी क्षीर दोहन म दिया था। उनका दोग्धा वासुकि था और काद्रवेय महान् ओज वाले थे ।।१७८।। हे द्विजश्रेष्ठ ! नागों का और सभी सर्पों का उसी से वर्तन होता है। ये सब उग्र—महान् शरीर के धारण करने वाले और महान् उग्र वण थे। वही उनका आहार था और वसा ही आचार वही वीर्य और वही आश्रय था ।।१७९।। फिर यह पृथ्वी आम-पात्र में अन्तर्धान में दोहन की गई थी और पुण्य जन यक्षों के द्वारा वश्रवण को वत्स कल्पित कर दोहन किया गया था। उस समय मणिवर का पिता जतुनाभ जो यक्षात्मज महान् तेज वाला वशी और महान् बल वाला था इसका दोग्धा था। उससे वे अपनी वृत्ति किया करते हैं यह परमर्षि ने कहा था ।।१८ ।।१८१।।

राक्षसश्च पिशाचश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा।
ब्रह्मापेतस्तु दोग्धा व तेषामासीत्कुबेरक ।।१८२
रक्ष सुमाली बलवा क्षीरं रुधिरमेव च।
कपालपात्रे निर्दुग्धा अन्तर्द्धानञ्च राक्षसै ।
तेन क्षीरेण रक्षांसि वर्त्तयन्तीह सवश ।।१८३
पद्मपात्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैरप्सरोगणैः ।
वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन् गन्धास्तथैव च ।।१८४
तेषां विश्वावसुस्त्वासीद्दोग्धा पुत्रा मुने शुचिः ।
गन्धवराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभ ।।१८५
शानश्च स्तूयते दुग्धा पुनर्देवी वसुन्धरा।
तत्रौषधीर्मूर्त्तिमती रत्नानि विविधानि च ।।१८६
वत्सस्तु हिमवास्तपा मेरुर्दोग्धा महागिरि ।
पात्रन्तु शलमेवासीत्तेन शन्तः प्रतिष्ठित ।।१८७
स्तूयते वृक्षवीरुद्भि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा।
पलाशपात्रमादाय दुग्धं छिन्नप्ररोहणम् ।।१८८
कामधुक् पुष्पित मान प्लक्षो वत्सो यशस्विनी।
सर्वकामदुघा दोग्ध्री पृथिवी भूतभाविनी ।।१८९
सदा धात्री विधात्री च धारिणी च वसुन्धरा।

दुग्धा हितार्थं लोकानां पृथुना इति न श्रुतम् ।
चराचरस्य लोकस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥१६०

इसके पश्चात् यह वसुन्धरा राक्षस तथा पिशाचों के द्वारा दोहन की गई थी । उनका ब्रह्मोपेत कुबेर दोग्धा था ॥१८२॥ सुमाली बलवान् राक्षस था, और उनका क्षीर रुधिर ही था । राक्षसों के द्वारा कपाल के पात्र में अन्तर्धान दोहन की गई थी । उसी क्षीर से राक्षस लोग अपनी वृत्ति चलाया करते हैं ॥ ॥१८३॥ गन्धर्वों तथा अप्सराओं के समुदाय के द्वारा फिर यह वसुन्धरा दोहन की गई थी । उस समय चित्ररथ को वत्स बनाया था और शुचि गन्धों का दोहन किया गया था ॥१८४॥ मुनि का पवित्र पुत्र विश्वावसु उनका दोग्धा था, जो कि गन्धर्वराज अत्यन्त बलवान्–महान् आत्मा वाला और सूर्य के तुल्य था ॥१८५॥ फिर यह पृथ्वी शैलों के द्वारा स्तुत होती है और दोहन की गई थी । वहाँ पर मूर्तिमती बहुत सी औषधियाँ तथा अनेक प्रकार के रत्नों का दोहन हुआ था ॥१८६॥ उनका उस समय हिमाचल वत्स बना था और महान् गिरि मेरु उनका दोग्धा अर्थात् दोहन करने वाला था । पात्र उन सबका शैल ही था, उससे शैल प्रतिष्ठित हुए ॥१८७॥ फिर वृक्ष और लताओं के द्वारा यह भूमि स्तुत होती है और दोहन की गई थी । पलाश का पत्र लाकर छिन्न का प्ररोहण हुआ हुआ था ॥१८८॥ पुष्पित शैल कामधुक् था–प्लक्ष वत्स हुआ था–यशस्विनी मूल भाविनी पृथ्वी समस्त कामों की दुग्धा दोग्धी थी ॥१८९॥ वह यह धात्री-विधात्री और धारणी वसुन्धरा पृथु राजा के द्वारा समस्त लोकों के हित सम्पादन करने के लिये दोहन की गई थी—ऐसा हमने सुना है । यह इस समस्त चर और अचर लोक की प्रतिष्ठा तथा योनि है, अर्थात् यह सबके उद्भव का स्थान है ॥१९०॥



॥ प्रकरण ४–पृथु वंश कीर्तन ॥

आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता ।
वसु धारयते यस्माद्वसुधा तेन चोच्यते ॥१

मधुकटभयो पूर्व मेदसा सपरिप्लुता ।
ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञ पृथोर्वैन्यस्य धीमत ॥२
इयञ्चासीत् समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता ।
दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यते तत ॥३
प्रथिता प्रविभक्ता च शोभिता च वसुन्धरा ।
सस्याकरवती राज्ञा पत्तनाकरमालिनी ।
चातुर्वर्ण्यसमाकीर्णा रक्षिता तेन धीमता ॥४
एव प्रभावो राजासीद्वैन्य स नृपसत्तम ।
नमस्यश्च व पूज्यश्च भूतग्रामेण सर्वश ॥५
ब्राह्मणैश्च महाभाग र्वेदवेदाङ्गपारग ।
पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनि सनातन ॥६
पार्थि वैश्च महाभाग प्रार्थयद्भिर्महद्यश ।
आदिराजा नमस्काय पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—यह समद्र के अन्त तक है और मदिनी इस नाम वाली सुनी गई है। क्योंकि यह वस अर्थात् धनो को धारण किया करती है सी स वमधा इम नाम स कही जाया करती है ॥१॥ यह पहिले समय म मधु और कटभ के मेद से सपरिप्लुत थी फिर धीमान् वन्य राजा पृथु के अभ्युपगम से यह समुद्र के अन्त तक हुई थी और मदिनी इस नाम से परिश्रुत हुई। यह दुहिता के भाव को प्राप्त हुई थी तब से ही यह पृथ्वी इस नाम से कही जाती है ॥२॥३॥ यह प्रथित हुई—प्रविभक्त हुई और शोभा से भी युक्त हुई वसुन्धरा थी जो कि सस्यों के आकरो वाली राजा के द्वारा पत्तनो के आकरो क माला वाली की गई थी। यह चारो वर्णों के समुदाय से समाकीर्ण उसी राजा के द्वारा जो कि परम बुद्धिमान् था रक्षित हुई थी ॥४॥ वह नृपो म परम श्रेष्ठ राजा वैन्य इस प्रकार क प्रभाव स युक्त था। वह प्राणियो के समूह के द्वारा सवत्र नमन करने के योग्य तथा पूजा करने के योग्य था ॥५॥ वेद और वेद के समस्त अङ्गो के पारगामी महान् भाग्य वाले ब्राह्मणो के द्वारा ब्रह्मयोनि एव सनातन केवल पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥६॥

जो राजा इस भू-मण्डल मे महान् यश प्राप्त करने के इच्छुक हो उन महाभागो के द्वारा भी परम प्रताप वाला आदि राजा वैन्य पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ।।७।।

योधैरपि च सग्रामे प्रार्थयानैर्जय युधि ।
आदिकर्त्ता नराणा वै नमस्य पृथुरेव हि ।।८
यो हि योद्धा रण याति कीर्तयित्वा पृथु नृपम् ।
स घोररूपे सग्रामे क्षेमी तरति कीर्त्तिमान् ।।६
वैश्यैरपि च राजर्षिवैश्यवृत्तिसमास्थितै ।
पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशा ।।१०
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धार क्षीरमेव च ।
पात्राणि च मयोक्तानि सर्वाण्येव यथाक्रमम् ।।११
ब्रह्मणा प्रथम दुग्धा पुरा पृथ्वी महात्मना ।
वायु कृत्वा तदा वत्स बीजानि वसुधातले ।।१२
तत. स्वायम्भुवे पूर्वन्तदा मन्वन्तरे पुन ।
वत्स स्वायम्भुव कृत्वा दुग्धा ग्रीष्मेण वै मही ।।१३
मनौ स्वारोचिषे दुग्धा मही चैत्रेण धीमता ।
मनु स्वारोचिष कृत्वा वत्स सस्यानि वै पुरा ।।१४

जो योधा सग्राम भूमि मे अपना जय प्राप्त करने की कामना रखते है, उनके द्वारा भी मानवो का आदिकर्त्ता पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ।।८।। जो योधा रणभूमि मे पहिले पृथु राजा का गुण-गान करके जाया करता है वह फिर वहाँ घोर स्वरूप वाले सग्राम मे क्षेम वाला होता हुआ कीर्त्ति प्राप्त करने वाला पार उतरता है ।।६।। वैश्यों की वृत्ति मे समास्थित रहने वाले वैश्यों के द्वारा भी वह राजर्षि वृत्ति के देने वाला और महान् यश वाला पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ।।१०।। ये सब वत्स विशेष, दोहन करने वाले दोग्धा गण और पात्र तथा क्षीर सभी वस्तुऐं क्रम के अनुसार मैंने कह दी है ।।११।। पहिले महान् आत्मा वाले ब्रह्माजी ने इस पृथ्वी का दोहन किया था । उस समय ब्रह्मा ने वायु को वत्स बनाया था और इस वसुधा के

मधुकटभयो पूव मेम्सा सपरिप्लुता ।
ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञ पृथार्वैन्यस्य धीमत ॥२
इयञ्चासीत् समुद्रान्ता मेग्नीति परिश्रुता ।
दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यते तत ॥३
प्रथिता प्रविभक्ता च शोभिता च वसुन्धरा ।
सस्याकरवती राज्ञा पत्तनाकरमालिनी ।
चातुर्वण्यसमाकीर्णा रक्षिता तन धीमता ॥४
एव प्रभावो राजासीद्व य स नृपसत्तम ।
नमस्यश्च व पूज्यश्च भतग्रामेण सर्वदा ॥५
ब्राह्मणश्च महाभाग दिवेदाङ्गपारग ।
पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनि सनातन ॥६
पार्थिवैश्च महाभाग प्रार्थयद्भिमहद्यश ।
आदिराजा नमस्काय पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—यह समुद्र के अन्त तक है और मदिनी इस नाम वाली सुनी गई है। क्योंकि यह वसु अर्थात् धनों को धारण किया करती है इसी से वसुधा इस नाम स कही जाया करती है ॥१॥ यह पहिले समय म मधु और कटभ के मेद से सपरिप्लुत थी फिर धीमान् वैन्य राजा पृथ क अभ्युपगम से यह समुद्र के अन्त तक हुई थी और मेदिनी इस नाम से परिश्रुत हुई। यह दुहिता के भाव को प्राप्त हुई थी तब से ही यह पृथ्वी इस नाम से कही जाती है ॥२॥३। यह प्रथित हुई-प्रविभक्त हुई और शोभा से भी युक्त हुई वसुन्धरा थी जो कि सस्यों के आकरो वाली राजा के द्वारा पत्तनो के आकरो के माला वालो की गई थी। यह चारो वर्णों के समुदाय से समाकीर्ण उसी राजा के द्वारा जो कि परम बुद्धिमान् था रक्षित हुई थी ॥४॥ वह नृपो म परम श्रेष्ठ राजा वन्य इस प्रकार के प्रभाव से युक्त था। वह प्राणियो के समूह के द्वारा सर्वत्र नमन करने के योग्य तथा पूजा करने के योग्य था ॥५॥ वेद और वेद के समस्त अङ्गो के पारगामी महान् भाग्य वाले ब्राह्मणो के द्वारा ब्रह्मयोनि एव सनातन केवल पृथ ही नमस्कार करन के योग्य होता है ॥६॥

जो राजा इस भू-मण्डल में महान् यश प्राप्त करने के इच्छुक हों उन महाभागों के द्वारा भी परम प्रताप वाला आदि राजा वैन्य पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ।।७।।

योधैरपि च सग्रामे प्रार्थयानैर्जय युधि ।
आदिकर्त्ता नराणा वै नमस्य पृथुरेव हि ।।८
यो हि योद्धा रण याति कीर्त्तयित्वा पृथु नृपम् ।
स घोररूपे सग्रामे क्षेमी तरति कीर्त्तिमान् ।।९
वैश्यैरपि च राजर्षिर्वैश्यवृत्तिसमास्थितै ।
पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशा ।।१०
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धार क्षीरमेव च ।
पात्राणि च मयोक्तानि सर्वाण्येव यथाक्रमम् ।।११
ब्रह्मणा प्रथम दुग्धा पुरा पृथ्वी महात्मना ।
वायु कृत्वा तदा वत्स बीजानि वसुधातले ।।१२
तत. स्वायम्भुवे पूर्वन्तदा मन्वन्तरे पुन ।
वत्स स्वायम्भुव कृत्वा दुग्धा ग्रीष्मेण वै मही ।।१३
मनौ स्वारोचिषे दुग्धा मही चैत्रेण धीमता ।
मनु स्वारोचिष कृत्वा वत्स सस्यानि वै पुरा ।।१४

जो योधा सग्राम भूमि मे अपना जय प्राप्त करने की कामना रखते उनके द्वारा भी मानवो का आदिकर्त्ता पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ।।८।। जो योधा रणभूमि मे पहिले पृथु राजा का गुण-गान करके जाया करता है वह फिर वहाँ घोर स्वरूप वाले सग्राम मे क्षेम वाला होता हुआ कीर्त्ति प्राप्त करने वाला पार उतरता है ।।९।। वैश्यों की वृत्ति मे समास्थित रहने वाले वैश्यो के द्वारा भी वह राजर्षि वृत्ति के देने वाला और महान् यश वाला पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ।।१०।। ये सब वत्स विशेष, दोहन करने वाले दोग्धा गण और पात्र तथा क्षीर सभी वस्तुऐं क्रम के अनुसार मैंने कह दी हैं ।।११।। पहिले महान् आत्मा वाले ब्रह्माजी ने इस पृथ्वी का दोहन किया था । उस समय ब्रह्मा ने वायु को वत्स बनाया था और इस वसुधा के

तल म बीजो का दुहा था ॥१२॥ इसके पश्चात् फिर पहिले स्वायम्भुव मन्व तर मे स्वायम्भुव को वत्स बनाकर ग्रीष्म के द्वारा इस मही का दोहन किया गया था ॥१३॥ स्वारोचिष मन्व तर म धीमान् चत्र ने मही का दोहन किया था । स्वारोचिय मनु को वत्स बनाकर सस्यो का दोहन किया गया था ॥१४॥

उत्तमेऽन्तमेनापि दुग्धा देवभुजेन तु ।
मन कृत्वोत्तम वत्स सवसस्यानि धीमता ॥१५
पुनश्च पञ्चमे पृथ्वी तामसस्यान्तरे मनो ।
दुग्धेय तामस वत्स कृत्वा तु बलबन्धुना ॥१६
चारिष्णवस्य देवस्य सप्राप्त चान्तरे मनो ।
दुग्धा मही पुराणेन वत्सञ्चारिष्णव प्रति ॥१७
चाक्षुषेऽपि च सम्प्राप्त तदा मन्वन्तरे पुन ।
दुग्धा मही पुराणेन वत्स कृत्वा तु चाक्षुषम् ॥१८
चाक्षुपस्यान्तरेऽतीते प्राप्त वंवस्वते पुन ।
वन्येनेय मही दुग्धा यथा ते कीर्तित मया ॥१९
एतदु ग्धा पुरा पृथ्वी व्यतीतेष्वन्तरेषु व ।
देवादिभिमनुष्यश्च तथा भूतादिभिश्च या ॥२०
एव सर्वेषु विज्ञ या ह्यतीतानागतेष्विह ।
देवा मन्वन्तरष्वस्य पृथोस्तु शृणुत प्रजा ॥२१

उत्तम और धीमान् मनुत्तम देवभुज के द्वारा उत्तम मनु को वत्स बना कर धीमान् ने समस्त सस्यो का दोहन किया था ॥१५॥ फिर तामस मन्वन्तर से जो कि पाँचवाँ म वन्तर था बलबन्धु के द्वारा यह पृथ्वी तामस मनु को वत्स बनाकर दोहन की गई ॥१६॥ फिर चारिष्णव देव के मन्वन्तर प्राप्त होने पर पुराण ने चारिष्णव को वत्स बनाकर इस पृथ्वी का दोहन किया था ।१७। फिर चाक्षुष मन्वन्तर के आजाने पर पुराण के द्वारा ही चाक्षुष को वत्स कल्पित कर इस मही का दोहन किया गया ॥१ ॥ फिर चाक्षुष मन्तर के व्यतीत हो जाने पर इस वैवस्वत मन्वन्तर के सम्प्राप्त हो जाने पर यह मही वन्य राजा के द्वारा दोहन की गई है जैसा कि मैंने तुमको अभी सब बताया

था ॥१९॥ पहिले इन सबके द्वारा मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने पर देव आदि-मानव और भूतादि के द्वारा यह भूमि दोहन की गई थी ॥२०॥ इस प्रकार से अतीत एवं अनागत सभी मे मन्वन्तरों मे देवों का ज्ञान लेना चाहिए। अब इस राजा पृथु की प्रजा का श्रवण आप लोग करे ॥२१॥

पृथोस्तु पुत्रौ विक्रान्तौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिपालिनौ ।
शिखण्डिनी हविर्द्धानमन्तर्द्धानाद्व्यजायत ॥२२
हविर्द्धानात्षडाग्नेयी धिषणाऽजनयत्सुतान् ।
प्राचीनबर्हिषं शुक्रं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ॥२३
प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः ।
बलश्रुततपोवीर्ये पृथिव्यामेकराड्मतः ।
प्राचीनाग्रा कुशास्तस्य तस्मात्प्राचीनबर्हसौ ॥२४
समुद्रतनयायान्तु कृतदार स वै प्रभु ।
महतस्तमस पारे सवर्णाया प्रजापतेः ।
सवर्णाऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ॥२५
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ।
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥२६
तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेत सु महीरुहाः ।
अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥२७
प्रत्याहृते तदा तस्मिश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
नाशकन् मारुतो वातुं वृतं खमभवद्द्रुमैः ।
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥२८

पृथु राजा के दो विक्रान्त पुत्र उत्पन्न हुए वे जोकि अन्तर्द्धियानी थे। शिखण्डिनी हविर्धान अन्तर्द्धान से उत्पन्न हुआ ॥२२॥ हविर्धान से षडाग्नेयी धिषणा ने पुत्रों को जन्म दिया था। जिनके नाम प्राचीन बर्हि-शुक्र-गय-कृष्ण-व्रज और अजिन थे ॥२३॥ प्राचीन बर्हि भगवान् महान् प्रजापति थे। यह बल-श्रुत-तप और वीर्य मे पृथिवी मे एकराट् थे। प्राचीनाग्र कुशा उसके

थे इसीसे यह प्राचीन बर्हि नाम वाला हुआ था ।।२४।। वह प्रभु समुद्र तनया में कृतदार हुआ था अर्थात् समुद्र तनया को अपनी दारा बनाया था। महान् तम के पार में प्रजापति से सवर्णा में दश सामग्री प्राचीन बर्हियों को सवर्णा ने धारण किया था ।।२५।। ये सब धनुर्वेद के पारगामी प्रचेतस थे। अपृथक धर्म के आचरण करने वाले उनने दश सहस्र वर्ष तक महान् तपश्चर्या की थी जो कि समुद्र के जल में शयन करने वाले थे ।।२६।। प्रचेताओं के तपश्चर्या करने पर महीरुह अरक्ष्यमाण पृथ्वी से बो गये। इसके अनन्तर प्रजाक्षय हो गया था ।।२७।। उस समय चाक्षुष मन्वन्तर के प्रत्याहृत हो जाने पर मारुत वहन न कर सका और द्रुमों से आकाश आवृत होगया था। दश सहस्र वर्ष तक प्रजा कुछ भी चेष्टा न कर सकी थी ।।२८।।

तदुपश्रुत्य तपसा सर्वे युक्ता प्रचेतस ।
मुखेभ्यो वायुमग्निञ्च ससृजुर्जातमन्यव ।।२९
उन्मूलानथ तान् वृक्षान् कृत्वा वायुरशोषयत् ।
तानग्निरदहद्घोर एवमासीद् द्रुमक्षय ।।३०
द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किञ्चिच्छेषेषु शाखिषु ।
उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोम प्रचेतस ।।३१
दृष्ट्वा प्रयोजन सर्व लोकसन्तानकारणात् ।
कोपन्त्यजत राजान सर्वे प्राचीनबर्हिष ।।३२
वृक्षा क्षित्या जनिष्यन्ति शाम्येतामग्निमारुतौ ।
रत्नभूता तु कन्येय वृक्षाणा वरवर्णिनी ।।३३
भविष्य जानता ह्य पा मया गोभिर्विवर्द्धिता ।
मारिषा नाम नाम्नैषा वृक्षैरेव विनिर्मिता ।
भार्या भवतु वो ह्य पा सोमगर्भविवर्द्धिता ।।३४
युष्माक तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः ।
अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापति ।।३५

तपस्या से युक्त समस्त प्रचेताओं ने यह सुनकर क्रोधित होते हुए मुखों से वायु और अग्नि को उत्सर्जित किया था ।।२९।। वायु ने उन समस्त वृक्षों

को उन्मूलित कर सुखा दिया था और अग्नि ने उनको दग्ध कर दिया था। इस प्रकार से घोर द्रुमों का क्षय हुआ था ॥३०॥ कुछ वानिया के शेष रह जाने पर द्रुमों के क्षय को जानकर प्रचेतस सोम राजा उनके पास आकर उनसे कहने लगा ॥३१॥ लोक सन्तान के कारण से समस्त प्रयोजन जानकर प्राचीन बर्हिष राजा लोग कोप को छोड़ दो ॥३२॥ क्षिति में वृक्ष उत्पन्न होंगे। अग्नि और वायु शान्त हो जावें। रत्नभूता यह कन्या वृक्षों की वर वर्णिनी है ॥३३॥ भविष्य अर्थात् आगे आने वाले समय को जानने वाले मैंने गोओं से निराकृत की है। नाम से यह मारिषा नाम वाली है और यह वृक्षा के द्वारा ही विनिर्मित हुई है। यह सोम के गर्भ में विवर्द्धित हुई आपकी भार्या होवे ॥३४॥ आपके आधे तेज से और आधे मेरे तेज से इसमें परम विद्वान् दक्ष नाम वाला प्रजापति उत्पन्न होगा ॥३५॥

स इमा दग्धभूयिष्ठा युष्मत्तेजोमयेन वै ।
अग्निनाग्निसमो भूय. प्रजा सवर्द्धयिष्यति ॥३६
तत. सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतस ।
संहृत्य कोपं वृक्षेभ्य पत्नी धर्मेण मारिषाम् ॥३७
मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः ।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषाया प्रजापत्ति ॥३८
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन वीर्यवान् ।
असृजन्मानसानादौ प्रजा दक्षोऽथ मैथुनात् ॥३९
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदान् ।
विसृज्य मनसा दक्ष पश्चादसृजत स्त्रियः ॥४०
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥४१
एभ्यो दत्त्वा ततोऽन्या वै चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
द्वे चैव बाहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
कन्यामेकां कृशाश्वाय तेभ्योऽपत्यं निबोधत ॥४२

आपके तेजोमय अग्नि से दग्ध भूयिष्ठा इसको वह अग्नि सम होकर

प्रजा का सम्वर्द्धन करेगा ॥३६॥ इसके पश्चात् सोम के वचन से उन प्रचेताओं ने वृक्षों से कोप का संहार करके धर्म से मारिषा को पत्नी रूप में ग्रहण किया था ॥३६॥ इसके अनन्तर उन्होंने मारिषा में मन से गर्भ धारण कराया था। दश प्रचेताओं से मारिषा में प्रजापति महान् तेज वाला सोम के अंश से वीर्यवान् दक्ष उत्पन्न हुआ था। आदि में मानस प्रजाओं का सृजन किया था इसके अनन्तर दक्ष ने मैथुन से सृजन किया ॥३८ ३६॥ दक्ष ने चर-अचर-द्विपद और चतुष्पदों का मन से विशेष रूप से सृजन करके पीछे स्त्रियों का सृजन किया था ॥४०॥ उसने पश्चात् दक्ष ने दशतों धर्म के लिए दी-कश्यप को तेरह और काल के नयन में युक्त सत्ताईस इन्दु के लिए दी थी ॥४१॥ इनको देकर फिर अन्य चार अरिष्टनेमि को दी—दो बाहु पुत्र के लिए—दो आङ्गिरस के लिये और एक कन्या कृशाश्व के लिये दी। अब उनसे जो सन्तति हुई उसे भी आप लोग भली भाँति समझ लो ॥४२॥

अन्तरं चाक्षुषस्यात्र मनोः षष्ठन्तु हीयते।
मनोर्वैवस्वतस्यापि सप्तमस्य प्रजापतेः ॥४३
तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥४४
ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन् प्रजा मैथुनसम्भवा।
सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ॥४५
देवानां दानवानाञ्च देवर्षीणाञ्च ते शुभः।
सम्भवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मनः ॥४६
प्राणात्प्रजापतेर्जन्म दक्षस्य कथितं त्वया।
कथं प्राचेतसत्वञ्च पुनर्लेभे महातपाः ॥४७
एतन्नः संशयं सूत व्याख्यातुं त्वमिहार्हसि।
स दौहित्रश्च सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ॥४८
उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषु सत्तमाः।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये नराः ॥४६

यहाँ पर चाक्षुष मनु का छटवाँ अन्तर हीयमान होता है। प्रजापति

सप्तम वैवस्वत मनु का भी समाप्त होता है। उन मे देव-पग-गौ-नाग-दितिज-दानव-गन्धर्व-अप्सरा और अन्य जातियाँ उत्पन्न हुई थी ।।४३-४४।। इसके पश्चात् तभी से लेकर इस लोक मे मैथुनसे जन्म ग्रहण करनेवाली प्रजा हुई थी। इससे पहिले जो हुए वे उन पूर्व मे होने वालो की सृष्टि सङ्कल्प-दर्शन-स्पर्शन से ही कही जाती है ।।४५।। ऋषियो ने कहा—आपने देवों का-दानवों का और देवर्षियों का शुभ जन्म महात्मा वश के पहिले बतलाया है ।।४६।। आपने प्रजापति दक्ष का जन्म प्राण से बतलाया है। फिर महात्मा ने प्राचेतसत्व को कैसे प्राप्त किया था ।।४७।। हे सूत! यह हमको बडा सशय होता है। आप इसकी पूरी व्याख्या करने के योग्य होते है। वह सोम का दौहित्र श्वसुर कैसे बन गया था? ।।४८।। श्री सूतजी ने कहा—हे मत्तमो! प्राणियो मे उत्पत्ति और निरोध नित्य ही होता है। इस विषय मे ऋषि लोग और जो विद्या वाले मनुष्य हैं वे मोह को प्राप्त नही होते हैं ।।४९।।

युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो द्विजा ।
पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वास्तत्र न मुह्यति ।।५०
ज्यैष्ठ्य कानिष्ठ्यमप्येषा पूर्वं नासीद्द्विजोत्तमा ।
तप एव गरीयोऽभूत् प्रभावश्चैव कारणम् ।।५१
इमा विसृष्टि यो वेद चाक्षुषस्य चराचरम् ।
प्रजानामायुरुत्तीर्ण स्वर्गलोके महीयते ।।५२
एष सर्ग समाख्यातश्चाक्षुषस्य समा सत ।
इत्येते षड्विसर्गा हि क्रान्ता मन्वन्तरात्मका ।
स्वायम्भुवाद्या. सक्षेपाच्चाक्षुषान्ता यथाक्रमम् ।।५३
एते सर्गा यथाप्रज्ञ प्रोक्ता वै द्विजसत्तमा ।
वैवस्वतनिसर्गेण तेषा ज्ञेयस्तु विस्तर ।।५४
अनन्ता नातिरिक्ताश्च सर्वे सर्गा विवस्वत ।
आरोग्यायुष्प्रमाणेन धर्मत कामतोऽर्थत. ।
एतानेव गुणाग्नेति य पठत्यनसूयक ।।५५

वैवस्वतस्य वक्ष्यामि साम्प्रतस्य महात्मन ।
समासाद्व्यासत सर्गं प्रवृवतो मे निबोधत ॥५६

हे द्विज वृन्द ! ये समस्त दक्ष आदि युग युग म होते हैं और फिर निरुद्ध हुआ करते है। उसमे विद्वान् पुरुष कभी मोहित नही होता है ॥५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पहिले इनकी ज्येष्ठता और कनिष्ठता अर्थात् छुटपन और बड़प्पन नही होती थी। तप ही एक बड़ा हुआ था और प्रभाव ही कारण था ॥५१॥ जो चाक्षुप की इस चराचर विशेष सृष्टि को जानता है वह प्रजाओं की आयु को उत्तीर्ण होगया और स्वर्ग लोक म प्रतिष्ठित होता है ॥५२॥ मैंने यह चाक्षुप मन्वन्तर का सर्ग सक्षेप से कहा है। ये मन्वन्तरात्मक अर्थात् मन्वन्तर के स्वरूप वाले छ विसर्ग क्रान्त होते हैं। स्वायम्भुव के आद्य वाले चाक्षुप के अन्त वाले यथाक्रम सक्षेप से वर्णित हैं। अर्थात् इनमे से छ मे स्वायम्भुव प्रथम है और चाक्षुप अन्तिम है ॥५३॥ ये समस्त सर्ग प्रजा के अनुसार हे द्विजोत्तमो ! मैंने कहे हैं। वैवस्वत निसर्ग से ही उनका विस्तार जान लेना चाहिये ॥५४॥ ये समस्त सर्ग विवस्वान् से न तो अनन्त हैं और न अतिरिक्त ही है। आरोग्य और आयुप् प्रमाण स-धर्म स तथा काम स इनके ही गुण स जो अनसूयक इसे पढता है हो जाता है। अब साम्प्रत महात्मा वैवस्वत का सर्ग समास और विस्तार दोनो स मैं कहूँगा उसे आप लोग बताने वाले मुझसे जान लो ॥५५ ५६॥

प्रकरण ४६—वैवस्वत सर्ग वर्णन

सप्तमे त्वथ पर्याये मनोर्वैवस्वतस्य ह ।
मारीचात्कश्यपाद् देवा जज्ञिरे परमर्षय ॥१
आदित्या वसवो रुद्रा साध्या विश्वे मरुद्गणा ।
भृगवोऽङ्गिरसश्च व ह्यष्टौ देवगणा स्मृता ॥२
आदित्या मरुतो रुद्रा विज्ञेया कश्यपात्मजा ।
साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रास्त्रयो गणा ॥३

भृगोस्तु भार्गवो देवो ह्यङ्गिरोऽङ्गिरस सुत ।
वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् नित्य ते छन्दजा सुराः ॥४
एष सर्गस्तु मारीचो विज्ञेय साम्प्रत शुभ ।
तेजस्वी साम्प्रतस्तेषामिन्द्रो नाम्ना महाबल ॥५
अतीतानागता ये च वर्त्तन्ते ये च साम्प्रतम् ।
सर्वे मन्वन्तरेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुल्यलक्षरणा ॥६
भूतभव्यभवन्नाथ सहस्राक्षः पुरन्दर ।
मघवन्तश्च ते सर्वे शृङ्गिरणो वज्रपाणय ।
सर्वे क्रतुशतेनेष्ट पृथक् शतगुणेन तु ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर वैवस्वत मनु के सप्तम पर्याय में मारीच से कश्यप से देव और परमर्षिगण उत्पन्न हुए ॥१॥ आदित्य—वसुगण—रुद्र—साध्य—विश्वे—मरुद्गण—भृगु—अङ्गिरस ये आठ देवगण कहे गये है ॥२॥ आदित्य—मरुत और रुद्र ये कश्यप के पुत्र जानने चाहिए । साध्य—वसुगण—विश्वे ये तीन गण धर्म के पुत्र हैं ॥३॥ भृगु का भार्गव देव पुत्र है और अङ्गिरस का अङ्गिरा पुत्र हुआ । इस वैवस्वत अन्तर मे नित्य छन्दज सुर हैं ॥४॥ यह मारीच सर्ग जानना चाहिए जो कि साम्प्रत और शुभ है । साम्प्रत अर्थात् इस वर्त्तमान समय मे होने वाला इनमें तेजस्वी और नाम से महाबल इन्द्र है ॥५॥ जो अतीत और अनागत है और जो इस समय मे वर्त्तमान है वे सब मन्वन्तरेन्द्र तुल्य लक्षरण वाले ही जानने चाहिए ॥६॥ भूत भव्य और भवत् के सहस्राक्ष-पुरन्दर और मघवन्त वे सब शृङ्गी—वज्र पाणि है । सबो के द्वारा शतक्रतु से यजन किया गया है जो कि पृथक् शत गुण से युक्त है ॥७॥

त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमन्त्यचलानि च ।
अभिभूयावतिष्ठन्ते धर्माद्यैं कारणैरपि ॥८
तेजसा तपसा बुद्धया बलश्रुतपराक्रमै ।
भूतभव्यभवन्नाथा यथा ते प्रभविष्णव ।
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत । ९

भूत भव्यं भविष्य तत् लोकत्रय द्विज ।
भूर्लोकोऽय स्मृतो भूमिरन्तरिक्ष भुव स्मृतम् ।
भव्य स्मृत दिव ह्य तत्तपा वक्ष्यामि साधनम् ॥१०
ध्यायत पुत्रकामेन ब्रह्मणाथ विभापितम् ।
भूरिति व्याहृत पूव भूर्लोकोऽयमभूत्तदा ॥११
भूसत्ताया स्मृतो धातुस्तथाऽसौ लोकदशन ।
भूतत्वाद्दर्शनत्वाच्च भूर्लोकोऽयमभूत्तत ।
मतोऽय प्रथमो लोको भूतत्वाद्भूर्द्विज स्मृत ॥१२
भूतेऽस्मिन् भवदित्युक्त द्वितीय ब्रह्मणा पुन ।
भवत्युत्पद्यमानेन कालशब्दोऽयमुच्यते ॥१३
भवनात्तुभुवर्लोको निरुक्तज्ञैनिरुच्यते ।
मन्तरिक्ष भुवस्तस्माद्द्वितीयो लोक उच्यते ।।१४

गैलोक्य मे जो सत्त्व गतिमान् और प्रबल हैं उनका अभिभव करके अवस्थित होते हैं। धर्माद कारणों से–तेज से–तपसे बुद्धिसे और बल–श्रुत और पराक्रम से भूत भव्य और भवनाथ होते हैं व उसी प्रकार से प्रभविष्णु भी हैं। यह सब मैं बतलाऊंगा बोलने वाले मुझसे आप लोग सब जानकारी करो ॥८॥९॥ भूत भव्य और भविष्य वह द्विजो के द्वारा लोकत्रय कहा गया यह भूमि भूर्लोक कहा गया है और अन्तरिक्ष भुवलोक इस नाम से कहा गया है। भव्य यह दिव कहा गया है अब उनके साधन बतलाऊंगा ॥१०॥ पुत्र की कामना वाले ध्यान करते हुए ब्रह्मा ने सबसे आगे भूं यह बोला था सबसे ही यह भूर्लोक हो गया था ॥११॥ भू यह धातु सत्ता अर्थ मे कहा गया है तथा यह लोक दर्शन मे भूतत्व और दर्शनत्व होने के कारण से तभी से यह भूर्लोक हुआ था। इसीलिये यह प्रथम लोक भूतत्व होने से द्विजो के द्वारा भू कहा गया है। इस भूत मे ब्रह्मा के द्वारा पुन द्वितीय भवन् यह कहा गया है भवति इस उत्पद्यमान के द्वारा यह काल शब्द कहा जाता है ॥१२॥१३॥ भवन होने से निरुक्त के ज्ञाताओ के द्वारा भुवलोक कहा जाता है। अन्तरिक्ष भुव होता है इससे यह द्वितीय लोक कहा जाता है ॥१४॥

उत्पन्ने तु भुवर्लोके तृतीय ब्रह्मणा पुन ।
भव्येति व्याहृत यस्मा द्भाव्यो लोकस्तदाऽभवत् ॥१५
अनागते भव्य इति शब्द एष विभाव्यते ।
तस्मा द्भव्यो ह्यसौ लोको नामतस्तु दिव स्मृतम् ॥१६
स्वरित्युक्त तृतीयोऽन्यो भाव्यो लोकस्तदाभवत् ।
भाव्य इत्येष धातुर्वै भाव्ये काले विभाव्यते ॥१७
भूरितीय स्मृता भूमिरन्तरिक्ष भुव स्मृतम् ।
दिव स्मृत तथा भाव्य त्रैलोक्यस्यैष सग्रह ॥१८
त्रैलोक्ययुक्तै र्व्याहारैस्तिस्रो व्याहृतयोऽभवन् ।
नाथ इत्येष धातुर्वै धातुज्ञै पालने स्मृत ॥१९
यस्माद् भूतस्य लोकस्य भव्यस्य भवतस्तदा ।
लोकत्रयस्य नाथास्ते तस्मादिन्द्रा द्विजै स्मृताः ॥२०
प्रधानभूता देवेन्द्रा गुणभूतास्तथैव च ।
मन्वन्तरेषु ये देवा यज्ञभाजो भवन्ति हि ॥२१

भुवर्लोक के उत्पन्न होने पर ब्रह्मा ने फिर तृतीय को भव्य ऐसा कहा जिस कारण से तब वह भव्य लोक हो गया था ॥१५॥ अनागत मे भव्य यह शब्द विभाजित होता है। इससे यह लोक भव्य नाम से कहा गया है ॥१६॥ स्व यह कहा गया है तब अन्य तृतीय भाव्यलोक हुआ था। भाव्य यह धातु भाव्य काल मे विभाजित होता है ॥१७॥ यह भूमि भू इस नाम से कही गई है—अन्तरिक्ष भुव इस नाम से कहा गया और भाव्य दिव इस नाम से कहा गया है—यही त्रैलोक्य का सग्रह होता है ॥१८॥ त्रैलोक्य से युक्त व्याहारो से "भूर्भुव स्व" तीन व्याहृतियाँ हो गई हैं। 'नाथ'—इस नाम से एक धातु है वह धातु के ज्ञान रखने वालो के द्वारा पालन अर्थ मे कही गई है ॥१९॥ जिस से भूत-भव्य और भवत् लोक के उस समय मे तीन लोक के वे जो नाथ थे द्विजो के द्वारा वे इन्द्र कहे गये हैं । २०॥ प्रधान भूत देवेन्द्र त । गुणभूत मन्वन्तरो मे जो देव है वे यज्ञ के भागग्राही होते है ॥२१॥

यक्षगन्धर्वरक्षांसि पिशाचोरगदानवाः ।
महिमान स्मृता ह्य ते देवेन्द्राणान्तु सर्वश ॥२२
देवेन्द्रा गुरवो नाथा राजान पितरो हि ते ।
रक्षन्तीमा प्रजा सर्वा धर्मेणेह सुरोत्तमा ॥२३
इत्येतल्लक्षण प्रोक्त देवेन्द्राणा समासत ।
सप्तर्षीन् सम्प्रवक्ष्यामि साम्प्रत ये दिवि स्थिताः ॥२४
गाधिज कौशिको धीमान् विश्वामित्रो महातपा ।
भार्गवो जमदग्निश्च ऊरुपुत्र प्रतापवान् ॥२५
बृहस्पतिसुतश्चापि भारद्वाजो महातपा ।
औतथ्यो गौतमो विद्वाञ्शरद्वान्नाम धार्मिक ॥२६
स्वायम्भुवोऽत्रिभगवान् ब्रह्मकोशस्तु पञ्चम ।
षष्ठो वासिष्ठपुत्रस्तु वसुमान् लोकविश्रुतः ॥२७
वत्सार काश्यपश्च व सप्त ते साधुसम्मता ।
एते सप्तर्षय सिद्धा वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे ॥२८

यक्ष–गन्धर्व–राक्षस–पिशाच–उरग–दानव–ये देवेन्द्रा के सब ओर से महिमाएं कही गई है ॥२२॥ हे सुरोत्तमो ! देवेन्द्र–गुरु–नाथ–राजा–पितर ये सभी यहाँ पर धर्म से प्रजा की रक्षा किया करते हैं ॥६३॥ यह देवेन्द्रो का लक्षण सक्षेप से बतला दिया है। अब सप्तर्षियो के विषय मे बतलाते है जो कि इस समय दिवि मे स्थित रहते हैं ॥२४॥ गाधि से उत्पन्न होने वाले कौशिक और धीमान् महान् तपस्वी विश्वामित्र—भार्गव जमदग्नि प्रताप वाला ऊरु का पुत्र–बृहस्पति का पुत्र महान् तपस्वी भारद्वाज–औतथ्य गौतम जो कि बड़ा विद्वान् शरद्वान् नाम वाला परम धार्मिक है–स्वायम्भुव भगवान् अत्रि जो ब्रह्म का कोश और पाँचवा है–छटवें वासिष्ठ पुत्र जो वसुमान् और लोक मे परम विश्रुत हैं–वत्सार काश्यप ये साधुओ के द्वारा सहमत सात ऋषिवृन्द हैं। ये वर्तमान इस अन्तर मे सिद्ध हुए सप्तर्षि होते है ॥२५॥२६॥२७॥२८॥

इक्ष्वाकुश्च व नाभागो धृष्ट शर्यातिरेव च ।
नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभ उद्दिष्ट एव च ॥२९

करूपश्च पृषध्रश्च वसुमान्नवम स्मृत ।
मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्रा प्रकीर्त्तिता ।
कीर्त्तिता वै मया ह्येते सप्तमस्यैतदन्तरम् ॥३०
इत्येष वै मया पादो द्वितीय कथितो द्विजा ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूय कि वर्णयाम्यहम् ॥३१

इक्ष्वाकु–नाभाग–धृष्ट–शर्याति–नरिष्यन्त–विख्यात और उद्दिष्ट नाम–पृषध्र और नवम वसुमान् ये इस वैवस्वत मनु के दस पुत्र कहे गये हैं। मैंने इनको कीर्त्तित कर दिया है और यह सप्तम अन्तर है। हे द्विजगण। यह मैंने द्वितीय पाद कहा है। अब आप लोग ही मुझे बतलाइये पुन विस्तार में तथा आनुपूर्वी से मैं क्या वर्णन करूँ ॥२६॥३०॥३१॥

॥ प्रकरण ४७––प्रजापति वंशानु कीर्तन ॥

श्रुत्वा पाद द्वितीयस्तु क्रान्त सूतेन धीमता ।
यतस्तृतीय पप्रच्छ पाद वै शाशपायन ॥१
पाद क्रान्तो द्वितीयोऽयमनुपङ्गेण यस्त्वया ।
तृतीय विस्तरात्पाद सोपोद्घात प्रकीर्तय ।
एवमुक्तोऽब्रवील्सूत प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२
कीर्त्तयिष्ये तृतीयञ्च सोपोद्घात सविस्तरम् ।
पाद समुदयाद्विप्रा गदतो मे निबोधत ॥३
मनोर्वैवस्वतस्येम साम्प्रतस्य महात्मन ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च निसर्ग शृणुत द्विजा ॥४
चतुर्युगैकसमत्या सङ्ख्यात पूर्वमेव तु ।
सह देवगणैश्चैव ऋषिभिर्दानवै सह ॥५
पितृगन्धर्वयक्षैश्च रक्षोभूतगणैस्तथा ।
मानुषै पशुभिश्चैव पक्षिभि स्थावरै सह ॥६

ऊचु सर्वे ततोऽन्योन्य जनलोके महषय ।
ऊचुरेव महाभागा वारुणे वितते क्रतौ ॥१८
सर्वे वय प्रसूयामश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
पितामहात्मजा सर्वे तत श्र यो भविष्यति ॥१६
स्वायम्भुवेऽन्तरे शप्ता सप्ताथ ते भवेन तु।
जज्ञिरे ते पुनस्ते हृ जनलोकादि गता ॥२०
देवस्य महतो यज्ञ वारुणी बिभ्रतस्तनुम् ।
ब्रह्मणो जुह्वत शुक्रमग्नौ पूव प्रजेप्सया।
ऋषयो जज्ञिरे पूव द्वितीयमिति न श्रुतम् ॥२१

ऋषियों ने कहा—हे श्रष्ठतम ! पहिले समुत्पन्न सप्तर्षिगण कसे सात मानस पुत्रत्व से कल्पित हुए ? यह हमे बतलाइये। इसके पश्चात् महान् तेज वाले पौराणिक सूतजी ने शुभ वचन बोले ॥१५॥ सप्तर्षिगण कैसे सिद्ध हुए जो स्वायम्भुव मन्तर मे थे म वन्तर को प्राप्तकर जोकि वैवस्वत नाम वाला था भव के अभिशाप से सबिद्ध होकर उन्होने उस समय मे तप को प्राप्त नही किया था। एकबार आगामी वे जनलोक मे उपपन्न थे ॥१६॥१७॥ तब जनलोक मे सब महर्षिलोग आपस मे एक-दूसरे से बोले और वितत वारुण क्रतु मे महाभाग बोले ॥१८॥ हम सब चाक्षुष मनु के मन्तर मे प्रसूयमान होते हैं। सब पितामह के आत्मज हैं। इससे श्रेय होगा ॥१६॥ स्वायम्भुव मन्तर मे सात के लिये वे शिव के द्वारा अभिशप्त हुए वे पुन यहाँ जनलोक से दिव को गये हुओ ने जन्म लिया था ॥२ ॥ यज्ञमे वरुण के शरीर को धारण करने वाले महान् देव प्रजा की इच्छा से पहिले अग्नि मे शुक्रका हवन करते हुए ब्रह्मा से पूर्व मे ऋषिलोग उत्पन्न हुए थे। यह हमारा द्वितीय श्रुत है ॥२१॥

भृगुरङ्गिरा मरीचि पुलस्त्य पुलह क्रतु ।
अत्रिश्च व वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मण सुता ॥२२
तथास्य वितते यज्ञ देवा सर्वे समागता ।
यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वषट्कारश्च मूर्तिमान् ॥२३
मूर्तिमन्ति च सामानि यजू षि च सहस्रश ।

ऋग्वेदश्चाभवत्तत्र पदक्रमविभूषितः ॥२४
यजुर्वेदश्च वृत्ताढ्य श्रोङ्कारवदनोज्ज्वल ।
स्थितो यज्ञार्थसपृक्तसूक्तब्राह्मणमन्त्रवान् ॥२५
सामवेदश्च वृत्ताढ्य सर्वगेयपुर सरः ।
विश्वावस्वादिभिः सार्द्धं गन्धर्वै सम्भृतोऽभवत् ॥२६
ब्रह्म वेदस्तथा घोरै कृत्याविधिभिरन्वित ।
प्रत्यङ्गिरसयोगैश्च द्विशरीरशिरोऽभवत् ॥२७
लक्षणानि स्वराः स्तोभा निरुक्तस्वरभक्तय ।
आश्रयस्तु वषट्कारो निग्रहप्रग्रहावपि ॥२८

भृगु–अङ्गिरा–मरीचि–पुलस्त्य–पुलह–क्रतु–अत्रि और वसिष्ठ ये आठ ब्रह्मा के पुत्र हैं ॥२२॥ उसी प्रकार से यज्ञ के वितत होने पर समस्त देवगण वहाँ आये थे। समस्त यज्ञ के अङ्ग और मूर्तिमान् वषट्कार–मूर्तिमान् साम–सहस्रो यजु और पद–क्रम आदि से विभूषित ऋक्वेद वहाँ पर था ॥२३॥२४॥ वृत्त से आढ्य और ओङ्कार के मुख से उज्ज्वल यजुर्वेद यज्ञ के अर्थ से सपृक्त सूक्त–ब्राह्मण और मन्त्रों वाला वहाँ पर स्थित है ॥२५॥ समग्त गाने के योग्यो मे अग्रणी वृत्त से आढ्य सामवेद विश्वावस्वादि के साथ गन्धर्वो के द्वारा सम्भृत था ॥२६॥ ब्रह्मवेद घोरकृत्या विधियो से युक्त और प्रत्यङ्गिरस योगो के द्वारा दो शरीर एव शिर वाला था ॥२७॥ लक्षण स्वर हैं, स्तोम निरुक्त स्वर और भक्ति हैं। आश्रय वषट्कार है और निग्रह तथा प्रग्रह भी हैं ॥१८॥

दीक्षा दीप्तिरिलादेवी दिश प्रदिशागीश्वरा ।
देवकन्याश्च पत्न्यश्च तथा मातर एव च ॥२९
आयु सर्वत एवैते देवस्य यजतो मुखे ।
मूर्तिमन्त. स्वरूपाख्या वरुणस्य वपुर्भृत ॥३०
स्वयम्भुवस्तु ता दृष्ट्वा रेत समपतद्भुवि ।
ब्रह्मर्षेर्भाविभूतस्य विधानाच्च न सशय ॥३१
कृत्वा जुहाव स्रुग्भ्याञ्च स्रुवेण परिगृह्य च ।
आज्यवज्जुहुवाञ्चक्रे मन्त्रवच्च पितामह ॥३२

तत स जनयामास भूतग्राम प्रजापति ।
तस्यार्वाक तेजसस्तस्य यज्ञ लोकपु तजसम् ।
तमसाभावव्याप्यत्व तथा सत्त्व तथा रज ॥३३
सगुणात्तजसो नित्यमाकाशे तमसि स्थितम् ।
तमसस्तेजसत्वाच्च सवभूतानि जज्ञिरे ॥३४
यदातस्मिन्नजायत काले पुत्रास्तु कमजा ।
आज्यस्थाल्यामुपादाथ स्वशुक्र हुतवाञ्च ह ॥३५

दीप्ता दीप्ति इलादेवी दिशा और प्रदिग्मीश्वर–देवकन्या–पत्नियाँ तथा माताऐं–आयु वरण के वपु को धारण करने वाले यजन करते हुए देव के मखम थे सब ओर से स्वरूपाढ्य मूर्त्तिमान् थे ॥२६॥३ ॥ उसको देखकर स्वयम्भू का रेतस् भूमि पर गिर गया । और भावभूत ब्रह्मर्षि के विधान से कोई सशय नही है ॥३१॥ स्रुव से परिग्रहण करके स्रुगो से भरके हवन किया था । पितामह ने घृत की भाँति मन्त्रवत् हवन किया था ॥३२॥ इसके पश्चात् उस प्रजापति ने भूतग्राम को उत्पन्न किया था । उसके पूव उसके यज्ञ मे तेजसे लोको म तजस–तमसाभाव व्याप्यत्व सत्त्व तथा रज को उत्पन्न किया था । सगुण तेजसे नित्य आकाश म तममे स्थित है । तम से और तेजसत्व होने से समस्त प्राणी उत्पन्न हुए ॥३४॥ जिस समय म उस काल मे क्रमश पुन उत्पन्न हुए थे आज्य की स्थाली मे लेकर अपने शुक्र का हवन किया था ॥३५॥

शुक्र हुतेऽथ तस्मिंस्तु प्रादुर्भूता महर्षय ।
ज्वलन्तो वपुपा युक्ता सप्र व प्रसवगुण ॥३६
हुते चाग्नौ सक्रुच्छुक्र ज्वालाया नि सत कवि ।
हिरण्यगर्भस्त दृष्टवा ज्वाला भित्त्वा विनि सतम् ।
भृगुस्त्वमिति होवाच यस्मात्तस्मारस व भृगु ॥३७
महादेवस्तथोद्भूत दृष्टवा ब्राह्मणमब्रवीत् ।
ममैव पुत्रकामस्य दीक्षितस्य त्वय प्रभो ।
विज्ञोऽय भृगुर्देवो मम पुत्रो भवत्त्वयम् ॥३८
तथेति समनुज्ञातो महादेव स्वयम्भुवा ।

पुत्रत्वे कल्पयामास महादेवस्तथा भृगुम् ।
वारुणा भृगवस्तस्मात्तदपत्यञ्च स प्रभु ॥३९
द्वितीयन्तु तत शुक्रमङ्गारेष्वपतत्प्रभु ।
अङ्गारेष्वङ्गिरोऽङ्गानि सहितानि ततोऽङ्गिरा ॥४०
सम्भूतिं तस्य ता दृष्ट्वा वह्निर्ब्रह्माणमब्रवीत् ।
रेतोधास्तुभ्यमेवाह द्वितीयोऽय ममास्त्विति ॥४१
एवमस्त्विति सोऽभ्युक्तो ब्रह्मणा सदसस्पति ।
तस्मादङ्गिरसश्चापि आग्नेया इति न श्रुतम् ॥४२

उसमें शुक्रके सुत होने पर इसके अनन्तर महर्षिगण प्रादुर्भूत हुए थे जो शरीर से ज्वलन्त थे और वे सात प्रसव गुणों से युक्त थे ॥३६॥ अग्नि मे एक बार शुक्र के हुत किये जाने पर ज्वाला से कवि नि सृत हुए। ज्वाला का भेदन कर उसको निकला हुआ ब्रह्मा ने देखा और तू भृगु है ऐसा कहा इसीसे यह भृगु हुए है ॥३७॥ महादेव ने उसे इस प्रकार से उत्पन्न होता हुआ देखकर ब्रह्माजी से कहा हे प्रभो ! पुत्र की कामना वाले दीक्षित मेरा यह है जो यह भृगु उत्पन्न हुआ है यह मेरा पुत्र होजावे ॥३८॥ ब्रह्माजी ने—ऐसा ही होवे—इस तरह से आज्ञा प्राप्त होजाने वाले महादेव ने भृगु को अपना पुत्र मान लिया था। इससे वारुण भृगु हुए और उसकी सन्तति प्रभु है ॥३९॥ इसके अनन्तर प्रभु ने द्वितीय शुक्र को अङ्गारों में डाला था। अङ्गारों मे अङ्गिर—अङ्ग सहित फिर उससे अङ्गिरा हुआ। उसकी इस प्रकार की सम्भूति को देखकर अग्नि ने ब्रह्माजी से कहा मैं तुम्हारे लिये ही रेतोधा हुआ हूं। यह दूसरा मेरा होजावे ॥४०॥४१॥ ऐसा ही होवे—इस प्रकार से वह सदसस्पति ब्रह्मा के द्वारा समनुज्ञात होगये थे। इससे अङ्गिरस आग्नेय हुए ऐसा हमने श्रुत किया है ॥४२॥

षट्कृत्यस्तु पुन शुक्रे ब्रह्मणा लोककारिणा ।
हुत समभवस्तत्र षड् ब्रह्माण इति श्रुति ॥४३
मरीचि प्रथमस्तत्र मरीचिभ्य समुत्थित ।
क्रतौ तस्मिन् सुतो जज्ञे यतस्तस्मात्स वै क्रतु ॥४४

अह तृतीय इत्यथस्तस्मादत्रि स कीर्त्यते ।
केशाश्च निचितभू त पुलस्त्यस्तेन स स्मृत ॥४५
केशलम्ब समुद्भूतस्तस्मात पु‍ह स्मृत ।
वसुमध्यात्समुत्पन्नो वसुमान् वसुधाश्रय ॥४६
वसिष्ठ इति तत्वज्ञ प्रोच्यते ब्रह्मवादिभि ।
इत्येते ब्रह्मण पुत्रा मानसा षण्महर्षय ॥४७
लोकस्य सन्तानकरास्तैरिमा वर्द्धिता प्रजा ।
प्रजापतय इत्येव पठ्यन्ते ब्रह्मण सुता ॥४८
अपरे पितरो नाम एतरेव महर्षिभि ।
उत्पादिता ऋषिगणा सप्त लोकेषु विश्रुता ॥४६

लोक के धारण करने वाले ब्रह्मा के द्वारा शुक्र के छ भाग कर हवन करने पर वहाँ छ ब्रह्मा हुए थे ऐसी स्तुति है ॥४३॥ उनमे मरीचि प्रथम है जो मरीचियो से समुत्थित हुए हैं । उस क्रतु मे सुत उत्पन्न हुआ इसीलिए वह क्रतु नाम वाले हुए थे ॥४४॥ मै तीसरा हूँ इस अर्थ वाला इसीसे वह अत्रि कहा जाता है । निचित केशो से हुआ इससे वह पुलस्त्य कहा गया है ॥४५॥ लम्बे केशो से समुद्भूत हुआ था इससे वह पुलह—इस नाम से कहा गया है । वसु के मध्य से उत्पन्न हुआ इससे वसुधा का आश्रय वाला वसुमान् हुआ था ॥४६॥ ब्रह्मवादी तत्त्वज्ञो ने वसिष्ठ ऐसा कहा है । इतने ये ब्रह्मा के छ मानस महर्षि उत्पन्न हुए थे ॥४७॥ ये इस लोक के सन्तति के करने वाले थे और उनके द्वारा ही यह वर्द्धित हुई है । ये ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति इस प्रकार से भी पढ़े जाया करते हैं ॥४८॥ दूसरे पितर भी इन्ही महर्षियो के द्वारा उत्पादित है जो सात लोको मे विश्रुत ऋषिगण हैं ॥४६॥

मारीचा भार्गवाश्चैव तथैवाङ्गिरसोऽपरे ।
पौलस्त्या पौलहाश्चैव वासिष्ठाश्चैव विश्रुता ।
आत्रेयाश्च गणा प्रोक्ता पितृणा लोकविश्रुता ॥५०
एते समासतस्तात पुरव तु गुणास्त्रय ।
अपूर्वाश्च प्रकाशाश्च ज्योतिष्मन्तश्च विश्रुता ॥५१

तेषां राजा यमो देवो यमैर्विहितकल्मषा ।
अपरे प्रजानां पतयस्ताञ्छृणुष्वमतन्द्रिता ॥५२
कर्दम काश्यप शेषो विक्रान्त सुश्रुवास्तथा ।
बहुपुत्र कुमारश्च विवस्वान् स शुचिश्रवा ॥५३
प्रचेतसोऽरिष्टनेमिर्बहुलश्च प्रजापति ।
इत्येवमाद्योऽन्येऽपि बहवश्च प्रजेश्वरा ॥५४
कुशोच्चया वालखिल्या सम्भूता परमर्षय ।
मनोजवा सर्वगता सार्वभौमाश्च तेऽभवन् ॥५५
जाता भस्मव्यपोह्न्या ब्रह्मर्षिगणसम्मता ।
वैखानसा मुनिगणास्तप श्रुतपरायणा ॥५६
स्रोतोभ्यस्तस्य चोत्पन्नावश्विनौ रूपसम्मितौ ।
विदुर्जन्माक्षरजसो विमला नेत्रसम्भवा ॥५७
ज्येष्ठा प्रजानां पतय स्रोतोभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
ऋषयो रोमकूपेभ्यस्तथा स्वेदमलोद्भवा ५८

मारीच-भार्गव-आङ्गिरस-पौलस्त्य-पौलह-वाशिष्ठ और आत्रेय ये गण लोकों में प्रसिद्ध पितरों के कहे गये हैं ॥५०॥ हे तात ! ये संक्षेप से पहिले ही तीन गुण थे अपूर्व-प्रकाश और विश्रुत ज्योतिष्मन्त ये कहे जाते हैं उनका राजा देवयम है । यमों के द्वारा विहित कल्मष दूसरे प्रजाओं के पति होते हैं उनको अब अतन्द्रित होकर सुनो मैं कहता हूँ इसलिए तुम्हें सुनना चाहिये यह भावार्थ है ॥५१॥५२॥ कर्दम-कश्यप-शेष-विक्रान्त-सुश्रुवा-बहुपुत्र-कुमार-विवस्वान्-शुचिश्रवा-प्रचेतस-अरिष्टनेमि-बहुल और प्रजापति एवमादि तथा अन्य भी बहुत से प्रजेश्वर होते है ॥५३॥५४॥ कुशोच्चय-वालखिल्य परमर्षि उत्पन्न हुए तथा मनोजव-सर्वगत और सार्वभौम वे हुए हैं ॥५५॥ ब्रह्मर्षिगण सम्मत तप और श्रुत में परायण वैखानस मुनिगण भस्म व्यपोह्नी में उत्पन्न हुए थे ॥५६॥ उनके स्रोतों से रूप सम्मित अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए । उनके स्रोतो से विदुर्जन्मार पग-विमल-नेत्र सम्भव-ज्येष्ठ प्रजाओं के पति उत्पन्न हुए । तथा स्वेदमल से उद्भव वाले ऋषि रोम कूपों से उत्पन्न हुए ॥५७॥५८॥

दारुणा हि रुते भासा निर्यासा पक्षसन्धय ।
वत्सरा ये त्वहोरात्रा पित्र ज्योतिश्च दारुणम् ।।५६
रौद्र लोहितमित्याहुर्लोहित कनक स्मृतम् ।
तन्मन्त्रमिति विज्ञय धूमश्च पशव स्मृता ।।६०
येऽर्च्चिषस्तस्य रुद्रास्तथादित्या समुद्भवा ।
अङ्गारेभ्य समुत्पन्ना ज्योतिषो दिव्यमानुषा ।।६१
आदिमानस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मसमुद्भव ।
सवकामन्मित्याहुस्तत्र कन्यामुदाहरन् ।।६२
ब्रह्मा सुरगुरुस्तत्र त्रिदश सप्रसीदति ।
इमे व जनयिष्यन्ति प्रजा सर्वा प्रजेश्वरा ।।६३
सर्वे प्रजाना पतय सर्वे चापि तपस्विन ।
तत्प्रसादादिमाल्लोकान्धारयेयुरिमा क्रिया ।।६४
द्वन्द्व सवद्व यामास तव तेजोविवद्ध नम् ।
देवेषु वेदविद्वास सर्वे राजपयस्तथा ।।६५

रुत मे मास दारुण थे जो निर्यास थे वे पक्षो की सन्धियाँ थी जो वत्सर और अहोरात्र पित्र दारुण ज्योति रौद्र को लोहित कहते थे लोहित को कनक कहा गया है। उसे मन्त्र ऐसा जानना चाहिए और धूम पशु कहे गये है ।।५६ ६ ।। उसकी अर्चियाँ थी वे रुद्र तथा आदित्य उत्पन्न हुए। अङ्गारो से दिव्य मानुष ज्योतियाँ समुत्पन्न हुई ।।६१।। आदिमान लोक का ब्रह्मा ब्रह्म से समुद्भूत हुआ। वहाँ पर कन्या को उदाहृत करते हुए सर्व कामद ऐसा कहते हैं ।।६२।। वहाँ देवो के साथ सुरगुरु ब्रह्मा सम्प्रसन्न होते हैं। ये प्रजेश्वर समस्त प्रजाओ को उत्पन्न करेंगे ।।६३।। ये सब प्रजाओ के पति थे और ये सब तपस्वी थे। उनके प्रसाद से ये क्रियाएँ इन लोको को धारण करती हैं ।।६४।। आपके तेज के विवद्ध न करते हुए द्वद्व का सवधन किया था। देवो मे समस्त राजर्षिगण वेद के विद्वान् थे ।।६५।।

वेदमन्त्र परा सर्वे प्रजापतिगुणोद्भवा ।
अनन्त ब्रह्म सत्यञ्च तपश्च परम भुवि ।।६६

सर्वे हि वयमेते च तवैव प्रसव प्रभो ।
ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव लोकाश्चैव चराचरा ।।६७
मरीचिमादितः कृत्वा देवाश्च ऋषिभि सह ।
अपत्यानीय सञ्चिन्त्य तेऽपत्यङ्कामयामहे ।।६८
तस्मिन् यज्ञ महाभागा देवाश्च ऋषिभि सह ।
एतद्वशसमुद्भूता स्थानकालाभिमानिन ।।६९
न च तेनैव रूपेण स्थापयेयुरिमा प्रजा ।
युगादिनिधनाच्चैव स्थापयेयुरिमा प्रजा ।।७०
ततोऽब्रवील्लोकगुरु परमित्यविचारयन् ।
एव देवा विनिश्चित्य मया सृष्टा न सशय ।
भवता वशसम्भूता पुनरेते महर्षय ।।७१
तेषा भृगो कीर्तयिष्ये वश पूर्वमहात्मन ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमस्य प्रजापते ।।७२

सब प्रजापति के गुणो से उद्भव होने वाले वेदो के मन्त्रो मे परायण थे । अनन्त और सत्य ब्रह्म-भू मे परम तप से सब और हम है प्रभो ! आपका ही प्रसव है जिनमे ब्रह्म और ब्राह्मण तथा चराचर लोक है ।।६६-६७।। मरीचि आदि लेकर ऋषियों के साथ देवगण यहाँ पर सन्तति की चिन्ता कर उन सबने अपत्य (सन्तान) की कामना की थी ।।६८।। उस यज्ञ मे महान् भाग वाले देवता ऋषियो के साथ स्थान और काल के अभिमानी इस वश से समुद्भूत थे ।।६९।। और उसी रूप से इन प्रजाओ की स्थापना नही करनी चाहिए किन्तु युगादि निधन से इनको स्थापित करो ।।७०।। इसके अनन्तर लोक गुरु से विचार न करते हुए कहा—मैने इस प्रकार का विनिश्चय करके देवताओं को सृष्ट किया है उसमे सशय नही है । फिर ये महर्षिगण सबके वश मे सम्भूत हुए है ।।७१।। उनमे से महात्मा भृगु के वश को पहिले बतलाऊँगा जो कि प्रथम प्रजापति है इसे विस्तारानुपूर्वी से कहूगा ।।७२।।

भार्या भृगोरप्रतिमे उत्तमेऽभिजने शुभे ।
हिरण्यकशिपो कन्या दिव्या नाम परिश्रुता ।
पुलोम्नश्चापि पौलोमी दुहिता वर वर्णिनी ।।७३

भृगोस्त्वजनयद्दिव्या काव्य वेदविदा वरम् ।
देवासुराणामाचाय शुक्रङ्कविसुत ग्रहम् ॥७४
स शुक्रश्चोशना ख्यात स्मृत कार्योऽपि नामत ।
पितृणा मानसी कन्या सोमपाना यशस्विनी ।
शुक्रस्य भार्याङ्गी नाम विजज्ञ चतुर सुतान् ॥७५
ब्राह्म ण तेजसा युक्त स जातो ब्रह्मवित्तम ।
तस्यामेव तु चत्वार पुत्रा शुक्रस्य जज्ञिरे ॥७६
त्वष्टा वरूत्री द्वावेतौ शण्डामर्कौ च तावुभौ ।
ते तदादित्यसङ्काशा ब्रह्म कल्पा प्रभावत ॥७७
रञ्जन पृथुरश्मिश्च विद्वान्यश्च बृहद्गिरा ।
वरूत्रिण सुता ह्य ते ब्रह्मिष्ठा सुरयाजका ॥७८
इज्याधर्मविनाशाय मनु मेत्याभ्ययोजयन् ।
निरस्यमान च धर्म दृष्ट्वेन्द्रो मनुमब्रवीत् ॥७९
एतरेव तु नाम त्वा प्रापयिष्यामि याजनम् ।
श्रुत्वेन्द्रस्य तु तद्वाक्य तस्माद् देशादपाक्रमन् ॥८०

भृगु की भार्या हिरण्यकशिपु के उत्तम-शुभ-अप्रतिम अभिजन मे दिव्या इस नाम से परिश्रुत होने वाली कन्या से वेदो के ज्ञाताओ मे परमश्रेष्ठ काव्य को उत्पन्न किया था जो कि देवासुरो के आचार्य थे और कविसुत शुक्र ग्रह है ॥७४॥ वह शुक्र उशना इस नाम से प्रसिद्ध हुआ और नाम से काव्य भी कहा गया है। सो मय पितृगण की मानसी यशस्विनी कन्या जो कि शुक्र की अङ्गी नाम वाली भार्या थी उसने चार पुत्र उत्पन्न किये थे ॥७५॥ ब्रह्म तेज से युक्त वह ब्रह्मवेत्ताओ मे श्रेष्ठ वह उत्पन्न हुआ था। शुक्र के चार पुत्र उसी मे से हुए हैं ॥७६॥ त्वष्टा-वरूत्री दो ये और शण्ड तथा मर्क ये दोनो उत्पन्न हुए। वे उस समय आदित्य के तुल्य और प्रभाव से ब्रह्मा के ही तुल्य थे ॥७७॥ रञ्जन-पृथुरश्मि और बृहद्गिरा ये वरूत्री के ब्रह्मिष्ठ और सुरो के यजन कराने वाले पुत्र थे ॥७८॥ इज्या के धर्म को विनाश करने के लिये मनु के समीप जाकर योजना की। इन्द्र ने धर्म को निरस्यमान देखकर मनु से कहा—॥७९॥

इनके द्वारा ही इन्द्रआप्नुक भाजन तुम्हारो प्राप्त हो जाऊंगा। इस इन्द्र के वाक्य को सुनकर उन देश मे अन्तर्ध्यान होगये ॥८०॥

तिरोभूतेषु तेष्विन्द्रो धर्मपत्नीञ्च चेतनाम् ।
ग्रहेण मोचयित्वा तु तत सोऽनुससार ताम् ॥८१
तत इन्द्रविनाशाय यतमानान् यतीम्स्तु तान् ।
तत्रागतान् पुनर्दृष्ट्वा दुष्टानिन्द्र प्रहन्यत् ।
सुप्ताप देवदेवस्य वेद्या वै दक्षिणे तत ॥८२
तेषान्तु भक्ष्यमाणाना तत्र शालावृकै सह ।
शीर्षाणि न्यपतस्तानि खर्जूराण्यभवस्तत ॥८३
एव वरूत्रिण पुत्रा इन्द्रेण निहता पुरा ।
यजन्या देवयानी च शुक्रस्य दुहिताऽभवत् ॥८४
त्रिशिरा विश्वरूपस्तु त्वष्टु पुत्रोऽभवन्महान् ।
विश्वरूपानुजश्चापि विश्वकर्मा यम स्मृत ॥८५
भृगोस्तु भृगवो देवा जज्ञिरे द्वादशात्मजा ।
देव्या तान्सुपुवे सर्वान्काव्यश्चैवात्मजान्प्रभु ॥८६
भुवनो भावनश्चैव अन्यश्चान्यायतस्तथा ।
क्रतु श्रवाश्च मूर्द्धा च व्यजयो व्यश्व पश्च य ।
प्रसव श्चाप्यजश्चैव द्वादशोऽधिपति स्मृत ॥८७
इत्येते भृगवो देवा स्मृता द्वादश याज्ञिका ।
पौलोम्यजनयत्पुत्र ब्रह्मिष्ठ वशिन विभुम् ॥८८
व्याधित सोऽष्टमे मासि गर्भक्रूरेण कर्मणा ।
च्यवनाच्च्यवनासोऽथ चेतनस्तु प्रचेतस ।
प्राचेतसाच्च्यवनक्रोधादध्वान पुरुपादज ॥८९
जनयामास पुत्रौ द्वौ सुकन्यायाञ्च भार्गव ।
आत्मवान दधीचश्च तावुभौ साधुसमतौ ॥९०

उनके तिरोभूत हो जाने पर इन्द्र ने धर्म की पत्नी चेतना को ग्रह छुड़वाकर इसके पश्चात् वह उसका ही अनुसरण करने लगा था ॥८१॥ इसके

पश्चात् इन्द्र के विनाश करने के लिये यत्न करते हुए उन पतियो को वहाँ आये हुए वृद्धो को पुन देखकर इन्द्र उनका हनन कर देवे। फिर दक्षिण मे देवदेव की वेदी मे सो गया था ॥८२॥ शाला वृकों के साथ खाये हुए उनके वहाँ पर शीर्ष गिर गये थे जो कि फिर खजूर होगये थे ॥८३॥ इस प्रकार से पहिले वरूत्री के पुन इन्द्र के द्वारा मारे गये थे। यजनी मे देवयानी शुक्र की बेटी हुई थी ॥८४॥ त्वष्टा के त्रिशिरा और विश्वरूप महान् पुन उत्पन्न हुआ। विश्वरूप का अनुज भी विश्वकर्मायम कहा गया है ॥८५॥ भृगु के भृगव देव बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे। प्रभु काव्य ने उन समस्त पुत्रों को देवी मे उत्पन्न किया था ॥८६॥ भुवन–भावन–अन्त्य–आयायत–क्रतुश्रुवा–मूर्द्धा–व्यजय–व्यश्रुय प्रसव–अज और बारहवाँ अधिपति कहा गया है ॥८७॥ ये इतने बारह याज्ञिक भृगव देव कहे गये हैं। पौलोमी ने ब्रह्मिष्ठ–वशी–विभु पुत्र को उत्पन्न किया था ॥८८॥ गर्भ क्रूर कर्म से वह अष्टम मास मे व्याधि से युक्त हुआ था। च्यवन से च्यवनास और प्रचेता से चेतन–प्राचेतस च्यवन क्रोध से पुरुष से अज ने अध्वा को इस प्रकार भार्गव ने सुकन्या मे दो पुत्रो को उत्पन्न किया था जोकि आत्मवान और दधीच थे दोनो बहुत ही साधु सम्मत हुए थे ।८९ ६ ।

सारस्वत सरस्वत्या दधीचाच्चोपपद्यते।
रुची पत्नी महाभागा आत्मवानस्य नाहुषी ॥९१
तस्य ऊर्वोऽथ पिजज्ञ ऊरु भित्त्वा महायशा ।
और्व्वआसीदृचीकस्तु दीप्ताग्निसदृशप्रभ ॥९२
जमदग्निश्च चीकस्य सत्यवत्या व्यजायत।
भृगोश्च रुचिपर्याये रौद्रवष्णवयोस्तथा ॥९३
जमनाद्वष्णवस्याग्नेजमदग्निरजायत ।
रेणुका जमदग्नेस्तु शक्रतुल्यपराक्रमम्।
ब्रह्मक्षत्रमय राम सुषुवेऽमिततेजसम् ॥९४
औवस्यासीत्पुत्रशत जमदग्निपुरोगमम् ।
तेषा पुत्रसहस्राणि भार्गवाणा परस्परात्। ९५

ऋष्यन्तरेषु वै बाह्या बहवो भार्गवा स्मृता ।
वत्सो विदवोऽश्विषेणश्च पाण्ड पथ्य सशौनक ।
गोत्रेण सप्तमा ह्येते पक्षा ज्ञेयास्तु भार्गवा ॥९६
भृणुताङ्गिरसो वशसर्गे पुत्रस्य धीमत ।
यस्यान्ववाये सम्भूता भारद्वाजा सगौतमा ।
देवाश्चाङ्गिरसो मुख्यास्त्विषुमन्तो महौजस ॥९७

दधीच से सरस्वती मे सारस्वत पुत्र उत्पन्न होता है। आत्मवान की महान् भाग वाली नहुष की पुत्री रुचि पत्नी हुई थी ॥९१॥ महान् यश वाले ऋषि ने उसके ऊरुओं का भेदन करके ऊरुओं मे और्व ऋचीक दीप्त अग्नि की प्रभा के सदृश हुआ था ॥९२॥ ऋचीक के सत्यवती मे जमदग्नि उत्पन्न हुआ। उसी प्रकार से रौद्र वैष्णवो के रुचि पर्याय मे भृगु के हुए ॥९३॥ वैष्णव अग्नि के जमन से जमदग्नि उत्पन्न हुए। जमदग्नि से रेणुका ने इन्द्र के समान पराक्रम वाले ब्रह्म और क्षत्र से पूर्ण अमित तेज वाले राम (परशुराम) को उत्पन्न किया था ॥९४॥ और्वके जमदग्नि से पहिले होने वाले सौ पुत्र हुए वे उन भार्गवो के आपस मे एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥९५॥ ऋष्यन्तरो मे बहुत से बाह्य थे वे भार्गव कहे गये है। वत्स–विदव–अश्विषेण–पाण्ड–पथ्या–सशौनक गोत्र से ये भार्गव सप्तमा पक्ष जानने के योग्य होते है ॥९६॥ अब अग्नि के धीमान् पुत्र अङ्गिरस के वश का श्रवण करो जिनके वश मे सगौतम भारद्वाज उत्पन्न हुए थे। इषुमान् महान् ओज वाले अङ्गिरस देव मुख्य थे ॥९७॥

सुरूपा चैव मारीची कार्दमी च तथा स्वराट् ।
पथ्या च मानवी कन्या तिस्रो भार्या स्त्वथर्वण ।
इत्येताङ्गिरस पत्न्यस्तासु वक्ष्यामि सन्ततिम् ॥९८
अथर्वणस्तु दायादास्तासु जाता कुलोद्वहा ।
उत्पन्ना महता चैव तपसा भावितात्मनाम् ॥९९
बृहस्पति सुरूपाया गौतम सुषुवे स्वराट् ।
अवन्ध्य वामदेवञ्च उतथ्यमुशिजन्तथा ॥१००

धिष्णु पुत्रस्तु पथ्यायां सवर्त्तश्चैव मानस ।
विचित्तश्च तथायस्य शरद्वाश्चाप्युतथ्यज ॥१०१
अशिजो दीर्घतमा बृहदुत्थो वामदेवज ।
धिष्णो पुत्र सुधन्वान ऋषभश्च सुध वन ॥१ २
रथकारा स्मृता देवा ऋषयो ये परिश्रुता ।
बृहस्पतेभरद्वाजो विश्रुत सुमहायशा ॥१०३
अङ्गिरसस्तु सवर्त्तो देवानङ्गिरस शृणु ।
बृहस्पतेयर्वीयासो देवा ह्यङ्गिरस स्मृता ॥१०४
औरसाङ्गिरस पुत्रा सुरूपाया विजज्ञिरे ।
औदार्यायुदनुदक्षो दभ प्राणस्तथव च ।
हविष्मांश्च हविष्णुश्च ऋतु सत्यश्च ते दश ॥१०५
अयस्यस्तु उतथ्यश्च वामदेवस्तथोशिज ।
भारद्वाजा शाकृतिका गाग्यकाण्वरथीतरा ॥१०६
मुद्गला बिष्णुवृद्धाश्च हरिता वायवस्तथा ।
तथा भाक्षा भरद्वाजा आषभा किम्मयास्तथा ॥१०७
एते ह्यङ्गिरस पक्षा विज्ञया दश पञ्च च ।
ऋष्यन्तरेषु च बाह्या बहवोऽङ्गिरस स्मृता ॥१ ८

सुरूपा–मारीची–कादमी तथा स्वराट्–पथ्या–मानवी और कथ्या ये तीन अथर्वा की भार्या थी । ये इतनी अंगिरस की भार्या थीं उनमें जो सन्तति हुई उसको मैं अब बतलाता हूं ॥९८॥ अथर्वा के दायाद कुलोद्वह उनमे उत्पन्न हुए थे और भावित आत्मा वालो के महान् तप से उत्पन्न हुए थे ॥९९॥ सुरूपा मे बृहस्पति ने गौतम ने स्वराट प्रसूत किया । उसी प्रकार से अय ‍स्य–वामदेव उतथ्य और उशिज को उत्पन्न किया था ॥१ ॥ पथ्या मे धिष्णु पुत्र हुआ संवर्त्त मानस हुआ । निचित्त–तथा यस्य–शरद्वान्–उतथाज–अशिज–दीर्घतमा–बृहदुत्थ ये वामदेव से जन्म लेने वाले थे । धिष्णु के पुत्र सुधन्वान–ऋषभ और सुधन्वन थे ॥१ १॥१ २॥ ये देव रथकार कहे गये हैं जो कि ऋषि परिश्रुत थे । बृहस्पति से महान् यश वाला भरद्वाज विश्रुत हुआ था ॥१ ३॥ अङ्गिरस

से सम्वर्त्त हुआ अब अङ्गिरस देवों का श्रवण करो। बृहस्पति के जो छोटे देव हैं वे ही आगिरस कहे गये हैं ॥१०४॥ अङ्गिरा के और पुत्र सुम्पा नाम वाली मे उत्पन्न हुए थे। भौदार्यायु–दनु–दक्ष–दर्भ–प्राण–हविष्मान्–हविष्णु–क्रतु और सत्य ये दश थे ॥१०५॥ अयस्य–उतथ्य–वामदेव–उशिज–भारद्वाज–शाकृतिक–गाग्य–काव्य–रथीतर–मुद्गल–विष्णु वृद्धहरित–वायव–भाल–भरद्वाज–आर्षभ–किम्भय ये अगिरस वश और पाँच पक्ष जानने के योग्य होते है। ऋष्यन्तरो मे बहुत से बाह्य अगिरस कहे गये हैं ॥१०६-१०७-१०८॥

मारीच परिवक्ष्यामि वशमुत्तमपूरुषम् ।
यस्यान्ववाये सम्भूत जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥१०९
मरीचिरापश्चक्रमे ताभिध्यायन्प्रजेप्सया ।
पुत्र सर्वगुणोपेत प्रजावान् सुरुचिदिति ।
सपूज्यते प्रवस्तायां मनसा भाविता प्रभु ॥११०
आहूताश्च तत सर्वा आप समवसत्प्रभु ।
तासु प्रणिहितात्मानमेक सोऽजनयत्प्रभु ॥१११
पुत्रमप्रतिमन्नाम्नारिष्टनेमि प्रजापति ।
पुत्र मरीच सूर्याभ वर्षाविशो व्यजीजनत् ॥११२
अव्यायन् हि सता वाच पुनार्थी सलिले स्थित ।
सप्तवर्षसहस्राणि तत सोऽप्रतिमोऽभवत् ॥११३
कश्यप सवितुर्विद्वास्तेन स ब्रह्मण सम ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ब्राह्मणाशेन जायते ॥११४
कन्यानिमित्तमित्युक्ते दक्षेण कुपिता प्रजा ।
अपिवत्स तदा कश्य कश्य मद्यमिहोच्यते ॥११५
हास्चैकसा हि विज्ञेया ब्रह्मणा कश्य उच्यते ।
कश्य मद्य स्मृत विप्रै कश्यपानात्तु कश्यप ॥११६

अब मारीच उत्तम पुरुषो वाले वश को बतलाता हूँ जिसके वश मे य समस्त स्थावर और जङ्गम जगत् उत्पन्न हुआ था ॥१०९॥ मरीचि ने जल उत्पन्न किये और प्रजा की इच्छा से उनके द्वारा ध्यान करते हुए समस्त गुणो

यदास्य मनसा सृष्टा न व्यवर्द्धन्त ता प्रजा ।
अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता ॥१२७
मथुनेन च भावेन सिसक्षविविधा प्रजा ।
असिक्नी चावहत् पत्नी वीरणस्य प्रजापते ॥१२८
सुता सुमहता युक्ता तपसा लोकधारिणीम् ।
यया धृतमिद सव जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥१२९
अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ प्राचेतस प्रति ।
दक्षस्योद्वहतो भार्यामसिक्नी वीरिणी पराम् ॥१३

फिर श्रीमान् ने अपने आपको मनुष्य–उरग–राक्षस देव–असुर–गन्धव–दिव्य सहननप्रजा–ईश्वर रूप–धन और तेज से अपने ही तुल्य विभाजित किया था ॥१२४॥ उसी प्रकार से परम मुदित होते हुए अन्य मतिमान् और ध्रुव मानस ही प्राणियो को एव अनेक प्रकार की प्रजाओ का सृजन किया था ।१२५। ऋषियो को–देवो को–गन्धर्वोंको–मनुष्य–उरग और राक्षसो को यक्ष–भूत और पिशाचो को पक्षी–पशु और मृगो को जिस समय इसने मनसे सृजन किया था तो वह प्रजा की वृद्धि नही हुई थी । क्योकि वह प्रजा श्रीमान् महादेव भगवान् के द्वारा अपध्यात थी ॥१२७॥ फिर मैथुन के भाव से अनेक प्रकार की प्रजा का सृजन किया था । प्रजापति वीरण की असिक्नी पत्नी को वहन किया था ॥१२८॥ प्रजापति वीरण की सुता सुमहान् तपसे युक्त थी और लोकोको धारण करने वाली थी जिसने इस सम्पर्ण स्थावर और जङ्गम जगत् को धारण किया था ॥१२९॥ परम वीरिणी असिक्नी भार्या का उद्वहन करने वाले दक्ष प्राचेतस के प्रगति ये दो श्लोक हैं जिनको यहाँ पर भी उदाहृत किया जाता है ॥१३ ॥

कूपाना नियुत दक्ष सपिणा साभिमानिनाम् ।
नदीगिरिषु स–जस्ता पृष्ठतोऽनुययौ प्रभु ॥१३१
त दृष्ट्वा ऋषिभि प्रोक्त प्रतिष्ठास्यति व प्रजा ।
प्रथमात्र द्वितीया तु दक्षस्येह प्रजापते ॥१३२
तथागच्छद्यथाकाल कूपाना नियुते तु स ।
असिक्नी वरिणी यम वदा प्राचेतसोऽवहत् ॥१३३

अथ पुत्रसहस्र स वै रिण्याममितौजसा ।
असिक्न्या जनयामास दक्ष प्राचेतस प्रभु ॥१३४
तास्तु दृष्ट्वा महातेजा स विवर्द्धयिषून् प्रजा ।
देवर्षि प्रियसवादो नारदो ब्रह्मरा सुत ।
नाशाय वचन तेषा शापायैवात्मनोऽब्रवीत् ॥१३५
य स वै प्रोच्यते विप्र कश्यपस्येति कृत्रिम ।
दक्षशापभयाद्भीतो ब्रह्मर्षिस्तेन कर्मणा ॥१३६
य कश्यपसुतस्याथ परमेष्ठी व्यजायत ।
मानस कश्यपस्येह दक्षशापभयात् पुन १३७
तस्मात् स कश्यपस्याथ द्वितीय मानसोऽभवत् ।
सहि पूर्वसमुत्पन्नो नारद परमेष्ठिन ॥१३८
येन दक्षस्य पुत्रास्ते हर्यश्वा इति विश्रुता ।
निन्दार्थं नाशिता सर्वे विनष्टाश्च न सशय १३९
तस्योद्यतस्तदा दक्ष क्रुद्धो नाशाय वो प्रभु ।
ब्रह्मर्षीन् वै पुरस्कृत्य याचित परमेष्ठिना ॥१४०

साभिमानी सर्पी कूपो वा एक नियुत नदी और पर्वतो मे सर्जन करते हुए प्रभु दक्षने उनके पीछे अनुगमन किया था ॥१३१॥ उसको देखकर ऋषियो ने कहा प्रजाओ को प्रतिष्ठित करेगा । यहाँ प्रजापति दक्षकी प्रथमा है, द्वितीया तो यथाकाल उसी प्रकार से कूपो के नियुत मे चली गई उस प्राचेतस दक्ष ने जहाँ पर वैरिणी असिक्नी का उद्वहन किया था ॥१३२॥१३३॥ इसके अनन्तर उस प्राचेतस दक्ष ने वैरिणी असिक्नी मे अपरिमित ओज से एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये थे ॥१३४॥ महान् तेजवाले उसने प्रजाओ के बढाने की इच्छा वाले उनको देखकर ब्रह्मा के पुत्र देवर्षि प्रिय सम्वाद वाले नारद ने उनके नाश के लिये ही वचन बोला ॥१३५॥ जो वह कश्यप का कृत्रिम विप्र है यह कहा जाता है । ब्रह्मर्षि उस कर्म से दक्ष के शाप के भय से डरगया ॥१३६॥ इसके अनन्तर जो कश्यप सुतका परमेष्ठी उत्पन्न हुआ था दक्ष के शाप के भय से फिर यहाँ कश्यप का मानस पुत्र हुआ ॥१३७॥ इसमे वह कश्यप का द्वितीय मानस हुआ

उन लोगो ने नारद का यह वचन सुना और उसे सुनकर वे सब दिशाओ मे चले गये। वायु को समनुप्राप्त कर वे पराभव को प्राप्त हुए ।१४६। वे वायु से मिश्रित होते हुए आज तक भी भ्रमण करते हुए ही है और नही लौट पा रहे है। इस प्रकार से वायु के पथ को प्राप्त होकर वे महर्षिगण भ्रमण किया करते है ॥१५ ॥ अपने पुत्रो के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस दक्ष ने फिर वैरिणी पत्नी मे ही उस प्रभु ने एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये थे ॥१५१॥ प्रजा के विवद्धन करने की इच्छा वाले वे शवलाश्व फिर नारद के द्वारा वहाँ पर वह पूव म कहा हुआ वचन सुनाये गये थे ॥१५२॥ महान् ओज वाले वे सब कुमारो ने उस वचन को सुनकर आपस मे एक दूसरे से बोले महर्षि ने ठीक ही कहा है। भाइयो की पदवी अर्थात् मार्ग को जानना चाहिए, इसमे कुछ भी सशय नही है ॥१५३॥ पृथ्वी का प्रमाण जानकर प्रजा का सुख पूवक सृजन करेंगे। वे सब भी उसी माग से सम्पूर्ण दिशाओ की ओर चले गये थे। समुद्रो मे गई हुई नदियो की भाँति वे भी अभी तक नही लौट रहे है ॥१५४॥ तभी से लेकर भाई भाई के अन्वेषण करने मे रत होता हुआ प्रयाण करता था और वहाँ नष्ट हो जाता है क्योकि उस प्रकार से कार्य की जानकारी नही रहती थी ॥१५५॥

> नष्टेषु शवलाश्वेषु दक्ष क्रद्धोऽभवद्विभु ।
> नारद नाशमेहीति गर्भवास वसेति च ॥१५६
> तथा तेष्वपि नष्टेष महात्मसु पुरा किल ।
> पष्टिकन्याऽसृजद्दक्षो वैरिण्यामिति विश्रुता ॥१५७
> तास्तदा प्रतिजग्राह पत्न्यर्थे कश्यप प्रभुः ।
> धम सोमस्तु भगवास्तथैवान्ये महषय ॥१५८
> इमा विसृष्टि दक्षस्य कृत्स्ना यो वेद तत्त्वत ।
> आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्य प्रजावाश्च भवत्युत ॥१५९

सबलाश्व पुत्रो के नष्ट होजाने पर विभु दक्ष बहुत ही अधिक क्रोधित हुआ था और नारद नाश को प्राप्त होजा तथा गभ के आवास अर्थात् गर्भ मे निवास प्राप्त करे ऐसा शाप दे दिया था ॥१५६॥ पहिले समय मे उस प्रकार

में उन महान् आत्मा वालों के नष्ट हो जाने पर दक्ष ने वैरिणी पत्नी में ही प्रसिद्ध साठ कन्याओं का सृजन किया था ॥१२७॥ उन समस्त कन्याओं ने पत्नी के रूप में प्राप्त होने के लिए प्रभु कश्यप का स्वीकार किया था । भगवान् यम-सोम और इसी प्रकार से अन्य महर्षिगण थे ॥१२८॥ जो कोई पुरुष श्रद्धा रखता हुआ इस विशेष रूप वाली सृष्टि को सम्पूर्ण रूप से तत्त्वपूर्वक जानता है वह परमायु वाला—कीर्तिवाला और प्रजावाला नर होता है ॥१२९॥

प्रकरण ४८—ऋषि वंशानु कीर्तन

एवं प्रजासु सृष्टासु कश्यपेन महात्मना ।
प्रतिष्ठितासु सर्वासु स्थावरासु चरासु च ॥१
अभिषिच्याधिपत्येषु तेषां मुख्यं प्रजापतिः ।
ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥२
द्विजातीनां वीरुधाञ्च नक्षत्राणां ग्रहैः सह ।
यज्ञानां तपसाञ्चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥३
बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावङ्गिरसां पतिम् ।
भृगूणामधिपञ्चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥४
आदित्यानां पुनर्विष्णुं वसूनामथ पावकम् ।
प्रजापतीनां दक्षञ्च मरुतामथ वासवम् ॥५
दैत्यानामथ राजानं प्रह्लादं दितिनन्दनम् ।
नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम् ॥६
विप्रचित्तिञ्च राजानं दानवानामथादिशत् ।
अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं पतिम् ।
यक्षाणां राक्षसानाञ्च पार्थिवानां धनस्य च ॥७

श्री सूतजी ने कहा—महान् आत्मा वाले कश्यप के द्वारा इस प्रकार से प्रजाओं का सृजन करने पर और समस्त स्थावर तथा जङ्गम प्रजाओं के प्रतिष्ठित किये जाने पर उनके आधिपत्य के स्थान पर उनमें से मुख्य को प्रजापति

का अभिषेक करके इसके पश्चात् क्रम से राज्यों का व्यादेश करने का उपक्रम किया था ।।१२।। द्विजातियों के वीरुधों के ग्रहों और नक्षत्रों के साथ यज्ञों का और तपों का राज्य में सोम को अभिषिक्त किया था अर्थात् उक्त सबका अधिपति चन्द्र को बनाया था ।।३।। अङ्गिरस विश्वेशों का पति बृहस्पति और भृगुओं का अधिप काव्य को राज्य में अभिषिक्त किया था ।।४।। आदित्यों का विष्णु को–वसुओं के पावक को–प्रजापतियों का दक्ष का और मरुतों का इन्द्र को राज्य में अधिप अभिषिक्त किया था ।।५।। इसके पश्चात् दैत्यों का राजा दितिनन्दन प्रह्लाद को–साध्यों का अधिप नारायण को–रुद्रों का अधिप वृषभ ध्वज को बनाया था ।।६।। दानवों का अधिप राजा विप्रचित्ति को आदिष्ट किया था—जलों का स्वामी वरुण को और सब राजाओं के राज्य में वैश्रवण (कुबेर) को पति बनाया था यक्षों और राक्षसों का—पार्थिवों का और धन का भी अधिप भी कुबेर को ही अभिषिक्त किया था ।।७।।

वैवस्वतं पितृणाञ्च यमं राज्येऽभ्यषेचयत् ।
सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम् ।।८
शैलानां हिमवन्तञ्च नदीनामथ सागरम् ।
गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं तदा ।।९
उच्चैःश्रवसमश्वानां राजानञ्चाभ्यषेचयत् ।
मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषञ्च चतुष्पदाम् ।।१०
पक्षिणामथ सर्वेषां गरुडं पततां वरम् ।
गन्धानां मारुतञ्चैव भूतानामशरीरिणाम् ।।११
शब्दाकाशबलानाञ्च वायुं बलवतां वरम् ।
सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं नागानामथ वासुकिम् ।।१२
सरीसृपाणां सर्पाणां नागानाञ्च व तक्षकम् ।
सागराणां नदीनाञ्च मेघानां वर्षितस्य च ।
आदित्यानामन्यतमं पर्जन्यमभिषिक्तवान् ।।१३
सर्वाप्सरोगणानाञ्च कामदेवं तथैव च ।
ऋतूनामथ मासानामार्त्तवानां तथैव च ।।१४

पक्षाणाञ्च विपक्षाणाँ मुहूर्त्तानाञ्च पर्वणाम् ।
कलाकाष्ठाप्रमाणानाँ गतेे रयनयोस्तथा ।
गणितस्याथ योगस्थ चक्रे संवत्सरं प्रभुम् ॥१५

पितृगण का स्वामी वैवस्वत यम को राज्य में अधिप अभिषिक्त किया था। समस्त भूतगणों और पिशाचों का स्वामी शूल पाणि गिरिश को बनाया ॥८॥ शैलों का स्वामी हिमाचल को—नदियों का पति सागर को—गन्धर्वों का अधिपति उस समय में चित्ररथ को बनाया था ॥६॥ अश्वों का राजा उच्चै स्वा को राजा बनाकर अभिषिक्त किया था। समस्त मृग अर्थात् पशुओं का राजा शार्दूल को और चतुष्पदों का अधिप गोवृष को बनाया था ॥१०॥ समस्त पक्षियों का स्वामी पक्षियों में परमश्रेष्ठ गरुड को बनाया। गन्धों के स्वामी को और बिना शरीर वाले प्राणी शब्द—आकाश और बल इन सबका स्वामी बलवानों में श्रेष्ठ वायु को तथा सम्पूर्ण दंष्ट्राधारी जीवों का अधिप शेष को और नागों का स्वामी वासुकि को अभिषिक्त किया था ॥११-१२॥ सरीसृप—नाग और सर्पों का राजा तक्षक को बनाया था। सागरों का—नदियों का—मेघों का—वर्षित का आदित्यों का श्रम्यतम पर्जन्य को स्वामी अभिषिक्त किया था ॥१३॥ समस्त अप्सराओं के समुदाय का राजा कामदेव को अभिषिक्त किया था। ऋतुओं का—मासों का—आर्त्तवों का—पक्षों का—विपक्षों का—मुहूर्त्तों का—पर्वों का—कला एवं काष्ठा प्रमाणों का—गति का तथा दोनों अयनों का—गणित का और योग का स्वामी सम्वत्सर को बनाया था ॥१३-१४-१५॥

प्रजापतिर्वै रजसं पूर्वस्यान्दिशि विश्रुतम् ।
पुत्र नाम्ना सुधामानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१६
पश्चिमायां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् ।
केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१७
मनुष्याणामधिपतिं चक्रे चैव सुतं मनुम् ।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते ॥१८

स्वायम्भुवेऽन्तरेपूव ब्रह्मणा तऽभिषेचिता ।
नृपा ह्य तेऽभिषिच्यन्त मनवो य भवन्ति व ॥१६
मन्वन्तरेष्वतीतेषु गता ह्य तेषु पार्थिवा ।
एवमन्येऽभिषिच्यन्ते प्राप्त म वन्तरे पुन ।
अतीतानागता सर्वे स्मृता म वन्तरेश्वरा ॥२०
राजसूयेऽभिषिक्तश्च पृथुरेभिनरोत्तमैः ।
वेददृष्ट न विधिना कृतो राजा प्रतापवान् ॥२१
एतानुत्पाद्य पुत्रास्तु प्रजासन्तानकारणात् ।

रजका प्रजापति पूव दिशा मे बहुत ही प्रसिद्ध सुधामा नाम वाले पुत्रको उसने राजा अभिषिक्त किया था । ।१६।। पश्चिम दिशा मे रजस के पुत्र अच्युत को महान् आत्मा वाले केतुमान् को उसने राजा अभिषिक्त किया था ॥१७॥ और समस्त मनुष्यो का स्वामी मनु सुत को बनाया । उसके द्वारा यह समस्त सात द्वीपो वाली भूमि और पत्तनो(नगर)के सहित प्रदेशके अनुसार आजतक भी धम के साथ परिपालित की जाती है ॥१८॥ स्वायम्भुव म तर मे पहिले ये सब ब्रह्मा ने अभिषिक्त किये थे । जो मनु होते हैं वे नृप अभिषिञ्चित किये जाते हैं ॥१६॥ इन म वन्तरो के अतीत होजाने पर पार्थिव चले गये थे । फिर अन्य मन्वन्तर प्राप्त होने पर अ य इसी प्रकार से अभिषिक्त किये जाते हैं । अतीत तथा अनागत समस्त मन्वन्तरेश्वर कहे गये हैं ॥२ ॥ इन श्रष्ठ मानवो के द्वारा राजसूय म पृथु अभिषिक्त किया गया था जोकि वेदोक्त विधि से प्रतापवान् राजा बनाया गया है ॥२१॥

पुनरेव महाभाग प्रजाना पतिरीश्वर ॥२२
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार परम तप ।
पुत्रौ गोत्रकरौ मह्य भवेतामित्यचिन्तयत् ॥२३
तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मन ।
ब्रह्मणोऽशौ सुतौ पश्चात् प्रादुर्भूतौ महौजसौ ॥२४
वत्सारश्चासितश्च व तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ।
वत्सारान्निध्रु वो जज्ञ रम्यश्च स महायशा ॥२५

रैभ्यस्य रैभ्या विज्ञेया निध्रुवस्य निबोधत ।
च्यवनस्य सुकन्यायां सुमेधा. समपद्यत ॥२६
निध्रुवस्य तु या पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम् ।
असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठ समपद्यत ॥२७
शाण्डिल्यानां वच श्रुत्वा देवल. सुमहायशा ।
निध्रुवा शाण्डिल्या रैभ्यास्त्रय पश्चात्तु कश्यपा ॥२८
वरप्रभृतयो देवा देवलस्य प्रजास्त्विमा ॥२९

प्रजा की वृद्धि के कारण से इन पुत्रों को उत्पन्न कराकर पुन प्रजाओं के पति महान् भाग वाले—ईश्वर कश्यप कोई गोत्र की कामना रखते थे, परम तपस्या को आरम्भ किया था और मनमें यह सकल्प सोचा था कि दो पुत्र मेरे गोत्र के चलाने वाले उत्पन्न होजावे ॥२२॥२३॥ प्रकृष्ट रूप से ध्यान करने वाले महात्मा कश्यप के पीछे ब्रह्मा के अश स्वरूप दो पुत्र महान् ओज वाले प्रादुर्भूत हुए ॥२४॥ वत्सार और असित य दोनों ही ब्रह्मवादी थे। वत्सार से निध्रुव उत्पन्न हुआ और महान् यश वाला वह रैभ्य हुआ ॥२५॥ रैभ्य के जो हुए वे रैभ्य कहलाये और निध्रुव की अब जानकारी करो। च्यवन की सुकन्या मे सुमेधा समुत्पन्न हुए ॥२६॥ निध्रुव की जो पत्नी थी वह कुण्डपायियों की माता थी। असित की एकपर्णा मे ब्रह्मिष्ठ उत्पन्न हुआ ॥२७॥ शाण्डिल्यो के वचन को सुनकर सुन्दर एव महान् यशवाले देवल ने निध्रुव—शाण्डिल्य और रैभ्य ये तीन और पीछे कश्यप और वर प्रभृति देव ये सब देवल की प्रजा थी ॥२८॥२९॥

मानसस्य चरिष्यन्तस्तस्य पुत्रो दम किल ।
मानसस्तस्य दायादस्तृणबिन्दुरिति श्रुत ॥३०
त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये सम्बभूव ह ।
तस्य कन्या त्विडविडा रूपेणाप्रतिमाभवत् ।
पुलस्त्याय स राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत् ॥३१
ऋषिरिडविडायान्तु विश्रवाः समपद्यत ।
तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्द्धना ॥३२

बृहस्पतेबृ हत्कीर्तिर्देवाचार्यस्य कीर्तित ।
कन्या तस्योपयेमे स नाम्ना व देववर्णिनीम् ।।३३
पुष्पोत्कटाश्च वाकाश्च सुते माल्यवत स्थितौ ।
कैकसी मालिनः कन्या तासान्तु शृणुत प्रजा ।।३४
ज्येष्ठ वैश्रवण तस्य सुषुवे देववर्णिनी ।
दिव्येन विधिना युक्तमार्षेणैव श्रु तेन च ।
राक्षसेन च रूपेण आसुरेण बलेन च ।।३५
त्रिपाद सुमहाकाय स्थूलशीर्ष महातनुम् ।
अष्टदष्ट्र हरिच्छ्मश्रु शङ्कुकर्ण विलोहितम् ।।३६
ह्रस्वबाहु प्रबाहुश्च पिङ्गल सुविभीषणम् ।
वक्तज्ञानसम्पन्न सम्बुद्ध ज्ञानसम्पदा ।।३७
एवविध सुत दृष्ट्वा विश्वरूपधर तथा ।
पिता दृष्ट्वाब्रवीत्तत्र कुबेरोऽयमिति स्वयम् ।।३८

चरिष्य माएा मानस उसके दम पुत्र हुआ । उसका दामाद मानस था जोकि तृणबिन्दु इस नामसे विश्रुत हुआ था ।।३०।। तृतीय त्रेता युग के मुख म राजा हुआ था । उसकी इडविडा थी जोकि रूप मे अप्रतिमा थी । उस राजर्षि ने उस परम सुन्दरी कन्या को पुलस्त्य के लिये देदी थी ।।३१।। ऋषि पुलस्त्य ने इडविडा मे विश्रवा को जन्म दिया । पौलस्त्य कुल के बढाने वाली उसकी चार पत्नियाँ थी ।।३२।। देवो के आचार्य बृहस्पति का बृहत्कीर्ति कहा गया है । नाम से देववर्णिनी उसकी कन्या के साथ उसने विवाह किया था ।।३३।। माल्यवान् की पुष्पोत्कटा और वाका दो सुताऐ थी—माली की कैकसी कन्या थी अब उनकी प्रजाओ का श्रवण करो ।।३४।। देव वर्णिनी ने उसके सबसे बडे वैश्रवण को उत्पन्न किया जोकि दिव्य विधि और आर्षश्रु त से पूर्णतया सम्पन्न था । साथ ही उसमे राक्षस का रूप था और असुर बल भी था ।।३५।। तीन पैरो वाले—बहुत बडे शरीर वाले—स्थूल शीष स युक्त—महान् तनुमे सम्पन्न—आठ दाढो वाले—हरी रग की श्मश्रु से युक्त—शङ्कुकर्ण—विलोहित—छोटी भुजाओ वाले—प्रबाहु—पिङ्गल—सुविभीषण—वक्त ज्ञान स युक्त तथा ज्ञान की सम्पत्ति मे

क्रूर था रावण करने से ही वह रावण कहलाया है ॥४२॥४३॥४४॥ तेरह वह राक्षस हैं ॥४५॥

ता पञ्चकोट्यो वर्षाणामाख्याता सङ्ख्यया द्विज ।
नियुतान्येकषष्टिश्च सङ्ख्याविद्भिरुदाहृता ॥४६
षष्टिशतसहस्राणि वर्षाणा तु स रावण ।
देवताना ऋषीणाञ्च घोर कृत्वा प्रजागरम् ॥४७
त्रेतायुगे चतुर्विशे रावणस्तपस क्षयात् ।
राम दाशरथि प्राप्य सगण क्षयमीयिवान् ॥४८
महादय प्रहस्तश्च महापाशुम्बरस्तथा ।
पुष्पोत्कटाया पुत्रास्ते कन्या कुम्भीनसी तथा ॥४९
त्रिशिरा दूषणश्चव विद्य ुजिह्वश्च राक्षस ।
कन्या ह्यसलिका चव वाकाया प्रसवा स्मृता ॥५०
इत्येते क्रूरकर्माण पौलस्त्या राक्षसा दश ।
दारुणाभिजना सर्वे देवरपि दुरासदा ॥५१
सर्वे लब्धवराश्च व पुत्रपौत्रसमन्विता ।
यक्षाणाञ्चव सर्वेषा पौलस्त्या ये च राक्षसा ॥५२

वे वर्षों की पाँच करोड द्विजो के द्वारा सख्या से कही गई हैं। सख्या के ज्ञाताओ के द्वारा इकसठ नियुत कही गई है ॥४६॥ साठसौ हजार वर्ष तक उस रावण ने देवताओ और ऋषियो का घोर प्रजागर करके चौबीसवें त्रेता युग म तपस्या का क्षय होने से दशरथ के पुत्र श्रीराम को प्राप्त किया और वह रावण गणो के साथ क्षय को प्राप्त हुआ था ॥४७-४८॥ पुष्पोत्कटा के महोदय प्रहस्त–महापाशुलर पुत्र थे तथा कुम्भीनसी नाम वाली एक कन्या हुई थी ।४९। त्रिशिरा–दूषण–विद्युज्जिह्व राक्षस तथा वाका के असलिका नाम वाली कन्या ये सब प्रसव कहे गये हैं ॥५ ॥ ये दश पौलस्त्य राक्षस क्रूर कर्म करने वाले थे। ये सब दारुण अभिजन वाले और देवो के द्वारा भी दुरासद थे ॥५१॥ ये सभी वरदान प्राप्त करने वाले और पुत्रो तथा पौत्रो से युक्त थे अर्थात् पुत्र पौत्र वाले थे। और समस्त यक्षो के ये पौलस्त्य राक्षस थे ॥५२॥

आगस्त्यवैश्वामित्राणा क्रूराणा ब्रह्मरक्षसाम् ।
वेदाध्ययनशीलाना तपोव्रतनिषेविणाम् ॥५३
तेषामैडविडो राजा पौलस्त्य सभ्यपिङ्गल ।
इतरे वै यज्ञमुखास्तेन रक्षोगण.स्त्रय ॥५४
यातु धाना ब्रह्मधाना वार्त्ताश्चैव दिवाचरा ।
निशाचरगणास्तेषा चत्वार कविभि स्मृता ॥५५
पौलस्त्या नैऋ॑ताश्चैव आगस्त्या कौशिकास्तथा ।
इत्येता. सप्त तेषा वै जातयो राक्षसा स्मृता ॥५६
तेषा रूप प्रवक्ष्यामि स्वभावेन व्यवस्थितम् ।
वृत्ताक्षा पिङ्गलाश्चैव महाकाया महोदरा ॥५७
अष्टदंष्ट्रा शङ्कुकर्णा ऊर्द्ध रोमाण एव च ।
आकर्णादारितास्याश्च मुञ्जधूमोर्द्ध मूर्द्ध जा ॥५८
स्थूलशीर्षा सिताभाश्च ह्रस्वकाश्च प्रवाहुका ।
ताम्रास्या लम्बजिह्वौष्ठा लम्बभ्रू स्थूलनासिका ॥५९
नीलाङ्गा लोहितग्रीवा गम्भीराक्षा विभीषणा ।
महाघोरस्वराश्चैव विकटा बद्धपिण्डिका ॥६०
स्थूलाश्च तुङ्गनासाश्च शिलासहनना दृढा ।
दारुणाभिजना क्रूरा प्रायश क्लिष्टकर्मिणा ॥६१
सकुण्डलाङ्गदापीडा मुकुटोष्णीषधारिण ।
विचित्र वस्त्राभरणाश्चित्रस्रगनुलेपना ॥६२
अन्नादा पिशितादाश्च पुरुषादाश्च ते स्मृता ।
इत्येतद्रूपसाधर्म्य राक्षसाना बुधै स्मृतम् ।
न समस्तबल बुद्ध यतो मायाकृत हि तत् ॥६३

आगस्त्य-वैश्वामित्र-क्रूर-ब्रह्म राक्षस-वेदो के अध्ययन करने के स्वभाव वाले और तपो व्रत के निषेवण करने वालो के उन सबका सभ्य पिङ्गल पौलस्त्य ऐडविड राजा था। दूसरे यज्ञ मुख थे इससे तीन राक्षसो के गण थे ॥५३-५४॥ यातुधान-ब्रह्मधान-वार्त्ता और दिवाचर ये उन निशाचरो के चार

यवीयसी सुता तस्यामबला ब्रह्मवादिनी ।
अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं पौराणिका पुरा ॥७६
अत्रेः पुत्रं महात्मानं शान्तात्मानमकल्मषम् ।
दत्तात्रेयं तनुं विष्णोः पुराणज्ञा प्रचक्षते ॥७७

स्वर्भानु के द्वारा सूर्य के हत होने पर दिव से मही पर पतमान हुआ था। इस लोक के उस समय घन्धकार से एकदम अभिभूत होने पर जिसने प्रभा को प्रवर्तित किया था ॥७१॥ यहाँ गिरता हुआ वह स्विाकर उस समय तेरा कल्याण हो—इस प्रकार से कहा गया था। उस ब्रह्मर्षि के वचन से दिव से मही पर नहीं गिरा ॥७२॥ जिस महान् तपस्वी ने प्रतिश्रेष्ठ गोत्रों को किया था और जो अत्रिषन यज्ञों में देवों के द्वारा प्रवर्तित किया गया था। उसने महान् तप से भावित प्रभा वाले उनमें ही अचानक अपने समान दश पुत्रों को उत्पन्न किया था ॥७३ ७४॥ स्वस्त्यात्रेय इस नाम से विख्यात वेद के पारगामी ऋषिगण थे उनमें विख्यात यश वाले महान् ओज से युक्त परम ब्रह्मिष्ठ दो पुत्र थे ॥७५॥ उनमें दत्तात्रेय सबसे बड़ा था और उसका छोटा भाई दुर्वासा था। उसकी छोटी अबला और ब्रह्मवाद वाली पुत्री थी। यहाँ पर भी पहिले पौराणिक लोग इस श्लोक को कहा करते हैं ॥७६॥ महान् आत्मा वाले कल्मष रहित और शान्तात्मा अत्रि के पुत्र को जिसका नाम दत्तात्रेय था पुराणों के ज्ञाता लोग उन्हें विष्णु का तनु कहा करते हैं ॥७७॥

तस्य गोत्रान्वये जाताश्चत्वारः प्रथिता भुवि ।
श्यामाश्च मुद्गलाश्चैव बलारकर्णविष्ठिरा ।
एते नृणान्तु चत्वारः स्मृताः पक्षा महौजसाम् ॥७८
कश्यपान्नारदश्चैव पर्वतोऽरुन्धती तथा ।
जज्ञिरे च त्वरुन्धत्यास्ताश्निबोधत सत्तमा ॥७९
नारदस्तु वसिष्ठायारुन्धतीं प्रत्यपादयत् ।
ऊर्द्ध्व रेता महातेजा वृक्षशापात नारदः ॥८
पुरा देवासुरे तस्मिन्संग्रामे तारकामये ।

अनावृष्ट्या हते लोके व्यग्रे शक्रे सुरैः सह ।
वसिष्ठस्तपसा धीमान्धारयामास वै प्रजा ॥८१
अन्नौषध मूलफलमोषधीश्च प्रवर्त्तयन् ।
तास्तेन जीवयामास कारुण्यादौषधेन तु ॥८२
अरुन्धत्या वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयद् द्विजा ।
सागरक्षनयच्छक्ते रदृश्यन्ती पराशरम् ॥८३
काली पराशराज्जज्ञे कृष्णद्वैपायन प्रभुम् ।
द्वैपायनादरण्या वै शुको जज्ञे गुणान्वित ॥८४

उसके गोत्रान्वय मे भूमण्डल मे प्रसिद्ध श्याम-मुद्गल-बलारक और गविष्ठिर ये चार उत्पन्न हुए। ये चार मनुष्यो के, जिनके कि महान् ओज था, पक्ष कहे गये है ॥७८॥ कश्यप से नारद पर्वत और अरुन्धती उत्पन्न हुए। हे श्रेष्ठगण! अब आगे जो अरुन्धती के हुए उनको समझ लो ॥७९॥ नारद ने वसिष्ठ से अरुन्धती को प्रतिपादित किया था। ऊर्द्ध रेतस महान् तेजवाले वृक्ष शाप से बारह हुए ॥८०॥ पहिले समय मे तारकामय देव और असुरो के सग्राम मे, वृष्टि के न होने से लोक के हत होजाने पर और देवो के साथ इन्द्रदेव के व्यग्र होजाने पर वसिष्ठ मुनि ने जोकि परम बुद्धिमान् थे अपने तप के बल से प्रजा को धारण किया था ॥८१॥ वहाँ पर उसने मूल और फल तथा ओषधियो को प्रवृत्त करते हुए करुणा से और ओषध से उसने उन प्रजाओ को जीवित किया था ॥८२॥ हे द्विजगण! वसिष्ठ ने अरुन्धती मे शक्ति को उत्पन्न किया था। सागर को जन्म देती हुई शक्ति से पराशर को न देखती हुई काली ने पराशर से प्रभु कृष्ण द्वैपायन को उत्पन्न किया। द्वैपायन से अरण्या मे गुण-गण समन्वित शुक उत्पन्न हुए ॥८३॥८४॥

उत्पद्यन्ते च पीवर्यां षडिमे शुकसूनव ।
भूरिश्रवा प्रभु शम्भु कृष्णो गौरश्च पञ्चम ॥८५
कन्या कीर्तिमती चैव योगमाता दृढव्रता ।
जननी ब्रह्मदत्तस्य पत्नी सात्वगुहस्य च ॥८६

श्वेता कृष्णाश्च गौराश्च श्यामा धूम्रा समूलिका ।
ऊष्मपा दारकाश्च व नीलाश्च व पराशरा ।
पराशराणामष्टौ ते पक्षा प्रोक्ता महात्मनाम् ।।८७
अत ऊर्द्ध निबोधध्वमिन्द्रप्रतिमसम्भवम् ।
वसिष्ठस्य कपिञ्च या घृताच्या समपद्यत ।
कुशीतिय समाख्यात इन्द्रप्रतिम उच्यते ।।८८
पृथो सुताया सम्भूत पुत्रस्तस्या भवद्वसु ।
उपमन्यु सुतस्तस्य यस्येमे उपमन्यव ।।८९
मित्रावरुणयोश्च व कुण्डिनो ये परिश्रुता ।
एकार्येयास्तथवा ये वसिष्ठा नाम विश्रुता ।
एते पक्षा वसिष्ठाना स्मृता एकादशव तु ।।९०
इत्येते ब्रह्मण पुत्रा मानसा ह्यष्ट विश्रुता ।
भ्रातर सुमहाभागा तेषा वशा प्रतिष्ठिता ।।९१
त्रील्लोकान्धारयन्तीमा देवर्षिगणसकुलान् ।
तेषा पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रश ।
य र्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गभस्तिभि ।।९२

ये छ शुक्र के पीवरी म उत्पन्न होते है—भूरिश्रवा-प्रभु-शम्भु-कृष्ण गौर पञ्चम गौर और कीर्तिमती कन्या जो योगमाता हढ व्रत वाली ब्रह्मदत्त की माता थी और सात्व गुह की पत्नी थी ।।८५।।८६।। श्वेत-कृष्ण-गौर-श्याम-धूम्र-समूलिक-ऊष्मप-द्वारक-नील और पराशर-महान् आत्मा वाले पराशरो के य आठ पक्ष कहे गये है ।।८७।। इसके आगे इन्द्र प्रतिम सम्भव को जान लो । वसिष्ठ की कपिञ्जली घृताची मे कुशीतिय कहा गया उत्पन्न हुआ जोकि इन्द्र प्रतिम कहा जाता है ।। ८८।। पृथु की सुता से उसका वसु पुत्र हुआ। उसका पुत्र उपमन्यु था जिसके ये सब उपमन्यु गए हैं ।।८९।। और मित्रावरुणो के कुण्डिन हुए जो एकार्येय परिश्रुत हुए थ । उसी प्रकार से अन्य वसिष्ठ नाम से विश्रुत हुए थे । ये ग्यारह पक्ष वसिष्ठो के कहे गये हैं ।।९० ।। ये आठ पुत्र ब्रह्माके मानस प्रसिद्ध हुए हैं । भाई सुन्दर एव महान् भाग वालेहै और उनके वश

प्रतिष्ठित है ॥६१॥ इन देवर्षिगणों से सकुल तीनों लोकों को धारण करती हुई भूमि थी। उसके सैकड़ों एवं सहस्रों पुत्र और पौत्र थे जिनसे व्याप्त यह पृथ्वी है जैसे सूर्य की किरणों से होती है ॥६२॥

प्रकरण ४६–गान्धर्व मूर्च्छना लक्षण

निसर्गं मनु पुत्राणां विस्तरेण निबोधत ।
पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गामभक्षयत् ॥१
शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनस्य महात्मनः ।
करूषस्य तु कारूषः क्षत्रियो युद्धदुर्मदः ॥२
सहस्रक्षत्रियगणविक्रान्तः सबभूव ह ।
नाभागारिष्टपुत्रस्तु विद्वानासीद्भलन्दनः ॥३
भलन्दनस्य पुत्रोऽभूत् प्राशुर्नाम महाबलः ।
प्राशोरेकोऽभवत् पुत्रः प्रजानिरिति विश्रुतः ॥४
प्रजानेरभवत् पुत्रः खनित्रो नाम वीर्यवान् ।
तस्य पुत्रोऽभवच्छ्रीमान् क्षुपो नाम महायशाः ॥५
क्षुपस्य विंशः पुत्रस्तु प्रतिमा न बभूव ह ।
विंशपुत्रस्तु कल्याणो विविंशो नाम धार्मिकः ॥६
विविंशपुत्रो धर्मात्मा खनिनेत्रः प्रतापवान् ।
करन्धमस्तस्य पुत्रस्त्रेतायुगमुखेऽभवत् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब मनु के पुत्रों का निसर्ग विस्तार के साथ जान लेना चाहिए। पृषध्र ने गुरु की गाय का हनन करके उसका भक्षण कर लिया था ॥१॥ महान् आत्मा वाले च्यवन के शाप से शूद्रत्व को प्राप्त होगया था। करूष का युद्ध दुर्मद कारूष क्षत्रिय जाति सहस्रों क्षत्रियों के समूह में विक्रान्त था, उत्पन्न हुआ था। नाभागारिष्ट का पुत्र भलन्दन बड़ा विद्वान् था ॥२॥३॥ भलन्दन का पुत्र महान् बल वाला प्राशु नाम वाला उत्पन्न हुआ था। प्राशु के

एक ही प्रजानि—इस नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुआ था ॥४॥ प्रजानि के खनिज नाम वाला वीयवान् पुत्र हुआ था। उसके श्रीमान् महान् यश वाला क्षुप—इस नाम का पुत्र हुआ ॥५॥ क्षुप का पुत्र विंश हुआ जिसकी कोई प्रतिमा नहीं थी। विंश का पुत्र कल्याण जिसका नाम विविंश था और वह बहुत धार्मिक था ॥६॥ विविंश का पुत्र धर्मात्मा और प्रताप वाला खनिनेत्र था। उसका पुत्र करन्धम हुआ जोकि त्रेता युग के प्रारम्भ में हुआ था ॥७॥

करन्धमसुतश्चापि आविक्षिन्नाम वीयवान्।
आविक्षितो व्यतिक्रामत् पितरं गुणवत्तया ॥८
मरुत्तो नाम धर्मात्मा चक्रवर्त्तिसमो नृपः।
सवर्त्तेन दिवं नीतः ससुहृत् सह बान्धवः ॥९
विवादोऽत्र महानासीत् सवर्त्तस्य बृहस्पतेः।
ऋद्धिं दृष्ट्वा तु यज्ञस्य क्रुद्धस्तस्य बृहस्पतिः ॥१०
सवर्त्तेन हृते यज्ञे चुकोप सुभृशन्तदा।
लोकाना स हि नाशाय दैवतैर्हि प्रसादितः ॥११
मरुत्तश्चक्रवर्त्ती स नरिष्यन्तमवाप्तवान्।
नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो दमः ॥१२
तस्य पुत्रस्तु विक्रान्तो राजासीप्राष्ट्रवद्धनः।
सुधृती तस्य पुत्रस्तु नरः सुधृतिनः सुतः ॥१३
केवलस्तस्य पुत्रस्तु बन्धुमान् केवलात्मजः।
अथ बन्धुमतः पुत्रो धर्मात्मा वेगवान् नृपः ॥१४

करन्धम का पुत्र वीर्यवान् आविक्षित नाम वाला था। गुणों की सम्पन्नता से आविक्षित ने अपने पिता को भी व्यतिक्रान्त कर दिया था ॥८॥ मरुत्त नाम वाला राजा चक्रवर्ती के समान हुआ था। मित्रों और बान्धवों के सहित वह सवर्त्त के द्वारा दिव लोक को ले जाया गया था ॥९॥ इसमें सवर्त्त बृहस्पति का महान् विवाद था। यज्ञ की ऋद्धि को देखकर बृहस्पति उससे बहुत क्रुद्ध हुआ था ॥१०॥ सवर्त के द्वारा यज्ञ के हृत हो जाने पर उस समय वह बहुत ही अधिक कुपित हुआ और वह लोकों के नाश करने के लिए उद्यत

होगया था। देवगण के द्वारा उसे प्रसन्न किया गया था ॥११॥ चक्रवर्ती जो मरुन्त था उसने नरिष्यन्त को प्राप्त किया था। नरिष्यन्त का दायाद दणधरद्वम राजा था ॥१२॥ उसका पुन परम विक्रम वाला राष्ट्रवर्धन राजा था। उसका पुत्र सुधृती था और उसका पुत्र नर था ॥१३॥ उसका केवल पुत्र था और केवल का आत्मज बन्धुमान् था। इसके पश्चात् बन्धुमान् का पुत्र धर्मात्मा राजा वेगवान् हुआ ॥१४॥

बुधो वेगवत पुत्रस्तृणविन्दुर्बुधात्मज ।
त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये सबभूव ह ॥१५
कन्या तु तस्य द्रविडा माता विश्रवसो हि सा ।
पुत्रश्चास्य विशालोऽभूद् राजा परमधार्मिक ॥१६
विशालस्य समुत्पन्ना विशाला नयनिर्मिता ।
विशालस्य सुतो राजा हेमचन्द्रो महाबल ॥१७
सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरम् ।
सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुत ॥१८
धूम्नाश्वतनयो विद्वान् सृञ्जय समपद्यत ।
सृञ्जयस्य सुत श्रीमान् सहदेव प्रतापवान् ॥१९
कृशाश्व सहदेवस्य पुत्र परमधार्मिक ।
कृशाश्वस्य महातेजा सोमदत्त प्रतापवान् ॥२०
सोमदत्तस्य राजर्षे सुतोभूज्जनमेजय ।
जनमेजयात्मजश्चैव प्रमतिर्नाम विश्रुत ॥२१

वेगवान् का पुत्र बुध हुआ और बुध का पुत्र तृणविन्दु हुआ था जो कि तृतीय त्रेतायुग के मुख (आरम्भ) मे राजा हुआ था ॥१५॥ उसकी कन्या द्रविडा थी जो कि विश्रवा की माता हुई थी। इसका पुत्र परम धार्मिक राजा विशाल हुआ था ॥१६॥ विशाल को नय निर्मित विशाला उत्पन्न हुई थी और विशाल का पुत्र महाबलवान् हेमचन्द्र राजा हुआ था ॥१७॥ हेमचन्द्र के अनन्तर सुचन्द्र इस नाम से विख्यात पुत्र हुआ। सुचन्द्र का पुत्र राजा धूम्राश्व परम विख्यात हुआ ॥१८॥ धूम्राश्व का पुत्र बहुत विद्वान् सृञ्जय समुत्पन्न हुआ

था। सृञ्जय का पुत्र श्रीमान् एवं प्रताप वाला सहदेव हुआ ॥१६॥ सहदेव का पुत्र परम धार्मिक कृशाश्व हुआ और कृशाश्व का पुत्र महान् तेजवाला एवं प्रतापी सोमदत्त हुआ ॥२ ॥ राजर्षि सोमदत्त के जनमेजय पुत्र उत्पन्न हुआ था। जनमेजय के प्रमति इस नाम से प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२१॥

तृणबिन्दुप्रसादेन सर्वे वशालका नृपा ।
दीर्घायुषो महात्मानो वीयवन्त सुधार्मिका ॥२२
शर्यातेर्मिथुन त्वासीदानार्तो नाम विश्रुत ।
पुत्र सुकन्या कन्या च भार्या या च्यवनस्य तु ॥२३
आनार्तस्य तु दायादो रेवो नाम्ना तु वीयवान् ।
आनर्त्तो विषयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली ॥२४
रेवस्य रवत पुत्र ककुद्मी नाम धार्मिक ।
ज्येष्ठो भ्रातृशतस्यासीद्राजा प्राप्य कुशस्थलीम् ॥२५
कन्यया सह श्रुत्वा च गन्धर्व ब्रह्मणोऽन्तिके ।
मुहूर्त्तं देवदेवस्य मात्य बहुयुग विभो ॥२६
आजगाम युवा चव स्वा पुरी यादववृताम् ।
कृता द्वारवती नाम बहुद्वारा मनोरमाम् ॥२७
भोजवृष्ण्यन्धकगुप्ता वसुदेवपुरोगमै ।
ताङ्कथा रवत श्रुत्वा यथातत्त्वमरिंदम ॥२८
कन्या तु बलदेवाय सुव्रता नाम रेवतीम् ।
दत्त्वा जगाम शिखर मेरोस्तपसि सस्थित ॥२९

ये समस्त राजा तृणबिन्दु के प्रसाद से वैशालक हुए थे। ये समस्त दीर्घ आयु वाले—महान् आत्मा से युक्त—वीर्य वाले और भली भाँति से धर्म के मानने वाले हुए थे ॥२२॥ शर्याति के एक जोड़ा हुआ था—एक पुत्र था जो आनार्त इस नाम से प्रथित था और एक कन्या थी जिसका नाम सुकन्या था और वह च्यवन ऋषि की भार्या हुई थी ॥२३॥ आनार्त्त का दायाद अर्थात् दाय के ग्रहण करने वाला पुत्र वीयवान् रेव नाम वाला हुआ जिसका देश तो आनर्त्त था और पुरी कुशस्थली थी ॥२४॥ रेव का पुत्र रवत हुआ था जिसका नाम

ककुद्मी था और वह परम धार्मिक हुआ था जो सौ भाइयों का ज्येष्ठ था और कुशस्थली को प्राप्त कर राजा हुआ था ।।२५।। विभु देवों के देव के एक मुहूर्त्त मात्र समय तक जो कि मर्त्यों के बहुत से युग थे, ब्रह्मा के समीप में गन्धर्व को कन्या के साथ में सुनकर युवा यादवों से वृत अपनी पुरी में आ गया जो कि बहुत द्वारों वाली बहुत सुन्दर द्वारवती नाम वाली की गई थी, वसुदेव जिनमें अग्रणी थे ऐसे भोज वृष्णि और अन्धकों के द्वारा वह पुरी सुरक्षित थी। उस कथा को शत्रुओं के दमन करने वाले रैवत ने यथातत्त्व सुना था।२६-२७-२८। सुन्दर व्रत वाली रेवती नाम से युक्त कन्या को बलदेव को देकर तपश्चर्या में संस्थित होता हुआ मेरुगिरि के शिखर पर चल गया ।।२९।।

रेमे रामश्च धर्मात्मा रेवत्या सहित किल ।
ता कथामृषय श्रुत्वा पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ।।३०
कथ वहुयुगे काले व्यतीते सूतनन्दन ।
न जरा रेवती प्राप्ता पलितश्च कुत प्रभो ।।३१
मेरु गतस्य वा तस्य शर्य्याते सन्तति कथम् ।
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ।।३२
कियन्तो वा सुरगणा गन्धर्व्वास्तत्र कीदृशा ।
यच्छ्रुत्वा रैवत कालान् मुहूर्त्तमिव मन्यते ।।३३
न जरा क्षुत्पिपासा वा न च मृत्युभय तत ।
न च रोग प्रभवति ब्रह्मलोकगतस्य हि ।।३४
गान्धर्व्वं प्रति यच्चापि पृष्टस्तु मुनिसत्तमा ।
ततोऽह सप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सुव्रता. ।।३५
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशति ।
तालाश्चैकोनपञ्चाशदित्येतत् स्वरमण्डलम् ।।३६
षड्जर्षभौ च गान्धारो मध्यम पञ्चमस्तथा ।
धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादवान् ।।३७

धर्मात्मा बलराम ने रेवती के साथ भ्रमण किया। उस कथा को सुन करके अनन्तर ऋषियों ने पूछा ।।३०।। ऋषिगण बोले—हे सूत नन्दन !

हे प्रभो ! बहुत युगों वाले काल के व्यतीत हो जाने पर रेवती वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं हुई और पलित कैसे प्राप्त नहीं हुआ है ? ।।३१।। जब शर्याति मेरु पर चला गया तो उसकी सन्तति कसे हुई जोकि आज तक भी इस भू मण्डल पर स्थित है। यह तत्त्व पूर्वक सब वृत्त सुनना चाहते है ।।३२।। कितने सुरगण थे और किस तरह के गन्धर्व थे जिसको सुनकर रवत कालों को मुहूर्त की भाँति मानता था ।।३३।। श्री सूतजी ने कहा—ब्रह्मलोक मे जाने वाले को न बुढापा होता है और न भक्ष-प्यास ही लगती है। मृत्यु का भय भी नहीं होता है और न किसी रोग का भय ही रहा करता है ।।३४।। हे मुनिश्रेष्ठो ! गान्धर्व के विषय में जैसा भी मुझसे पूछा गया है वह मैं हे सुव्रता । यथातथ्य से अर्थात् बिल्कुल ठीक ठीक बतलाऊ गा ।।३५।। सात स्वर षड्जादि होते हैं, तीन ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनाऐ होती हैं। उनचास ताल होते है—यह इतना स्वर मण्डल होता है ।।३६।। स्वरो के नाम—षड्ज—ऋषभ—गान्धार—मध्यम—पञ्चम धवत और निषाद ये सात हैं ।।३७।।

सौवीरी मध्यमग्रामो हरिणास्या तथव च।
स्यात्कलोपबलोपेता चतुर्थी शुद्धमध्यमा ।।३८
शार्ङ्गी च पावनी चव दृष्टाका च यथाक्रमम्।
मध्यमग्रामिका ख्याता षड्जग्राम निबोधत ।।३९
उत्तरमन्द्रा रजनी तथा या चोत्तरायता।
शुद्धषड जा तथा चव जानीयाद् सप्तमा च ताम् ।।४०
गान्धारग्रामिकाश्चान्यात् कीर्त्यमानात् निबोधत।
आग्निष्टोमिकमाद्यन्तु द्वितीय वाजपेयिकम् ।।४१
तृतीय पौण्ड्रक प्रोक्त चतुथ चाश्वमेधिकम्।
पञ्चम राजसूय च षष्ठ चक्रसुवर्णकम् ।।४२
सप्तम गोसव नाम महावृष्टिकमष्टमम्।
ब्रह्मदानञ्च नवम प्राजापत्यमनन्तरम् ।।४३
नागपक्षाश्रय विद्याद्गोतरञ्च तथव च।
हयक्रान्त मृगक्रान्त विष्णुक्रान्त मनोहरम् ।।४४

सूर्य्यक्रान्त वरेण्यश्च मत्तकोकिलवादिनम् ।
सावित्रमर्द्ध सावित्र सर्व्वतो मद्रमेव च ॥४५
सुवर्णश्च सुनन्दश्च विष्णुर्वैष्णुवरावुभौ ।
सागर विजयश्चैव सर्वभूतमनोहरम् ॥४६
हंस ज्येष्ठ विजानीमस्तुम्बुरुप्रियमेव च ।
मनोहरमथाव्यश्च गन्धर्वानुगतश्च य ॥४७
अलम्बुपेष्टश्च तथा नारदप्रिय एव च ।
कथितो भीमसेनेन नागराणा यथा प्रिय ॥४८
करोपनीत विनता श्रीराख्यो भार्गवप्रिय ।
निशतिर्मध्यमग्राम पड्जग्रामश्चतुर्द्दश ॥४९

सौवीरी–मध्यम ग्राम–हरिणास्या–कलोपवतोपेता–शुद्धमध्यमा चतुर्थी–शार्ङ्गी–पावनी–हृष्टाका य यथाक्रम मध्यम स्वर की ग्रामिका हैं और इन्ही नामो से प्रसिद्ध हैं। अब पड्ज ग्राम को समझलो ॥३८॥३९॥ उत्तर मन्द्रा–रजनी–उत्तरायता–शुद्धपड्जा और सप्तमा ये जाननी चाहिये ॥४०॥ अब बतलाई जाने वाली अन्य जो गान्धार की ग्रामिका है उन्हे समझ लेनी चाहिये। अग्निष्टोमिका प्रथम है और द्वितीय वाजपेयिक है। तीसरी पौण्ड्रक कही गई है। चौथी आश्वमेधिक है। पाँचवी राजसूय और छटी चक्र सुवर्णांक है। सातवी गोसव महावृष्टिक आठवी होती है। नवम ब्रह्मदान है इनके अनन्तर प्राजात्य है ॥४० ॥४१॥४२॥४३॥ नाग पक्षाश्रय–गोतर–हयक्रान्त–मनोहर–मृगक्रान्त–सूर्यक्रान्त–वरेण्य–मत्तकोकिल वादी–सावित्र–अर्द्ध सावित्र–सर्वतोभद्र–सुवर्ण–सुमन्द्र–विष्णु वैष्णुवर–सागर–विजय–सर्वभूत मनोहर–हंस को ज्येष्ठ जानते है–तुम्बुरुप्रिय–मनोहर–अथाव्य–गन्धर्वानुगत–अलम्बुपेष्ट नारद प्रिय–भीमसेन के द्वारा नागरो को प्रिय कही गई हैं—करोपनीत विनता–श्री–इस नाम वाली–भार्गव प्रिय–ये बीस मध्यम स्वर के ग्राम हैं। पड्ज के चौदह ग्राम है ॥४४॥४५॥ ४६॥४७॥४८॥४९॥

तथा पञ्चदशेच्छन्ति गान्धारग्रामसंस्थितान् ।
समोवीरा तु गान्धारी ब्रह्मणा ह्युपगीयते ॥५०

उत्तरादिस्वरस्यव ब्रह्मा च देवताऽत्र च ।
हरिदेशसमुत्पन्ना हरिणास्या व्यजायत ।
मूर्च्छना हरिणास्यव अस्या इन्द्रोऽधिदवतम् ॥५१
करोपनीतवितता मरुद्भि स्वरमण्डले ।
सा कालोपनता तस्मा मारुतश्चात्र दवतम् ॥५२
मनुदेशसमुत्पन्ना मूर्च्छना शुद्धमध्यमा ।
मध्यमोऽत्र स्वर शुद्धो ग धर्वश्चात्र देवता ॥५३
मृग सह सञ्चरते सिद्धाना मार्गदर्शने ।
यस्मात्तस्मात् स्मृता मार्गी मृगेन्द्रोऽस्याश्च देवता ५४
सा चाथममायुक्ता अनेकान् पौरवान् रवान् ।
मूर्च्छना योजना ह्य षा रजसा रजनी तत ॥५५
ताल उत्तरम द्राश षड जदवतका विदु ।
तस्मादुत्तरतालञ्च प्रथम स्वायत विदु ।
तस्मादुत्तरमन्द्रोऽय देवतास्य ध्रुवो ध्रुम ॥५६

इसी प्रकार से गान्धार स्वर के ग्राम सस्थित पन्द्रह चाहते हैं। सौवीरा–गान्धारी जो ब्रह्मा के द्वारा उपगीत हुआ करती है। उत्तरादि स्वर का यहाँ पर ब्रह्मा ही देवता होता है। हरिदेश समुत्पन्ना–हरिणास्या ही मूर्च्छना है और इन्द्र इसका अधिकारी देवता होता है ॥५ ॥५१॥ स्वरों के मण्डल में मरुतों के द्वारा करोपनीत वितता होती है। वह कलोपनता है इससे मारुत ही यहाँ पर अधिदेवत होता है ॥५२॥ मनु देश मे समुत्पन्न मूर्च्छना शुद्ध मध्यमा है। यहाँ मध्यम स्वर है और शुद्ध ग धर्व देवता है ॥५३॥ सिद्धों के मार्ग के दर्शन मे मृगों के साथ सञ्चरण करती है। इसी कारण से यह मार्गी कही गई है और इसका मृगेन्द्र देवता होता है ॥५४॥ और वह माथम ध समायुक्त होती है और अनेक पौरवो को रव वाले कर देती है। यह मूर्च्छना योजना है, रजसे रजनी होती है। ५५॥ इसका ताल उत्तर मन्द्राश होता है और इसको षडज देवता वाली जाननी चाहिये। इसस उत्तर ताल प्रथम स्वायत जान लव। इससे यह उत्तर मन्द्र है और इसका ध्रुव मिश्रित देवता है ॥५६॥

अपानादुत्तरत्वाच्च धैवतस्योत्तरायण ।
स्यादिय मूर्च्छना ह्येव पितर श्राद्धदेवता ॥५७
शुद्धषड्जस्वर कृत्वा यस्मादग्नि महर्षय ।
उपतिष्ठन्ति तस्मात्त जानीयाच्छुद्धषड्जिकम् ॥५८
य सता मूर्च्छना कृत्वा पञ्चमस्वरको भवेत् ।
पक्षीणा मूर्च्छना सा तु पाक्षिका मूर्च्छना स्मृता ॥५९
नागदृष्टिविषा गीता नोपसर्पन्ति मूर्च्छनाम् ।
भवन्तीव त्वना ह्येते ब्रह्मणा नागदेवता ।
अहीना मूर्च्छना ह्येषा वरुणश्चात्र देवता ॥६०
शकुन्तकाना कृत्वा च उपमा यान्ति किन्नरा ।
उत्तमा मूर्च्छना तस्मात् पक्षिराजोऽत्र देवता ॥६१
गान्धाररागशब्देन गा च धारयतेऽर्थत ।
तस्माद्विशुद्धगान्धारी गन्धर्वश्चाधिदैवतम् ॥६२

अपान और उत्तरतर होने से धैवत का उत्तरायण यह मूर्च्छना है । इस प्रकार से श्राद्ध देवता पितर होते हैं ॥५७॥ जिस कारण से महर्षिगण शुद्ध षड्ज स्वर को करके फिर अग्नि का उपस्थान किया करते है । इसलिये उसे शुद्ध षड्जिक जानना चाहिये । जो सत्पुरुषो की मूर्च्छना को करके पञ्चम स्वर होता है वह पक्षियो की मूर्च्छना है और वह पाक्षिका मूर्च्छना कही गई है ।५८। ॥५९॥ विषगीता नागदृष्टि मूर्च्छना का उपसर्पण नही करती है और ये नाग-देवता ब्रह्मा के द्वारा द्रुत होजाते हैं । यह अहियो अर्थात् नागो की मूर्च्छना होती है और वरुण यहाँ देवता है ॥६०॥ किन्नर पक्षियो की उपमा करके जाते हैं । इससे उत्तमा मूर्च्छना है और इसमे पक्षिराज यहाँ देवता है ॥६१॥ गान्धार राग के शब्द से गा को अर्थ से धारण करता है इससे वह विशुद्ध गान्धारी होता है और उसका गन्धर्व अधिदेवता होता है ॥६२॥

गान्धारानन्तर गत्वा सृष्टेय मूर्च्छना यत ।
तस्मादुत्तरगान्धारी वसवश्चात्र देवता ॥६३

सेय खलु महाभूता पितामहमुपस्थिता ।
षड जेय मूर्च्छना तस्मात् स्मृता ह्यनलदेवता ॥६४
दिव्येय चायता तेन मन्दवष्ठा च मूर्च्छने ।
निवृत्तगुणनामान पञ्चमञ्चात्र धैवतम् ॥६५
पूर्णा सप्त स्वरा ह्येव मूर्च्छना सप्रकीर्त्तिता ।
नानासाधारणाश्च व षडेवानुविदस्तथा ॥६६

जिससे गा धार के अनन्तर यह मूर्च्छना सृष्ट हुई उस कारण से उत्तर गा धारी हुई और यहाँ वसु अधिष्ठात्री देवता है ॥६३॥ वह यह महाभूता पिता मह को उपस्थित हुई यह षडज मूर्च्छना है और इससे यह अनल देवता वाली कही गइ है ॥६४॥ यह दिव्या और आयता है इससे मन्द षष्ठा मूर्च्छनायें पञ्चम और धवत की होती हैं जोकि निवृत्त गुण और नाम वाले है। इस प्रकार से सात स्वरो वाली पूर्ण मूर्च्छना कही गई है। यह अनेका और साधारण छ ही अनुविद होती हैं ॥६६॥

प्रकरण ५०--गीता लंकार निर्देश

पूर्व्वाधाय्यमत बुद्धा प्रवक्ष्याम्यनुपूर्व्वश ।
त्रिंशत व अलङ्कारास्तान् मे निगदत शृणु ॥१
अलङ्कारास्तु वक्तव्या स्व स्ववर्णं प्रहेतव ।
सस्थानयोगश्च तथा पादाना चान्ववेक्षया ॥२
वाक्यार्थपदयोगार्थं रलङ्कारस्य पूरणम् ।
पदानि गीतकस्याहु पुरस्तात् पृष्ठतोऽथवा ॥३
स्थानानि त्रीणि जानीयादुर कण्ठशिरस्तथा ।
एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिरुत्तम ॥४
चत्वार प्रकृती वर्णा प्रविचारश्चतुर्विध ।
विकल्पमष्टधा चव देवा षोडशधा विदु ॥५

स्थायी वर्णं प्रसचारी तृतीयमवरोहणम् ।
आरोहणं चतुर्थन्तु वर्णं वर्णविदो विदु ॥६
तत्रैक सचरस्थायी सचरास्तचरीभवन् ।
अथ रोहणवर्णानामवरोह विनिर्दिशेत् ॥७

अब पूर्व मे हुए आचार्यों के मत को जानकर आनुपूर्वी के साथ तीन सौ अलङ्कारों को बतलाया जाता है। उन्हे बतलाने वाले मुझसे आप लोग भली भाँति जानकारी कर लेवें और श्रवण करे ॥१॥ अपने-अपने वर्णों से प्रकृष्ट हेतु वाले अलङ्कार सस्थान योगों से और पादों की अन्वेक्षा से कथन करने के योग्य होते हैं ॥२॥ वाक्य-अर्थ-पद और योगार्थो से अलङ्कार की पूर्णता होती है। पृष्ठ से और आगे गीतक के पद कहे गये हैं ॥३॥ स्थान उर स्थल-कण्ठ और शिर मे तीन जानने चाहिए। इन तीन स्थानो मे उत्तम विधि प्रवृत्त होती है ॥४॥ प्रकृति मे चार वर्ण और चार प्रकार का प्रविचार होता है। विकल्प आठ प्रकार के तथा देव सोलह प्रकार के जाने गये हैं ॥५॥ स्थायी-वर्ण प्रसचारी और तीसरा अवरोहण, चतुर्थ आरोहण वर्ण वर्णों के वेत्ता लोग जानते हैं ॥६॥ वहाँ एक सचरास्तचरी होता हुआ सचर स्थायी होता है। इसके अनन्तर रोहण वर्णों का अवरोहण विनिदिष्ट करना चाहिए ॥७॥

आरोहणेन चारोहवर्णं वर्णविदो विदु ।
एतेषामेव वर्णानामलङ्कारान्निबोधत ॥८
अलङ्कारास्तु चत्वार स्थापनी क्रमरेजित. ।
प्रमादश्चाप्रमादश्च तेषा वक्ष्यामि लक्षणम् ॥६
विस्वरोष्ट्रकलाश्चैव स्थानादेकान्तर गता ।
आवर्त्तस्याक्रमोत्पत्ती द्वे कार्य्ये परिमाणत ॥१०
कुमारमपर विद्याद्विस्तर वमन गतम् ।
एष वै चाप्यपाङ्गस्तु कुतारेकः कलाधिक ॥११
श्येनस्त्वेकान्तरे जात कलामात्रान्तरे स्थित ।
तस्मिश्चैव स्वरे वृद्धिस्त्रिश्रुते तद्विलक्षणा ॥१२

अथोविंशत्य शीतिस्तु तेषामेतद्विपर्यय ।
षड्जपक्षोऽपि तत्त्वादौ मध्यो हीनस्वरो भवेत् ॥२८

अलङ्कार का प्रयोजन चार प्रकार का जानना चाहिए जोकि संस्थान-प्रमाण-विकार और लक्षण होना है ॥२२॥ जिस प्रकार से अपने शरीर का अलङ्कार विपर्यस्त अर्थात् उल्टा-पल्टा हुआ अत्यन्त गर्हित अर्थात् बुरा हो जाता है। आत्म सम्भव होने से वर्णों को भी अलकृत करने में विषम हो जाता है ॥२३॥ अनेक प्रकार के आभरणों के योग से जिस तरह नारी का विभूषण हुआ करता है उसी प्रकार से वर्ण का भी अलङ्कार होता है और यह भी यदि विपर्यस्त होता है तो अत्यन्त गर्हित हो जाता है ॥२४॥ जिस तरह चरण मे कुण्डल कभी नही पहिने हुए देखे गये है और कभी कण्ठ मे रसना अर्थात् करधनी (कौंधनी) नही पहिनी जाया करती है। इसी तरह से विपरीत स्थिति मे रहने वाला अलङ्कार अत्यन्त बुरा हुआ करता है ॥२५॥ किया हुआ भी अलङ्कार जो राग को दिखा देवे यथोदिष्ट मार्ग वाले कर्त्तव्य के लिए जिसका विधान किया जाता है ॥२६॥ लक्षण-पयवस्था और वर्णिकाओ द्वारा प्रवर्त्तन मालोद्भूव और मुखोद्भूव ठीक-ठीक रूप से बतलाता हूँ ॥२७॥ उनका यह विपर्यय तेईस और अस्सी होता है। तत्त्व के आदि मे षड्ज पक्ष भी मध्य और हीन स्वर वाला हो जाता है ॥२८॥

षड्जमध्यमयोश्चैव ग्रामयो पर्ययस्तथा ।
मानोयोत्तरम द्रस्य षडेवानाविकस्य च ॥२९
स्वरालप्रत्ययश्चैव सर्व्वेषा प्रत्यय स्मृत ।
अनुगम्य बहिर्गीत विज्ञात पञ्चदवतम् ॥३०
गोरूपाणां पुरस्तात्तु मध्यमाशास्तु पर्य्यय ।
तयोर्विभागो गीताना लावण्यमाग्सस्थित ॥३१
अनुपङ्ग यथोद्दिष्ट स्वसारञ्च स्वरान्त भ् ।
पर्य्यय सप्रवर्त्तेत सप्तस्वरपञ्चकमम् ॥ २
गान्धारानन गीय ते चत्वारि मन्द्रकाणि च ।

पञ्चमो मध्यमश्चैव धैवते तु निपादजे ।
षडजपभैश्च जानीमो मन्द्रकेष्वेव नान्तरे ॥३३
द्वे चापरान्तिके विद्याद्वयशुल्लाष्टकस्य तु ।
प्राकृते वैणवैश्चैव गान्धाराशे प्रयुज्यते ॥३४
पदस्य तु त्रय रूप सप्तरूपन्तु कौशिकम् ।
गान्धाराशेन कात्स्न्येंन पर्ययस्य विधिः स्मृतः ।
एवञ्चैव क्रमोद्दिष्टो मध्यमाशस्य मध्यम ॥३५

षड्ज और मध्यम ग्रामो का पर्यय मानोयोत्तर मन्द्र का और आत्रा-विक का छै होता है ॥२९॥ स्वराल प्रत्यय सबका प्रत्यय कहा गया है। बहिर्गीत का अनुगमन करके पाँच देवता जाने गये हैं ॥३०॥ गोरूपों के पहिले मध्यमाश पर्यय होता है। उन दोनो का विभाग गीतो के लावण्य मार्ग मे सस्थित होता है ॥३१॥ मैंने स्वरान्तर स्वसार और अनुमङ्ग को उद्दिष्ट किया है। पर्यय सप्तस्वर पदक्रम को सप्रवर्तित होता है ॥३२॥ चार मन्द्रक गान्धा-राश से गाये जाते हैं। पञ्चम और मध्यम ही धैवत निपादज-षड्ज और ऋषभो से मन्द्रको ही मे जानते हैं, अनर मे नही ॥३३॥ और दो अपरान्तिक जानने चाहिए। हय शुल्लाष्टक का प्राकृत मे वैणवों से ही गान्धाराश मे प्रयोग किया जाता है ॥३४॥ पद के तीन रूप हैं और कौशिक सात रूप वाला होता है। पूर्ण गान्धाराश से पर्यय की विधि कही गई है। इसी प्रकार से क्रमोद्दिष्ट और मध्यमाश का मध्यम होता है ॥३५॥

यानि गीतानि प्रोक्तानि रूपेण तु विशेषत ।
तत्तु सप्तस्वर कार्य सप्तरूपञ्च कौशिकम् ॥३६
अङ्गदर्शनमित्याहुर्मांने द्वे समके तथा ।
द्वितीयभावाचरणा मात्रा नाभिप्रतिष्ठिता ॥३७
उत्तरे च प्रकरयेच मात्रा तल्लीयते तथा ।
हन्तार पिण्डको यत्र मात्राया नातिवर्त्तते ॥३८
पादेनैकेन मात्राया पादोनामति वीरणा ।
सख्यायाश्चोपहनन तत्र यानमिति स्मृतम् ॥३९

द्वितीय पादभङ्गश्च ग्रहेणाभिप्रतिष्ठितम् ।
पूर्व्वमष्टतृतीये तु द्वितीय चापरीतके ।।४०
अर्द्धेन पादसाम्यस्य पादभागाञ्च पञ्चके ।
पादभाग सपाद तु प्रकृत्यामपि सस्थितम् ।।४१
चतुर्थमुत्तरे चव मद्रवत्या च मद्रके ।
मद्रके दक्षिणस्यापि यथोक्ता वत्तते कला ।।४२

जो गीत विशेषता से रूप से कहे गये हैं वह तो सप्त स्वर करना चाहिए और कौशिक सप्त रूप करना चाहिये ।।३६।। सम दो मान अङ्गुदशन यह कहते है । द्वितीयभावावरण भाग अभिप्रतिष्ठिता नहीं है ।।३७।। और उत्तर में प्रकृति से ही इस तरह मात्रा तल्लीन होती है जहाँ पर हन्तार पिण्डक मात्रा में अति वृत्तन नहीं करता है ।।३८।। एक पाद से मात्रा म पादोनर मतिवीरुण्या है और सख्या का उपहनन होता है वहाँ पर यानम्—यह कहा गया है ।।३६।। द्वितीय पादभङ्ग है जो ग्रह से अभि प्रतिष्ठित होता है । अष्ट तृतीय मे तो पूर्व्व है और अपरीतक म द्वितीय है ।।४ ।। अर्द्ध से पाद साम्य का और पञ्चक मे पाद भाग से पाद भाग सपाद तो प्रकृति मे भी सस्थित होता है ।।४१।। उत्तर मे चतुर्थ और मद्रवती मे मद्रक और मद्रक से दक्षिण की भी यथोक्त कला होती है ।।४२।।

पूर्व्वमेवानुयोगन्तु द्वितीया बुद्धिरिष्यते ।
पादौ चाहरण चास्मत् पार नान विधीयते ।।४३
एकत्वमुपयोगस्य द्वयोर्यद्धि द्विजोत्तम ।
अनेकसमवायस्तु पताकाहरिण स्मृतम् ।।४४
तिसृणा चव वृत्तीना वृत्तौ वृत्ता च दक्षिणा ।
अष्टौ तु समवायास्ते सौवीरा मूर्च्छना तथा ।
कुद्यत्यनुत्तर सत्य सप्त स्वस्वर तु य ।।

पूर्व ही अनुयोग तो है द्वितीया बुद्धि इच्छित आहरण यहाँ पर अस्मद् पार बार का विधान नहीं है । सम । उपयोग का एकत्व और जो दोका है तथा

पताका हरिण कहा गया है ।।४४।। और तीन वृत्तियो का और वृत्ति मे दक्षिणा वृत्ता के आठ समवाय हैं और सौवीरा मुर्च्छना होती है । कुशरयमुत्तर जो सत्य सात सत्वस्वर होता है ।।४५।।

प्रकरण ५१—वैवस्वत मनु वंश वर्णन

ककुद्मिनस्तु त लोक रैवतस्य गतस्य ह ।
हताः पुण्यजनै सर्व्वा राक्षसै सा कुशस्थली ।।१
तद्वै भ्रातृशत तस्य धार्म्मिकस्य महात्मन ।
निवध्यमाना रक्षोभिर्दिशः सम्प्राद्रवन् भयात् ।।२
तेषान्तु ते भयाक्रान्ता क्षत्रियास्तत्र तत्र हि ।
अन्ववायस्तु सुमहान् महास्तत्र द्विजोत्तमा ।।३
प्रयता इति विख्याता दिक्षु सर्व्वासु धार्म्मिका. ।
धृष्टस्य धार्ष्टक क्षत्र रणधृष्ट वभूव ह ।।४
त्रिसाहस्रन्तु सगण क्षत्रियाणा महात्मनाम् ।
नभगस्य च दायादो नाभागो नाम वीर्यवान् ।।५
अम्बरीपस्तु नाभागिर्विरूपस्तस्य चात्मज ।
पृषदश्वो विरूपस्य तस्य पुत्रो रथीतर ।।६
एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरस स्मृता ।
रथीतराणा प्रवरा क्षात्रोपेता द्विजातय ।।७

श्री सूतजी ने कहा—ककुद्मी के उस लोक को रैवत के चले जाने से उसकी जो कुशस्थली थी वह सब पुण्यजनो राक्षसो के द्वारा हत होगई ।।१।। उसके जो सौ भाई थे जोकि बड़ा धर्म के मानने वाला और महान् आत्मा वाला था राक्षसो के द्वारा निवध्य मान होते हुए भय से दिशाओ मे भाग गये थे ।२। हे द्विजो मे उत्तम ! उनके भय से आक्रान्त वे क्षत्रिय वहाँ–वहाँ होगये और वह सुमहान् अन्ववाय महान् हो गया ।।३।। समस्त दिशाओ मे धार्मिक लोग प्रयता इस नाम से विख्यात हुए । धृष्टका रणभूमि मे उठने वाला धार्ष्टक

क्षत्रिय हुआ था ।।४।। महान् आत्मा वाले क्षत्रियों का सगण तीन हजार था। नभग के दाय का हकदार बड़ा पराक्रमी नाभाग नाम वाला हुआ ।।५।। नाभागि अम्बरीप हुआ और उसका पुत्र विरूप हुआ । विरूप का पुत्र पृपदश्व और उसका पुत्र रथीतर नाम वाला हुआ था ।।६।। ये सब क्षत्रियों की सतति आङ्गिरस कही गयी है । रथीतरो में जो प्रवर थे और क्षात्र धर्म से समन्वित थे वे द्विजाति थे ।।७।।

क्षवतस्तु मनो पूर्व्वमिक्ष्वाकुरभिनि सृत ।
तस्य पुत्रशत त्वासी दिक्ष्वाकोर्भू रिदक्षिणम् ।।८
तेषा ज्येष्ठो विकुक्षिश्च नेमिदण्डश्च ते त्रय ।
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्रा पचाशतस्तु ते ।।९
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महीक्षित ।
चत्वा रिशत्तथाष्टौ च दक्षिणस्याञ्च ते दिशि ।।१०
विंशतिप्रमुखास्ते तु दक्षिणापथरक्षिण ।
इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षि व अष्टकायामथादिशेत् ।।११
मासमानय श्राद्धेय मृगान् हत्वा महाबल ।
श्राद्धमद्य नु कर्तव्यमष्टकाया न सशय ।।१२
स गतस्तु मृगव्या व वचनात्तस्य धीमत ।
मृगान् सहस्रशो हत्वा परिश्रान्तश्च वीयवान् ।
भक्षयच्छशकन्तत्र विकुक्षिमृ गयाकुल ।।१३
आगते स विकुक्षौ तु समासे सहसनिके ।
वसिष्ठश्चोदयामास मास प्रोक्षयतामिति ।।१४

मनु के पूर्व क्षुव से इक्ष्वाकु प्रभिनि सृत हुए । उस इक्ष्वाकु के सौ पुत्र थे जोकि भूरि दक्षिणा वाले थे ।।८।। उन एक शत पुत्रों में जो सबसे बड़ा पुत्र था उसका नाम विकुक्षि था और नेमिदण्ड ये वे तीन थे । उसके शकुनि जिनमे प्रधान था ऐसी रीति से पाँचसौ पुत्र हुए थे ।।९।। वे सब नृप उत्तरा पथ के रक्षा करने वाले थे । उनमे चालीस और आठ दक्षिण दिशा मे गये थे ।।१० ।। जिनमे विंशति सबमे प्रमुख थे ऐसे वे दक्षिणा पथ के रक्षा

वाले हुए थे। इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को अष्टका मे आदेश दिया था ॥११॥ राजा बोले —हे महान् बल वाले ! जगल मे जाकर श्राद्ध करने के योग्य सामग्री लाना चाहिए। आज अष्टका मे श्राद्ध करना चाहिए। इसमें कुछ भी सशय नही है ॥१२॥ वह बुद्धिमान् इस वाक्य को ग्रहण कर वन मे जा पहुँचा। वह परम वीर्यवान् शिकार करते-करते परिश्रान्त होगया था। मृगया करने गये हुए विकुक्षि ने वहाँ पर कुछ आहार कर लिया था ॥१३॥ सैनिकों के सहित विकुक्षि के आने पर राजा ने वसिष्ठ जी को प्रेरित किया कि वे सामग्री का प्रोक्षण करें ॥१४॥

तथेति चोदितो राज्ञा विधिवत्समुपस्थित ।
स दृष्ट्वोपहत मास क्रुद्धो राजानमब्रवीत् ॥१५
शूद्रेणोपहत मास पुत्रेण तव पार्थिव ।
शशभक्षादभोज्य वै तव मास महाद्युते ॥१६
शशो दुरात्मना पूर्वमरण्ये भक्षितोऽनघ ।
तेन मासमिद दुष्ट पितृणा नृपसत्तम ॥१७
इक्ष्वाकुस्तु तत क्रुद्धो विकुक्षिमिदमब्रवीत् ।
पितृकर्मणि निर्दिष्टो मया त्व मृगयाङ्गत ।
शश भक्षयसेऽरण्ये निर्घृण पूर्व्वमद्य नु ॥१८
तस्मात्परित्यजामि त्वा गच्छ त्व स्वेन कर्म्मणा ।
एवमिक्ष्वाकुना त्यक्तो वसिष्ठवचनात् सुत ॥१९
इक्ष्वाकौ सस्थिते तस्मिञ्छशी स पृथिवीमिमाम् ।
प्राप्त परमधर्म्मात्मा स चायोध्याधिपोऽभवत् ॥२०
तदाकरोत्स राज्य वै वसिष्ठपरिनोदित ।
तत स्तेनेन सा पूर्णा राज्यावस्था महीपते ॥२१

राजा के द्वारा उस प्रकार प्रेरित वसिष्ठ मुनि विधिपूर्वक उपस्थित हुए। सामग्री को देखकर कुपित होते हुए राजा से कहा—॥१५॥ हे पार्थिव ! हे महान् द्युति वाले ! आपके पुत्र शूद्र ने सामग्री को उपहत कर दिया है। वनमे भक्षण कर लेने से यह सामग्री भोजन करने के योग्य नही है ॥१६॥ हे अनघ !

हे नृपो मे श्रद्ध ! इस दुरात्मा ने पहिले ही जगल मे आहार कर लिया है। इससे यह समस्त सामग्री दूषित होगयी है और पितरो के यो य नहीं रही है ॥१७॥ तब तो इक्ष्वाकु बहुत ही क्रुद्ध हुआ और विकुक्षि से बोला—मैंने तुझे पितृ-कम मे निर्दिष्ट किया था और तभी तू शिकार करने यहाँ से गया था। निघृ ण तूने आज पहिले ही जगल मे आहार कर लिया है ॥१८॥ इस कारण से मैं आज तेरा त्याग करता हूँ और त्याग तेरे ही अपने कम से किया जा रहा है। इस प्रकार से वह पुन वसिष्ठ के वचन से इक्ष्वाकु के द्वारा त्याग दिया गया था ॥१९॥ इस इक्ष्वाकु के संस्थित होने पर उस शशी ने इस पृथ्वी को प्राप्त किया और परम धर्मात्मा वह अयोध्या का स्वामी हुआ था ॥२ ॥ वसिष्ठ के द्वारा परिप्रेरित हुए उसने उस समय राज्य किया था। इसके अनन्तर राजा की वह राज्यावस्था स्तेन से पूर्ण हुई ॥२१॥

कालेन गतवास्तत्र स च न्यूनतराकृतिम् ।
ज्ञात्वैवमेतदाख्यान ना विधिभक्षयेत्तु व ॥२२
मास भक्षयितामुत्र यस्य मासमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मासस्य मासत्व प्रवदन्ति मनीषिण ॥२३
शशादस्य तु दायाद ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् ।
इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थो जायते पुरा ॥२४
पूर्व्वमाडीवके युद्ध ककुत्स्थस्तेन स स्मृत ।
अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरोमा च स स्मृत ॥२५॥
वृषदश्व पृथो पुत्रस्तस्माद ध्रस्तु वीर्यवान् ।
अ ध्रस्तु यवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तस्य चात्मज ॥२६॥
जज्ञ श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता ।
श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशा ॥२७॥
वृहदश्वसुतश्चापि कुवलाश्व इति श्रु ति ।
य स धु धुवधाद्राजा धु धुमारत्वमागत ॥२८॥

काल के व्यतीत होने से वहाँ पर वह न्यूनतर गति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से इस आख्यान को जानकर बिना विधि के भक्षण नहीं करना चाहिये

॥२२॥ परलोक में माँस आदि के भक्षण करने वालों में जिसके मास को मैं यहाँ भक्षण करता हूँ। वह इसमें माँस को खायगा इस माँस का मासत्व मनीषीगण कहा करते हैं ॥२३॥ शशाद का दायाद (पुत्र) वीर्यवान् ककुत्स्थ हुआ। पहिले वृषभूत इन्द्र का ककुत्स्थ उत्पन्न होता है ॥२४॥ पहिले आडीवक युद्ध में उसके द्वारा वह ककुत्स्थ स्मरण किया गया था—अर्थात् कहा गया था। इसके द्वारा ककुत्स्थ के पृथुरोमा हुआ ॥२५॥ पृथु का पुत्र वृषदश्व और उससे वीर्यवान् अन्ध्र हुआ। उसके आन्ध्र–यवनरूप और श्रावस्त ये पुत्र हुए ॥२६॥ श्रावस्तक राजा हुआ जिसने श्रावस्ती नाम वाली पुरी का निर्माण किया था। श्रावस्त का दायाद महान् यश वाला बृहदश्व हुआ था ॥२७॥ बृहदश्व का पुत्र भी कुवलाश्व हुआ यह श्रुति है। जो वह राजा धुन्धु के वध से धुन्धु मारत्व को प्राप्त होगया था ॥२८॥

धुन्धुवध महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि विस्तरात्।
यदर्थं कुवलाश्व स धुन्धुमारत्वमागत ॥२९॥
बृहदश्वस्य पुत्राणा सहस्राण्येकविंशति।
सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदा ॥३०॥
बभूवुर्द्धार्मिका सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणा।
कुवलाश्व महावीर्यं शूरमुत्तमधार्मिकम् ॥३१॥
बृहदश्वोऽभ्यषिञ्चत्त तस्मिन् राष्ट्रे नराधिप।
पुत्रसक्रामितश्रीस्तु वन राजा विवेश ह ॥३२॥
बृहदश्व महाराज शूरमुत्तमधार्म्मिकम्।
प्रयात तमुत्तङ्कस्तु ब्रह्मर्षि प्रत्यवारयत् ॥३३॥
भवतो रक्षण कार्यं तत्तावत् कर्तुमर्हति।
निरुद्विग्नस्तप कर्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥३४॥
ममाश्रमसमीपेषु समेषु मरुधन्वसु।
समुद्रो वालुकापूर्णस्तत्र तिष्ठति भूपते ॥३५॥

ऋषियों ने कहा—हे महान् पण्डित ! हम धुन्धु के वध को सुनना चाहते हैं और विस्तारपूर्वक श्रवण करने की इच्छा करते हैं जिसके लिये वह

कुवलाश्व धुन्धु मारत्व को प्राप्त होगया था ।।२६।। श्री सूतजी ने कहा—बृहदश्व के एक बीस सहस्र पुत्र थे । वे सब विद्याओं में निष्णात बड़े ही बलवाले और दुरासद थे ।।३ ।। सब बहुत दक्षिणा वाले यज्वा परम धार्मिक हुए थे । बृहदश्व राजा ने महान् वीर्य वाले—शूरवीर—उत्तम धर्म के मानने वाले उस कुवलाश्व को उस राष्ट्र में राजा अभिषिक्त किया था । जब पुत्र ने समस्त राज्य भी प्राप्त करलीया था तब राजा ने वन में प्रवेश कर लिया था ।।३१ ३२।। उत्तम धार्मिक और शूर महाराज बृहदश्व को वन में प्रयाण करने वाले को ब्रह्मर्षि उत्तङ्क ने उसको रोका था ।।३३।। उत्तङ्क ने कहा—हे पार्थिव ! आपका रक्षा करना कार्य है आपको उसे करना चाहिये । मैं उद्वेग रहित होकर तप नहीं कर सकता हूँ ।।३४।। हे भूपते ! मेरे आश्रम के समीप सम मरुधन्वाओं में वालुका से परिपूर्ण समुद्र वहाँ पर स्थित रहता है ।।३५।।

देवतानामवध्यस्तु महाकायो महाबल ।
अन्तभू मि गतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान् ।।३६।।
स मनोस्तनय क्रूरो धुन्धुर्नाम सुदारुण ।
शत लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ।।३७।।
सवत्सरस्य पयन्ते स नि श्वास प्रमुञ्चति ।
यदा तदा मही तत्र चलिता स्म सकानना ।।३८।।
तस्य नि श्वासवातेन रज उद्धूयते महत् ।
आदित्यपथमावृत्य सप्ताह भूमिकम्पनम् ।।३९
सविस्फुलिङ्ग सज्वाल सधूममतिदारुणम् ।
तेन राजन्न शक्नोमि तस्मिन् स्थातु स्व आश्रमे ।।४०
त वारय महाबाहो लोकाना हितकाम्यया ।
तेजस्ते सुमहाविष्णुस्तेजसाप्याययिष्यति ।।४१
लोका स्वस्था भवन्त्वद्य तस्मिन् विनिहतेऽसुरे ।
त्व हि तस्य वधायाद्य समर्थ पृथिवीपते ।।४२

वह महान् काया वाला और महान् बल वाला देवताओं का अवध्य है अर्थात् देवो के द्वारा वध करने के योग्य नहीं है । वह भूमि के अन्तगत वहाँ

बालुकाओं से छिपा हुआ रहता है ॥३६॥ वह मनुका पुत्र है, धुन्धु उसका नाम है और वह बड़ा दारुण है। वह शतलोकों के विनाश करने के लिये दारुण रूप में स्थित होकर रहता है ॥३७॥ वह सम्वत्सर पर्यन्त मे निःश्वास का मोचन किया करता है। जब वह अपना निःश्वास छोड़ता है तब यह समस्त भूमि वनो के सहित चलायमान होजाया करती है ॥३८॥ उसके निःश्वास की वायु से बहुत रज उठती है और सूर्य के मार्ग को आवृत करलेती है तथा सप्ताह तक भूमि का कम्पन हुआ करता है ॥३९॥ वह कम्पन भी सामान्य नहीं होता है उसमे स्फुलिङ्ग अर्थात् अग्निकरण होते हैं ज्वाला युक्त, धूम से समन्वित और अत्यन्त ही दारुण होता है। हे राजन्! इस कारण से उस अपने आश्रम मे मैं ठहर नहीं सकता हूँ ॥४०॥ हे महान् बाहुओं वाले! उसका निवारण करो और हमारे हितकी कामना से उसे हटाओ। आपका तेज महाविष्णु है आप तेजसे भी रोक देगे ॥४१॥ उस असुर के मृत होजाने पर आज लोक स्वस्थ होवें। हे पृथिवी के पति! आपही उसके वध करने मे समर्थ होते हैं ॥४२॥

विष्णुना च वरो दत्तो मम पूर्व्वं ततोऽनघ।
न हि धुन्धुर्महावीर्य्यस्तेजसाल्पेन शक्यते ॥४३
निर्द्दग्धु पृथिवीपाल अपि वर्षशतैरिह।
वीर्य्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम् ॥४४
एवमुक्तस्तु राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना।
कुवलाश्व सुत प्रादात्तस्मिन् धुन्धुनिवारणे ॥४५
राजा सन्यस्तशस्त्रोऽहमयन्तु तनयो मम।
भविष्यति द्विज श्रेष्ठ धुन्धुमारो न सशय ॥४६
स त व्यादिश्य तनयं धुन्धुमारणमुद्यतम्।
जगाम पर्व्वतायैव तपसे शसितव्रत ॥४७
कुवलाश्वस्तु धर्म्मात्मा पितृवचनमास्थित।
सहस्रै रेकविंशत्या पुत्राणां सह पार्थिव।
प्रायादुत्तङ्क सहितो धुन्धोस्तस्य निवारणे ॥४८

तमाविशत्ततो विष्णुभगवान् स्वेन तेजसा ।
उत्तङ्कस्य नियोगात्तु लोकाना हितकाम्यया ॥४९

हे अनघ ! विष्णु ने मुझे पहिले वरदान दिया था महान् वीय वाला धुन्धु अल्प तेज वाले किसी के भी द्वारा मारा नही जा सकता है ॥४३॥ हे पृथिवी पाल ! सौ वर्षों मे भी वह निदग्ध नही किया जा सकता है । उसका पराक्रम बहुत ही अधिक है जिसको कि देवगण भी सहन नही कर सकते हैं ॥४४॥ महात्मा उत्तङ्क के द्वारा इस प्रकार से कहने पर उस राजर्षि ने उस धुन्धु के हटाने के काय के लिये अपने पुत्र कुवलाश्व को दे दिया था ॥४५॥ मैं शस्त्र त्याग करने वाला होगया यह मेरा पुत्र राजा है। यह धुन्धु के मारने वाला होगा हे द्विज श्रेष्ठ ! इसमे कुछ भी सशय नही ह ॥४६॥ वह धुन्धु के मारण मे उद्यत उस पुत्र को आज्ञा देकर स्वय सशित व्रतवाला होते हुए तप करने के लिये पवत पर चला गया था ॥४७॥ धर्मात्मा कुवलाश्व पिता के वचनो मे प्रास्थित होकर एक विशति सहस्र पुत्रों के साथ वह राजा उत्तङ्क के साथ धुन्धु के निवारण करने के कार्य मे दिया था ॥४८॥ इसके पश्चात् भग वान् विष्णु ने तेज के द्वारा उत्तङ्क के नियोग से लोगो के हित की कामना से उसमे प्रवेश किया था ॥४९॥

तस्मिन् प्रयाते युद्धपे दिवि शब्दो महानभूत् ।
अद्यप्रभृत्येप नृपो धुन्धुमारो भविष्यति ॥५०
दिव्यै पुष्पैश्च त देवा सममसत अद्भुतम् ।
स गत्वा पुरुप व्याघ्रस्तनय सह वीर्यवान् ॥५१
समुद्र खनयामास वालुकार्णवमव्ययम् ।
नारायणेन राजर्षिस्तेसाप्यायितो हि स ॥५२
बभूवातिबलो भूय उत्तङ्कस्य वशे स्थित ।
तस्य पुत्रः खनद्भिश्च वालुकान्तर्हितस्तदा ॥५३
धुन्धुरासादितस्तत्र दिशमाश्रित्य पश्चिमाम् ।
मुखजेनाग्निना क्रुद्धो लोकानुद्वत्त र्यन्निव ॥५४

वारि शुश्राव योगेन महोदधिरिवोदये ।
सोमस्य सोमपश्रेष्ठ धारोर्मिकलिलो महान् ॥५५
तस्य पुत्रास्तु निर्दग्धास्त्रिभिरूनास्तु राक्षसा ।
तत स राजातिवलो धुन्धुवन्धुनिवर्हण ॥५६
तस्य वारिमय वेगमपिवत् स नराधिप ।
योगी योगेन वह्नि वा शमयामास वारिणा ॥५७
निरस्यत्त महाकाय वलेनोदकराक्षसम् ।
उत्तङ्क दर्शयामास कृतकर्म्मा नराधिप ॥५८

उस दुधर्ष के प्रयाण करने पर दिव मे एक महान् शब्द हुआ कि आज से लेकर यह राजा धुन्धु मार इस नाम से प्रथित हो जायगा । यह आकाशवाणी हुई थी ॥५०॥ देवगण ने दिव्य पुष्पो के द्वारा अति अद्भुत उसका समर्थन किया था और वह पुरुष व्याघ्र वीर्य वाला पुत्रो के साथ वहाँ गया था ॥५१॥ नारायण के तेज से आप्यायित उस राजर्षि ने वहाँ उस वालुकार्णव अव्यय समुद्र का खनन किया था ॥५२॥ वह अत्यन्त वलवान् राजा उत्तङ्क के वश मे स्थित हुआ था । उस समय खनन करने वाले उस राजा के पुत्रो ने वालुकाओं मे छिपा हुआ वह धुन्धु ग्रास कर लिया था जोकि पश्चिम दिशा में आश्रम बना कर मुख से उत्पन्न अग्नि से मानो लोको का उद्वर्तन करता हुआ था, बहुत ही क्रुद्ध हो रहा था ॥५३-५४॥ सोम के उदय मे समुद्र की भाँति योग से जल छोड़ा, हे सोम पान करने वालो मे श्रेष्ठ ! महान् धार की उर्मियो से कलिल होगया था ॥५५॥ उसके पुत्र निर्दग्ध हो गये थे, राक्षस तीन से कम थे, इसके अनन्तर धुन्धु के वधुओ का निर्वहण करने वाल अति वलवान् नराधिप ने उसके जलमय वेग को पी लिया था । योगी ने योग के द्वारा अग्नि का जल से शमन कर दिया था ॥५६-५७॥ वल से उदक राक्षस महान् काय वाले उसको निरस्त कर दिया और नराधिप ने अपना कार्य समाप्त कर उत्तङ्क को दिखला दिया था ॥५८॥

उत्त कश्च वर प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने ।
अदात्तस्याक्षय वित्त शत्रुभिश्चाप्यधृष्यताम् ॥५९

धर्म्मे रतिश्च सततं स्वर्गे वास तथाक्षयम् ।
पुत्राणां चाक्षयाल्लोकान् स्वर्गे ये राक्षसा हृता ॥६०
तस्य पुत्रास्त्रय शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।
भद्राश्व कपिलाश्वश्च कनीयासौ तु तौ स्मृतौ ॥६१
धौधुमारिर्दृढाश्वस्त हर्य्यश्वस्तस्य चात्मज ।
हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्मरत सदा ॥६२
सहताश्वो निकुम्भस्य श्रुतो रणविशारद ।
कृशाश्वश्चाक्षयाश्वश्च सहताश्व सुतावुभौ ॥६३
तस्य पत्नी हैमवती सता मतिदृषद्वती ।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रस्तस्या प्रसेनजित् ॥६४
युवनाश्व सुतस्तस्य त्रिषु लोकेष्वतिद्युति ।
अत्यन्तधार्मिको गौरी तस्य पत्नी पतिव्रता ॥६५
अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता ।
तस्यास्तु गौरिक पुत्रश्चक्रवर्त्ती बभूव ह ॥६६
मान्धाता यौवनाश्वो वै त्रैलोक्यविजयी नृप ।
अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ पौराणिका द्विजा ॥६७
यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति ।
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातु क्षेत्रमुच्यते ॥६८

उत्तङ्क ने उस महान् आत्मा वाले राजा को वरदान दिया था और उसे अक्षय धन तथा धुन्धु के द्वारा अधर्षित होने का भी वर दिया था ।५६। मुनि ने राजा को धर्म में प्रेम सदा स्वर्ग में निवास जोकि कभी क्षीण न हो पुत्रों को अक्षय लोक जोकि स्वर्ग में राक्षस हत हुए दिया था ॥६ ॥ उसके तीन पुत्र शेष रहे उनमें दृढाश्व कहा जाता है । भद्राश्व और कपिलाश्व दो छोटे कहे गये हैं ॥६१॥ दृढाश्व धौन्धुमारि था और उसका हर्यश्व हुआ था । हर्यश्व का क्षत्रधर्म मे रति रखने वाला निकुम्भ पुत्र हुआ था । ६१ ६२॥ निकुम्भ का रण विशारद परम पण्डित सहताश्व पुत्र हुआ था । सहताश्व के कृशाश्व और अक्षयाश्व ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥६३॥ सत्पुरुषों की मति

दृपद्वती हैमवती ग्राम वाली उसकी पत्नी थी जो कि तीनो लोकों में परम विख्यात थी, उसका पुत्र प्रसेनजित् हुआ था ।।६४।। उसका पुत्र तीनों लोकों में अत्यन्त द्युतिवाला युवनाश्व हुआ था जोकि अत्यन्त धार्मिक था उसकी पतिव्रता पत्नी गौरी थी ।।६५।। वह उसके स्वामी के द्वारा अभिशप्त हुई और वह बाहुदा नदी कर दी गई थी। उसका पुत्र गौरिक चक्रवर्त्ती हुआ था ।।६६।। मान्धाता यौवनाश्व त्रैलोक्य के विनाश करने वाला राजा हुआ था। यहाँ पर भी पौराणिक द्विज दो श्लोकों को कहा करते हैं।६७। जब तक सूर्य उदित होता है और जब तक वह यहाँ प्रतिष्ठित रहता है, वह समस्त यौवनाश्व मान्धाता का क्षेत्र कहा जाता है ।।६८।।

अत्राप्युदाहरन्तीम श्लोक वंशविदो जना ।
यौवनाश्व महात्मान यज्वानममितौजसम् ।
मान्धाता तु तनुर्विष्णोः पुराणज्ञा प्रचक्षते ।।६९
तस्य चैत्ररथी भार्य्या शशबिन्दो सुताऽभवत् ।
साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ।।७०
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा ।
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता त्रीन् सुतान् प्रभु ।।७१
पुरुकुत्समम्बरीष मुचुकुन्दञ्च विश्रुतम् ।
अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपर स्मृत ।।७२
हरितो युवनाश्वस्य ह्यारिता शूरय स्मृता ।
एते ह्याङ्गिरस पुत्रा क्षात्रोपेता द्विजातय ।।७३
पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशा ।
नर्मदाया समुत्पन्न सम्भूतस्तस्य चात्मज ।।७४
सम्भूतस्यात्मज पुत्रो ह्यनरण्य प्रतापवान् ।
रावणेन हतो येन त्रिलोकीविजये पुरा ।।७५

यहाँ पर वश के वेत्ताजन इस श्लोक को उदाहृत करते हैं। महान् आत्मा वाला—यज्वा—अमित ओजवाला यौवनाश्व को मान्धाता तो विष्णु का तनु या पुराणों के ज्ञाता ऐसा कहते हैं ।।६९।। उसकी चैत्ररथी भार्या हुई थी

जोकि शशविन्दु की पुत्री हुई थी। यह बहुत ही साध्वी थी और इसका नाम बिन्दुमती था तथा भू मण्डल मे रूप से यह अनुपम थी ॥७ ॥ यह परम पति व्रत धर्म वाली थी और अपने एक अयुत भाइयो मे सबसे ज्येष्ठ थी। उसमे प्रभु मान्धाता ने तीन पुत्रों को उत्पन्न किया था ॥७१॥ उनके नाम पुरुकुत्स-अम्बरीष और मुचुकुन्द प्रसिद्ध थे। अम्बरीष का दायाद अपर युवनाश्व कहा गया है ॥७२॥ युवनाश्व का हरित था जोकि हारित भूरि कहे गये हैं। वे अगिरा के पुत्र क्षात्र धर्म से युक्त एव द्विजाति थे ॥७३॥ पुरुकुत्स का दायाद महान् यश वाला त्रसद्दस्यु था। नर्मदा मे उसका पुत्र सम्भूत नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥७४॥ सम्भूत का पुत्र प्रताप से युक्त अनरण्य हुआ जिसको कि पहिले त्रिलोकी के विजय करने मे रावण ने मार दिया था ॥७५॥

त्रसदश्वोऽनरण्यस्य हर्यश्वस्तस्य चात्मज ।
हर्यश्वात्तु दृषद्वत्या जज्ञे वसुमतो नृप ॥७६
तस्य पुत्रोऽभवद्राजा त्रिधन्वा नाम धार्मिक ।
आसीत् त्रैधन्वनश्चापि विद्वास्त्रय्या रुणप्रभु ॥७७
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभू महाबल ।
तेन भार्या विदर्भस्य हृता हत्वा दिवौकस ॥७८
पाणिग्रहणमन्त्रेषु निष्ठा सम्प्रापितेष्विह ।
विष्णुवृद्ध सुतस्तस्य विष्णु वृद्धो यत स्मृत ।
एत ह्याङ्गिरस पुत्रा क्षात्रोपेता समाश्रिता ॥७९
कामाद्बलाच्च मोहाच्च स रपराबलेन च ।
भाविनोऽथन्या व बलात् तत्कृत तेन धीमता ॥८०
तमधर्मेण सयुक्त पिता त्रयोगुणोऽत्यजत् ।
अपध्वसेति बहुशोऽवदत् क्रोधसमन्वित ॥८१
पितर सोऽब्रवीत्क्व गच्छामीतिव मुहु ।
पिता चनमथोवाच श्वपाक सह वर्तय ॥८२
नाह पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपासन ।
इत्युक्त स निराक्रामन्नगराद्वचनाद्विभो ॥८३

अनरण्य का पुत्र प्रसदश्व हुआ और उसका पुत्र हर्यश्व हुआ था। हर्यश्व से दृषद्वती मे वसुमत नृप ने जन्म ग्रहण किया था ॥७६॥ उसका पुत्र परमधार्मिक त्रिधन्वा नाम वाला राजा हुआ। त्रिधन्वा का त्रयी मे विद्वान् रण प्रभु पुत्र था ॥७७॥ उसका सत्य व्रत नाम वाला महा बलवान् कुमार हुआ। उसने देवो का हनन करके विदर्भ की भार्या का हरण किया था ॥७८॥ यहाँ पाणिग्रहण के मन्त्रो को निष्ठा सम्प्रापित होने पर उसका विष्णुवृद्ध पुत्र कहलाया गया है। ये सब अङ्गिरा के पुत्र थे जो कि क्षात्रधर्म से युक्त समाश्रित हुए थे ॥७६॥ कामसे—बलसे—मोहसे और सङ्घर्षण बल के द्वारा तथा होनेवाले अर्थ के बलसे उस बुद्धिमान् ने वह सब किया था ॥८०॥ त्रयीगुण पिता ने अधर्म से शयुक्त उमको त्याग दिया था और क्रोध से युक्त होते हुए 'अपध्वस'—अर्थात् चलाजा-ऐसा बहुत बार कहा ॥८१॥ उसने पिता से कहा—मैं कहाँ जाऊँ। इसके पश्चात् पिताने इससे कहा श्वपाको के साथ बरताव कर अर्थात् निवास करो ॥८२॥ हे कुलपासन ! मैं तुझ पुत्र से पुत्र का ग्रर्थी नही हूँ। हे विभो ! इस प्रकार से कहागया वह नगर से वचन मानकर निकल गया।८३।

न चैन धारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः।
स तु सत्यव्रतो धीमाञ्छ्वपाकावसथान्तिकम्।
पित्रा मुक्तोऽवसद्वीर पिता चास्य वन ययौ ॥८४
तस्मिन्तु विषये तस्य नावर्षत् पाकशासन।
समा द्वादश सपूर्णास्तेनाधर्म्मेण वै तदा ॥८५
दारास्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपा।
सन्यस्य सागरा नूपे चचार विपुल तप ॥८६
तस्य पत्नी गले बद्धा मध्यम पुत्रमौरसम्।
शिक्षया भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै ॥८७
त तु बद्ध गले दृष्ट्वा विक्रीत त नरोत्तम।
महर्षिपुत्र धर्म्मात्मा मोक्षयामास सुव्रत ॥८८
सत्यव्रतो महाबुद्धिर्भरण तस्य चाकरोत्।
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ॥८९

मा नवद्गालवो नाम गले बद्धा महात्मा ।
महर्षि कौशिकस्तातस्तेन वार्येण मोक्षितः ॥६०

भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने इसका आश्रय नहीं दिया और धीमान् वह सत्यव्रत पिता के द्वारा मुक्त किया गया। वीर श्वपाकों के घर के समीप में रहने लगा और इसका पिता वन में चला गया था ॥८४॥ उसके उस देश में इन्द्र ने वर्षा नहीं की और उस समय उस अधम से बारह वर्ष पूरे वर्षा नहीं हुई ॥८५॥ महान् तपस्वी विश्वामित्र ने उसके देश में स्त्री को छोड़ कर सागरानूप में बड़ा भारी तप किया था ॥८६॥ उसकी पत्नी ने मध्यम और अपने पुत्र को गले में बाँधकर भिक्षा से भरणार्थ के लिये सौ गौएँ बेच दिया था। नरों में श्रेष्ठ मुनि ने उसको गले में बँधा हुआ और विक्रीत देख कर उस महर्षि पुत्र को धर्मात्मा ने मुक्त करा दिया था ॥८७-८८॥ महान् बुद्धि वाले सत्य व्रतन उसका भरण किया था और यह विश्वामित्र के सन्तोष तथा अनुकम्पा के लिये ही किया था ॥ ८९॥ वह महा तपस्वी गले में बद्ध गालव नाम वाला हुआ था। महर्षि कौशिक उसके तात थे क्योंकि उसने पराक्रम से मुक्त कराया था ॥९०॥

तस्य व्रतेन भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया।
विश्वामित्रकलत्रञ्च बभार विनये स्थितः ॥९१
हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनचरान्।
विश्वामित्राश्रमाभ्याशे तन्मांसमपबन्धत ॥९२
उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम्।
पितुर्नियोगादभजन्नृपे तु वनमास्थिते ॥९३
अयोध्याञ्चैव राज्यञ्च तथैवान्तःपुरं मुनिः।
याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठः परिरक्षितः ॥९४
सत्यव्रतस्तु बाल्यात्तु भाविनोऽर्थस्य वै बलात्।
वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास मन्युना ॥९५
पित्रा त्वस्तेन राष्ट्रात् परित्यक्तं स्वमात्मजम्।
न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन वै ॥९६

उसके व्रत से–भक्ति से–कृपा से और प्रतिज्ञा से विनय में स्थित होकर विश्वामित्र की स्त्री का भरण किया था ॥९१॥ मृगों को वराहों को और वनमें विचरण करने वाले महिषों को मार कर विश्वामित्र के आश्रम के समीप मे उनके मास को पकाया था ॥९२॥ उपांशु व्रत में समास्थित होकर बारह वर्ष की दीक्षा को राजा के वनमें चले जाने पर पिता की आज्ञा से सेवन किया था ।९३। अयोध्या को–राज्य से तथा अन्तःपुर को याज्योपाध्याय से योग से मुनि वसिष्ठ ने परिरक्षित किया था ॥९४॥ सत्यव्रत ने बाल्याकाल से भावि अर्थ के बल से वसिष्ठ पर अत्यधिक क्रोध धारण किया था ॥९५॥ पिता के द्वारा रोते हुए उस समय राष्ट्र से परित्यक्त अपने आत्मज को मुनि वसिष्ठ ने कारण वश वारण नहीं किया था ॥९६॥

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे ।
एवं सत्यव्रतस्तात् वै कृतवान् सप्तमे पदे ॥९७
जानन् धर्म्मान् वसिष्ठस्तु न च मन्त्रानिहेच्छति ।
इति सत्यव्रते रोषं वसिष्ठो मनसाकरोत् ॥९८
गुरुबुंद्धया तु भगवान् वसिष्ठः कृतवांस्तदा ।
न तु सत्यव्रतो बुद्धया उपांशुव्रतमस्य वै ॥९९
तस्मिश्चोपरते यो यत्पितुरासीन्महामना ।
तेन द्वादशवर्षाणि नावर्षत् पाकशासन ॥१००
तेन त्विदानी बहुधा दीक्षा तां दुर्बलां मुनि ।
कुलस्य निष्कृतिः स्वस्य कृतेयञ्च भवेदिति ॥१०१
ततो वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ।
अभिषेक्ष्याम्यहं राज्ये पश्चादेनमिति प्रभुः ॥१०२
स तु द्वादशवर्षाणि दीक्षान्तामुद्वहन् बली ।
अविद्यमाने मासे तु वसिष्ठस्य महात्मन ॥१०३
सर्व्वकामदुघां धेनुं सददर्श नृपात्मज ।
तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः ॥१०४

पाणिग्रहण के मन्त्रों की निष्ठा सप्तम पद में होती है। इसी प्रकार से

सत्यव्रत के सप्तम पद में उनको किया था ॥६७॥ वसिष्ठ मुनि धर्मों को जानते हुए वहाँ पर मन्त्रों को नहीं चाहते हैं। इसलिये वसिष्ठ ने सत्यव्रत पर मन से रोष किया था ॥६८॥ भगवान् वसिष्ठ ने उस समय बुद्धि से गुरु किया था। सत्यव्रत ने इसकी बुद्धि से उपांशुव्रत नहीं किया था ॥६६॥ उसके उपरत होने पर जो जिसके पिता का महामना था उससे इन्द्रदेव बारह वर्ष तक नहीं बरसे थे ॥१ ॥ इससे इस समय प्राय उस दुर्बल दीक्षा को भूमि पर कुलकी और अपनी निष्कृति यह की हुई होनी चाहिए ॥१०१॥ इसके पश्चात् भगवान् वसिष्ठ ने पिता के द्वारा त्यक्त को निवारण किया था और प्रभु ने पीछे मे इसको राज्यासन पर अभिषिक्त करूगा–कहा—।१ २॥ वही उसने द्वादश वर्ष तक दीक्षान्त्रा को उद्वहन करते हुए महात्मा वसिष्ठ के मास के अविद्यमान होने पर नृपात्मज ने समस्त कामनाओं के दोहन करने वाली धेनु को देखा था और उसको देखकर क्रोधसे–मोहसे और श्रमसे क्षुधा से युक्त हुआ ॥१ ४॥

दस्युधर्म्म मतो दृष्ट्वा जघान बलिना वर ।
स तु मास स्वय चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् १०५
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्त तदात्यजत् ।
प्रोवाच चव भगवान् वसिष्ठस्त नृपात्मजम् ॥१०६
पातये क्र र हे क्रू र तव शकुमयोमयम् ।
यदि ते त्रीणि शकूनि न स्युर्हि पुरुषाधम ॥१०७
पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च ।
अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रम ॥१ ८
एव स त्रीणि शकूनि दृष्ट्वा तस्य महातपा ।
त्रिशकुरिति होवाच त्रिशकुस्तेन स स्मृत ॥१०९
विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते ।
ततस्तस्म वर प्रादात्तदा प्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥११

बलियो म श्रेष्ठ न देखकर दस्यु के धम को प्राप्त हुए धेनु हनन किया और उसने स्वय मांस को विश्वामित्र के आत्मजो को खिलाया था। यह श्रवण करके वसिष्ठ ने उसे उसी समय त्याग दिया था और भगवान् उस नृप के

आत्मज से बोले ॥१०५-१०६॥ हे क्रूर ! हे पुरुषों में अधम ! यदि तुझे तीन शकु नहीं हो तो तुझे शकुमय भय में पातन करता हूँ ॥१०७॥ पिता के अपरितोष होने से—गुरु की दोग्ध्री धेनु के वध करने से और अप्रोक्षित के उपयोग से तेरा तीन प्रकार का व्यतिक्रम है ॥१०८॥ इस प्रकार से उसके तीन शकुओं को देखकर महातपस्वी उसे त्रिशकु इस नाम से बोले और इससे वह त्रिशकु कहा गया है ॥१०९॥ आये हुए विश्वामित्र ने दाराओं के भरण करने पर तब त्रिशकु स प्रसन्न होते हुए उसे वरदान दिया था ॥११०॥

छन्द्यमानो वरेणाथ गुरु ब्रवे नृपात्मज ।
अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके ॥१११
अभिषिच्य राज्ये पित्र्ये याजयामास त मुनि ।
मिषता दैवतानाञ्च वसिष्ठस्य च कौशिक ।
सशरीर तदा त वै दिवमारोपयत् प्रभु ॥११२
मिषतस्तु वसिष्ठस्य तदद्भुतमिवाभवत् ।
अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ पौराणिका जना ॥११३
विश्वामित्रप्रसादेन त्रिशकुर्दिवि राजते ।
देवै सार्द्ध महातेजानुग्रहात्तस्य धीमत ॥११४
शनैर्यात्यबला रम्या हेमन्ते चन्द्रमण्डिता ।
अलकृता त्रिभिर्भावैस्त्रिशकुग्रहभूषिता ॥११५
तस्य सत्यरता नाम भार्या केकयवशजा ।
कुमार जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥११६

बारह वर्ष के अनावृष्टि के भय के चले जाने पर वर से छन्द्यमान होते हुए नृपात्मज गुरु से बोला ॥१११॥ पिता के राज्य पर अभिषेक करके कौशिक मुनि ने मिष होने वाले देवताओं के और वसिष्ठ के लिये यजन कराया था। तब प्रभु विश्वामित्र ने उस त्रिशकु को शरीर के सहित स्वर्ग में आरोपित कराया था ॥११२॥ मिष होते हुए वसिष्ठ को वह एक अद्भुत कार्य जैसा हुआ था। यहाँ पर भी पौराणिक पुरुष इन दो श्लोकों को उदाहृत किया करते हैं ॥११३॥ विश्वामित्र मुनि के प्रसाद से त्रिशकु स्वर्ग में शोभा देता है। परम

श्रीमान् उसके अनुग्रह से जोकि महान् तेज से युक्त है वह त्रिशंकु देवी के साथ स्वर्ग मे विराजमान होता है ॥११४॥ त्रिशंकु ग्रह से भूषित तीन भावों से बल कुल चन्द्र से मण्डित रम्य अबला हेमन्त मे शन जान जाती है ॥११५॥ उसकी सत्य मे रत रहने वाली अर्थात् सत्यरता इस नाम वाली भार्या जोकि कैकय के वंश मे जन्मी थी उसने कल्मष से रहित हरिश्चन्द्र कुमार को जन्म दिया था ॥११६॥

स तु राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति श्रुत ।
आहर्त्ता राजसूयस्य सम्राडिति परिश्रुत ॥११७
हरिश्चन्द्रस्य तु सुतो रोहितो नाम वीर्य्यवान् ।
हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारीत उच्यते ॥११८
विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतु ।
जेता सर्व्वस्य क्षत्रस्य विजयस्तेन स स्मृत ॥११९
रुरुकस्तनयस्तत्र राजा धर्म्मार्थकोविद ।
रुरुकाद्धृतक पुत्रस्तस्मा द्वाहुश्च जज्ञिवान् ॥१२०
हैहयस्तालजङ्घ श्च निरस्तो व्यसनी नृप- ।
शकयवनकाम्बोज पारद पह्लवस्तथा ॥१२१
नात्यथ धर्म्मिकोऽभूत् स धर्म्म्ये सत्ययुगे तथा ।
सगरस्तु सुतो बाहोजज्ञ सह गरेण वै ।
भृगोराश्रममासाद्य तुर्वेण परिरक्षित ॥१२२
आग्नेय मस्त्र लब्ध्वा तु भार्गवात् सगरो नृप ।
जघान पृथिवीं कृत्वा तालजङ्घान् सहैहयान् ॥१२३

वह राजा हरिश्चन्द्र त्रैशङ्कव इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। वह राजसूय का आहरण करने वाला तथा सम्राट् परिश्रुत हुआ था ॥११७॥ सम्राट् हरिश्चन्द्र का पुत्र वीर्यवान् रोहित नाम वाला था। रोहित का हरित था कि चञ्चुहारीत कहा जाता है ॥११८॥ चञ्चु हारीत के विजय और सुदेव दो पुत्र हुए थे। समस्त क्षत्रियों को वह जीतने वाला था इसलिए वह विजय कहा गया है ॥११९॥ वहाँ रुरुक पुत्र हुआ जोकि धर्म और अर्थ का पण्डित राजा था। रुरुक से

हृतक पुन हुआ और उससे बाहु उत्पन्न हुआ ।।१२०।। वह व्यसनी राजा हैहय–तालजङ्घ–शक–यवन–काम्बोज–पारद और पह्लवो के द्वारा निरस्त किया गया था ।।१२१।। वह अत्यन्त धार्मिक उस धर्म युक्त सत्य युग मे नही हुआ था। बाहु का पुत्र सगर गरके साथ उत्पन्न हुआ था। भृगु के आश्रम मे पहुच कर तन के द्वारा परिरक्षित हुआ था ।।१२२।। उस सागर नृप ने भार्गव से आग्नेय अस्त्र को प्राप्त कर पृथ्वी पर जाकर उसने तालजङ्घों को हैहयो का हनन किया था ।।१२३।।

शकाना पह्लवानाञ्च धर्म्मान्निरसदच्युत ।
क्षत्रियाणा तथा तेपा पारदानाञ्च धर्म्मवित् ।।१२४
कथ स सगरो राजा गरेण सह जज्ञिवान् ।
किमर्थञ्च शकादीना क्षत्रियाणा महौजसाम् ।
धर्म्मान् कुलोचितान् क्रुद्धो राजा निरसदच्युत ।।१२५
बाहोर्व्यसनिनस्तस्य हृत राज्य पुरा किल ।
हैहयैस्तालजघैश्च शकै सार्द्धं समागतै ।।१२६
यवना पारदाश्चैव काम्बोजा पह्लवास्तथा ।
हैहयार्थ पराक्रान्ता एते पञ्चगणास्तदा ।।१२७
हृत राज्य बलीयोभिरेभिः क्षत्रियपुङ्गवै ।
हृतराज्यस्तदा बाहु सन्यस्य नु तदा नृप ।
वन प्रविश्य धर्म्मात्मा सह पत्न्या तपोऽचरत् ।।१२८
कस्यचित्त्वथ कालस्य तोयार्थ प्रस्थितो नृप ।
वृद्धत्वाद् दुर्बलत्वाच्च अन्तरा स ममार च ।।१२९
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् ।
सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघासया ।।१३०

अच्युत ने शको को तथा पह्नवो को धर्म्म से निरस्त कर दिया था। धर्म के ज्ञाता ने इसी प्रकार उन क्षत्रिय पारदो को भी कर दिया था ।।१२४।। ऋषियो ने कहा—वह सगर राजा गर के साथ किस तरह उत्पन्न हुआ था ? और किसलिये शकादि क्षत्रिय जो महान् ओज वाले थे, अच्युत राजा ने क्रुद्ध

होकर कुलोचितो को धर्मो को निरस्त किया था ॥१२५॥ श्री सूतजी ने कहा—पहिले समय में व्यसन वाले वह बाहु जिस का सम्पूर्ण राज्य हरण कर लिया था और उसके हरण वाले शब्दो के साथ आये हुए हैहय और तालजङ्घ थे। ॥१२६॥ यवन-पारद-काम्बोज और पह्लव ये पाँच गण उसम खूब अधिक बल वालो के द्वारा उसके राज्य का हरण किया गया था। जब उस समय वह राज्य हीन होगया तो वह बाहु राजा सन्यास ग्रहण करके वन म प्रविष्ट होगया और धर्मात्मा उसने अपनी पत्नी के साथ तपश्चर्या की थी ॥१२८॥ किसी काल के बल के लिये राजा ने प्रस्थान किया था किन्तु वह वृद्ध होने के तथा दुर्बल होने के कारण से बीच म मर गया था ॥१२६॥ उसकी पत्नी यादवी गर्भ से युक्त थी ह भी उसके पीछे से गई थी। उसकी सपत्नी ने गर्भ के मारने की इच्छा से उसे गर दे दिया था ॥१३ ॥

सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वह्नौ तं समरोहयत् ।
और्वस्ता भार्गवो दृष्ट्वा कारुण्याद्विन्यवर्त्तयत् ॥१३१
तस्याश्रमे तु तद्गर्भ सा गरेण तदा सह ।
व्यजायत महाबाहु सगर नाम धार्मिकम् ॥१३२
और्वस्तु जातकर्मादीन् कृत्वा तस्य महात्मन ।
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥१३३
जामदग्न्यात्तदाग्नेयममरैरपि दुःसहम् ।
स तेनास्त्रबलेनैव बलेन च समन्वित ।
जघान हैहयान् क्रुद्धो रुद्र पशुगणानिव ॥१३४
ततः शकान् सयवनान् काम्बोजान् पारदांस्तथा ।
पह्लवांश्च व ति शपान् कर्तु व्यवसितो नृप ॥१३५
ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ।
वसिष्ठ शरण सर्वे प्रपन्ना शरणैषिण ॥१३६
वसिष्ठस्तान् तथेत्युक्त्वा समयेन महामुनि ।
सगर वारयामास तेषां दत्त्वाऽभयं तदा ॥१३७

उस यादवी न अपन स्वामी की चिता बनाकर अग्नि मे उसके साथ

रामारूढ़ होगयी थी। और्व भार्गव ने उसे देखकर करुणा से उसे निवारण किया था ॥१३१॥ उसके आश्रम में उस समय उसने उस गर्भ को गर (विष) के साथ महान् बाहुओं वाले परम धार्मिक सगर नाम वाले को जन्म दिया था ॥१३२॥ और्व ने उस महात्मा के जात कर्मादि संस्कारों को करके फिर वेद शास्त्रों को पढ़ाया और इसके अनन्तर अस्त्रों की विद्या सिखाकर अस्त्र दिये ॥१३३॥ जामदग्न्य से वह आग्नेय अस्त्र प्राप्त किया जाकि असुरों को भी दुःसह था। उसने उस अस्त्र के बल से ही तथा बल से समन्वित होते हुए अत्यन्त क्रुद्ध होकर जैसे रुद्र पशुगणों का हनन करते हैं उसी भाँति उसने हैहयों का वध कर दिया ॥१३४॥ इसके अनन्तर शकों को—यवनों को—काम्बोजों को—पारदों को तथा पह्लवों को सबको निःशेष करने का राजा ने स्थिर कर लिया था ॥१३५॥ वीर और महान् आत्मा वाले सगर के द्वारा वध्यमान वे सब शरण की इच्छा वाले होते हुए वसिष्ठ मुनि की शरणागति में उपस्थित होगये थे ॥१३६॥ वसिष्ठ मुनि ने उनको 'तुम्हारी रक्षा होगी' तथास्तु यह कहकर महामुनि ने प्रतिज्ञा की और उन सबको अभय दान देकर सगर को वध करने से वारण कर दिया था ॥१३७॥

सगरः स्वाम्प्रतिज्ञाञ्च गुरोर्वाक्यं निशम्य च।
धर्म्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह ॥१३८
अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत्।
यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानान्तथैव ॥१३९
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः।
निःस्वाध्यायवषट्कारा कृतास्तेन महात्मना ॥१४०
शका यवनकाम्बोजा पह्लवा पारदैः सह।
केलिस्पर्शा माहिषिका दार्वाश्चोला खसास्तथा ॥१४१
सर्व्वे ते क्षत्रियगणा धर्म्मस्तेषां निराकृतः।
वसिष्ठवचनात्पूर्वं सगरेण महात्मना ॥१४२
स धर्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम्।
अश्वं विचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥१४३

तस्य चारयत सोऽश्व समुद्र पूर्वदक्षिणे ।
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिञ्च व प्रवेशित ॥१४४

सगर ने अपनी प्रतिज्ञा को और गुरू के वाक्य को श्रवण कर उनके धम का हनन किया और वेषान्यत्व किया था ॥१३८॥ शक जाति वालो का आधा शिर मुड़वा कर उन्हे छोड़ दिया—यवन जाति वालो का समस्त शिर मुड़वा दिया और काम्बोजो को भी ऐसा ही किया था ॥१३६॥ पारदो को मुक्त केश और पह्लवो को श्मश्रुधारी स्वाध्याय से हीन तथा वषट्कार से रहित उस महात्मा ने कर दिया था ॥१४ ॥ शक-यवन काम्बोज-पह्लव पारद-कोलिसर्प माहिषिक-दाव-चोल और खस मे समस्त क्षत्रियो के जो गण थे इन सबका वसिष्ठ मुनि के वचन से महात्मा सगर ने धम निराकृत कर दिया था ॥१४१॥ ॥१४२॥ उस धर्म से विजय प्राप्त करने वाले राजा सगरने इस समस्त भूमण्डल को जीत कर वाजिमेध यज्ञ के करने के लिये दीक्षित होते हुए उसने यज्ञ के अश्व को विचरण कराया था ॥१४३॥ उसका घुमाया जाने वाला वह अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा पूर्व दक्षिण समुद्र पर वेला के समीप मे अपहरण किया गया था और उसे अपहृत करके भूमि के अन्दर प्रवेशित कर दिया गया था ॥१४४॥

स त देश सुत सर्वं खनयामास पार्थिव ।
आसेदुश्च ततस्तस्मिस्तदन्तस्ते महार्णवे ॥१४५
तमादिपुरुष देव हरिं कृष्ण प्रजापतिम् ।
विष्णु कपिलरूपेण हस नारायण प्रभुम् ॥१४६
तस्य चक्षु समासाद्य तेजस्तत् प्रतिपद्यते ।
दग्धा पुत्रास्तदा सर्वे चत्वारस्त्ववशेषिता ॥१४७
बर्हिकेतु सकेतुश्च तथा धर्म्मरतस्तथ ।
शूर पञ्चवनश्च व तस्य वशकरा प्रभो ॥१४८
प्रादाच्च तस्य भगवान् हरिर्नारायणो वरान् ।
अक्षयत्व स्ववशस्य वाजिमेधशत तथा ।
विभु पुत्र समुद्रञ्च स्वर्गे व स तथाक्षयम् ॥१४६

स समुद्रोऽश्वमादायव वन्दे (?) सरितापति ।
सागरत्व च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ॥१५०
त चाश्वमेधिक सोऽश्व समुद्रात् प्राप्य पार्थिव ।
आजहाराश्वमेधाना शत चैव पुन पुन ॥१५१

सम्राट् सगर ने उसी स्थान को पुत्रो के द्वारा जो कि सख्या मे साठ हजार थे खुदवाया था। इसके अनन्तर उस स्थान मे उसके नीचे महार्णव मे उन्होने देखा कि वहाँ आदि पुरुष हरि–कृष्ण–प्रजापति–विष्णु–हस–प्रभु नारायण कपिल मुनि के स्वरूप से स्थित हैं ॥१४५-१४६॥ उनके नेत्र के सामने प्राप्त होते ही उसका तेज ऐसा तीव्र था कि उसी समय वे सब जलकर दग्ध एव भस्मी भूत होगये थे केवल चारही अवशिष्ट बचे थे ॥१४७॥ जो चार बचगये थे वे वर्हिकेतु–सकेतु–धर्मरत ये तीन थे और शूर पञ्चवन था जो कि उसके वश के करने वाले थे ॥१४८॥ भगवान् हरि नारायण ने उसको वरदान दिया था कि अपने वश का अक्षयत्व–सौ–वाजिमेध–विभु पुत्र और समुद्र तथा स्वर्ग मे अक्षीण निवास हो ॥१४९॥ वह नदियो का पति समुद्र अश्व को लेकर आया और वन्दना की। उस कर्म से उसने सागरत्व की प्राप्ति की थी ॥१५०॥ उस राजा ने समुद्र से उस आश्वमेधिक अश्व की प्राप्ति कर फिर बार-बार सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे ॥१५१॥

षष्टिपुत्रसहस्राणि दग्धान्यश्वानुसारिणाम् ।
तेषा नारायण तेज प्रविष्टाना महात्मनाम् ।
पुत्राणान्तु सहस्राणि षष्टिस्तु इति न श्रुतम् ॥१५२
सगरस्यात्मजा राज्ञ कथ जाता महाबला ।
विक्रान्ता षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा वद ॥१५३
द्वे पत्न्यौ सगरस्यास्ता तपसा दग्धकिल्बिषे ।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामत ॥१५४
कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी ।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥१५५

श्रौवस्ताभ्या वर प्रादात् तपसाराधित प्रभु ।
एका जनिष्यते पुत्र वंशकर्त्तारमीप्सितम् ।
षष्टिपुत्र सहस्राणि द्वितीया जनयिष्यति ॥१५६
मुनेस्तु वचन श्रुत्वा केशिनी पुत्रमेककम् ।
वंशस्य कारण श्रेष्ठा जग्राह नृपसंसदि ॥१५७
षष्टिपुत्रसहस्राणि सुपर्णभगिनी तथा ।
महात्मनस्तु जग्राह सुमति स्वमतिर्यथा ॥१५८

उस अश्वमेध यज्ञ के अश्व के पीछे अनुसरण करने वाले उस राजा के साठ सहस्र पुत्र दग्ध होगये और उन महात्माओ मे नारायण के तेज ने प्रवेश किया था । वे पुत्र साठ हजार थे ऐसा हमने सुना है ॥१५२॥ ऋषियो ने कहा—राजा सगर के महान् बलवाले परम विक्रान्त साठ सहस्र किस विधि से उत्पन्न हुए थे कृपा करके यह हम बतलाइये ॥१५३॥ श्री सूतजी ने कहा—राजा सगर की तपस्या से पापो को दग्ध करने वाली दो पत्नियाँ थी । उनमे जो ज्येष्ठ थी वह विदर्भ की पुत्री नाम से केशिनी थी ॥१५४॥ छोटी जो उस राजा सगर की पत्नी थी वह बहुत ही अधिक धर्म वाली थी और अरिष्ट नेमि की पुत्री थी जो कि इस भूमि मे अत्यन्त अप्रतिम रूप-सौन्दर्य से युक्त थी ॥१५५॥ तप से आराधना किये हुए प्रभु और्व ने उन दोनो को वरदान दिया था कि उनमे से एक तो वंश के चलाने वाला अभीष्ट पुत्र जनेगी और दूसरी साठ हजार पुत्रो को जनन देगी ॥१५६॥ केशिनी ने मुनि के वचन को सुनकर जो कि एक पुत्र वंश चलाने वाला बताया था उसी वरदान को नृप ससद मे उसने स्वीकार कर लिया था ॥१५७॥ सुपर्ण की भगिनी ने जमी अच्छी अपनी मति थी उसके अनुसार महात्मा के साठ सहस्र पुत्रो वाले वरदान को ग्रहण किया था ॥१५८॥

अथ काले गते ज्येष्ठा ज्येष्ठ पुत्र व्यजायत ।
असमञ्ज इति ख्यात काकुत्स्थ सगरात्मजम् ॥१५९
सुमतिस्त्वपि जज्ञ व गर्भतुम्ब यशस्विनी ।
षष्टिपुत्रसहस्राणि तुम्बमध्याद्विनि सृता ॥१६०

घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान् न्यदधत्तत ।
धात्रीश्चैकैकश प्रादात् तावती पोषणे नृप ॥१६१
ततो नवसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम् ।
कुमारास्ते महाभागा सगरप्रीतिवर्द्धना ॥१६२
कालेन महता चैव यौवन प्रतिपेदिरे ।
पुत्रषष्टिसहस्राणि तेषामश्वानुसारिणाम् ॥१६३
स तु ज्येष्ठो नरव्याघ्र सगरस्यात्मसम्भव. ।
असमञ्ज इति ख्यातो वह्निकेतुर्महाबल ॥१६४
पौराणामहिते युक्त पित्रा निर्वासित पुरा ।
तस्य पुत्रोऽशुमान्नाम असमञ्जस्य वीर्यवान् ॥१६५

इसके अनन्तर समय आने पर जो बडी रानी थी उसने ज्येष्ठ पुत्र को उत्पन्न किया और वह सगर का पुत्र काकुत्स्थ असमञ्जस इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥१५६॥ यशस्विनी सुमति ने भी गर्भ का एक तुमा पैदा किया जिस तुम्बे से साठ हजार पुत्र निकल पडे थे ॥१६०॥ घृत से भरे हुए कलशों में उन गर्भों को रख दिया गया था। राजा ने एक-एक धाय उन सब के पोषण करने के लिये देदी थी ॥१६१॥ इसके बाद नौमास के समाप्त होने पर सगर की प्रीति के बढाने वाले महाभाग से युक्त सुख पूर्वक वे समस्त कुमार उठ खडे हुए थे ॥१६२॥ महान् काल के व्यतीत होजाने पर वे सब यौवनावस्था को प्राप्त हुए थे। उस अश्वमेध के अश्व का अनुसरण करने वाले ये ही साठ सहस्र सगर के पुत्र थे ॥१६३॥ जो सब में बडा सगर का नर व्याघ्र पुत्र था वह 'असमञ्जस'-इस नाम से ख्यात हुआ था। वह्निकेतु महान् बलवान् था ॥१६४॥ वह क्योंकि नगर निवासी जनों का अहित किया करता था। इसलिये पिता ने उसको निकाल दिया अर्थात् देश निकाला देदिया था। उस असमञ्जस का महा पराक्रमी अंशुमान् नाम वाला पुत्र हुआ था ॥१६५॥

तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दिलीप इति विश्रुत ।
दिलीपात्तु महातेजा वीरो जातो भगीरथ ॥१६६

येन गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा विमानरुपशोभिता ।
ईजाऽनेन समुद्राद्व दुहितृत्वेन कल्पिता ।
अत्राप्युदाहरन्तीम इलोक पौराणिका जना ॥१६७
भगीरथस्तु ता गङ्गामानयामास कर्मभि ।
तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वशवित्तम ॥१६८
भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह ।
नाभागस्तस्य दायादो नित्य धर्मपरायण ॥१६९
अम्बरीप सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ।
एव वशपुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥१७०
नाभागेरम्बरीपस्य भुजाभ्या परिपालिता ।
बभूव वसुधात्यथ तापत्रयविवर्जिता ॥१७१
अयुतायु सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् ।
अयुतायोस्तु दायाद ऋतुपर्णो महायशा ॥१७२

उस अशुमान् का का पुत्र राजा दिलीप हुआ जोकि अत्यन्त प्रसिद्ध और परम धर्मात्मा हुआ था । दिलीप से महान् तेज के धारण करने वाला राजा भगीरथ उत्पन्न हुआ ॥१६६॥ जिसने समस्त नदियो म परमश्रेष्ठ गङ्गा को जो कि विमानो से उपशोभित इसने समुद्र से दुहिता के स्वरूप मे कल्पित की थी । यहाँ पर भी पौराणिक लोग इस श्लोक को उदाहृत किया करते हैं ॥१६७॥ भगीरथ कर्मों के द्वारा उस गङ्गा को यहाँ लाया था । इसीलिये उसके वश के ज्ञाताओ के द्वारा गङ्गा भगीरथी इस नाम से कही जाती है ॥१६८॥ भगीरथ का पुत्र श्रुत नाम वाला हुआ था और उसका दायाद नित्य ही धर्म मे परायण नाभाग–इस नाम वाला हुआ था ॥१६९॥ उसका पुत्र राजा अम्बरीष हुआ उसका पुत्र सिन्धुद्वीप हुआ था । इस तरह वश के पुराण को जानने वाले गान करते हैं—यह सुना है नाभाग के पुत्र अम्बरीप हुआ जिसकी भुजाओ से यह वसुधा तीनो तापो से रहित होती हुई परिपालित हुई थी ॥१७१॥ उस सिन्धु द्वीप का पुत्र अयुतायु बडा वीर्यवान् हुआ था और अयुतायु का दायाद महान् यश वाला ऋतुपर्ण हुआ था ॥१७२॥

दिव्याक्षहृदज्ञोऽसौ राजा नलसखो बली ।
नलौ द्वाविति विख्यातौ पुराणेषु दृढव्रतौ ॥१७३
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः ।
ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत् सर्व्वकामो जनेश्वर ॥१७४
सुदासस्तस्य तनयो राजा हंसमुखोऽभवत् ।
सुदासस्य सुत प्रोक्त सौदासो नाम पार्थिव ॥१७५
ख्यात कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहश्च स ।
वसिष्ठस्तु महातेजा क्षेत्रे कल्माषपादके ।
अश्मक जनयामास इक्ष्वाकुकुलवृद्धये ॥१७६
अश्मकस्योरकामस्तु मूलकस्तत्सुतोऽभवत् ।
अत्राप्युदाहरन्तीम मूलक वै नृप प्रति ॥१७७
स हि रामभयाद्राजा स्त्रीभि परिवृतोऽवसत् ।
विवस्त्रस्त्राणमिच्छन् वै नारीकवचमीश्वर ॥१७८
मूलकस्यापि धर्मात्मा राजा शतरथ स्मृत ।
तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजा चैडविडो बली ॥१७९
आसीत्त्वैडिविड श्रीमान् कृतशर्मा प्रतापवान् ।
पुत्रो विश्वमहत्तस्य पुत्रीकस्य व्यजायत ॥१८०

यह राजा दिव्याक्ष हृदज्ञ और नलसखा था । पुराणों में दृढ व्रत वाले दो नल विख्यात है ॥१७३॥ वीरसेन का आत्मज जोकि इक्ष्वाकु कुल का उद्वहन करने वाला था ऐसा सर्व काम जनेश्वर ऋतुपर्ण का पुत्र हुआ था ॥१७४॥ उसका पुत्र सुदास हंसमुख राजा हुआ था । सुदास का पुत्र सौदास नाम वाला राजा था ॥१७५॥ वह नाम से मित्रसह कल्माषपाद ख्यात हुआ था । इक्ष्वाकु के कुल की वृद्धि के लिए महान् तेज वाले वसिष्ठ ने कल्माषपादक क्षेत्र में अश्मक का जनन कराया था ॥१७६॥ अश्मक का उरकाम और उसका पुत्र मूलक हुआ । मूलक नृप के प्रति यहाँ यह उदाहृत करते हैं ॥१७७॥ वह राजा राम के भय से स्त्रियों से परिवृत होकर रहा करता था । बिना वस्त्र वाला नारी के कवच को अपना त्राण चाहता हुआ रहता था ॥१७८॥ मूलक के भी धर्मात्मा राजा शतरथ कहा गया है । उस शतरथ से बलवान् ऐडविड राजा ने

जन्म ग्रहण किया था ॥१७९॥ ऐडविड प्रतापवान् श्रीमान् कृतवर्मा था। उस पुत्रीक का पुत्र विश्व महान् उत्पन्न हुआ ॥१८०॥

दिलीपस्तस्य पुत्रोऽभूत् खट्वाङ्ग इति विश्रुत।
येन स्वर्गादिहागम्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम्।
त्रयोऽभिसहिता लोका बुद्धया सत्येन चव हि ॥१८१
दीर्घबाहु सुतस्तस्य रघुस्तस्मान्नायत।
अज पुत्रो रघोश्चापि तस्माञ्ज्ञ स वीर्यवान्।
राजा दशरथो नाम इक्ष्वाकुकुलनन्दन ॥१८२
रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुत।
भरतो लक्ष्मणश्च व शत्रुघ्नश्च महाबल ॥१८३
माधव लवणं हत्वा गत्वा मधुवनञ्च तत्।
शत्रुघ्नेन पुरी तस्य मथुरा सन्निवेशिता ॥१८४
सुबाहु शूरसेनश्च शत्रुघ्नसहिताबुभौ।
पालयामासतु सूनु वदेह्यौ मथुरा पुरीम् ॥१८५
अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजावुभौ।
हिमवत्पर्वताभ्याशा स्फीतौ जनपदौ तयो ॥१८६
अङ्गदस्याङ्गदीया तु देशे कारपथे पुरी।
चन्द्रकेतोस्तु मल्लस्य चन्द्रवक्ता पुरी शुभा ॥१८७

उसका पुत्र दिलीप हुआ जो खट्वाङ्ग इस नाम से प्रसिद्ध था जिसने स्वर्ग से यहाँ भूमण्डल म आकर मुहूर्तभर जीवन पाकर बुद्धि से और सत्य से तीनों लोकों को अभिसहित कर दिया था ॥१८१॥ उस ख ट्वाङ्ग का पुत्र दीर्घ बाहु हुआ और फिर उस दीर्घबाहु रघु ने जन्म ग्रहण किया था। राजा रघु का पुत्र महान् पराक्रमी अज हुआ और उस अज से इक्ष्वाकु कुल का नन्दन दशरथ राजा हुआ ॥१ २॥ दशरथ के पुत्र दाशरथि राम बड़े वीर-धर्मज्ञ और लोकविश्रुत हुए और महान बलवान् भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए ॥१८३॥ माधव लवण को मारकर और मधुवन को जाकर शत्रुघ्न ने उसकी पुरी मथुरा को सन्निवेशित किया था ॥१८४॥ शत्रुघ्न के साथ सुबाहु और शूरसेन वदेह

दोनो पुत्रो ने मथुरापुरी का पालन किया था ॥१८५॥ अङ्गद और चन्द्रकेतु ये दो लक्ष्मण के पुत्र हुए थे और उन दोनो के जनपद हिमाचल पर्वत के समीप मे विस्तृत हुए थे ॥१८६॥ अङ्गद की कारुपथ देश मे अङ्गदीया नाम वाली पुरी थी और चन्द्रकेतु की जोकि मल्ल थे शुभ चन्द्रवक्त्रा नाम की पुरी थी ।१८७।

भरतस्यात्मजौ वीरौ तक्ष पुष्कर एव च ।
गान्धारविषये सिद्धे तयो पुर्यौ महात्मनो ॥१८८
तक्षस्य दिक्षु विख्याता रम्या तक्षशिला पुरी ।
पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती ॥१८९
गाथा चैवात्र गायन्ति ये पुराणविदो जना ।
रामे निबद्धास्सत्त्वार्था माहात्म्यात्तस्य धीमत ॥१९०
श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषित ।
आजानुबाहु सुमुख सिंहस्कन्धो महाभुज ॥१९१
दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ।
ऋक्सामयजुषा घोषो ज्याघोषश्च महास्वन ॥१९२
अविच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयता भुज्यतामिति ।
जनस्थाने वसन् कार्यं त्रिदशानाञ्चकार स ॥१९३
तमागस्कारिणं पूर्वं पौलस्त्य मनुजर्षभ ।
सीताया पदमन्विच्छन् निजघान महायशा ॥१९४

भरत के पुत्र बहुत वीर तक्ष और पुष्कर नाम वाले दो थे। उन दोनो महान् आत्मा वालो की गान्धार देश मे सिद्ध पुरियाँ थी ॥१८८॥ तक्ष की समस्त दिशाओ मे विख्यात तक्षशिला नाम से युक्त सुन्दर पुरी थी। वीर पुष्कर की भी पुष्करावती नाम वाली पुरी विख्यात हुई थी ॥१८९॥ जो पुराणो के ज्ञान रखने वाले विद्वान् है वे यहाँ इस विषय मे गाथा का गान किया करते हैं। धीमान् राम के माहात्म्य से राम मे समस्त सत्त्वार्थ निबद्ध थे ॥१९०॥ श्याम वर्ण वाले–युवावस्था मे सस्थित–लोहित नेत्रो से युक्त–दीप्तियुक्त मुख वाले–मित भाषण करने वाले–जानु पर्यन्त लम्बी भुजाओ वाले–सुन्दर मुख की आकृति से समन्वित–सिंह के समान कन्धो वाले–महान् भुजाओ वाले श्रीराम

थे ।।१६१।। उन श्रीराम ने दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया । श्रीराम के राज्य में ऋक–साम और यजुर्वेद की ध्वनि सदा होती थी और धनुष की प्रत्याञ्चाओं की भी महान् ध्वनि होती थी ।।१६२।। श्रीराम के राज्य में उनके शासन के समय में सदा सर्वत्र दान दो–भोजन करो यह ध्वनि अविच्छिन्न रूप से निरन्तर होती रहती थी । जनों के स्थान में निवास करते हुए उन्होंने देवों का कार्य किया था ।।१६३।। मनुजों में परमश्रेष्ठ महान् यश वाले श्रीराम ने सीता के पद अर्थात् स्थान को खोजते हुए पहिले अपराध करने वाले उस पुलस्त्य के नाती पौलस्त्य रावण का वध किया था ।।१६४।।

सत्त्वान् गुणसम्पन्नो दीप्यमान स्वतेजसा ।
अति सूर्यश्च वह्निश्च रामो दाशरथिर्बभौ ।।१६५
एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दन ।
रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे विभु ।।१६६
श्रीरामस्यात्मजो जज्ञे कुश इत्यभिधीयते ।
लवश्चान्यो महावीर्यस्तयोर्देशौ निबोधत ।।१६७
कुशस्य कोशला राज्य पुरी चापि कुशस्थली ।
रम्या निवेशिता तेन विन्ध्यपर्वतसानुषु ।।१६८
उत्तराकोशले राज्य लवस्य च महात्मन ।
श्रावस्ती लोकविख्याता कुशवंशं निबोधत ।।१६९
कुशस्य पुत्रो धर्मात्मा ह्यतिथि सुप्रियातिथि ।
अतिथेरपि विख्यातो निषधो नाम पार्थिव ।।२०
निषधस्य नल पुत्रो नभ पुत्रो नलस्य तु ।
नभस पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा तत स्मृत ।।२ १

सत्त्ववान् और समस्त गुणगणों से सम्पन्न एवं दीप्यमान दाशरथि श्रीराम ने सूर्य को और वह्नि को अपने तेज से दीप्त किया था ।।१६५।। इसी प्रकार से महान् बाहु वाले और इक्ष्वाकु राजा के कुल को आनन्द देने वाले विभु राम ने अपने गणों के साथ रावण को मारकर स्वर्ग में भेज दिया था ।।१६६।। श्रीराम का पुत्र कुश इस नाम वाले उत्पन्न हुए । और लव अन्य

महान् वीर्य वाले पुत्र थे। अब उनके देशों को भी जान लेना चाहिए ॥१६७॥ कुश का राज्य कोशल था और उसकी पुरी का नाम कुशस्थली थी जिसको कि बहुत ही सुन्दर विन्ध्य पर्वत के शिखरों में उसने निवेशित किया था ॥१६८॥ महात्मा लव का राज्य उत्तर कोशल में था और उसकी पुरी श्रावस्ती नाम वाली लोक में परम विख्यात थी। अब कुश के वंश को श्रवण करो ॥१६९॥ कुश का धर्मात्मा सुप्रिय अतिथि वाला अतिथि पुत्र था। अतिथि का निषध नाम वाला पार्थिव पुत्र था ॥२००॥ निषध का नल पुत्र हुआ और नल का नभ नाम वाला पुत्र हुआ था। नभ का पुण्डरीक हुआ और उसका क्षेमधन्वा हुआ ॥२०१॥

क्षेमधन्वसुतो राजा देवानीक प्रतापवान्।
आसीदहीनगुर्नाम देवानी कात्मज प्रभु ॥२०२
अहीनगोस्तु दायाद पारियात्रो महायशा।
दलस्तस्यात्मजश्चापि तस्माज्जज्ञे बलो नृप ॥२०३
औको नाम स धर्मात्मा बलपुत्रो बभूव ह।
वज्रनाभ. सुतस्तस्य शङ्खणस्तस्य चात्मज ॥२०४
शङ्खणस्य सुतो विद्वान् ध्युषिताश्व इति श्रुत।
ध्युषिताश्व सुतश्चापि राजा विश्वसह. किल ॥२०५
हिरण्यनाभ कौशल्यो वसिष्ठस्तत्सुतोऽभवत्।
पौष्यस्य जैमिनेः शिष्य. स्मृत सर्वेषु शर्मसु ॥२०६
शतानि संहितानान्तु पञ्च योऽधीतवांस्तत।
तस्मादधिगतो योगो याज्ञवल्क्येन धीमता ॥२०७
पुष्यस्तस्य सुतो विद्वान् ध्रुवसन्धिश्च तत्सुतः।
सुदर्शनस्तस्य सुतो अग्निवर्णः सुदर्शनात् ॥२०८

क्षेमधन्वा का पुत्र प्रतापी देवानीक राजा हुआ और देवानीक का अहीनगु नाम वाला पुत्र था ॥२०२॥ अहीनगु का दायाद महान् यश वाला पारियात्र था और इसका पुत्र दल नामक था तथा इससे बल नाम वाला नृप उत्पन्न हुआ था ॥२०३॥ इसके पश्चात् औक—इस नाम वाला परम धार्मिक

बल का पुत्र हुआ था। उससे पुत्र वज्रु नाभ हुआ और वज्रु नाभ के पुत्र शङ्खण उत्पन्न हुआ था ॥२ ४॥ शङ्खण का पुत्र परम विद्वान् ध्युपिताश्व का पुत्र राजा विश्वसन्ह हुआ ॥२ ५॥ हिरण्यनाभ कौशल्य वसिष्ठ उसका पुत्र हुआ जो समस्त शर्मों मे जैमिनि के पौत्र का शिष्य कहा गया है।२ ६। जिसने पाँच सौ संहिताओं का अध्ययन किया था और उससे धीमान् याज्ञवल्क्य ने योग का ज्ञान प्राप्त किया था ॥२ ७॥ उसका पुत्र पुष्य था जो विद्वान् था और उसका पुत्र ध्रुव सन्धि नाम वाला था। उसका पुत्र सुदर्शन और सुदर्शन से अग्निवर्ण उत्पन्न हुआ था ॥२ ८॥

अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रकस्य मनु स्मृत ।
मनुस्तु योगमास्थाय कलापग्राममास्थित ।
एकानविंशप्रयुगे क्षत्रप्रावर्त्तक प्रभु ॥२ ९
प्रसुश्रुतो मनो पुत्र सुसन्धिस्तस्य चात्मज ।
सुसन्धेश्च तथामर्ष सहस्वान्नाम नामत ॥२१०
आसीत्सहस्वत पुत्रो राजा विश्रुतवानिति ।
तस्यासीद्विश्रुतवत पुत्रो राजा बृहद्बल ॥२११
एत इक्ष्वाकुदायदा राजान प्रायश स्मृता ।
वंशे प्रधाना ये तेऽस्मिन् प्राधान्येन तु कीर्त्तिता ॥२१२
पठन् सम्यगिमा सृष्टिमादित्यस्य विवस्वत ।
प्रजावानेति सायुज्य मनोर्वैवस्वतस्य स ॥२१३
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजाना पुष्टिदस्य च ।
विपाप्मा विरजाश्च व आयुष्मान् भवतऽच्युत ॥२१४

राजा अग्निवर्ण के शीघ्र हुआ और शीघ्रक के मनु उत्पन्न हुआ। मनु तो योग मे आस्थित होकर कलाप ग्राम मे आस्थित होगया था। यह उन्नीसवें प्रयुग मे क्षात्र प्रावर्त्तक प्रभु हुआ है ॥२ ९॥मनु का पुत्र प्रसुश्रुत और उसका पुत्र सुसन्धि हुआ। सुसन्धिका अमर्ष नाम से सहस्वान् था सहस्वान् का पुत्र राजा विश्रुतवान् था और विश्रुतवान् का पुत्र राजा बृहद्बल हुआ। ये सब इक्ष्वाकु वश के दायाद राजा प्राय कहे गये हैं। जो वश मे प्रधान थे वे यहाँ

बताये गये है। इस आदित्य की सृष्टि को भली-भांति पढते हुए प्रजावान् और वैवस्वत मनु के तथा प्रजाओं पुष्टि देने वाले देव आह्लादक के सायुज्य को प्राप्त होता है। विपाप्मा विरज तथा आयुष्मान् एव अच्युत होता है। २१० से २१८।

प्रकरण ५२—सामोत्पत्तिवर्णन

योऽसौ निवेशयामास पुरन्देवपुरोपमम् ॥१
जयन्तमिति विख्यात गौतमस्याश्रमाभित ।
यस्यान्ववाये यज्ञे वै जनकादपिसत्तमात् ॥२
नेमिर्नाम सुधर्मात्मा सर्वसत्वनमस्कृत ।
आसीत् पुत्रो महाप्राज्ञ इक्ष्वाकोर्भूरितेजस ॥३
स शापेन वसिष्ठस्य विदेह समपद्यत।
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनित पर्वभिस्त्रिभि ॥४
अरण्या मथ्यमानाया प्रादुर्भूतो महायशा ।
नाम्ना मिथिरिति ख्यातो जननाज्जनकोऽभवत् ॥५
मिथिर्नाम महावीर्यो येनासौ मिथिलाभवत्।
राजासौ जनको नाम जनकाच्चाप्युदावसु ॥६
उदावसो सुधर्मात्मा जनितो नन्दिवर्द्धन ।
नन्दिवर्द्धनत शूर सुकेतुर्नाम धार्मिक ॥७
सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबल ।
देवरातस्य धर्मात्मा बृहदुक्थ इति श्रुति ॥८

सूतजी बोले—विकुक्षि के छोटे भाई निमि के वश को समझलो। इसने देवापुर के समान पुर को निवेशित किया था ॥१॥ जो गौतम के आश्रम के सामने 'जयन्त'—इस नाम से विख्यात था। जिसके अन्ववाय यज्ञ में ऋषियो मे श्रेष्ठ जनक से नेमि—इस नाम वाला अत्यधिक तेज वाले इक्ष्वाकु का पुत्र था जो भली प्रकार से धर्मात्मा-समस्त प्राणियो के द्वारा नमस्कृत अर्थात् समादर

प्राप्त करने वाला और महान् पण्डित था ।।२।।३।। वह वसिष्ठ के शाप से विदेह हो गये । उसका पुत्र मिथि नाम वाला तीन पर्वों से जन्मा था ।।४।। अरणी के मथन करने पर यह महान् यश वाला प्रादुर्भूत हुआ था । नाम से मिथि प्रसिद्ध हुआ और जनन होने से जनक हुए थे ।।५।। मिथि नाम वाले महान् पराक्रम वाले थे जिससे यह मिथिला हुई थी । यह जनक नाम वाला राजा था और जनक से उदावसु हुआ ।।६।। उदावसु से सुन्दर धनमय आत्मा वाला नन्दिवर्द्धन जन्मा । नन्दिवर्द्धन से धार्मिक और शूरवीर सुकेतु उत्पन्न हुआ ।।७।। सुकेतु से महान् बलवाला धर्मात्मा देवरात हुआ और देवरात के धर्मात्मा बृहदुक्थ हुआ—यह श्रुति है ।।८।।

बृहदुक्थस्य तनयो महावीर्य प्रतापवान् ।
महावीर्यस्य धृतिमान् सुधृतिस्तस्य चात्मज ।।९
सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतु परन्तप ।
धृष्टकेतु सुतश्चापि हयश्वो नाम विश्रुत ।।१०
हयश्वस्य मरु पुत्रो मरो पुत्रे प्रतित्वक ।
प्रतित्वकस्य धर्मात्मा राजा कीर्त्तिरथ सुत ।।११
पुत्र कीर्त्तिरथस्यापि देवमीढ इति श्रुत ।
देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य सुतो धृति ।।१२
महाधृतिसुतो राजा कीर्तिराज प्रतापवान् ।
कीर्तिराजात्मजो विद्वान् महारोमेति विश्रुत ।।१३
महारोम्णस्तु विख्यात स्वर्णरोमा व्यजायत ।
स्वर्णरोमात्मजश्चापि ह्रस्वरोमाभवन्नृप ।।१४
ह्रस्वरोमात्मजो विद्वान् सीरध्वज इति श्रुति ।
उद्भिन्ना कृपता येन सीता राज्ञा यशस्विनी ।
रामस्य महिषी साध्वी सुव्रतातिपतिव्रता ।।१५
कथ सीता समुत्पन्ना कृष्यमाणा यशस्विनी ।
किमर्थश्चाकृपद्राजा क्षेत्र यस्मिन् बभूव ह ।।१६

वृहदुच्छ का पुत्र प्रताप वाला महावीर्य हुआ और महावीय के धृतिमान् हुआ और उसके सुधृति पुत्र हुआ था ॥६॥ सुधृति के धार्मिक और शत्रुओ को तपाने वाला धृष्टकेतु पुत्र हुआ। धृष्टकेतु का पुत्र भी हर्यश्व–इस नाम से विश्रुत होने वाला उत्पन्न हुआ था ॥१०॥ राजा हर्यश्व के मरु पुत्र उत्पन्न हुआ और मरु के प्रतिस्वक हुआ तथा प्रतिस्वक के परम धार्मिक राजा कीर्त्तिरथ पुत्र हुआ था ॥११॥ कीर्त्तिरथ का पुत्र देवमीढ हुआ और देवमीढ के विबुध तथा विबुध के धृति नाम वाला सुत उत्पन्न हुआ था ॥१२॥ महाधृति का पुत्र प्रतापी राजा कीर्त्तिराज हुआ। कीर्तिराज का आत्मज अत्यन्त विद्वान् महारोमा परम प्रसिद्ध हुआ था ॥१३॥ महारोमा राजा का पुत्र परम प्रसिद्ध स्वर्णरोमा उत्पन्न हुआ था। स्वर्णरोमा का पुत्र राजा ह्रस्वरोमा हुआ ॥१४॥ ह्रस्वरोमा का आत्मज विद्वान् सीरध्वज नाम वाला हुआ था— ऐसी श्रुति है। जिस राजा ने भूमिका कर्षण करते हुए अर्थात् जोतते हुए परम यशवाली सीता को उद्भिन्न किया था जो सीता श्रीराम की पटरानी हुई थी और अत्यन्त साध्वी–अति पातिव्रत धर्म का पालन करने वाली एव सुन्दर व्रत वाली थी ॥१५॥ शाशपायन ने कहा—कृष्यमाण होती हुई सीता किस प्रकार से समुत्पन्न हुई थी ? जो कि परम यशस्विनी थी। राजा ने किस लिये भूमिका कर्षण किया था जिसके करने मे वह हुई थी ? ॥१६॥

अग्निक्षेत्रे कृष्यमाणे अश्वमेध महात्मन ।
विधिना सुप्रयुक्तेन तस्मात्सा तु समुत्थिता ॥१७
सीरध्वजात्तु जातस्तु भानुमान्नाम मैथिल ।
भ्राता कुशध्वजस्तस्य स काश्यधिपतिर्नृप ॥१८
तस्य भानुमत पुत्र प्रद्युम्नश्चप्रतापवान् ।
मुनिस्तस्य सुतश्चापि तस्मादूर्जवह स्मृत ॥१६
ऊर्जवहात् सुतद्वाज शकुनि स्तस्य चात्मज ।
स्वागत शकुनेः पुत्र सुवर्चास्तत्सुत स्मृत ॥२०
श्रुतो यस्तस्य दायाद सुश्रुतस्तस्य चात्मज ।
सुश्रुतस्य जय पुत्रो जयस्य विजय सुत. ॥२१

विजयस्य ऋत पुत्र ऋतस्य सुनय स्मृत ।
सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्यात्मजो धृति ॥२२
धृतेस्तु बहुलाश्वोऽभूद्बहुलाश्वसुत कृति ।
इत्येते मथिला प्रोक्ता सोमस्यापि निबोधत ॥२३

श्री सूतजी ने कहा—महान् आत्मा वाले के अश्वमेध म अग्नि क्षेत्र के कषण करने पर और विधि को भली भांति सुन्दरता के साथ प्रयुक्त करने से उसमे से वह सीता समुत्थित हुई थी ॥१७॥ सीरध्वज स भानुमान् नाम वाला मथिल उत्पन्न हुआ था। उसका भाई कुशध्वज था और वह काशी का स्वामी नृप था ॥१८॥ उस भानुमान् का पुत्र प्रताप वाला प्रद्युम्न था। उसका पुत्र मुनि हुआ और उससे ऊर्जवह हुआ था ॥१९॥ ऊर्जवह से सुतद्वाज हुआ और उसका पुत्र शकुनि हुआ था। शकुनि का स्वागत हुआ और स्वागत का सुवर्चा नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२ ॥ उसका अर्थात् सुवर्चा का दायाद (पुत्र) श्रुत हुआ और उसका पुत्र सुश्रुत हुआ था। सुश्रुत का पुत्र जय हुआ जय का पुत्र विजय हुआ ॥२१॥ विजय के ऋत नामक पुत्र था और ऋत के सुनय पुत्र उत्पन्न हुआ था। सुनय से वीत हव्य हुआ और वीतहव्य का पुत्र धृति हुआ ॥२२॥ धृति से बहुलाश्व हुआ और बहुलाश्व का पुत्र कृति नाम वाला था। उसमे महान् आत्मा वाले जनको का वश सस्थित रहता है। ये इतने मैथिल बताये गये हैं। अब सोम का वश जान लो ॥२३॥

प्रकरण ५३—सामोत्पत्तिवर्णन

पिता सोमस्य वै विप्रा जज्ञेऽत्रिभगवानृषि ।
सोऽत्रि तस्थौ सर्वलोका भगवान्स्तवन तेजसा ॥१
कमणा मनसा वाचा शुभान्येव समाचरन् ।
काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्द्ध बाहुमहाद्युति ॥२
सुदुश्चर नाम तपो येन तप्त महत्पुरा ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति

तस्योर्द्ध रेतसस्तत्र स्थितस्यानिमिषस्पृहम् ।
सोमत्वतनुरापेदे महाबुद्धि स वै द्विज ॥४
ऊर्द्ध माचक्रमे तस्य सोमत्व भावितात्मन ।
सोम मुस्राव नेत्राभ्या दश वा द्योतयन् दिश ॥५
त गर्भं विधिनादिष्टा दश देव्यो दधुस्तदा ।
समेत्य धारयामासुर्न च ता समशक्नुवन् ।
स ताभ्य सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भ प्रभान्वित ।
यथावभासयँल्लोकाञ्छीताशु सर्वभावन ॥७
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता स्त्रिय ।
तत स ताभि शीताशुर्निपपात वसुन्धराम् ॥८

श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! सोम के पिता ऋषि अत्रिभगवान् ने जन्म ग्रहण किया था। वह अत्रि भगवान् अपने तेज से समस्त लोकों में अति-स्थित हुए थे ॥१॥ कर्म-मन और वचन के द्वारा शुभ का भी समाचरण करते हुए महान् द्युति वाले ऊर्ध्ववाहु होकर काष्ठ और कुड्य शिला के समान होगये। ॥२॥ हमने यह सुना है कि तीन हजार दिव्य वर्षों तक जिसने पहिले महान् कठिन तप किया था ॥३॥ वहाँ पर स्थित ऊर्द्ध रेता उसके अनिमिष स्पृह सोमत्व तनु को महान् बुद्धि वाले उस द्विज ने प्राप्त किया था ॥४॥ भावित आत्मा वाले उसके ऊपर सोमत्व चलता था। नेत्रों से दशों दिशाओं का प्रका-शित करता हुआ सोम स्रवण करता था ॥५॥ उस गर्भ को उस समय ब्रह्मा के द्वारा आदेश प्राप्त करने वाली दश देवियों ने एकत्रित होकर धारण किया था किन्तु वे उसे न सहन कर सकी ॥६॥ इस के अनन्तर उन दिशाओं से वह गर्भ सहसा ही प्रभा से युक्त हो गया जिससे सबको अच्छा लगने वाला शीताशु लोकों को अवभासित कर रहा था ॥७॥ जब वे स्त्रियाँ उस गर्भ के धारण करने में समर्थ न हुई तो फिर वह शीताशु उनसे पृथ्वी पर गिर गया था। ॥८॥

पतन्त सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामह ।
रथमारोपयामास लोकाना हितकाम्यया ॥९

स हि देवमयो विप्रा धर्म्मार्थी सत्य सङ्गर ।
युक्तो वाजिसहस्र रण सितेनेति हि न श्रुतम् ॥१०
तस्मिन्निपतिते देवा पुत्रेऽग्ने परमात्मनि ।
तुष्टुवुर्ब्रह्मण पुत्रा मानसा सप्त विश्रुता ।
तत्र वाङ्गिरसस्तस्य भृगोश्च वात्मजस्तथा ।
ऋग्भिर्यजुर्भिबहुभिरथर्वाङ्गिरसैरपि ॥१२
तत सस्तूयमानस्य तेज सोमस्य भास्वत ।
आप्यायामाना लोकाश्रीन् भावयामास सर्व्वश ॥१३
समेन रथमुख्येन सागरान्ता वसुन्धराम् ।
त्रि सप्तकृत्वो विपुलश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥१४
तस्य यच्चापि तत्तज पृथिवीमन्वपद्यत ।
ओषध्यस्ता समुद्भूतास्तेजसा सज्वल त्युत ॥१५
ताभिर्धार्यत्यय लोकान् प्राश्चापि चतुर्विधा ।
पोष्टा हि भगवान् सोमो जगतो हि द्विजोत्तमा ।

समस्त लोको के पिता वह ब्रह्मा जी ने सोम को गिरता हुआ देखकर लोको के हित की कामना से रथ को आरोपित कर दिया था ॥६॥ हे विप्र वृन्द ! वह देवो से परिपूर्ण धम का अर्थी सत्य सङ्गार और श्वेत वर्ण वाले सहस्र अश्वो से युक्त था—ऐसा हमने सुना है ॥१ ॥ उस परमात्मा अग्नि के पुत्र के निपतित होने पर जो सात ब्रह्मा के प्रसिद्ध मानस पुत्र है उन्होने स्तुति की थी ॥११॥ वहाँ पर ही आङ्गिरस और उस भृगु के पुत्र ने उसी प्रकार स ऋग्वेद-यजुर्वेद और बहुत से अङ्गिरसो मे स्तवन किया ॥१२॥ इसके अनन्तर भली भाँति स्तुति किये गये उस भासमान सोम के तेज ने लोको को आप्यायित करते हुए सब ओर से भावित किया था ॥१३॥ उसने सम मुख्यरथ के द्वारा सागर पर्यन्त वसुन्धरा की इक्कीस बार प्रदक्षिणा की थी ॥१४॥ उसका जो भी तेज था वह पृथ्वी मे अनुपम हो गया और वे ओषधियो के स्वरूप मे समुत्पन्न हुई जो कि अपने तेज स भली भाँति ज्वलित हो रही है ॥१५॥ हे द्विजा

समवृन्द ! उन औषधियों से यह लोकों को धारण करता है और भगवान् सोम चारों प्रकार की प्रजाओं को तथा जगत् का भी परम पोषक है ॥१६॥

स लब्धतेजास्तपसा सस्तवैस्तैश्च कर्म्मभि ।
तपस्तेपे महाभाग पद्मानां दशतीर्दश ॥१७
हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत् ।
विभुस्तासाम्भवेत्सोम प्रख्यात स्वेन कर्म्मणा ॥१८
ततस्तस्मै ददौ राज्य ब्रह्मा ब्रह्मविदा वर ।
वीजौपधिपु विप्राणामपाञ्च द्विजसत्तमा ॥१९
सोऽभिषिक्तो महातेजा महाराज्येन राजराट् ।
लोकाना भावयामास स्वभावात्तपता वर ॥२०
सप्तविंशतिरिन्दोस्तु दाक्षायण्यो महाव्रता ।
ददौ प्राचेतसो दक्षा नक्षत्राणीति या विदु ॥२१
स तत्प्राप्य महद्राज्य सोम सोमवता प्रभु ।
समाजह्रे राजसूय सहस्रशतदक्षिणम् ॥२२
हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्वमेयिवान् ।
सदस्यस्तत्र भगवान् हरिर्नारायण. प्रभु ।
सनत्कुमारप्रमुखैराद्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृत ॥२३
दक्षिणामददत्सोमस्त्रील्लोकानिति न श्रुतम् ।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्य सदस्येभ्यश्च वै द्विजा ॥२४

वह सस्तवों और उन कर्मों के द्वारा तथा तप से तेज प्राप्त करने वाला होगया और उस महाभाग ने दशती दश पद्मों तक तपस्या की थी ॥१७॥ जो हिरण्य वर्ण वाली देवियाँ थीं उन्होंने जगत् को धारण किया है उनका विभु सोम हुआ जो अपने कर्म के द्वारा प्रख्यात है ॥१८॥ ब्रह्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा ने हे द्विजो में श्रेष्ठ ! बीजौषधियों मे विप्रों का और जलों का राज्य उसे दे दिया था ॥१९॥ तपस्या करने वालों में श्रेष्ठ वह अभिषिक्त होता हुआ इस महान् राज्य से राजाओं का राज्य तथा महान् तेजस्वी स्वभाव से लोकों को आनन्दित किया करता था । २०॥ प्राचेतस दक्ष ने इन्द्र को महान् व्रत वाली सत्ताईस

दाक्षायणी दे थी जो कि नक्षत्र नाम से जानी गई है ॥२१॥ सोम वालो के स्वामी उस सोमने उस महान् राज्य को प्राप्त करके सहस्र शत दक्षिणा वाला राजसूय यज्ञ किया था ॥२२॥ उसमे हिरण्य गर्भ उद्गाता हुए और ब्रह्मा ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए अर्थात् ब्रह्मा बने तथा सनत्कुमार आदि प्रमुख ब्रह्मर्षियो से वृत भग वान् नारायण प्रभु हरि सदस्य हुए थे ॥२३॥ हमने ऐसा सुना है कि सोम ने उन ब्रह्मर्षि मुख्य सदस्यो के लिये हे द्विज वृन्द ! तीनो लोको को दक्षिणा म था ॥ २४ ॥

त सिनी च कुहूश्च व वपु पुष्टि प्रभा वसु ।
कीर्त्तिधृ तिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्य सिषेविरे ॥२५
प्राप्यावभृथम यग्र सर्व्वदेवर्षिपूजित ।
ग्रतिराजातिराजेन्द्रो दशधातापयद्दिश ॥२६
तदा तत् प्राप्य दुष्प्रापमश्वयमृषिसस्तुतम् ।
स विभ्रममतिविप्रा विनये विनयो हृत ॥२७
बृहस्पते स वै भार्यान्तारा नाम यशस्विनीम् ।
जहार सहसा सर्व्वानवमत्याङ्गिर सुतान् ॥२८
स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिश्च ह ।
नव व्यमचयत्तारा तस्मायाङ्गिरसे तदा ॥२९
उशनास्तस्य जग्राह पार्ष्णिमाङ्गिरसो द्विजा ।
स हि शिष्यो महातेजा पितु पूव बृहस्पते ॥३०
तेन स्नेहेन भगवान् रुद्रस्तस्य बृहस्पते ।
पार्ष्णिग्राहोऽभद् व प्रगृह्याजगव धनु ॥३१
तेन ब्रह्मर्षिमुख्येभ्य परमास्त्र महात्मना ।
उद्दिश्य देवानुत्सृष्ट येनषा नाशित यश ॥ २

उस राजा सोम की सिनी–कुहू–वपु–पुष्टि–प्रभा–वसु–कीर्त्ति–धृति और लक्ष्मी इन नौ देवियो ने सेवा की थी ॥२५॥ अवभृत को प्राप्त करके व्यग्रता से रहित और समस्त देव तथा ऋषियो के द्वारा पूजित अति राजाओ का अति राजेन्द्र उसने दश प्रकार से दिशाओ को तापित किया था ॥२६॥ हे विप्रो !

उस समय में ऋषियों के द्वारा संस्तुत उस दुष्प्राप्त ऐश्वर्य को प्राप्त करके वह विनय से हत तथा नीतिहीन विशेष रूप से भ्रान्त मतिवाला होगया था ॥२७॥ उसने समस्त आङ्गिरस पुत्रों को अपमानित कर बृहस्पति की भार्या परम यशस्विनी तारा नाम वाली का सहसा हरण किया था ॥२८॥ उस समय में देवों के द्वारा तथा समस्त देवर्षियों के द्वारा वह वारित किया गया अर्थात् तारा के वापिस दे देने की याचना की गई थी किन्तु उसने उस आङ्गिरस को तारा नहीं छोड़ी थी ॥२९॥ हे द्विज वृन्द ! उस समय उस आङ्गिरस का पक्ष अथवा साथ उशना ने ग्रहण किया था वह महान् तेजस्वी बृहस्पति के पिता का पहिला शिष्य था ॥३०॥ उस स्नेह से भगवान् रुद्र देव अजगव धनुष ग्रहण करके उस बृहस्पति के पार्ष्णिग्राह अर्थात् सहायता करने वाले हुए थे ॥३१॥ उस महात्मा ने ब्रह्मर्षि संज्ञा के लिये परम अस्त्र देवों को उद्देश करके छोड़ा था जिसने इनके यश को नष्ट कर दिया था ॥३२॥

तत्र तद् युद्धमभवत् प्रख्यातन्तारकामयम् ।
देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत् ॥३३
तत्र शिष्टास्तथा देवास्तुषिताश्चैव ये स्मृताः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं पितामहम् ॥३४
ततो निवार्योशनसं रुद्रं ज्येष्ठञ्च शङ्करम् ।
ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥३५
अन्तःप्रसवां तां दृष्ट्वा ताराम्ताराधिपाननाम् ।
गर्भमुत्सृजेति न त्वं विप्रः प्राह बृहस्पतिः ॥३६
मदीयायां ततो योनौ गर्भो धार्यः कथञ्चन ।
असौ नावसृजत्तान्तु कुमारं दस्युहन्तमम् ॥३७
ईषिकास्तम्बमासाद्य ज्वलन्तमिव पावकम् ।
जातमात्रः स भगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः ॥३८
ततः संशयमापन्नास्तारामकथयन् सुराः ।
सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः ॥=

हीयमाणा यदा देवाश्चाहु सा साध्वसाधु वा ।
तदा ता शप्तुमार ध कुमारो दस्युहन्तम ॥४०

उस समय बहा पर देव और दानवो का लोको के क्षय को करने वाला महान् प्रत्यक्ष तारकामय युद्ध हुआ था ॥३३॥ उस समय म तीन शिष्ट देव जो कि तुषिता कहे जाते हैं आदि देव ब्रह्माजी पितामह की शरणागति मे प्राप्त हुए थे ॥३४॥ इसके अनन्तर पितामह ने स्वय ही उशना को और ज्येष्ठ शङ्कर रुद्र को निवारण कर आङ्गिरस के लिये तारा देदी थी ॥३५॥ उस चन्द्रमुखी तारा को उस समय गर्भवती देखकर विप्र बृहस्पति ने उससे कहा कि तू गर्भ का उत्सर्जन मत करे ॥३६॥ मेरे तनु योनि मे किसी भी प्रकार से गर्भ धारण करना चाहिये । इसके अनन्तर उस दस्यु हन्तम कुमार का अवसर्जन नही किया था ॥३७॥ ईपिका–स्तम्ब को पाकर अग्नि की भाँति उत्पन्न होते ही भगवान् ने देवो के शरीर पर आक्षेप किया था ॥३८॥ तबनो सशय को प्राप्त होने वाले देवो ने तारा से कहा—तुम सत्य सत्य बतला दो–यह पुत्र किसका है ? बृहस्पति का है या सोम का है ? ॥३९॥ तब लज्जित होती हुई उसने जो ठीक था बेठीक था देवो को बतला दिया । उस समय कुमार दस्युहन्तम ने उसको शाप देना प्रारम्भ किया था ॥४ ॥

सन्निवाय तदा ब्रह्मा तारा चन्द्रस्य सशय ।
यदत्र तथ्यन्तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥४१
सा प्राञ्जलिरुवाचेद ब्रह्माण वरद प्रभुम् ।
सोमस्येति महात्मान कुमारन्दस्युहन्तमम् ॥४२
तत स तमुपाघ्राय सोमो धाता प्रजापति ।
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमत ॥४३
प्रतिपूर्वश्च गमने समभ्यत्तिष्ठते बुध ।
उत्पादयामास तदा पत्र व राजपत्रिका ॥४४
तस्य पत्नी महातजा बभूवल पुरूरवा ।
उर्वश्या जज्ञिरे तस्य पुत्रा षट सुमहौजस ॥४५

प्रसह्य धर्षितस्तत्र विवशो राजयक्ष्मणा ।
ततो यक्ष्माभिभूतस्तु सोम प्रक्षीणमण्डल ।
जगाम शरणायाथ पितर सोऽत्रिमेव तु ॥४६
तस्य तत्पापशमन चकारात्रिर्महायशा ।
स राजयक्ष्मणा मुक्त श्रिया जज्वाल सर्व्वश ॥४७
एतत्सोमस्य वै जन्म कीर्तित द्विजसत्तमा ।
वशन्तस्य द्विजश्रेष्ठा कीर्त्यमान निबोधत ॥४८
धन्यमारोग्यमायुष्य पुण्य कल्मषशोधनम् ।
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव सर्वपापै प्रमुच्यते ॥४९

उस समय मे ब्रह्माजी ने सन्निवारण कर जो चन्द्र का सशय था उसके विषय मे कहा —हे तारा ! यहाँ पर जो भी तथ्य हो वह बतादो कि यह किसका पुत्र है ॥४१॥ वह प्राञ्जलि होकर अर्थात् हाथ जोडकर वर देने वाले प्रभु ब्रह्माजी से यह बोली कि कुमार दस्युहन्तम सोम का ही है ॥४२॥ इसके पश्चात् उनने अर्थात् ब्रह्मा ने उसका उपाघ्राण करके सोमदाता प्रजापति है और उसके धीमान् पुत्र का नाम बुध यह रक्खा था ॥४३॥ और प्रतिपूर्व के गमन मे बुधो से समभ्युत्थित होता है। तब राजिका ने पुत्र को उत्पन्न किया था ॥४४॥ उसका महान् तेज वाला पुरूरवा ऐल पुत्र हुआ। उसके उर्वशी मे महान् ओज वाले छै पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था ॥४५॥ वहाँ बलपूर्वक राजयक्ष्मा के द्वारा विवश होते हुए धर्षित किया गया था। इसके अनन्तर राजयक्ष्मा से अभिभव पाने वाला होकर सोम प्रक्षीण मण्डल वाला होगया । इसके पश्चात् वह पिता अत्रि के ही शरण मे गया था ॥४६॥ महान् यश वाले अत्रि ने उसके उस पाप का शमन किया था और वह राजयक्ष्मा से छुटकारा पाकर सब प्रकार से शोभा जाज्वल्यमान होगया था ॥४७॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! यह मैंने सोम का जन्म बतला दिया है। अब उसका वश द्विजो मे श्रेष्ठ आप समझलो जिसको कि मेरे द्वारा कहा जा रहा है ॥४८॥ यह सोम के जन्म की कथा का वर्णन परम धन्य-आरोग्य और आयु देने वाला पवित्र है। यह पापो का नाशक है। मनुष्य सोम के जन्म की कथा को सुनकर ही समस्त पापों से छूट जाता है ॥४९॥

ह्रीयमाणा यदा देवान्नाह सा साध्वसाधु वा ।
तदा तां शप्तुमारब्ध कुमारो दस्युहन्तम ।।४०

उस समय वहां पर देव और दानवों का लोकों के क्षय को करने वाला महान् प्रत्यक्ष तारकामय युद्ध हुआ था ।।३३।। उस समय में तीन शिष्ट देव जो कि तुषिता कहे जाते हैं आदि देव ब्रह्माजी पितामह की शरणागति में प्राप्त हुए थे ।।३४।। इसके अनन्तर पितामह ने स्वयं ही उशना को और ज्येष्ठ शङ्कर रुद्र को निवारण कर आङ्गिरस के लिये तारा देदी थी ।।३५।। उस चन्द्रमुखी तारा को उस समय गर्भवती देखकर विप्र बृहस्पति ने उससे कहा कि तू गर्भ का उत्सर्जन मत करे ।।३६।। मेरे तनु योनि में किसी भी प्रकार से गर्भ धारण करना चाहिये। इसके अनन्तर उस दस्य हन्तम कुमार का अवसर्जन नहीं किया था ।।३७।। ईषिका-स्तम्ब को पाकर अग्नि की भाँति उत्पन्न होते ही भगवान् ने देवों के शरीर पर आक्षेप किया था ।।३८।। तबतो संशय को प्राप्त होने वाले देवों ने तारा से कहा—तुम सत्य सत्य बतला दो—यह पुत्र किसका है ? बृहस्पति का है या सोम का है ? ।।३९।। तब लज्जित होती हुई उसने जो ठीक या बेठीक था देवों को बतला दिया। उस समय कुमार दस्युहन्तम ने उसको शाप देने का प्रारम्भ किया था ।।४० ।।

सन्निवार्य तदा ब्रह्मा तारां चन्द्रस्य संशयं ।
यदत्र तथ्यन्तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ।।४१
सा प्राञ्जलिरुवाचेद ब्रह्माणं वरदं प्रभुम् ।
सोमस्येति महात्मान कुमारं दस्युहन्तमम् ।।४२
ततः स तमुपाघ्राय सोमो धाता प्रजापतिः ।
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः ।।४३
प्रतिपूर्वञ्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः ।
उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिका ।।४४
तस्य पुत्रो महातेजा बभूवैल पुरूरवा ।
उर्वश्यां जज्ञिरे तस्य पुत्राः षट् सुमहौजसः ।।४५

प्रगाढ़ं धर्षितस्तस्य विवशो राजयक्ष्मणा ।
ततो यक्ष्माभिभूतस्तु सोमः प्रक्षीणमण्डलः ।
जगाम शरणायाथ पितरं सोऽत्रिमेव तु ॥८६
तस्य तत्पापशमनं चकारात्रिर्महायशाः ।
स राजयक्ष्मणा मुक्तः श्रिया जज्वाल सर्वशः ॥८७
एतत्सोमस्य वै जन्म कीर्तितं द्विजसत्तमाः ।
वंशं तस्य द्विजश्रेष्ठाः कीर्त्यमानं निबोधत ॥८८
धन्यमारोग्यमायुष्यं पुण्यं कल्मषशोधनम् ।
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥८९

उस समय में ब्रह्माजी ने ... जो चन्द्र का समय था उसके विषय में कहा—हे तारा ! सच्चा सच जो भी तथ्य हो वह बतादो कि यह किसका पुत्र है ॥८१॥ वह प्राञ्जलि होकर अर्थात् हाथ जोड़कर उस देव वाले प्रभु ब्रह्माजी से यह बोली कि कुमार दस्युहन्तम सोम का ही है ॥८२॥ उसके पश्चात् उनने अर्थात् ब्रह्मा ने उसका उपाघ्राण करके समझाना प्रजापति ने और उसके धीमान् पुत्र का नाम बुध यह रक्खा था ॥८३॥ और प्रतिपूर्व के गगन में उषा में समभ्युदित होता है । तब गर्भिता ने पुत्र को उत्पन्न किया था ॥८४॥ उसका सम्राट् तेज वाला पुरूरवा नाम पुत्र हुआ । उसके उर्वशी में महान् ओज वाले छै पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥८५॥ बड़ी बलपूर्वक राजयक्ष्मा के द्वारा विवश होते हुए धर्षित किया गया था । इसके अनन्तर राजयक्ष्मा से अभिभव पाने वाला होकर सोम प्रक्षीण मण्डल वाला होगया । इसके पश्चात् वह पिता अत्रि के ही शरण में गया था ॥८६॥ महान् यश वाले अत्रि ने उसके उस पाप का शमन किया था और वह राजयक्ष्मा से छुटकारा पाकर सब प्रकार से शोभा जाज्वल्यमान होगया था ॥८७॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! यह सब सोम का जन्म बतला दिया है । अब उसका वंश द्विजों में श्रेष्ठ आप समझाना जिसको कि मेरे द्वारा कहा जा रहा है ॥८८॥ यह सोम के जन्म की कथा का श्रवण परम धन्य—आरोग्य और आयु देने वाला पवित्र है । यह पापों का नाशक है । मनुष्य सोम के जन्म की कथा को सुनकर ही समस्त पापों से छूट जाता है ॥८९॥

प्रकरण ५३—चन्द्रवंश कीर्तन

सोमस्य तु बुध पुत्रो बुधस्य तु पुरूरवा ।
तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिण ॥१
ब्रह्मवादी पराक्रान्त शत्रुभियु धि दुजय ।
आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्वनाञ्च ददौ महीम् ॥२
सत्यवाक कम्मबुद्धिश्च कान्त सवृतमथुन ।
अतीव पुत्रो लोकेपु रूपेणाप्रतिमोऽभवत् ॥३
त ब्रह्मवादिन दान्त धमज्ञ सत्यवादिनम् ।
उवशी वरयामास हित्वा मान यशस्विनी ॥४
तया सहावसद्राजा दशवर्षाणि चाष्ट च ।
सप्त पट सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च वीयवान् ॥५
वने चत्ररथे रम्य तथा मन्दाकिनीतटे ।
अलकाया विशालाया नन्दने च वनोत्तमे ॥६
गन्धमान्नपादेपु मेरुशृङ्गे नगात्तमे ।
उत्तरांश्च कुरून् प्राप्य कनापग्राममेव च ॥७
एतेपु वनमुख्येपु सुरराचरितेपु च ।
उवश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ॥८

श्री सूतजी ने कहा—सोम का पुन बुध हुआ और बुध का पुत्र पुरूरवा हुआ जो बहुत ही तेजस्वी—दान देने के स्वभाव वाला—यजन करने वाला तथा बहुत दक्षिणा देने वाला था ॥१॥ पुरुरवा ब्रह्मवादी था तथा शत्रुओ के द्वारा पराक्रान्त हुआ एव युद्ध म वह दुजय था अर्थात् रणभूमि म कोई भी आसानी से उसे जीत नही सकता था । वह अग्निहोत्र का आहरण करने वाला था और यज्वाओ को उसने भूमि का दान दिया था ॥२॥ वह सत्य वचन बोलने वाला सवृत मथुन सुन्दर और कर्म्मों के सम्पादन म बुद्धि रखने वाला हुआ था । लोको म वह पुत्र अत्यन्त ही रूप स अनुपम हुआ था ॥३॥ उस दमनशील धर्म क ज्ञान वाले—सत्यवादी और ब्रह्म की चर्चा करने वाल राजा को उवशी ने

मान का त्याग कर वरण किया जोकि उर्वशी बड़े ही यश वाली थी ।।४।। वीर्य वाला राजा उसके साथ अठारह वर्ष तथा चवालीस—चौंसठ और अस्सी वर्ष तक रहा था ।।५।। मन्दाकिनी के तट पर, परम रम्य चैत्ररथ वन में, विशाल अलकापुरी में और वनों में सर्वश्रेष्ठ नन्दन वन में निवास किया था ।६। गन्धमादन पर्वत की तराई में, गिरियों में उत्तम मेरु के शिखरों पर और उत्तर कुरुओं को प्राप्त कर तथा कलाप ग्राम में जाकर वास किया था ।।७।। इन उक्त मुख्य वनों में जोकि देवों के द्वारा सेवित थे राजा ने प्रेयसी उर्वशी के साथ रहते हुए परमानन्द के साथ रमण किया था ।।८।।

गन्धर्वी चोर्वशी देवी राजानं मानुषं कथम् ।
देवानुत्सृज्य सम्प्राप्ता तन्नो ब्रूहि बहुश्रुत ।।९
ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समुपस्थिता ।
ऐलं तु तं वरारोहा समयेन व्यवस्थिता ।।१०
आत्मनः शापमोक्षार्थं नियमं सा चकार तु ।
अनग्नदर्शनञ्चैव अकामात् सह मैथुनम् ।।११
द्वौ मेषौ शयनाभ्याशे स तावद्व्यवतिष्ठते ।
घृतमात्रं तथाहारं कालमेकन्तु पार्थिव ।।१२
यद्येष समयो राजन् यावत्कालञ्च ते दृढम् ।
तावत्कालन्तु वत्स्यामि एष नः समयः कृतः ।।१३
तस्यास्तं समयं सर्वं स राजा पर्यपालयत् ।
एवं सा चावसत् तस्मिन् पुरूरवसि भामिनी ।।१४
वर्षाण्यथ चतुःषष्टि तद्भक्त्या शापमोहिता ।
उर्वशी मानुषं प्राप्ता गन्धर्वाश्चिन्तयान्विता ।।१५
चिन्तयध्वं महाभागा यथा सा तु वराङ्गना ।
आगच्छेत्तु पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणा ।।१६

ऋषियों ने कहा—हे बहुश्रुत ! अर्थात् बहुत अधिक शास्त्रों के सुनने वाले या ज्ञान वाले ! उर्वशी देवी तो गन्धर्व जाति की थी जोकि देवों की ही एक शाखा रूप में अपनी विशेष जाति है, उसने मनुष्य जाति के राजा को समस्त

देवताओं को छोड़कर किस तरह वरण किया था अर्थात् वह देवाङ्गना होते हुए मनुष्य को कमे प्राप्त होगई—यह स्पष्ट बतलाइये ॥६॥ श्री सूतजी ने कहा—वह उर्वशी ब्रह्मा शाप से अभिभूत होकर मनुष्यता को प्राप्त हुई थी उस वरारोहा ने (वह जिसके शरीर के अङ्गों का श्रेष्ठतम आरोहण होता है) कुछ समय तक नियम-पालनपूर्वक व्यवस्थित होकर ऐल के पास निवास किया था ॥१०॥ उसने अपने शाप की मुक्ति के लिए कुछ नियम (शर्तें) किये थे और वे ये थे—एक तो नानावस्था में दर्शन नहीं करना था और दूसरा बिना काम की वासना के मथुन करने का था ॥११॥ वह राजा शयनाभ्यास में दो मष तक व्यवस्थित रहता था और राजा केवल एकबार घृत का ही आहार करने वाला रहता था ॥१२॥ उर्वशी ने ये शर्तें तय करली थीं और राजा से कह दिया था कि हे राजन्! आपकी यह शर्त्त जब तक दृढ़ता के साथ पालन की जावगी उतने ही समय तक मैं आपके साथ निवास करूंगी—यह हमारा किया हुआ समय अर्थात् नियम तथा शर्त है ॥१३॥ उस उर्वशी के द्वारा किए हुए उस नियम को उस राजा ने पूर्ण रूप से पालन किया था और इस प्रकार से वह भामिनी (उर्वशी) उस पुरूरवा के पास निवास करती थी ॥१४॥ इसके अनन्तर शाप मोहित उर्वशी को उसकी भक्ति से चोंसठ वर्ष व्यतीत होगये थे। उर्वशी मनुष्य जाति के राजा के पास चली गई—इस बात से गन्धर्व लोग अत्यन्त चिन्ता से युक्त होगये थे ॥१५॥ गन्धर्वों ने कहा—हे महान् भाग वालो? ऐसा कोई उपाय सोचो कि वह वराङ्गना उर्वशी जिस रीति से फिर देवों के पास वापिस आजावे क्योंकि वह तो इस स्वर्गलोक की शोभा करने वाले भूषण के समान है ॥१६॥

ततो विश्वावसुर्नाम तत्राह वदतां वरः ।
तया तु समयस्तत्र क्रियमाणो मतोऽनघ ॥१७
समयव्युत्क्रमात् सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा ।
तथ्ह वच्मि वः सर्वं यथा त्यक्ष्यति सा नृपम् ॥१८
सहसा यागमेष्यामि युष्माकं कार्यसिद्धये ।
एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानं महायशा ॥१९

स निशायामथागम्य मेषमेकं जहार वै ।
मातृवद्वर्त्तते सा तु मेषयोश्चारुहासिनी ॥२०
गन्धर्वागमनं ज्ञात्वा शयनस्था यशस्विनी ।
राजानमब्रवीत्सा तु पुत्रो मे ह्रियतेति वै ॥२१
एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नस्तिष्ठति वै नृप ।
नग्नं द्रक्ष्यति मा देवी समयो वितथो भवेत् ॥२२
ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेषमाददु ।
द्वितीयेऽपहृते मेषे ऐलं देवी समब्रवीत् ॥२३
पुत्रौ मम हृतौ राजन्ननाथाया इव प्रभो ।
एवमुक्तस्तदोत्थाय नग्नो राजा प्रधावित ॥२४

इसके अनन्तर उस समय वहाँ पर बोलने वालो मे श्रेष्ठ विश्वावसु नाम वाला गन्धर्व बोला कि उसने यहाँ पर अ्रघ से रहित समय (नियम या शर्त) किया हुआ माना है ॥१७॥ उस किये हुए समय (नियम) के व्युत्क्रम होन से ही राजा को त्याग देगी और जिस तरह उस समय का व्युत्क्रम हो सकता है वह सब मैं तुमको बतलाता हूँ कि जिसके कारण वह राजा का त्याग करदे ॥१८॥ मै तुरन्त ही आप लोगो के कार्य की सिद्धि के लिये योग को प्राप्त होऊँगा । यह कहकर वह महान् यशवाला विश्वावसु उस प्रतिष्ठान पर पहुँच गया था ॥१९॥ उसने रात्रि मे आकर उन दो मेषो मे से एक का हरण कर लिया था । वह चारु अर्थात् सुन्दर हास वाली उर्वशी उन दोनो मेषो की माता की भाँति रहती है ॥२०॥ शयन में स्थित रहती हुई यशस्विनी उस उर्वशी ने राजा से कहा मेरा पुत्र का हरण होगया है ॥२१॥ इस तरह कहा गया राजा नग्न स्थित हो जाता है यह निश्चय करके कि वह देवी मुझे नग्न को देखेगी तो जो समय था (अर्थात् शर्त थी) वह असत्य हो जायगा ॥२२॥ इसके बाद पुन गन्धर्वो ने दूसरा मेष भी ले लिया था । दूसरे मेष के अपहृत होजाने पर वह देवी उर्वशी ऐल से बोली ॥२३॥ हे प्रभो ! हे राजन् ! अनाथा की भाँति मेरे दोनो पुत्र अपहृत होगये हैं । ऐसा कहा गया राजा उस समय नग्न हो उठ कर दौड़ा ॥ २४ ॥

नहीं है। वह राजा एक रात वहाँ उसके साथ रहा ॥३५। वह राजा परम प्रसन्न होता हुआ महान् यश वाला अपने पुर को वापिस चला गया था। एक वर्ष के समाप्त होजाने पर राजा ऐल पुन वहाँ उर्वशी के पास आया था ॥३६॥ महान् मन वाला वह राजा सार्धं एक रात्रि तक वहाँ उसके साथ निवास करके और काम से आर्त्त होता हुआ दीन होकर उर्वशी से बोला तुम मेरी नित्य ही रहने वाली होजाओ ॥३७॥ और इसके अन्तगत उर्वशी ने ऐल से कहा उन गन्धर्वों ने वरदान दिया है—उसका वरण कर-लो हे महाराज ! तुमही इनसे कहो ॥३८॥ महात्मा गन्धर्वों के नित्य सालोक्य को वरा। 'तथास्तु'—यह कह कर अर्थात् ऐसा ही होवे गन्धर्वों ने वर दिया ॥३९॥ और स्थाली को अग्नि से भर कर गन्धर्वों ने उससे कहा—नरो के स्वामी ! इससे यजन करके तू उस लोक को प्राप्त हो जायगा ॥४०॥

तमादाय कुमारस्तु नगरायोपचक्रमे ।
नि क्षिप्य तमरण्यान्त्र स पुत्रन्तु गृह ययौ ॥४१
पुनरादाय ह्यग्निमश्वत्थ तत्र दृष्टवान् ।
समीपतस्तु त दृष्ट्वा ह्यश्वत्थ तत्र विस्मित ॥४२
गन्धर्वेभ्यस्तथाख्यातुमग्निना गा शतस्तु स ।
श्रुत्वातमथमखिलमरणि तु समादिशत् ॥४३
अश्वत्थादरणि कृत्वा मथित्वाग्नि यथाविधि ।
तेनेष्ट्वा तु सलोक त प्राप्स्यसि त्व नराधिप ।
मथित्वाग्नि त्रिधा कृत्वाह्ययजत्स नराधिप ॥४४
इष्ट्वा यज्ञबहुविधगतस्तपा सलोकताम् ।
वासाय च स गन्धर्वस्त्रेतायां स महारथ ।
एकोऽग्नि पूर्वमासीद्व ऐलस्त्री स्त्रानकल्पयत् ॥४५
एवप्रभावो राजासीदैलस्तु द्विजसत्तमा ।
देशे पुण्यतम चव महर्षिभिरलकृते ॥४६
राज्य स कारयामास प्रयागे पृथिवी पति ।
उत्तरे यामुन तीरे प्रतिष्ठाने महायशा ॥४७

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि पडिन्द्रोपमतेजस ।
गन्धर्व्वलोके विदिता आयुर्द्धीमानमावसु ॥४८
विश्वायुश्च शतायुश्च गतायुश्चोर्वशीसुता ।
अमावसोस्तु वै जातो भीमो राजाथ विश्वजित् ॥४९

उस कुमार को लेकर नगर के लिये चल दिया था वह उस पुत्र को अरणी में डालकर गृह चला गया ॥४१॥ फिर लाकर हय्य अग्नि अश्वत्थ (पीपल) को वहाँ देखा था। समीप से उसे अश्वत्थ को देखकर वहाँ विस्मित होगया ॥४२॥ गन्धर्वो से उस प्रकार से कहने के लिये अग्नि के द्वारा भूमि में गया हुआ वह उस समस्त अर्थ को श्रवण कर अरणि को आज्ञा दी ॥४३॥ अश्वत्थ से अरणी में करके और अग्नि को यथा विधि के अनुसार मन्थन कर हे नराधिप ! तुम उससे यजन करके आप हमारे लोक को प्राप्त हो जाओगे। अग्नि का मन्थन करके उस राजा ने उसके तीन भाग करके यजन किया था ॥४४॥ वह महारथ गन्धर्व बहुत प्रकार के यज्ञो के द्वारा यजन करके त्रेता में उनकी सलोकता को प्राप्त हुआ और वास के लिये योग्य बना था। पहिले एक अग्नि था राजा ऐल ने उसे तीन बना दिया था ॥४५॥ इस प्रकार के प्रभाव वाला वह राजा ऐल हुआ है। हे द्विज श्रेष्ठो ! राजा ऐल महर्षियो के द्वारा अलकृत और परम पुण्य देश में हुआ था ॥४६॥ वह महान् यशवाला भूपति यमुना के उत्तर के तट पर प्रतिष्ठान में प्रयाग में राज्य किया करता था अर्थात् उसने अपनी राजधानी प्रयाग को बनाया था ॥४७॥ उसके इन्द्र के समान तेजस्वी छै पुत्र हुए थे जोकि गन्धर्वो के लोक में विदित थे। उनके नाम--आयु--धीमान्--अमावसु--विश्वायु--शतायु और गतायु थे जोकि उर्वशी के पुत्र थे उमावसु से समस्त इस विश्व को जीतने वाला राजा भीम उत्पन्न हुआ ॥४८-४९॥

श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभ ।
विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबल ॥५०
सुहोत्रस्याभवज्जह्नु केशिकागर्भसम्भवः।
प्रतिगत्य ततो गङ्गा वितते यज्ञकर्म्मणि ॥५१

प्लावयामास त देश भाविनोथस्य दर्शनात् ।
गङ्गया प्लावित दृष्ट्वा यज्ञवाट समन्तत ॥५२
सौहोत्रिवरद क्रुद्धा गङ्गा सरक्तलोचन ।
अस्य गङ्ग अवलेपस्य सद्य फलमवाप्नुहि ॥५३
एतत्त विफल सर्व्व पीतमम्भ करोम्यहम् ।
राजर्षिणा तत पीता गङ्गा दृष्ट्वा सुरर्षय ॥५४
उपनिन्युमहाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ।
यौवनाश्वस्य पौत्रीन्तु कावेरीञ्जह्नु राचहद् ॥५५
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गा येन विनिर्ममे ।
कावेरी सरिता श्र ष्ठा जह्नु भार्य्यामनिन्दिताम् ॥५६
जह्नु श्च दयित पुत्र सुहोत्र नाम धार्मिकम् ।
कावेर्य्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मज ॥५७

श्रीमान् भीम का दायाद अर्थात् पुत्र काञ्चनप्रभ राजा था और काञ्चनप्रभ राजा का पुत्र महान् बलवान् तथा परम विद्वान् सुहोत्र नाम वाला हुआ था ॥४९॥ सुहोत्र का पुत्र केशिका के गर्भ से उत्पन्न होने वाला जह्नु नाम वाला हुआ । जिसके विस्तृत यज्ञ कर्म में गङ्गा ने आकर उस भाग को होने वाले प्रयोजन के दर्शन के कारण से पूर्णत प्लावित कर दिया था । गङ्गा के द्वारा सब ओर से प्लावित यज्ञवाट को सुहोत्र के पुत्र जह्नु ने देखा ॥५१ ५२॥ वरद जह्नु गङ्गा पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसके नेत्र क्रोधावेश में लाल होगये थे—उसने कहा—हे गङ्गा ! इस घमण्ड का तू तुरन्त ही फल प्राप्त कर ।५३। यह तेरा जल सब पान कर मैं विफल कर देता हूँ । देवर्षियो ने उस राजर्षि के द्वारा गङ्गा को पीत अर्थात् पान की हुई देखा ॥५४॥ पीत गङ्गा को देखकर महान् भाग वाले सुरर्षियो ने उसको जह्नु राजा की पुत्री उपनीत किया था । जह्नु राजा ने यौवनाश्व की पौत्री कावेरी के साथ विवाह किया था ॥५५॥ युवनाश्व के जिस शाप से गङ्गा ने श्रेष्ठ सरिता कावेरी को जह्नु की अनिन्दित भार्या बनाया था ॥५६॥ जह्नु राजा ने दयित पुत्र जोकि परम धार्मिक था एसा सुहोत्र नाम वाला कावेरी म उत्पन्न किया था और उसका आत्मज अजक हुआ था ॥५७॥

अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महायशा ।
वभुवुश्च गय शील. कुशस्तस्यात्मज स्मृत ॥५८
कुशपुत्रा बभूवुश्च चत्वारो वेदवर्चस ।
कुशाश्व कुशनाभश्च अमूर्त्तारयसोवसु ॥५६
कुशस्तम्वस्तपस्तेपे पुत्रार्थी राजसत्तम ।
पूर्णे वर्षसहस्रे वै शतक्रतुमपश्यत ॥६०
तमुग्रतपस दृष्ट्वा सहस्राक्ष पुरन्दर ।
समर्थ पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वत ॥६१
पुत्रत्व कल्पयामास स्वयमेव पुरन्दर ।
गाधिर्नामाभवत्पुत्र कौशिक पाकशासन· ॥६२
पौरुकुत्साभवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत ।
पूर्व्वं कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभाम् ।
ता गाधिपुत्र काव्याय ऋचीकाय ददौ प्रभु ॥६३
तस्या पुत्रस्तु वै भर्त्ता भार्गवो भृगुनन्दन ।
पुत्रार्थे साधयामास चरु गाधेस्तथैव च ॥६४
तथा चाहूय सुघृतिर्ऋचीको भार्गवस्तदा ।
उपयोज्यश्चरुरय त्वया मात्रा च ते शुभे ॥६५

अजक का पुत्र महान् यश वाला वलाकाश्व हुआ था और उनके पुत्र गय-शील तथा कुशक हुए ॥५८॥ कुश के वेदवर्चस वाले कुशाश्व-कुशनाभ-अमूर्त्तार और यशोवसु ये चार पुत्र हुए थे ॥५६॥ राजाओं मे परमश्रेष्ठ कुशस्तम्व ने पुत्र की प्राप्ति का इच्छुक होते हुए पूरे एक सहस्र वर्ष तक तपस्या की थी और इन्द्र का दर्शन प्राप्त किया था ॥६०॥ सहस्र नेत्रो वाले इन्द्र ने उनको उग्र तपश्चर्या करने वाले को देखकर इसके पुत्र उत्पन्न होने मे स्वय ही शाश्वत समर्थ होगया था ॥६१॥ इन्द्र ने स्वय ही पुत्रत्व की कल्पना की थी और पाकशासन (इन्द्र) गाधि नाम वाला कौशिक पुत्र हुआ था ॥६२॥ पौरुकुत्सा नाम वाली भार्या थी उसमे गाधि उत्पन्न हुए । पहिले महान् भाग वाली सत्यवती नाम वाली उस शुभ कन्या को प्रभु गाधि पुत्र ने ऋचीक काव्य का

दी थी ।।६३।। उसमे भृगुनन्दन भरण करने वाले भार्गव पुत्र हुए। पुत्र के लिए गाधि से चरु का साधन किया था ।।६४।। उस समय सुधृति को बुलाकर ऋचीक भार्गव ने कहा—हे शुभे ! इस चरु का तुझे और तेरी माता को उपयोग करना चाहिए ।।६५।।

तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान् क्षत्रियपभ ।
अजेय क्षत्रिययुद्ध क्षत्रियर्षभसूदन ।।६६
तवापि पुन कल्याणि धृतिमन्त तपोधनम् ।
शमात्मक द्विजश्रेष्ठ चरुरेष विधास्यति ।।६७
एवमुक्त्वा तु ता भार्य्यामृचीको भृगुनन्दन ।
तपस्यभिरतो नित्यमरण्य प्रविवेश ह ।।६८
गाधि सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रमभ्यगात् ।
तीर्थयात्राप्रसङ्ग न सुता द्रष्टु नरेश्वर ।।६९
चरुद्वय गृहीत्वा तु ऋषेः सत्यवती सदा ।
भर्त्तु वचनमव्यग्रा हृष्टा मात्रे न्यवेदयत् ।।७०
माता तु तस्य दवेन दुहित्रे स्व चरु ददौ ।
तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मन सा चकार ह ।।७१
अथ सत्यवती गर्भ क्षत्रियान्तकर शुभम् ।
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना । ७२
तमृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाप्यनुसृत्य च ।
तदाब्रवीद्द्विजश्रेष्ठ स्वा भार्य्यां वरवर्णिनीम् ।।७३
मातु शिद्धमति ते भद्र चरुव्यत्यासहेतुना ।
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुण ।।७४

उसमे ऐसा एक पुत्र उत्पन्न होगा जो क्षत्रियो मे परमश्रेष्ठ और दीप्तिमान् होगा जिसको युद्ध म क्षत्रियो के द्वारा जीता नही जा सकता है वह क्षत्रियपभ सूदन होगा ।।६६।। हे कल्याणी ! तुम्हारे भी यह चरुधृति वाला-तपोधन शम के स्वरूप वाला और द्विजो मे श्रेष्ठ पुत्र होगा ।।६७।। इस प्रकार से भार्या से कहकर ऋचीक भृगुनन्दन नित्य ही तपस्या मे अभिरति रखने वाला

होकर अरण्य मे प्रविष्ट होगये थे ।।६८।। उस समय गाधि पत्नी के साथ ऋचीक के आश्रम मे गये । वह नरेश्वर तीर्थयात्रा करने से प्रसङ्ग से अपनी पुत्री को देखने के लिये आश्रम मे पहुँचे थे ।।६९।। सत्यवती ने ऋषि के चरुद्वय अर्थात् दोनों चरुओं को लेकर सदा स्वामी के वचन से अव्यग्र रहती हुई प्रसन्न होकर अपनी माता से निवेदन किया था ।।७०।। माता ने दैववशात् उस बेटी के लिए अपना चरु दे दिया और अज्ञान से उसके चरु को अपना कर लिया था ।।७१।। इसके अनन्तर सत्यवती ने क्षत्रियो के अन्त तक कर देने वाला शुभ गर्भ धारण किया था जिसका शरीर अति दीप्त था और उससे वह घोर दर्शन वाली थी ।।७२।। ऋचीक ने उसे देखकर और फिर योग के द्वारा भी विचार कर तब वह द्विजो मे श्रेष्ठ अपनी वरवर्णिनी भार्या से बोला ।।७३।। हे भद्रे ! चरु के व्यत्यास (उलट-पलट) के कारण से तुझे माता का चरु प्राप्त हुआ है अत तेरे क्रूरकर्म करने वाला अत्यन्त दारुण पुत्र पैदा होगा ।।७४।।

माता जनिष्यते वापि तथाभूत तपोधनम् ।
विश्व हि ब्रह्म तपसा मया तत्र समर्पितम् ।।७५
एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ।
प्रसादयामास पति सुतो मे नेहशो भवेत् ।
ब्राह्मणापसदस्त्वन्य इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ।।७६
नैष सङ्कल्पित कामो मया भद्रे तथा त्वया ।
उग्रकर्मा भवेत् पुत्र पितुर्मातुश्च कारणात् ।।७७
पुन सत्यवती वाक्यमेवमुक्ताब्रवीदिदम् ।
इच्छंल्लोकानपि मुने सृजेथा. किं पुन सुतम् ।।७८
शमात्मकमृजु भर्त्त पुत्र मे दातुमर्हसि ।
काममेवविध पुत्रो मम स्यात्तु वद प्रभो ।।७९
मय्यन्यथा न शक्य वै कर्तु मेव द्विजोत्तम ।
तत प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात् ।।८०
पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि ।
त्वया यथोक्त वचन तथा भद्रे भविष्यति ।।८१

दी थी ॥६३॥ उसमें भृगुनन्दन भगवान् ऋचीक शरण वाले भार्गव पुत्र हुए। पुत्र के लिए गाधि से चरु का साधन किया था ॥६४॥ उस समय मुनि को श्रुति कर ऋचीक भार्गव ने कहा—हे शुभे ! इस चरु का तुझे और तेरी माता को उपयोग करना चाहिए ॥६५॥

तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान् क्षत्रियर्षभ ।
अजेयः क्षत्रियैर्युद्धे क्षत्रियर्षभसूदन ॥६६
तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोधनम् ।
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति ॥६७
एवमुक्त्वा तु तां भार्य्यामृचीको भृगुनन्दन ।
तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह ॥६८
गाधि सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात् ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं नरेश्वर ॥६९
चरुद्वयं गृहीत्वा तु ऋषेः सत्यवती तदा ।
भर्त्तु र्वचनमव्यग्रा हृष्टा मात्रे न्यवेदयत् ॥७०
माता तु तस्य दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ ।
तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मना सा चकार ह ॥७१
अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियान्तकरं शुभम् ।
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना । ७२
तमृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाप्यनुसृत्य च ।
तदाब्रवीद्द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्य्यां वरवर्णिनीम् ॥७३
मातुः सिद्धयति ते भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना ।
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुणः ॥७४

उसने ऐसा एक पुत्र उत्पन्न होगा जो क्षत्रियों में परमश्रेष्ठ और दीप्तिमान् होगा जिसको युद्ध में क्षत्रियों के द्वारा जीता नहीं जा सकता है वह क्षत्रियर्षभ सूदन होगा ॥६६॥ हे कल्याणी ! तुझको भी यह चरु धृति वाला—तपोधन शम के स्वरूप वाला और द्विजों में श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥६७॥ इस प्रकार से भार्या से कहकर ऋचीक भृगुनन्दन नित्य ही तपस्या में अभिरति रखने वाला

रेणुकायान्तु कामल्या तपोधृतिसमन्वित ।
आर्चीको जनयामास जमदग्नि सुदारुणम् ॥८७
सर्वविद्यान्तग श्रेष्ठ धनुर्वेदस्य पारगम् ।
राम क्षत्रियहन्तार प्रदीप्तमिव पावकम् ॥८८
और्व्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्या महामना ।
जमदग्निस्ततो वीर्य्याज्जज्ञे ब्रह्मविदा वर. ।
मध्यमश्च शुन शेफ शुन पुच्छ कनिष्ठक ॥८६
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथ स्मृत ।
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्व शवर्द्ध न ॥६०

पहिले भृगु के रौद्र और वैष्णव के चरु के व्यत्यास होने पर वष्णव अग्नि के धमन से जमदग्नि उत्पन्न हुए थे ॥८३॥ कुशिक नन्दन गाधि ने दायाद विश्वामित्र को प्राप्त कर ब्रह्मर्षियो के सहित ब्रह्मा से वृत होकर गया था ।८४। वह सत्यवती परम पवित्र और सत्य के व्रत मे परायण थी जोकि कौशिकी इस नाम से प्रवृत्त यह महानदी कहलाई थी ॥८५॥ सरिताओ मे श्रेष्ठ महान् भाग वाली कौशिकी परिस्रुत हुई थी । इक्ष्वाकु के वश मे वेणु नाम वाला राजा हुआ था ॥८६॥ उसकी महान् भाग वाली कन्या कामली नाम वाली रेणुका थी । रेणुका कामलीमे आर्चीक जमदग्नि ने जोकि तप और धृति से समन्वित थे, सुदारुण को उत्पन्न किया था ॥८७॥ जोकि समस्त विद्याओ का पारगामी—श्रेष्ठ और धनुर्वेद के परम पण्डित थे जिनका नाम राम था तथा प्रदीप्त पावक (अग्नि) के समान एव क्षत्रियों का हनन करने वाले हुए थे ॥८८॥ ब्रह्मवेत्ताओ मे श्रेष्ठ, महान् मन वाले जमदग्नि ने सत्यवती मे और्व ऋचीक के वीर्य से राम को उत्पन्न किया था । और मध्यम शुन शेफ तथा सबसे छोटा शुन पुच्छ था ॥८६॥ विश्वामित्र तो बहुत ही धर्मात्मा थे और नाम से विश्वरथ कहे गये थे । भृगु के प्रसाद से कौशिक से वश के बढाने वाले उत्पन्न हुए थे ॥६०॥

विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुन शेफोऽभवन्मुनि ।
हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे नियुत स वै ।
देवैर्द त्त स वै यस्माद्द्वेवरातस्ततोऽभवत् ॥६१

तस्मात् सत्यवती पुत्र जनयामास भार्गवम् ।
तपस्यभिरतन्दान्त जमदग्नि शमात्मकम् ॥८२

तेरी माता ऐसा परम तपस्वी पुत्र पैदा करेगी मैंने वहाँ तप के द्वारा ब्रह्म को समर्पित किया है ॥७५॥ इस प्रकार से अपने पति के द्वारा कही गई सत्यवती उस समय पति को प्रसन्न करने लगी कि मेरा पुत्र इस प्रकार का जन्म न लेवे। अन्य ब्राह्मणपसद है इस प्रकार से कहे गये मुनि बोले ॥७६॥ हे भद्रे ! इस प्रकार की यह इच्छा मैंने तथा तूने कभी नहीं की थी। उग्रकर्म करने वाला पुत्र पिता और माता के कारण से होता है ॥७७॥ फिर इस प्रकार से कही गई सत्यवती यह वचन बोली—हे मुने ! इच्छा करते हुए तो लोकों का भी सृजन करते हैं फिर पुत्र के विषय में क्या बात है ॥७८॥ हे स्वामिन् ! सीधा और शम स्वरूप वाला पुत्र मुझे देने के योग्य है। हे प्रभो ! इच्छानुकूल इस प्रकार का पुत्र मेरा हो जावे आप ऐसा कह देवे ॥७९॥ हे द्विजोत्तम ! मुझमें अन्यथा नहीं किया जा सकता है। इसके अनन्तर तप के बल से उसने उस पर प्रसन्नता की थी ॥८०॥ हे वरवर्णिनि ! मेरे पुत्र अथवा पौत्र में विशेषता नहीं है। तूने जैसा कहा है हे भद्रे ! वैसा ही वचन होगा ॥८१॥ इससे सत्यवती ने तप में अभिरति रखने वाला—शान्त और शमात्मक जमदग्नि भार्गव पुत्र को जन्म दिया था ॥८२॥

भृगोश्चरुविपर्यासे रौद्रवष्णवयो पुरा ।
यमनाद्व ष्णवस्याग्नेजमदग्निरजायत ॥८३
विश्वामित्र तु दायाद गाधि कुशिकनन्दन ।
प्राप्य ब्रह्मर्षिसहितो (सविता) जगाम ब्रह्मणा वृत ॥८४
सा हि सत्यवती पुण्या सत्यव्रतपरायणा ।
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेय महानदी ॥८५
परिस्रुता महाभागा कौशिकी सरिता वरा ।
इक्ष्वाकुवंशे त्वभवत्सुवेणुर्नाम पार्थिव ॥८६
तस्या कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ।

रेणुकायान्तु कामल्या तपोधृतिसमन्वित ।
आर्चीको जनयामास जमदग्निं सुदारुणम् ॥८७
सर्वविद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ।
रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥८८
और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महामना ।
जमदग्निस्ततो वीर्य्याज्जज्ञे ब्रह्मविदां वर ।
मध्यमश्च शुन शेफ. शुन पुच्छ कनिष्ठक ॥८९
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथ स्मृत ।
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्द्धन ॥९०

महर्षि भृगु के रौद्र और वैष्णव के चरु के व्यत्यास होने पर वैष्णव अग्नि के यमन से जमदग्नि उत्पन्न हुए थे ॥८३॥ कुशिक नन्दन गाधि ने दायाद विश्वामित्र को प्राप्त कर ब्रह्मर्षियों के सहित ब्रह्मा से युत होकर गया था ।८४। यह सत्यवती परम पवित्र और सत्य के व्रत में परायण थी जोकि कौशिकी इस नाम से प्रवृत्त यह महानदी कहलाई थी ॥८५॥ सरिताओं में श्रेष्ठ महान् भाग वाली कौशिकी परिस्तुत हुई थी । इक्ष्वाकु के वंश में वेणु नाम वाला राजा हुआ था ॥८६॥ उसकी महान् भाग वाली कन्या कामली नाम वाली रेणुका थी । रेणुका कामलीमें आर्चीक जमदग्नि ने जोकि तप और धृति से समन्वित थे, सुदारुण को उत्पन्न किया था ॥८७॥ जोकि समस्त विद्याओं का पारगामी—श्रेष्ठ और धनुर्वेद के परम पण्डित थे जिनका नाम राम था तथा प्रदीप्त पावक (अग्नि) के समान एवं क्षत्रियों का हनन करने वाले हुए थे ॥८८॥ ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ, महान् मन वाले जमदग्नि ने सत्यवती में और्व ऋचीक के वीर्य से राम को उत्पन्न किया था । और मध्यम शुन शेफ तथा सबसे छोटा शुन पुच्छ था ॥८९॥ विश्वामित्र तो बहुत ही धर्मात्मा थे और नाम से विश्वरथ कहे गये थे । भृगु के प्रसाद से कौशिक से वंश के बढ़ाने वाले उत्पन्न हुए थे ॥९०॥

विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुन शेफोऽभवन्मुनि. ।
हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे नियुत स वै ।
देवैर्दत्त स वै यस्माद् वरातस्ततोऽभवत् ॥९१

विश्वामित्रस्य पुत्राणां शुनःशेफोऽग्रजः स्मृतः ।
मधुच्छन्दो नयश्च व कृतदेवो ध्रु वाष्टकौ ॥६२
कच्छपः पूरणश्च व विश्वामित्रसुतास्तु व ।
तेषां गोत्राणि बहुधा कौशिकानां महात्मनाम् ॥६३
पार्थिवा देवराताश्च याज्ञवल्क्या समर्पणा ।
उदुम्बरा उदुम्बलानास्तारका यममुञ्चना ॥६४
लोहिण्यो रेणवश्च व तथा कारीषव स्मृता ।
बभ्रव पाणिनश्च व ध्यानजप्यास्तथव च ॥६५
शालावत्या हिरण्याक्षा स्यङ्कृता गालवा स्मृता ।
देवला यामदूताश्च शालङ्कायनबाष्कला ॥६६
ददाति बादराश्चान्ये विश्वामित्रस्य धीमत ।
ऋष्यन्तरविवाह्यास्ते बहव कौशिका स्मृता ॥६७
कौशिकासोश्र माश्च व तथान्ये सधवायना ।
पौरोरवस्य पुण्यस्य ब्रह्मर्षे कौशिकस्य तु ॥६८

विश्वामित्र के पुत्र शुन शेफ मुनि हुए थे । वह राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में पशुत्व मे नियुत किये थे । देवों के द्वारा वह दिया गया था इसस तब देवराज हुए थे ॥६१॥ विश्वामित्र के पुत्रो मे शुन शेफ सबमे बडा कहा गया था । मधुमच्छन्द और नय कृतदेव ध्रुवाष्टक—कच्छप और पूरण ये सब विश्वामित्र के पुत्र थे । उन महात्मा कौशिको के बहुत प्रकार के गोत्र है ॥६२ ६३॥ पार्थिव—देवरात—याज्ञवल्क्य—समपण—उदुम्बर—उदुम्लान—तारक—यममुञ्चत—लोहिण्य—रेणव—कारीषव—बभ्रव—पाणिन—ध्यान जप्य—शालावत्य—हिरण्याक्ष—स्यङ्कृत—गालव—देवल—यामदूत—शालङ्कायन—बाष्कल और बादर ये धीमान् विश्वामित्र के पुत्रो के गोत्र कहे गये हैं । वे अन्य ऋषि के विवाह के योग्य बहुत कौशिक कहे गये हैं ॥६४ ६५ ६६ ६७॥ पौरोरव पुण्य ब्रह्मर्षि कौशिक के कौशिका सोश्रुम तथा अन्य सधवायन हैं ॥६८॥

दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टक ।
अष्टकस्य सुतो यो हि प्रोक्तो जह्नु गणो मया ॥६६

किं लक्षणेन धर्मेण तपसेह श्रुतेन वा ।
ब्राह्मण्य समनुप्राप्त विश्वामित्रादिभिर्नृपै ॥१००
येन येनाभिधानेन ब्राह्मण्य क्षत्रिया गता ।
विशेष ज्ञातुमिच्छामि तपसा दानतस्तथा ॥१०१
एवमुक्तस्ततो वाक्यमब्रवीदिदमर्थवत् ।
अन्यायोपगतैर्द्रव्यैराहृत्य यजते धिया ।
धर्माभिकाक्षी यजते न धर्मफलमश्नुते ॥१०२
धर्मं चैत समाख्याय पापात्मा पुरुषाधम ।
ददाति दान विप्रेभ्यो लोकाना दम्भकारणात् ॥१०३
जप कृत्वा तथा तीव्र धनलोभान्निरकुश ।
रागमोहान्वितो ह्यन्ते पावनार्थं ददाति य ॥१०४
तेन दत्तानि दानानि अफलानि भवन्त्युत ।
तस्य धर्मप्रवृत्तस्य हिंसकस्य दुरात्मन ॥१०५
एव लब्ध्वा धन मोहाद्दद्दतो यजतश्च ह ।
सक्लिष्टकर्मणो दान न तिष्ठति दुरात्मन ॥१०६

विश्वामित्र से दृषद्वती का पुत्र अष्टक हुआ । अष्टक का जो सुत था वह जह्नुगण मैंने कह दिया है ॥६६॥ ऋषियो ने कहा—विश्वामित्र आदि राजाओ ने किस लक्षण वाले धर्म के द्वारा, तपस्या से अथवा श्रुत से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था ॥१००॥ जिस-जिस अविधान से क्षत्रिय लोग ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए थे, तप के द्वा'ा या दान के द्वारा हुए उसके विशेष को जानने की इच्छा है ॥१०१॥ इस प्रकार से कहे गये वे इनके पश्चात् यह अर्थ से युक्त वाक्य बोले—अन्याय से उपगत द्रव्यो को लाकर उनसे यजन करने मे जो बुद्धि से धर्म का इच्छुक होकर यजन किया करता है वह धर्म का फल नहीं प्राप्त करता है ।१०२। इसको धर्म कहकर जो पापात्मा अधम पुरुष लोको को दम्भ दिखाने के कारण से विप्रो को दान दिया करता है ॥१०३॥ धन के लोभ से निरकुश होकर तथा तीव्र तप करके राग और मोह से युक्त होता हुआ अन्त मे पावन होने के लिये जो दान देता है ॥१०४॥ उसके द्वारा दिये हुए दान विफल हाजाया करते है ।

कथ धन्वन्तरिर्द्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान् ।
एतद्व दितुमिच्छामस्ततो ब्रूहि प्रिय तथा ॥८

श्री सूतजी ने कहा—ये महान् बलवान् महान् आत्मा वाले पाँच ही पुत्र थे। स्वर्भानु के पुत्र विप्र नृप प्रभा से उत्पन्न हुए थे ॥१॥ उनमें पुत्र धर्म वाला प्रथम न हुआ था। महान् यश वाला उस वृद्धा भज सुतहोत्र हुआ ॥२॥ सुतहोत्र के दायाद परम धार्मिक तीन हुए थे। काश्य और शल दो तो ये थे तथा तृतीय प्रभु गृत्समद हुआ था ॥३॥ गृत्समद का भी पुत्र शुनक हुआ जिसका कि शौनक हुआ था। ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य और शूद्र इसके वंश में हैं द्विजगण! अपने विविध कर्मों के द्वारा उत्पन्न हुए थे। शलक पुत्र आर्ष्टिषेण था और उसका पुत्र चरन्त हुआ था ॥४ ५॥ शौनक और आर्ष्टिषेण ये क्षात्र धर्म से उपेत द्विजाति थे। कशका काश्य–राष्ट्र तथा दीर्घतपा पुत्र हुए ॥६॥ दीर्घतपा का धर्म और इसके अनन्तर विद्वान् धन्वन्तरि हुआ जो तपसे महान् एवं सुन्दर तेज वाला धीमान् वृद्ध के उत्पन्न हुआ था। इसके अनन्तर ऋषिवृन्द ने फिर भी सूतजी से यह वाक्य बोले ॥७॥ ऋषियों ने कहा—देव धन्वन्तरि ने मनुष्यों में कैसे यहाँ जन्म लिया था। हम लोग यह जानना चाहते हैं सो आप यह प्रिय बात कृपा करके बताइये ॥८॥

धन्वन्तरे सम्भवोऽयं श्रूयतामिह वै द्विजाः ।
स सम्भूत समुद्रान्ते मथ्यमानेऽमृते पुरा ॥९
उत्पन्न सकलात् पूर्वं सर्वतश्च श्रियावृतः ।
सर्वसिद्धकार्यं त दृष्ट्वा विष्टम्भित स्थित ।
अजस्त्वमिति होवाच तस्मादजस्तु स स्मृत ॥१०
अज प्रोवाच विष्णु त तनयोऽस्मि तव प्रभो ।
विधत्स्व भाग स्थानञ्च मम लोके सुरोत्तम ॥११ ।
एवमुक्त स दृष्ट्वा तु तथा प्रोवाच स प्रभुः ।
कृतो यज्ञविभागस्तु यज्ञियैर्हि सुरैस्तथा ॥१२
वेदेषु विधियुक्तञ्च विधिहोत्र महर्षिभि ।
न शक्यमिह होमो वै तुल्य कर्त्तु कदाचन ॥१३

अर्वाक्सुतोऽसि हे देव नाममन्त्रोऽसि वै प्रभो ।
द्वितीयायान्तु सम्भूत्या लोके ख्यातिङ्गमिष्यसि ॥१४
अणिमादियुता सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति ।
तेनैव च शरीरेण देवत्व प्राप्स्यसि प्रभो ।
चारुमन्त्रैर्घृतैर्गन्धैर्यक्ष्यन्ति त्वा द्विजातय ॥१५
अथ च त्व पुनश्चैव आयुर्वेद विधास्यसि ।
अवश्यम्भावी ह्यर्थोऽय प्राग्दिष्टस्त्वब्जयोनिना ॥१६
द्वितीय द्वापर प्राप्य भविता त्व न सशय ।
तस्मात् तस्मै वर दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे तत ॥१७
द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्र स काशिराट् ।
पुत्रकाम स्तपस्तेपे नृपो दीर्घतपास्तथा ॥१८

श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजगण ! यहाँ पर धन्वन्तरि का यह जन्म सुनो ! वह पहिले अमृत के लिये समुद्र का मन्थन करने पर समुद्र के मध्य से उत्पन्न हुए थे ॥६॥ सबसे पूर्व और सर्व प्रकार से श्री से आवृत वह उत्पन्न हुए थे । सब प्रकार से ससिद्ध काया वाले उनको देखकर सब विष्टम्भित होगये थे। आप अज हैं-यह बोले-इस कारण से वह अज कहे गये थे ॥१०॥ अज उन विष्णु से बोले—हे प्रभो ! मैं आपका पुत्र हूँ । हे सुरो मे उत्तम ! आप लोक में मेरा स्थान और भाग का विधान कर देवें ॥११॥ इस कारण से कहे गये वह प्रभु देखकर इस तरह से बोले—यज्ञिय सुरो के द्वारा यज्ञ का विभाग किया गया है ॥१२॥ वेदो मे विधि से युक्त और विधिहोत्र महर्षियो के द्वारा यहाँ पर होम कभी तुल्य नही किया जा सकता है ॥१३॥ हे देव ! हे प्रभो ! आप अर्वाक्सुत हैं और नाम मन्त्र हैं । आप दूसरे जन्म मे लोक मे ख्याति को प्राप्त करेंगे ॥१४ आप जब गर्भ मे स्थित रहेंगे तभी आपको अणिमा प्रभृति से युक्त सिद्धि प्राप्त हो जायगी और आप उसी शरीर से देवत्व को भी प्राप्त करेंगे । द्विजाति गण सुन्दर मन्त्रो से-घृत से और गन्धो के द्वारा आपका यजन करेंगे ॥१५॥ इसके अनन्तर फिर आप आयुर्वेद की रचना करेंगे । यह अवश्य ही होने वाला अर्थ है जोकि पहिले ही पद्मयोनि ब्रह्माने आदिष्ट कर दिया है ॥१६॥ दूसरे द्वापर को

दिया था ।।२७।। सूतजी ने कहा—राजा दिवोदास ने जोकि राजर्षि था उस नगरी को प्राप्त कर वह महान् तेज वाला राजा स्फीत अर्थात् फली हुई पु ी म निवास करता था ।।२८।। इसी काल म दारा को करन वाले महेश्वर दवा के प्रिय कामना वाले वह सु ो क समीप मे वास करने वाले थे ।।२६।। देव की आज्ञा से तपोधन विश्वरूप परिषद् पूर्वोक्त रूप विदायो के द्वारा महेश्वरी को तोप देते थे ।।३ ।। उनसे महादेव तो प्रसन्न होते हैं किन्तु मेना प्रसन्न नही होती है। वह नित्य ही देवी और देव की बुराई करती है ।।३१।। मेरे समीप मे अनाचार है तुम्हारा स्वामी महेश्वर जो दरिद्र है। हे अनघे ! यहाँ सभी साधारण लाड करते हैं ।।३२।। माता के द्वारा उस प्रकार ते वाणी स कही गई देवी सती स्व भाव के कारण सहन करने मे समथ न हुई। वरदा ने स्मित करके उसके बाद हर के समीप मे गई थी ।।३३।। विषाद से युक्त मुख वाली देवी ने महादेव से कहा—हे देव ! मैं यहाँ वास नही करूँगी आप मुझे अपने घर पर ले चलिये ।।३४।।

तथोक्तस्तु महादेव सर्वाँल्लोकानवेक्ष्य ह ।
वासार्थं रोचयामास पृथिव्या तु द्विजोत्तमा
वाराणसी महातेजा सिद्धक्षेत्र महेश्वरः ।।३५
दिवो दासेन ता ज्ञात्वा निविष्टान्नगरी भव ।
पार्श्वस्थ स समाहूय गणेश क्षेमक ब्रवीत् ।।३६
गणेश्वर पुरीङ्गत्वा शून्या वाराणसी कुरु ।
मृदुना चाम्यु पायेन अतिवीय स पार्थिव ।।३७
तता गत्वा निकुम्भस्तु पुरी वाराणसी पुरा ।
स्वप्ने सन्दर्शयामास मङ्कन नाम नापितम् ।।३८
श्र यस्तेऽह करिष्यामि स्थान मे रोचयानघ ।
मद्रू पा प्रतिमा कृत्वा नगर्यन्ते निवेशय ।।३९
तथा स्वप्ने यथा दृष्ट सव कारितवान् द्विजा ।
नगरीद्वायनुज्ञाप्य राजानन्तु यथाविधि ।।४०

पूजा तु महती चैव नित्यमेव प्रयुज्यते ।
गन्धैर्धूपैश्च माल्यैश्च प्रेक्षणीयैस्तथैव च ॥४१

हे द्विजोत्तमो ! उस प्रकार से कहे हुए महादेव ने समस्त लोकों को देखकर वास के लिए पृथिवी में महान् तेज वाले महेश्वर ने सिद्धक्षेत्र वाराणसी को पसन्द किया । दिवोदास के द्वारा उस नगरी को निविष्ट जानकर उन महादेव ने पास में स्थित क्षेमक गणेश से कहा ॥३६॥ हे गणेश्वर ! पुरी में जाकर वाराणसी को शून्य करदो । और मृदु अभ्युपाय से वह पार्थिव प्रतिवीय हो गया ॥३७॥ इसके अनन्तर निकुम्भ पुरी वाराणसी में जाकर पहिले मद्धन नाम नापित को स्वप्न में दिखाया था ॥३८॥ हे अनघ ! मैं तेरा श्रेय करूँगा, मेरे स्थान को शोभित करो । मेरे रूप वाली प्रतिमा को बनाकर नगरी के अन्त में निवेशित करदो ॥३६॥ हे द्विज वृन्द ! स्वप्न में जैसा देखा था उस प्रकार का सब करा दिया था । और यथा विधि राजा को नगरी के द्वार पर अनुज्ञापित करके नित्य ही महती पूजा गन्ध-धूप-दीप और प्रेक्षणीय माल्यों के द्वारा की जाती है ॥४०-४१॥

अन्नप्रदानयुक्तैश्च अत्यद्भुतमिवाभवत् ।
एवं सम्पूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वर ॥४२
ततो वरसहस्राणि नगराणां प्रयच्छति ।
पुत्रान् हिरण्यमायूंषि सर्वकामास्तथैव च ॥४३
राजस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता ।
पुत्रार्थमागता साध्वी राज्ञा देवी प्रचोदिता ॥४४
पूजान्तु विपुलां कृत्वा देवी पुत्रानयाचत ।
पुनः पुनरथागम्य बहुशः पुत्रकारणात् ॥४५
न प्रयच्छति पुत्रांस्तु निकुम्भः कारणेन तु ।
राजा यदि तत् क्रुध्येत ततः किञ्चित् प्रवर्त्तते ॥४६
अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत् ।
भूतं ह्विदं महाद्वारि नगराणां प्रयच्छति ॥४७

प्रीत्या वराश्च शतशो न विच्छित्त प्रवत्त त ।
मामक पूज्यत नित्य नगर्यां मम चत्र तु ॥४८
तनार्चितश्च बहुना देव्या म तत्र कारणात् ।
न ददाति च पुत्र मे कृतघ्नो बहुभाजन ॥४६
अतो नार्हति पूजान्तु मत्सकाशात् कथञ्चन ।
तस्मात् नाशयिष्यामि तस्य स्थान दुरात्मन ॥५०
एव तु स विनिश्चित्य दुरात्मा राज किल्विषी ।
स्थान गणपतस्तस्य नाशयामास दुर्मति ॥५१
भग्नमायतन दृष्ट्वा राजानमगमत् प्रभु ।
यस्माहतेऽपराध मे त्वया स्थान विनाशितम् ॥५२

और अन्न प्रदान से मुक्तों के द्वारा मत्यदमुत की तरह होगया था । इस प्रकार से वहाँ पर नित्य ही गणेश्वर की बहुत अच्छी तरह पूजा की जाती है ॥४२॥ इसके पश्चात् नगरी को सहस्र वरदान देती है । पुत्रों को–हिरण्य को–आयु को और समस्त प्रकार के कामों का वरदान देती है । राजा की महिषी (पट्टाभिषिक्ता रानी) श्रेष्ठ थी जोकि सुयशा इस नाम से विश्रुत थी । राजा के द्वारा प्रेरित होकर साध्वी रानी पुत्र के लिये वहाँ आई थी ॥४३ ४४॥ देवी ने विपुल पूजा करके उसने पुत्र की याचना की थी और पुत्र के कारण से बहुत बार वह पुन पुन वहाँ आनी थी ॥४५॥ निकुम्भ पुत्रों को तो कारणवश नहीं देता है । राजा यदि क्रुद्ध होगा तो इसके पश्चात् कुछ प्रवृत्त होगा ॥४६॥ इसके अन तर लम्बे समय मे राजा के हृदय म क्रोध ने प्रवेश किया था । नगरी के महा द्वार पर यह भूत को देता है ॥४७॥ प्रीति से सबको वरदान देता है किन्तु कुछ होता नहीं है । मेरी नगरी मे मेरे लोगों के द्वारा नित्य ही यह पूजित भी किया जाता है ॥४८॥ मेरे कारण से देवी के द्वारा यह बहुत बार पूजित हुआ है किन्तु कृतघ्न और बहुत भोजन करने वाला यह पुत्र नहीं देता है ॥४६॥ इसलिए मेरे द्वारा किसी भी प्रकार से यह पूजा करने के योग्य नहीं है । इससे इस दुरा मा के स्थान को मैं नष्ट करा दू गा ।५ । इस तरह से राजाओं मे पापी दुष्ट उसने निश्चय करके दुष्ट बुद्धि वालो ने उस गणपति के स्थान को नष्ट कर

दिया था ॥५१॥ प्रभु अपने आयतन को भग्न हुआ देखकर राजा के पास आये कि जिससे बिना किसी अपराध के तूने मेरे स्थान को नष्ट करा दिया है ॥५२॥

अकस्मात् तु पुरी शून्या भवित्री ते नराधिप ।
ततस्तेन तु शापेन शून्या वाराणसी तदा ॥५३
शप्ता पुरी निकुम्भस्तु महादेवमथानयत् ।
शून्या पुरी महादेवो निर्ममे परमात्मना ॥५४
तुल्या देवविभूत्यास्तु देव्याश्चैव महात्मन ।
रमते तत्र वै देवी रममाणे महेश्वर ॥५५
न रतिं तत्र वै देवी लभते गृहविस्मयात् ।
देव्याः क्रीडार्थमीशानो देवो वाक्यमथाब्रवीत् ॥५६
नाहं वेश्म विमोक्ष्यामि अविमुक्तं हि मे गृहम् ।
प्रहस्यैनामथोवाच अविमुक्तं हि मे गृहम् ॥५७
नाहं देवि गमिष्यामि गच्छस्वेह रमाम्यहम् ।
तस्मात्तदविमुक्तं हि प्रोक्तं देवेन वै स्वयम् ॥५८
एवं वाराणसी शप्ता अविमुक्तं च कीर्त्तितम् ।
यस्मिन् वसति वै देवः सर्वदेवनमस्कृतः ।
युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः ॥५९
अन्तर्द्धानं कलौ याति तत्पुरन्तु महात्मनः ।
अन्तर्हिते पुरे तस्मिन् पुरी सा वसते पुनः ॥६०

उन्होंने राजा से कहा है नराधिप ! अचानक तेरी यह पुरी शून्य हो जायगी। इसके पश्चात् उस शाप से वाराणसी पुरी शून्य होगई थी ॥५३॥ निकुम्भ शाप से युक्त उस पुरी में महादेव को ले आये थे। महादेव ने उस शून्य पुरी का परमात्मा के द्वारा निर्माण किया था ॥५४॥ वह पुरी देवों की विभूति के तुल्य थी और महात्मा की देवी के भी तुल्य थी। वहाँ पर महेश्वर के रमण करते पर देवी रमण करती है ॥५५॥ गृह के विस्मय के कारण से देवी को रति प्राप्त नहीं होती है। देवी की क्रीडा के लिए देव ईशान (महादेव) यह वाक्य बोले ॥५६॥ मैं गृह का त्याग नहीं करूँगा। मेरा घर अविमुक्त है।

इसके अनन्तर हँस कर बोले मेरा गृह अविमुक्त होता है ॥५७॥ हे न्वि ! मैं नहीं जाऊँगा तुम जाओ मैं यहाँ रमण करता हूँ। इसस देव न स्वय उस विमुक्त कहा है ॥५८॥ इस प्रकार स वाराणसी पुरी शाप म युक्त है और वह अविमुक्त कही गई है। जिस पुरी म समस्त दवो क द्वारा नमस्कृत—तीना यगो मे धर्मात्मा महेश्वरदेव देवी के साथ निवास किया करत हैं ॥५९॥ कलियग म महान् आत्मा वाले का वह पुर अन्तर्द्धान को प्राप्त हो जाता है और उस पुर के अन्तर्द्धान होने पर वह पुरी पुन बस जाती है ॥६ ॥

एव वाराणसी शप्ता निवेश पुनरागता ।
भद्रश्र ण्यस्य पुत्राणा शतमुत्तमधन्विनाम् ॥६१
हत्वा निवेशयामास दिवादासो नराधिप ।
भद्रश्र ण्यस्य राज्य तु हृतम्तेन वलीयसा ॥६२
भद्रश्र ण्यस्य पुत्रस्तु दुदमो नाम नामत ।
दिवोदासेन बालेति घृणया स विवर्जित ॥६३
दिवोदासाद्दृषद्वत्या वीरो जज्ञ प्रतद्न ।
तेन पुत्रेण बालेन प्रत्हृत तस्य व पुन ॥६४
वरस्यात महाराज्ञा तदा तेन विधित्सता ।
प्रतद् नस्य पुत्रो द्वौ वत्सो गगश्च विश्रुत ॥६५
वत्सपुत्रो ह्यलकस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मज ।
अलर्क प्रति राजर्षिर्गीतश्लोकौ पुरातनौ ॥६६
षष्ठिवपसहस्राणि षष्ठिवपशतानि च ।
युवा रूपेण सम्पन्नो ह्यलक काशिसत्तम ॥६७
लोपामुद्रा प्रसादेव परमायुरवाप्तवान् ॥६८

इस तरह शाप युक्त हुई फिर निवेश को प्राप्त हुई भद्रश्रण्य के उत्तम धनुषधारी सौ पुत्रों का हनन करके दिवोदास राजा ने पुन इसे निवेशित किया था। उस बलवान् ने भद्रश्रण्य के राज्य का हरण कर लिया था ॥६१ ६२॥ भद्रश्र ण्य का एक पुत्र नाम से दुदम था। दिवोदास ने उसे बालक है—इस घृणा से छोड़ दिया था ॥६३॥ दिवोदास से दृषद्वती म प्रतदन नामक वीर पुत्र

धार्मिक हुआ था ॥७ ॥ सुकेतु का भी पुत्र धमरनु हुआ—एमी श्रुति है। धमकेतु का दायाद महारथ सत्यरतु हुआ था ॥७१॥ सत्यरतु का भी पुत्र प्रजभर विभु नाम वाला हुआ था। विभु का पुत्र सुविभु था और उसका पुत्र सुकुमार था ॥७२॥ सुकुमार के पुत्र का नाम धृष्टकेतु था व बड़ा ही धार्मिक था। धृष्टकेतु के दायाद प्रजन्वर वैतान्वेय हुआ था वणुहोत्र के पुत्र का नाम गार्ग्य प्रख्यात था। गार्ग्य की गनभूमि और धीमान् वत्स का वात्स्य था ॥७४॥ उन दोनो के पुत्र सुन्दर धम के पालन करने वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय थे वे बड़े विक्रम वाले तथा बलवान् एवं सिंह के समान पराक्रम वाले थे ॥७५॥ ये इतने काश्यप बतलाये गये हैं अब रजि के भी समझ लो। भूमण्डल में वीर्यवान् रजि के पाँचसौ पुत्र थे। इन्द्र के भय देने वाला वह क्षत्र राजेय—इस नाम से विख्यात था ॥७६॥

तदा दवा सुरे युद्ध समुत्पन्ने सुदारुणे ।
देवाश्च वासुराश्च व पितामहमथाब्रुवन् ॥७७
आवयोर्भगवान् युद्ध विजेता को भविष्यति ।
ब्रूहि न सर्वलोकेश श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥७८
येषामर्थाय सग्रामे रजिरात्तायुध प्रभु ।
योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रीँल्लोकाग्नात्र सशय ॥७९
रजियतस्ततो लक्ष्मीर्यतो लक्ष्मीस्ततो धृति ।
यतो धृतिस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जय ॥८०
तद् वा दानवा सर्वे तत श्रुत्वा रजेजयम् ।
अन्ययुजयमिच्छन्त स्तवन्तो राजसत्तमम् ॥८१
ते हृष्टमनस सर्वे राजान देवदानवा ।
ऊचुरस्मज्जयाय त्व गृहाण वरकामुकम् ॥८२
अहञ्च ध्यामि नो युद्ध देवान् शक्रपुरोगमान् ।
इन्द्रो भवामि धर्मात्मा ततो योत्स्यामि सयुगे ॥८३
अस्माकमिन्द्र प्रह्लादस्तस्यार्थे विजयामहे ।
अस्मिंस्त समये राजस्तिष्ठ था देव नोऽर्दिते ॥८४

उस समय परम दारुण दैत्यासुर युद्ध के उत्पन्न होने पर देवगण और असुरवृन्द इसके अनन्तर पितामह से बोले ।।७७।। हे सर्व लोकेश ! भगवान् बतलावें कि हम दोनों के युद्ध में कौन विजयी होगा—यह हम सुनना चाहते हैं ।।७८।। ब्रह्माजी ने कहा—जिनके लिये संग्राम में प्रभु रजि हथियार ग्रहण करने वाला होकर युद्ध करेगा वे तीन लोकों को जीत लेंगे—इसमें संशय नहीं है ।७६। जहाँ रजि है वहाँ लक्ष्मी है और जहाँ पर लक्ष्मी है वहाँ पर धृति होती है। जहाँ पर धृति है वहाँ धर्म रहता है और जहाँ धर्म है वहीं पर जय होती है ।।८०।। तब तो देवता लोग और दानव सभी रजि की जय श्रवण कर जय की इच्छा करते हुए राजाओं में परम श्रेष्ठ रजि की स्तुति करते हुए वहाँ गये ।८१। वे सब देव और दानव प्रसन्न मन वाले राजा से बोले कि हमारे जय के लिये आप श्रेष्ठ धनुष ग्रहण करें ।।८२।। रजि ने कहा—मैं इन्द्र जिनका अग्रगामी है ऐसे देवों को युद्ध में नहीं जीतूंगा। धर्मात्मा इन्द्र होता हूँ तब युद्धभूमि में लड़ूँगा ।।८३।। दानवों ने कहा—हमारा इन्द्र प्रह्लाद है। उसके लिये हम विजय प्राप्त करते हैं। हे राजन् ! इस समय में अदिति के यहाँ न ठहरिये ।।८४।।

स तथेति ब्रु वन्नेव देवैरप्यभिचोदित ।
भविष्यसीन्द्रो जित्वे ति देवै रपि निमन्त्रित ।।८५
जघान दानवान् सर्व्वान् समक्ष वज्रपाणिन ।
स विप्रनष्टा देवाना परमश्री श्रिय वशी ।।८६
निहत्य दानवान् सर्व्वान् व्याजहार रजि प्रभु ।
स तथा तु रजिं तत्र देवैस्सह शतक्रतु । ८७
रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वच ।
इन्द्रोऽसि राजन् देवाना सर्वेपाञ्चाश संशय ।
यस्याहमिन्द्रपुत्रस्ते ख्याति यास्यामि शत्रुहन् ।।८८
स तु शक्रवच श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया ।
तथेत्येवाब्रवीद्राजा प्रीयमाण शतक्रतुम् ।।८९
तस्मिंस्तु देवसदृशे दिव प्राप्ते महीपतौ ।
दायाद्यमिन्द्रादाजह्रु राचार तनया रजेः ।।९०

तानि पञ्चशतान्यस्य तच्च स्थानं शचीपतेः ।
समक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ॥९१
ततः काले बहुतिथे समतीते महाबलः ।
हृतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हृतभागो बृहस्पतिम् ॥९२

वह तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होवेगा—यह कहता हुआ तथा देवों के द्वारा भी बहुत प्रेरित हुआ और देवों के द्वारा निमन्त्रित होता हुआ जीतकर इन्द्र होगा यह कहा गया था ॥८५॥ वज्रपाणि (इन्द्र) के समक्ष में उसने समस्त दानवों का हनन किया था। देवों की विपद रूप से नष्ट हुई श्री को बढ़ा रखने वाला वह परम श्री होगया ॥८६॥ समस्त दानवों को मारकर प्रभु रजि ने कहा वहाँ उस प्रकार से रजि को देवों के सहित इन्द्र ने मैं रजि का पुत्र हूँ—यह कहकर फिर वचन कहे। हे राजन्! आप समस्त देवों के इन्द्र हैं इसमें तनिक भी संशय नहीं है। हे शत्रुहन! जिस तरह मैं इन्द्र पुत्र हूँ—यह ख्याति को प्राप्त करूँगा ॥८८॥ वह इन्द्र के वचन को सुनकर उसके द्वारा माया से वञ्चित किया गया था। राजा ने तथास्तु—यह ही शत क्रतु (इन्द्र) को प्रसन्न करते हुए कहा ॥८९॥ उस राजा के जोकि देव के तुल्य था स्वर्ग में प्राप्त होजाने पर रजि के पुत्रों ने इन्द्र से दायाद आचार को ले लिया था ॥९०॥ इसके उन पाँचसौ पुत्रों शची के पति इन्द्र के उस स्थान त्रिविष्टप स्वर्ग लोक को बहुत प्रकार से सक्रान्त कर लिया था ॥९१॥ इसके अनन्तर बहुत काल के व्यतीत होजाने पर महान् बल वाला राज्य के छिन जाने वाला भाग्यहीन इन्द्र बृहस्पति से जाकर बोला ॥९२॥

बदरीफलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे ।
ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयं तेजसाप्यायितस्ततः ॥९३
ब्रह्मन् कृशोऽस्मि विमना हृतराज्यो हृताशनः ।
हृतौजा दुर्बलो मूढो रजिपुत्रैः प्रसीद मे । ९४
यद्य वै चोदितः शक्र त्वया स्यां पूर्वमेव हि ।
नाभविष्यत् त्वत्प्रियार्थ नाकर्तव्यं ममानघ ॥९५

प्रयतिष्यामि देवेन्द्र तद्धितार्थं महाद्युते ।
यथा भागश्च राज्यश्च अचिरात् प्रतिपत्स्यसे ॥६६
तथा शक्र गमिष्यामि माभूत्ते विक्लव मन ।
तत कर्म्म चकारास्य तेज सवर्द्धन महत् ॥६७
तेषाच बुद्धिसमोहमकरोद्बुद्धिसत्तम ।
ते यदा ससुता मूढा रागोत्पन्ना विधर्मिण ॥६८
ब्रह्मद्विषश्च सवृत्ता हतवीर्य्यपराक्रमा ।
ततो लेभे सुरैश्वर्यमैन्द्रस्थान तथोत्तमम् ॥६६
हत्वा रजिसुतान् सर्वान्कामक्रोधपरायणान् ।
य इद पावन स्थान प्रतिष्टान शतक्रतो ।
शृणुयाद्वा रजेर्वापि न स दौरात्म्यमाप्नुयात् ॥१००

हे ब्रह्मर्षे ! मेरे लिए बदरी फल (बेर) के बराबर पुरोडश करो जिसमे मैं तेज से आप्यायित (तृप्त) होता हुआ ठहरू ॥६३॥ हे ब्रह्मन् ! मैं कृश हूँ—उदास हूँ—छिने हुए राज्य वाला और छिने हुए भोजन वाला हू । रजि के पुत्रो के द्वारा हत ओज वाला—दुर्बल तथा मैं मूढ किया गया हू । आप मुझ पर प्रसन्न होइये ॥६४॥ बृहस्पति ने कहा—हे इन्द्र ! यदि इस प्रकार से तेरे द्वारा मैं पहिले ही प्रेरित होता तो हे अनघ ! तेरे प्रिय के लिये मेरा अकर्त्तव्य न होता ॥६५॥ हे देवेन्द्र ! हे महान् द्युति वाले ! उस तेरे हित के लिए मैं प्रयत्न करूँगा जिससे शीघ्र ही तेरा भाग और राज्य प्राप्त हो जायगा ॥६६॥ हे शक्र ! उस तरह से मैं जाऊ गा तू अपना मन विक्लव पूर्ण मत करे । इसके पश्चात् इसके महान् तेज के बढाने वाला कर्म किया था ॥६७॥ बुद्धि मे परम श्रेष्ठ ने उनकी बुद्धि का समोह कर दिया कि जिस समय मे पुत्रो के सहित उत्पन्न राग वाले—मूढ तथा विधर्मी होगये ॥६८॥ वे ब्राह्मणो से द्वेष करने वाले और वीर्य तथा पराक्रम के नाश कर देने वाले होगये थे फिर इसके बाद देवो के ऐश्वर्य इन्द्र के स्थान को जोकि परमोत्तम था, प्राप्त कर लिया था ॥६६॥ कामवासना और क्रोध की भावना मे तत्पर रजि के समस्त पुत्रो को मारकर जो यह पावन

स्थान और इन्द्र का अधिष्ठान था प्राप्त कर लिया था। रजि के इस इतिहास को
जो भी कोई सुनता है वह कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है ॥९ ॥

प्रकरण ५५—चन्द्रवंश कीर्तन (२)

मरुत्तेन कथं कन्या राज्ञे दत्ता महात्मना।
किर्यार्श्च महात्मानो जाता मरुतवंशका ॥१
आहवन् त मरुत्सोममग्नकाम प्रजेश्वरम्।
मासि मासि महातेजा षष्टिसंवत्सरान नृप ॥२
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तोषिता।
अक्षय्यान् ददु प्रीता सर्वकामपरिच्छदम् ॥३
अथ तस्य मरुत्सर्वमहोरात्रे न क्षीयते।
कोटिशो दीयमान च सूर्यस्याउदयनादपि ॥४
मित्रज्योतिस्तु कन्याया मरुतस्य च धीमत।
तस्माज्जाता महासत्त्वा धर्मज्ञा मोक्षदर्शिन ॥५
सन्यस्य गृहधर्माणि वैराग्य समुपस्थिता।
यतिधर्ममवाप्येह ब्रह्मभूयाय ये गता ॥६
अनपायस्ततो जातस्तदा धर्म प्रदत्तवान्।
क्षत्रधर्मस्ततो जात प्रतिपक्षो महातपाः ॥७
प्रतिपक्षसुतश्चापि सञ्जयो नाम विश्रुत।
सञ्जयस्य जय पुत्रो विजयस्तस्य जज्ञिवान् ॥८
विजयस्य जय पुत्रस्तस्य हर्यन्द्वत स्मृत।
हर्यन्दुतस्ततो राजा सहदेव प्रतापवान् ॥९
सहदेवस्य धर्मात्मा अदीन इति विश्रुत।
अदीनस्य जयत्सेनस्तस्य पुत्रोऽथ सङ्कृति ॥१०

ऋषिगण ने कहा—महात्मा मरुत ने राजा को कन्या कस दी थी।
और महात्मा मरुत की कन्याएं जो महान् आत्मा वाली थी किस प्रकार के वीर्य

वाली हुई थी ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—मरुत् नृप ने अन्न की कामना रखते हुए प्रजेश्वर उस सोम का आह्वान किया था। महान् तेज वाले राजा ने मास-मास में अर्थात् प्रत्येक मास में साठ वर्ष पर्यन्त ऐसा किया था ॥२॥ इससे वे मरुत सोम के द्वारा तोषित किये गये थे और परम प्रसन्न होते हुए उन्होंने समस्त कामनाओं का परिच्छद अक्षय्य अन्न दे दिया था ॥३॥ उसका एकबार पकाया हुआ अन्न एक अहोरात्र में क्षीण नहीं होता है और सूय के उदयन से भी करोड़ों को दिया हुआ भी चाहे क्यों नहीं क्षीण नहीं होता है ॥४॥ बुद्धिमान् मरुत की कन्या में मित्रज्योति और उससे मोक्ष के देखने वाले धर्मात्मा महा सत्त्व उत्पन्न हुए ॥५॥ वे गृह धर्मों का भली-भाँति त्याग करके वैराग्य को प्राप्त हुए थे यहा पति धम को पाकर वे सब ब्रह्मा के स्वरूप को पहुँच गये थे ॥६॥ इसके अनन्तर अनपाम उत्पन्न हुआ तब उससे धर्म प्रवत्तवान् पैदा हुआ उससे फिर क्षत्रधर्म पैदा हुआ और उससे महान् तप वाला प्रति पक्ष ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥ पतिपक्ष का पुत्र भी सजय इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। सजय के पुत्र का नाम जय था और उस जय के विजय नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥८॥ विजय के पुत्र का नाम जय था और उसके पुत्र का नाम हर्यन्दुत हुआ था हर्यन्दुत के पुत्र का नाम प्रताप वाला सहदेव राजा था ॥९॥ सहदेव के धर्मात्मा अदीन इस नाम से विश्रुत हुआ था। अदीन के पुत्र का नाम जयत्सेन हुआ और उसके सकृति नामक पुत्र हुआ था ॥१०॥

सकृतेरपि धर्मात्मा कृतधर्मा महायशा ।
इत्येते क्षत्रधर्माणो नहुषस्य निबोधत ॥११
नहुषस्य तु दायादा षडिन्द्रोपमतेजस ।
उत्पन्ना पितृकन्यायां विरजायां महौजस. ॥१२
यतिर्ययाति सयातिरायाति पञ्च तुद्दय ।
यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततोऽवर ॥१३
काकुत्स्थकन्या गा नाम लेभे पत्नी यतिस्तदा ।
सयातिर्मो क्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनि ॥१४

तेषा मध्ये तु पञ्चाना ययाति पृथिवीपति ।
देवयानिमुशनस सुता भार्यामिवाप ह ॥१५
शर्मिष्ठा मासुरी चव तनया वृषपवण ।
यदु च तुवसु चव देवयानिव्यजायत ॥१६
द्रु ह्यु चानुच पूरुच शर्मिष्ठा वाषपवणी ।
अजीजन महावीर्यान् सुतान्देवसुतोपमान् ॥१७
रथन्यस्म ददौ शक्र प्रीत परमभास्वरम् ।
असङ्ग काञ्चन दिव्यमक्षयौ च महेषुधी ॥१८

सस्कृति के पुत्र का नाम धर्मा मा एव महान् यश वाला कृतधर्मा हुआ था। मे इनने क्षत्र धम वाले हुए थे सब नहुष के वश मे जो उत्पन्न हुए थे उनको समझ लो ॥११॥ नहुष क दायाद छ हुए थे जोकि इन्द्र के समान तेज स्वी थे और वे सब महान् ओज वाले पितृ कन्या विरजा मे उत्पन्न हुए थे ।१२। जिनके नाम यति–ययाति–सयाति–आयाति और पञ्च एव तुद्रय थे। उन सबमे यति सबसे बड़ा था और ययाति उससे छोटा था ॥१३॥ तब गो नाम वाली काकुत्स्थ की कन्या को यति ने ली के रूप मे प्राप्त किया था। सयति मोक्ष के काय म स्थित होकर ब्रह्मभूत मुनि होगया था ॥१४॥ उन पाँचो के बीच मे ययाति जो था वह पृथिवी का स्वामी बना था। उसने उशना की पुत्री देवयानी को भार्या के रूप म प्राप्त किया था ॥१५॥ और आसुरी वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा का प्राप्त किया था। देवयानी ने यदु और तुवसु को उत्पन्न किया था वाषपवणी शर्मिष्ठा ने द्रुह्यमनु और पुरु को जन्म दिया था जोकि पुत्र महान् वीय वाल एव देव पुत्रा क समान थे ॥१७॥ उसके लिए परम प्रसन्न होने वाले शक्र ने इन्द्र न परमभास्वर–असङ्ग और काञ्चन दिव्य रथ प्रदान किया था तथा दो अक्षय महेषुधी दिये थे ॥१८॥

युक्त मनो जवरश्वैर्येन कन्या समुद्वहत् ।
स तेन रथमुख्येन जिगाय च ततो महीम् ॥१९
ययातियु धि दुर्द्धर्षो देवदानवमानवैः ।
पौरवाणा नृपाणाञ्च सर्वेषा सोऽभवद्रथ ॥२

पौरवसुदेवप्रभव: कौरवो जनमेजयः ।
कुरोः नृपस्य राजर्षे राज्ञः पारिक्षितस्य ह ।
जगाम स रथो नाशं शापाद्गार्ग्यस्य धीमतः ॥२१
गार्ग्यस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः ।
दुर्बुद्धिरवधीत्तात लोहगन्धं नराधिपम् ॥२२
स लोहगन्धो राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः ।
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित् ॥२३
ततः स दुःखसन्तप्तो नालभत्संविदं क्वचित् ।
शशाप हेतुकमृषिं शरण्यं व्यथितस्तदा ॥२४

वह रथ मन के समान वेग वाला था अथवा मन तुल्य था जिससे ययाति ने समुद्रहन किया था । उसने उस युक्त रथ के द्वारा मही को जीत लिया था ॥१९॥ ययाति देवता और दानवों के द्वारा युद्ध में असमर्थ हुआ था । पौरवों में और राजाओं में सबमें वह रथ हुआ था ॥२०॥ पौरवसुदेव से उत्पन्न होने वाला कौरव जनमेजय था । राजा कुरु के पुत्र और राजा पारिक्षित का वह रथ धीमान् गार्ग्य के शाप से नाश को प्राप्त हुआ था ॥२१॥ उस राजा जनमेजय ने बालक की अवस्था में दुर्बुद्धि होकर गार्ग्य के पुत्र लोहगन्ध नराधिप की हिंसा की थी ॥२२॥ वह राजर्षि लोहगन्ध इधर-उधर दौड़ता हुआ पौरजन पदों के द्वारा त्याग हुआ कहीं पर भी शान्ति का पद अवसाद को प्राप्त नहीं हुआ ॥२३॥ इसके अनन्तर दुःख से सन्तप्त होते हुए कहीं पर भी संविद को प्राप्त नहीं किया था । तब अत्यन्त व्यथा से युक्त होकर उसने शरण्य हेतुक ऋषि को शाप दे दिया था ॥२४॥

इन्द्रोतो नाम विख्यातो योऽसौ मुनिरुदारधीः ।
याजयामास चेन्द्रोतः शौनको जनमेजयम् ।
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः ॥२५
स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावभृथमेत्य ह ।
स च दिव्यो रथस्तस्माद्वसोश्चेदिपतेस्तथा ॥२६
दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः ।

ततो हृत्वा जरासन्ध भीमस्त रथमुत्तमम् ।
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दन ॥२७
स जरा प्राप्य राजर्षिर्ययातिर्नहुषात्मज ।
पुत्र ज्येष्ठ वरिष्ठञ्च यदुमित्यब्रवीद्वच ॥२८
जरावली च मा तात पलितानि च पर्यगु ।
काव्यस्योशनस शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ॥२९
त्व यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मान जरया सह ।
जरा म प्रतिगृह्णीष्व त यदु प्रत्युवाच ह ॥३०
अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।
सा च व्यायामसाध्या व न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥३१
जरया बहवा दोषा पान भोजनकारिण ।
तस्माज्जराम्न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥३२

जो उदार बुद्धि वाला मुनि इन्द्रोत नाम से विख्यात था उस इन्द्रोत और द्विजोत्तम शौनक ने जनमेजय राजा को पावन होने के लिये अश्वमेध यज्ञ करने के लिए योजित किया था ॥२५॥ उस लोहगन्ध ने उसके आवास में आकर उस रथ का विनाश कर दिया था। और वह दिव्य रथ चेदिपति वसु से और इसके अनन्तर उससे बृहद्रथ तुष्ट होने वाले इन्द्र ने प्राप्त किया था। इसके पश्चात् भीम ने जरासन्ध को मार कर उस उत्तम रथ को कौरव नन्दन ने परम प्रसन्नता से वासुदेव को दे दिया था ॥२६ २७॥ वह राजर्षि ययाति नहुष का पुत्र वृद्धावस्था को प्राप्त कर अपने ज्येष्ठ एवं वरिष्ठ पुत्र यदु से यह वचन बोला ॥२८॥ हे तात ! यह वृद्धता की अवस्था ने चारों ओर से मुझे घेर लिया है और पलित बना दिया है मेरी यह दशा उशना काव्य के शाप से हो गई है और मैं यौवन से अभी तृप्त नहीं हुआ हूँ ॥२९॥ हे यदो ! तुम इस जरा अर्थात् वृद्धता के सहित पाप का ग्रहण करो तब यदु ने उत्तर दिया ॥३ ॥ मैंने ब्राह्मण को अनिर्दिष्ट भिक्षा की प्रतिज्ञा की है और वह व्यायाम के द्वारा ही साध्य है अतः मैं इस आपकी वृद्धता का ग्रहण नहीं करूँगा ॥३१॥ इस वृद्धता में पान तथा भोजन करने वाले बहुत से दोष होते हैं इस कारण से हे राजन् ! मैं उसे ग्रहण करने को उत्साहित नहीं होता हूँ ॥३२॥

है ॥३७॥ क्रोधसे युक्त वह राजा इस प्रकार से कहकर उसने यदु को शाप दे दिया कि तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ था और तू अपना यौवन मुझे नहीं दे रहा है ॥३८॥ हे मूढ ! तू इस कारण से राज्य का भागी नहीं होगा। हे तुर्वसो ! तू मेरी वृद्धता के साथ मेरे दास पापको ग्रहण कर ॥३९॥ तुर्वसु ने कहा—हे तात ! काम और भोगों का नाश करने वाली इस वृद्धता को मैं नहीं चाहता हूँ। पान तथा भोजन करने वाले हम जराम बहुत से दोष हुआ करते हैं इससे हे राजन् ! मैं इस जरा को ग्रहण नहीं करना चाहता हूँ ॥४०॥

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वन्न प्रयच्छसि ।
तस्मात् प्रजा समुच्छेद् तुर्वसो तव यास्यति ॥४१
असङ्कीर्णा च धर्मेण प्रतिलोमवरेषु च ।
पिशितादिषु चान्येषु मूढ राजा भविष्यसि ॥४२
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्यानिगतेषु वा ।
पशुधर्मेषु म्लेच्छेषु भविष्यति न संशयः ॥४३
एवन्तु तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः ।
शर्मिष्ठायाः सुतं द्रुह्युमिदं वचनमब्रवीत् ॥४४
द्रुह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम् ।
जरां वर्षसहस्रं वै यौवनं स्वं ददस्व मे ॥४५
पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ।
स्वञ्चादास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह ॥४६
न गजं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते न च स्त्रियम् ।
न सङ्गश्चास्य भवति न जरा तेन कामये ॥४७
यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वन्न प्रयच्छसि ।
तस्माद्द्रुह्यो प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित् ॥४८

ययाति ने कहा—तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ है और फिर भी अपना यौवन मुझे देना नहीं चाहता है इससे हे तुर्वसु ! तेरी सन्तान का समुच्छेद हो जायगा ॥४१॥ तेरी प्रजा धर्म से प्रतिलोम वरों में असङ्कीर्ण होगी। हे मूढ ! और अन्य पिशित आदि में राजा होगा ॥४२॥ गुरु की दारा में प्रसक्त अथवा

तिर्यग्योनि में जाने वाले तथा यश धर्मों में एवं म्लेच्छों में तू होगा—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥४३॥ श्री सूतजी ने कहा—ययाति इस प्रकार से तुर्वसु को शाप देकर जोकि अपना ही उसका पुत्र था फिर शर्मिष्ठा के पुत्र द्रुह्यु से यह वचन बोला ॥४४॥ हे द्रुह्यु ! तू इस मेरी वर्ण तथा रूप के विनाश करने वाली जरा को एक सहस्र वर्ष के लिये ग्रहण करले और अपना यौवन मुझे दे दे ॥४५॥ एक हजार वर्ष पूरे होजाने के पश्चात् तुझे तेरा यौवन वापिस दे दूँगा और मैं फिर अपने पाप के सहित वृद्धता को वापिस ले लूँगा ॥४६॥ द्रुह्यु ने कहा—जरासे जीर्ण पुरुष हाथी-घोड़ा-रथ और स्त्री किसी का भी भोग नहीं कर सकता है और इसका सङ्ग भी नहीं होता है अतएव मैं आपकी जरा को ग्रहण करना नहीं चाहता हूँ ॥४७॥ ययाति ने कहा—जो तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ है और इस समय मुझे अपना यौवन नहीं देता है इससे हे द्रुह्यु ! कहीं भी तेरा प्रिय काम नहीं पूर्ण होगा ॥४८॥

नौप्लवोत्तरसञ्चारस्तत्र नित्यं भविष्यति ।
अराजभ्राजवशस्त्वं तत्र नित्यं भविष्यसि ॥४९

अनो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।
एवं वर्षसहस्रन्तु चरेयं यौवनेन ते ॥५०

जीर्णः शिशुवद् दत्ते जरया ह्यशुचिः सदा ।
न जुहोति स कालेऽग्निं तां जरान्नाभिकामये ॥५१

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वन्न प्रयच्छसि ।
जरादोषस्त्वयोक्तोऽयं तस्मात्त्वं प्रतिपत्स्यते ॥५२

प्रजा च यौवनं प्राप्ता विनशिष्यत्यतस्तव ।
अग्निप्रस्कन्दनपरस्त्वं चाप्येवं भविष्यसि ॥५३

पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानञ्जरया सह ।
जरावली च मान्तात पलितानि च पर्यगुः ॥५४

काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ।
कञ्चित्कालञ्चरेयं वै विषयान् वयसा तव ॥५५

पूर्णे वर्षसहस्र ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ।
स्वञ्च व प्रतिपत्स्यामि पाप्मानञ्जरया सह ।।४६

वहाँ पर नौकाप्लव का सञ्चार नित्य होगा और वहाँ तू अराज आज वध वाला नित्य ही रहेगा ।।४६।। हे अनो ! मेरे पाप को जरा के साथ तू ग्रहण करले। इस तरह एक सहस्र वर्ष तक मैं तेरे यौवन से आनन्द प्राप्त करलूँ ।।५ ।। अनु बोला—जरा से जीर्ण व्यक्ति सदा जरा से भ्रष्ट बालक अशुचिता दिया करता है। वह समय पर अग्नि में हवन नहीं कर पाता है इसलिये मैं ऐसी जरा की इच्छा नहीं करता हूँ ।।५१।। ययाति बोला—तू मेरे शरीर एवं हृदय से उत्पन्न हुआ है और मुझ अपने पिता को अपना यौवन नहीं देना चाहता है। तूने जो यह जरा के दोष बतला दिये हैं। अच्छा तू इन दोषों को प्राप्त करेगा ।।५२।। तेरी सन्तति जब यौवन को प्राप्त होगी तो नष्ट हो जायगी और तू भी अग्नि के प्रस्कन्दन में ही परायण रहेगा ।।५३।। हे पूरो ! तू मेरे पाप को जरा के साथ ग्रहण करले हे तात ! यह जरावली ने मुझको सब ओर से पतित कर दिया है ।।५४।। उशना काव्य के शाप से मैंने अपने यौवन में तृप्ति प्राप्त नहीं की है। तेरे यौवन से कुछ समय तक चरण करलूँ और विषयों का उपभोग करूँ ।।५५।। एक सहस्र वर्ष के पूरे होजाने पर तेरा यौवन तुझे दे दूँगा और अपने पाप के साथ जरा को वापिस ले लूँगा ।।५६।।

एवमुक्त प्रत्युवाच पुत्र पितरमञ्जसा ।
यथानुमन्यसे तात करिष्यामि तथैव च ।।५७
प्रतिपत्स्यामि ते राजन् पाप्मान जरया सह ।
गृहाण यौवन मत्तश्चर कामान् यथेप्सितान् ।।५८
जरयाह प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव ।
यौवन भवते दत्वा चरिष्यामि यथार्थवत् ।।५९
पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रन्ते प्रीतश्च द ददामि ते ।
सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति ।।६०
पूरोरनुमतो राजा ययाति स्वा जरा तत ।
सकामयामास तदा प्रसादाद्भार्गवस्य तु ।।६१

यौवनेनाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मज ।
प्रीतियुक्तो नरश्रेष्ठश्चचार विषयान् स्वकान् ॥६२
यथाकाम यथोत्साहं यथाकाल यथासुखम् ।
धर्माविरोधाद्राजेन्द्रो यथार्हति स एव हि ॥६३
देवानतर्पयद्यज्ञैः पितृञ्छ्राद्धैस्तथैव च ।
दीनाश्चानुग्रहैरिष्टैः कामैश्च द्विजसत्तमान् ॥६४
अतिथीनन्नपानैश्च वैश्यांश्च परिपालनैः ।
आनृशस्येन शूद्रांश्च दस्यून् सनिग्रहेण च ॥६५
धर्मेण च प्रजा सर्व्वा यथावदनुरञ्जयन् ।
ययाति पालयामास साक्षादिन्द्र इवापर ॥६६

श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से कहे हुए पुत्र ने तुरन्त ही पिता से कहा—हे तात ! आप जो भी कहते है मैं उसी प्रकार से करूँगा ॥५७॥ हे राजन् ! मैं आपके पाप को जरा के सहित प्राप्त करलूँगा। आप मुझसे मेरा यौवन ग्रहण कर लीजिये और यथेष्ट विषयो का उपभोग करें ॥५८॥ मैं इस जरा से प्रतिच्छन्न होता हुआ तुम्हारी वय के रूप को धारण करने वाला आपको यौवन देकर यथार्थ की भाँति चरण करूँगा ॥५९॥ ययाति बोला—हे पूरो ! मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हूँ तेरा कल्याण हो, मैं प्रसन्न होकर तुझे वरदान देता हूँ कि राज्य मे तेरी प्रजा समस्त कामनाओ से समृद्ध होगी ॥६०॥ श्री सूतजी ने कहा—पुरु से अनुमत होने वाले राजा ययाति ने इसके अनन्तर अपनी जरा को उस समय भार्गव के प्रसाद से सक्रामित करा दिया था ॥६१॥ नहुष का पुत्र ययाति इसके अनन्तर यौवन की अवस्था से वह नरश्रेष्ठ परम प्रसन्नता युक्त होते हुए अपने विषयो के उपभोगो को करने लगा था ॥६२॥ यथा काम और उत्साह के अनुकूल—यथा समय और सुखानुसार धर्म के अनुरोध से वह राजेन्द्र जो भी योग्य होता है वही करता है ॥६३॥ यज्ञो के द्वारा देवो को तृप्त किया और श्राद्धो के द्वारा पितरो को सन्तुष्ट किया था और दीनों पर उन्हें अनुग्रह करके तथा इष्टो की कामना को पूर्ण करके द्विज श्रेष्ठो को सन्तुष्ट किया था ॥६४॥ अतिथियो को अन्न दान तथा पान के द्वारा—वैश्यो को परि-

पालन के द्वारा तथा शूद्रो को क्रूरता के अभाव के द्वारा एवं दस्युओं को भली भाँति निग्रह के द्वारा सन्तुष्ट किया करता था ॥६५॥ धर्म पूर्वक अपनी समस्त प्रजा का अनुरञ्जन करते हुए साक्षात् दूसरे इन्द्र के समान राजा ययाति ने प्रजा का यथावत् पालन किया था ॥६६॥

स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचर ।
अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम् ॥६७
स मार्गमाण कामानामन्तर्दोषनिदर्शनात् ।
विश्वासहेतो रेमे व वभ्राजे नन्दने वने ॥६८
अपश्यत्स यदा ता व वद्धमाना नृपस्तदा ।
गत्वा पूरो सकाश व स्वा जरा प्रत्यपद्यत ॥६९
स सम्प्राप्य तु तान् कामास्तृप्त खिन्नश्च पार्थिव ।
काल वर्षसहस्र व सस्मार मनुजाधिपः ॥७०
परिसङ्ख्याय कालज्ञ कलाकाष्ठास्तथव च ।
पूर्ण मत्वा तत काल पूरु पुत्रमुवाच ह ॥७१
यथासुख यथोत्साह यथाकालमरिंदम ।
सेविता विषया पुत्र यौवनेन मया तव ॥७२
पूरो प्रीतोऽस्मि भद्र ते गृहाण त्व स्वयौवनम् ।
राष्ट्रञ्च त्व गृहाणेद त्व हि मे प्रियकृत्सुत ॥७३
प्रतिपेदे जरा राजा ययातिर्नहुषात्मज ।
यौवन प्रतिपेदे च पूरु स्व पुनरात्मन ॥७४

वह राजा सिंह के समान विक्रान्त-युवावस्था से पूर्ण विषय गोचर था किन्तु धर्म के विरोध न करने से उसने उत्तम सुख का चरण किया था ॥६७॥ वह कामो की अन्तर्दोषो के निदर्शन से खोज करता हुआ अपने विश्वास के हेतु से वैभ्राज नन्दन वन मे रमण करता था ॥६८॥ जब उस राजा ने उस काम वासना को बढती हुई ही देखा तो उस समय पूरु के पास जाकर अपनी वृद्धता का पुन उसने प्राप्त कर लिया था ॥६९॥ उस राजा ने उन कामो को भली भाँति प्राप्त करके तृप्त हुआ और खिन्न भी हुआ। उस मनुजो के स्वामी ने अपने

कामों के उपभोग में व्यतीत हुए एक सहस्र वर्षों का स्मरण किया था ॥७०॥ और काल को तथा कला एवं काष्ठाओं की परिगणना करके और उसी प्रकार से काल को पूर्ण मानकर फिर अपने पुत्र पूरु से बोला ॥७१॥ हे अरिन्दम! गुण के अनुसार और यथोत्साह तथा काल के अनुकूल मैंने तुम्हारे यौवन के द्वारा हे पुत्र! विषयों को खूब सेवन किया है ॥७२॥ हे पूरो! मैं तुम से बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम अपने यौवन को वापिस ग्रहण करो। और साथ ही इस राष्ट्र को भी तुम ग्रहण करो, तुम ही मेरे प्रिय करने वाले पुत्र हो ॥७३॥ इस तरह नहुष के पुत्र ययाति राजा ने अपनी जरा को प्राप्त कर लिया था और पूरु ने पुनः अपना यौवन प्राप्त कर लिया था ॥७४॥

अभिषेक्तुकामस्थ नृप पूरु पुत्र कनीयसम् ।
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इद वचनमब्रुवन् ॥७५
कथं शुक्रस्य नप्तार देवयान्या सुत प्रभो ।
ज्येष्ठ यदुमतिक्रम्य पूरो राज्य प्रदास्यसि ॥७६
यदुर्ज्येष्ठस्तव सुतो जातस्तमनु तुर्वसु ।
शर्मिष्ठाया सुतो द्रुह्यु स्ततोऽनु पूरुरेव च ॥७७
कथ ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान् राज्यमर्हति ।
अतः सम्बोधयामि त्वा धर्मं समनुपालय ॥७८
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा सर्वे शृण्वन्तु मे वच ।
ज्येष्ठ प्रति यथा राष्ट्र न देय मे कथञ्चन ॥७९
माता पित्रोर्वचनकृत्स हि पुत्र प्रशस्यते ।
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालित ॥८०
प्रतिकूल पितुर्यश्च न स पुत्र सता मत ।
स पुत्र पुत्रवद् यश्च वर्त्तते पितृमातृषु ॥८१
यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि च ।
द्रुह्यु णा चानुना चैवमप्यवज्ञा कृता भृशम् ॥८२

अपने छोटे प्रिय पुत्र पूरु को राज्याभिषिक्त करने की इच्छा वाले राजा ययाति से ब्राह्मण प्रमुख सभी वर्ण वाले यह वचन बोले ॥७५॥ हे प्रभो! शुक्र

के नाती और देवयानी के पुत्र ज्येष्ठ यदु का अतिक्रमण करके पूरु को राज्य किस तरह आप दे रहे ? ॥७६॥ यदु आपका सबसे बड़ा पुत्र उत्पन्न हुआ था। उसके पश्चात् उससे छोटा तुर्वसु पुत्र है। शर्मिष्ठा का पुत्र द्रुह्यु बड़ा है उसके पश्चात् उससे छोटा पूरु है ॥७७॥ आप बड़े पुत्रों का सबका अतिक्रमण करके छोटे पुत्र को राज्य कैसे देने को योग्य होते हैं ? इसलिये हम आपको सम्यक प्रकार से ज्ञान देते हैं कि आप धर्म का पूर्ण पालन करें ॥७८॥ राजा ययाति ने कहा—हे ब्राह्मण प्रमुखो ? आप समस्त वर्ण वाले सब मेरे वचन का श्रवण करें। जैसा कि ज्येष्ठ को राष्ट्र दिया जाता है किन्तु मुझे वह किसी प्रकार से भी नहीं देना है ॥७९॥ जो माता और पिता के वचनों का परिपालन करने वाला होता है वह पुत्र प्रशसनीय माना जाता है। मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदु ने मेरे नियोग का अनुपालन नहीं किया था ॥८०॥ जो पिता के प्रतिकूल हो वह सज्जन पुरुषों ने पुत्र नहीं माना है। पुत्र वह ही है जो पुत्र की भाँति पिता और माता के विषय में व्यवहार किया करता है ॥८१॥ यदु ने तथा तुर्वसु इन दोनों ने मेरी अवज्ञा करदी थी और छोटे द्रुह्यु ने भी इसी प्रकार से मेरी बहुत ही अधिक अवज्ञा की थी ॥८२॥

पूरुणा तु कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः ।
कनीयान् मम दायादो जरा येन धृता मम ।
सर्वकामं सर्वकृतं पूरुणा पुत्रकारिणा ॥८३
शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम् ।
पुत्रो यस्त्वानुवर्त्तेत स राजा ते महामते ॥८४
भवतोऽनुमतोप्येव पूरू राष्ट्रेऽभिषिच्यताम् ।
यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा ।
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः ॥८५
अर्हः पूरुरिदं राष्ट्रं यः प्रियः प्रियकृत्तव ।
वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम् ॥८६
पौरजानपदस्तुष्टैरित्युक्तो नाहूषस्तदा ।
अभिषिच्य ततः पूरुं स्वराष्ट्रे सुतमात्मनः ॥८७

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं तु न्यवेशयत् ।
दक्षिणापरतो राजा यदुं श्रेष्ठं न्यवेशयत् ॥८८
प्रतीच्यामुत्तरस्यां च द्रुह्युं चानुं च तावुभौ ।
सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् ।
व्यभजत् पञ्चधा राजा पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा ॥८६
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
यथाप्रदेशं धर्मज्ञैर्धर्म्मेण प्रतिपाल्यते ॥६०
एवं विसृज्य पृथिवीं पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा ।
पुत्रसङ्क्रामितश्रीस्तु प्रीतिमानभवन्नृप. ॥६१
धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च राज्यं चैव सुतेषु तु ।
प्रीतमानभवद्राजा भारमावेश्य वन्धुषु ॥६२

पूरु ने मेरे वचन का पूर्ण पालन किया और मेरा पिता की भाँति विशेष रूप से सम्मान किया था । मेरा यह छोटा पुत्र है किन्तु इसने मेरी आज्ञा मानते हुए मेरी वृद्धता को स्वयं धारण किया था । पुत्रकारी पूरु ने मेरा समस्त काम किया और सभी कुछ किया है ॥८३॥ और उशना काव्य शुक्र ने स्वयं वरदान दिया था कि हे महामते ! जो पुत्र तुम्हारे अनुकूल व्यवहार करे वही राज्य का राजा होगा ॥८३॥ इस तरह से पूरु आपका भी अनुमत है उसे राष्ट्र में अभिषिक्त कर दो । जो पुत्र गुणों से सम्पन्न हो और सदा माता-पिता का हित करने वाला हो वह छोटा भी प्रभु समस्त कल्याण प्राप्त करने के योग्य होता है ।८५। पूरु इस राष्ट्र के प्राप्त करने को योग्य है जो आपके प्रिय करने वाला और आपका प्रिय है । शुक्र के वरदान से अब कोई भी उत्तर कहा नहीं जा सकता है ॥८६॥ उस समय पौरजान पदों के द्वारा पूर्णतया सन्तुष्ट होते हुए नहुष के पुत्र ययाति इस प्रकार से कहे गये और उन्होंने अपने पुत्र पूरु को राष्ट्र में अभिषिक्त करके दक्षिण पूर्व दिशा में तुर्वसु को निवेशित कर दिया था और दक्षिण से अन्य दिशा में राजा ने श्रेष्ठ यदु को निवेशित किया ॥८७-८८॥ पश्चिम में और उत्तर में द्रुह्यु और अनु इन दोनों को को निवेशित किया था । ययाति ने सागर के सहित सात द्वीप वाली पृथ्वी को जीत कर पाँच प्रकार से उसका

नहुष के पुत्र ने उस समय मे पुत्रो के लिये विभाजन कर दिया था ।।८६।।उनके द्वारा यह समस्त पृथ्वी जिसम सात द्वीप हैं उसे पत्तनो (नगरो) के सहित प्रदेशो के अनुसार धर्म के ज्ञाताओ उनने धम पूवक पालन किया था ।।६ ।। इस प्रकार से नहुष के पुत्र ययाति ने उस समय पुत्रो के ऊपर पृथ्वी का भार छोड़कर पुत्रो म राज्यश्री को सक्रामित करने वाला राजा बहुत ही प्रसन्नता को प्राप्त हुआ था ।।६१।। धनुष और पृषत्को को त्याग कर तथा पत्रो को राज्य को सौप कर बन्धुओ पर अपना भार छोड़कर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ था ।।६२।।

अत्र गाथा महाराजा पुरा गीता ययातिना ।
योऽभिप्रेत्याहरन् कामान् कूर्मोङ्गानीव सवश ।।६३
न जातु काम काम नामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवद्ध ते ।।६४
यत् पृथिव्या व्रीहियव हिरण्य पशव स्त्रिय ।
नालमेकस्य तत्सवमिति पश्यन्न मुह्यति ।।६५
यदा तु कुरुते भाव सर्व्वभूतेषु पावकम् ।
कर्म्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।६६
यदा परान्न बिभेति यदा त्वस्मान्न बिभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा । ६७
या दुस्त्यजा दुर्म्मतिभिर्या न जीयति जीर्य्यत ।
दोषाप्राणान्तिको रागस्ता तृष्णान्त्यजत सुखम् ।।६८
जीर्य्यन्ति जीयत केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यत ।
जीविताशा धनाशा च जीर्य्यतोपि न जीर्यति ।।६६
यच्चाकामसुख लोके यच्च दिव्य महत् सुखम् ।
तृष्णास्य च सुखस्यैव कला नार्हति षोडशीम् ।।१०

यहाँ पर पहिले महान् राजा ययाति ने यह गाथा गाई है जिसने अभि प्राय करके समस्त कामनाओ को कूम के द्वारा अपने अङ्गो की भाँति सब ओरसे सकुचित कर लिया था ।।६३।। कभी भी कामो के उपभोग करने उनका समन

नहीं हुआ करता है। कामों के उपभोग से तो उल्टे वे हवि डालने से अग्नि की भाँति और अधिक बढ़ जाया करते हैं अर्थात् विशेष प्रदीप्त होजाते हैं ॥९४॥ जो भी इस पृथिवी में ब्रीहि-यव-सुवर्ण-पशु और स्त्रियाँ आदि हैं वह सब एक को पूर्ण रूप पर्याप्त नहीं है—यह देखते हुए मोह को प्राप्त नहीं होता है। ॥९५॥ जिस समय में समस्त भूतों में पापक भाव करता है और वह भी कर्म-मन और वचन सभी प्रकार से किया करता है तब वह ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥९६॥ जब परसे नहीं डरता है और स्वयं अपने से परको नहीं डर देता है। जब कोई भी इच्छा नहीं करता है और न द्वेष करता है तब ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥९७॥ जो दुष्ट बुद्धि वालों के द्वारा दुस्त्यज है और जो स्वयं जीर्ण होजाने पर जीर्ण नहीं होता है यह प्राणान्तिक रोग है अर्थात् प्राणों के अन्त समय तक रहने वाला रोग होता है उस तृष्णा के त्याग करने वाले को ही सुख होता है ॥९८॥ जरा से जीर्ण होने वाले पुरुष के केश भी जीर्ण होजाते हैं तथा साथ ही जरा की जीर्णता में दन्त जीर्ण-शीर्ण हो जाया करते हैं किन्तु एक जीवित रहने की आशा और धन प्राप्त करने की आशा जीर्ण होजाने पर भी तृष्णा ही जीर्ण नहीं हुआ करती है ॥९९॥ जो संसार में कामोपभोग का सुख है और जो दिव्य महान् सुख है ये दोनों तृष्णा के त्याग के सुख की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है ॥१००॥

एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्रस्थितो वनम् ।
भृगुतुङ्गे तपस्तप्त्वा तत्रैव च महायशाः ।
पारयित्वा व्रतशत तत्रैव स्वर्गमाप्नुयात् ॥१०१
तस्य वंशास्तु पञ्च ते पुण्या देवर्षिसत्कृताः ।
यैर्व्याप्ता पृथिवी कृत्स्ना सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥१०२
धन्य प्रजावानायुष्मान् कीर्तिमांश्च भवेन्नरः ।
ययातेश्चरितं सर्वं पठञ्छृण्वन् द्विजोत्तम ॥१०३

राजर्षि ने इस प्रकार से कहकर पत्नी के साथ वन में प्रस्थान कर दिया था। भृगु तुङ्ग पर तप करके और महान् यश वाले ने वहाँ पर ही सौ व्रतों का पालन करके वहाँ पर ही स्वर्ग की प्राप्ति की थी ॥१०१॥ उसके ये पाँच

यदा है जो बड़े पुण्य है और देवर्षि के द्वारा सत्कार पाने वाले हैं जिन ने यह समस्त भूमण्डल व्याप्त हो रहा है जिस प्रकार सूर्य की किरणों से समस्त पृथ्वी व्याप्त होती है ॥१ २॥ जो द्विज श्रेष्ठ राजा ययाति के इस समस्त चरित्र को पढ़ता या सुनता है वह परम धन्य-प्रजावाला-आयु से युक्त और वह मनुष्य कीर्तिमान् होता है ॥१ ३॥

प्रकरण ५६ —कार्तवीर्य अर्जुन उत्पत्ति

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि श्र ष्ठस्योत्तमतेजस ।
विस्तरेणानुपूर्व्येण गदतो मे निबोधत ॥१
यदो पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमा ।
सहस्रजिदथ श्र ष्ठ क्रोष्टुर्नीलो जितो लघु ॥२
सहस्रजित्सुत श्रीमाञ्छतजिन्नाम पार्थिव ।
शतजित्सुता विख्यातास्त्रय परमधार्मिका ॥३
हैहयश्च हयश्च व राजा वेणुहयश्च य ।
हैहयस्य तु दायादो धर्मतत्त्व इति श्रुति ॥४
धर्मतत्त्वस्तु कीर्तिस्तु सनेयस्तस्य चात्मज ।
सन्नयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिव ॥५
आसीन्महिष्मत पुत्रो भद्रश्रेण्य प्रतापवान् ।
वाराणस्यधिपो राजा कथित पूर्व एव हि ॥६
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्मदो नाम पार्थिव ।
दुर्मदस्य ततो धीमान् कनको नाम विश्रुत ॥७
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुता ।
कृत वीर्य कार्तवीर्य कृतवर्मा तथव च ॥८

श्री सूत बोले—अब मैं उत्तम तेज वाले-परम श्रेष्ठ यदु के वंश का वर्णन करूंगा और उसे विस्तार से तथा अनुपूर्वी के साथ बताऊंगा। कहते हुए

मुझसे उसे आप लोग जान लो ॥१॥ यदु के देव पुत्रों के समान पाँच पुत्र हुए थे। उनके नाम सहस्रजित्–वेणु–क्रोष्टु नील–जित और लघु होते हैं ॥२॥ सहस्रजित् का पुत्र श्रीमान् शतजित् नाम वाला राजा हुआ था और शतजित् के परम धार्मिक तीन पुत्र विख्यात हुए थे ॥३॥ जिनके नाम हैहय–हय और वेणु–हय थे थे। हैहय का पुत्र धर्मतत्त्व नाम वाला राजा हुआ था ॥४॥ उसके पुत्र धर्मनेत्र–कीर्ति और सञ्जेय थे। सञ्जेय के पुत्र का नाम महिष्मान् राजा था ॥५॥ महिष्मान् के पुत्र का नाम भद्रश्रेण्य था जोकि बड़ा प्रताप वाला हुआ है। यह वाराणसी का स्वामी राजा था जिसको कि पहिले ही बता दिया है ॥६॥ भद्रश्रेण्य का दायाद दुर्मद नामक राजा था। फिर दुर्मद के धीमान् कनक नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥ कनक राज्य के चार लोक में परम प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम कृतवीर्य–कार्त्तवीर्य–कृतवर्मा और चौथा कृत है ॥८॥

कृतो जातश्चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्ततोऽर्जुन ।
जज्ञे बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृप ॥९
स हि वर्षायुत तप्त्वा तप परमदुश्चरम् ।
दत्तमाराधयामास कार्त्तवीर्योऽत्रिसम्भवम् ॥१०
तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजस ।
पूर्व्वं बाहुसहस्रन्तु स वव्रे प्रथम वरम् ॥११
अधर्म्मे धीयमानस्य सद्भिस्तस्मान्निवारणम् ।
धर्म्मेण पृथिवीञ्जित्वा धर्म्मेणैवानुपालनम् ॥१२
सग्रामास्तु बहून् जित्वा हत्वा चारीन् सहस्रश ।
सग्रामे युद्धचमानस्य वध स्यादधिकाद्रणे ॥१३
तेनेय पृथिवी कृत्स्ना सप्तद्वीपा सपत्तना ।
सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जना ॥१४
तस्य बाहुसहस्रन्तु युद्धयत किल धीमत ।
यौद्धो ध्वजो रथश्चैव प्रादुर्भवति मायया ॥१५

दशायुतसहस्राणि तेषु द्वीपेषु सप्तसु ।
निरगला स्म निवृत्ता श्रूयन्ते तस्य धीमत ॥१६
सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन् भूरिदक्षिणा ।
सर्वे काञ्चनवेदीका सर्वे यूपश्च काञ्चन ॥१७
सर्वे देवमहाभागैर्विमानस्थैरलङ्कृता ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिता ॥१८

चतुर्थ पुत्र कृत उत्पन्न हुआ। इनमे कृत वीर्य से अर्जुन उत्पन्न हुआ जिसके एक सहस्र बाहु थी और यह सातो द्वीपो का स्वामी राजा हुआ था।६। उस कार्त्तवीर्य ने दश हजार वर्ष तक अत्यन्त कठिन तपस्या करके अत्रि के पुत्र दत्त की आराधना की थी।।१०।। उसके लिए दत्त ने अधिक तेज से युक्त चार वरदान दिये। उसने सबसे प्रथम सहस्र बाहु के होजाने का वर बोला था।११। अधर्म मे दीयमान का सत्पुरुषो के द्वारा उससे निवारण करना। धर्म से समस्त पृथ्वी को जीतकर धर्म के द्वारा ही उसका अनुपालन करना।१२।। बहुत से संग्रामो को जीतकर और सहस्रो शत्रुओ का हनन करके संग्राम मे युद्ध करते हुए का रणभूमि मे अधिक से वध होना।।१३।। उसके द्वारा यह पृथ्वी समस्त सात द्वीप और पत्तनो से युक्त सातो समुद्रो से परिक्षिप्त क्षात्र विधि से प्राप्त की और इसका पालन किया था।।१४।। उस बुद्धिमान् के युद्ध करते हुए सहस्र बाहु—यौद्धध्वज और रथ माया से प्रादुर्भूत होते थे।।१५।। ऐसा सुना जाता है कि धीमान् उसके दश सहस्र यज्ञ उन सात द्वीपो मे बिना ही अर्गला वाले निवृत्त हुए थे।।१६।। महान् बाहु वाले उसके जोकि एक विशेष तेज वाला था समस्त यज्ञ सुवर्ण की वेदी वाले और समस्त सुवर्ण के विरचित यूपो से युक्त थे।१७।। सब धन महान् भाग वाले देवो के द्वारा जोकि विमानो मे स्थित होकर वहाँ आये थे अलंकृत हुए थे तथा गन्धर्व और अप्सराओ के द्वारा तो वे नित्य ही शोभित रहा करते थे।।१८।।

तस्य राजा जगौ गाथा गन्धर्वो नारदस्तथा ।
चरितं तस्य राजर्षेर्महिमानं निरीक्ष्य च ॥१६

न नून कार्त्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति मानवा ।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ॥२०
द्वीपेषु सप्तसु स वै खड्गी वरशरासनी ।
रथी राजाप्यनुचरोऽन्योगाच्चैवानुदृश्यते ॥२१
अनष्टद्रव्यश्चैवासीन्न शोको न च विभ्रम ।
प्रभावेण महाराज्ञ प्रजा धर्मेण रक्षत ॥२२
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणा स नराधिप ।
सप्त सप्त वारान् सम्राट् चक्रवर्त्ती बभूव ह ॥२३
स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपालस्तथैव च ।
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्ज्जुनोऽभवत् ॥२४
स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनेन च ।
भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनेव भास्कर ॥२५
स हि नागसहस्रेण माहिष्मत्या नराधिप ।
कर्कोटकसभाञ्जित्वा पुरी तत्र न्यवेशयत् ॥२६

उस राजा की गाथा को गन्धर्व तथा नारद गाया करते थे जिन्होने उस राजर्षि के चरित्र और महिमा को देखा था ॥१९॥ यज्ञ–तप–दान और विक्रमो के द्वारा तथा श्रुत के द्वारा मानव निश्चय ही कार्त्त वीर्य की गति को नही जा सकेंगे ॥२०॥ सातो द्वीपो मे ऐसा अनुदृश्यमान होता है कि वह खड्गधारी–श्रेष्ठ धनुर्धारी–रथी–राजा और अन्य अनुचर भी हुआ था ।२१। धर्म पूर्वक प्रजा की रक्षा करने वाले उस महान् राजा के प्रभाव से सब द्रव्य नष्ट न होने वाले थे और कोई शोक तथा विभ्रम उसकी प्रजा मे नही था ॥२२॥ वह नरो का स्वामी पिचासी हजार वर्ष तक सात-सात बार सम्राट् और चक्रवर्त्ती हुआ था ॥२३॥ वह ही पशुओ का पालन करने वाला हुआ—वह ही क्षेत्रो का पालक हुआ और वृष्टि से वह ही पर्जन्य योगी होने के कारण हुआ था—वह ऐसा अर्जुन था ॥२४॥ वह सहस्र बाहुओ से और ज्या (प्रत्यञ्चा) के घात कठिनता से शरत्काल के सहस्र किरणो से सूर्य के समान शोभा देता है ॥२५॥ उस

दशयज्ञसहस्राणि तेषु द्वीपेषु सप्तमु ।
निरगला स्म निवृत्ता श्रूयन्ते तस्य धीमत ॥१६
सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन् भूरितेजस ।
सर्वे काञ्चनवेदीका सर्वे यूपश्च काञ्चन ॥१७
सर्वे देवमहाभागविमानस्थरलङ्कृता ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशाभिता ॥१८

चतुर्थ पुत्र कृत उत्पन्न हुआ। इनमे कृत वीय से अर्जुन उत्पन्न हुआ जिसके एक सहस्र बाहु थी और यह सातो द्वीपो का स्वामी राजा हुआ था।६। उस कार्त्तवीय ने दश हजार वष तक अत्यन्त कठिन तपस्या करके अत्रि के पुत्र दत्त की आराधना की थी ॥१०॥ उसके लिए दत्त ने अधिक तेज से युक्त चार वर दिये। उसने सबसे प्रथम सहस्र बाहु के होजाने का वर बोला था।११। अधर्म मे दीयमान का सत्पुरुषो के द्वारा उससे निवारण करना। धर्म से समस्त पृथ्वी को जीतकर धर्म के द्वारा ही उसका अनुपालन करना।१२॥ बहुत से सग्रामो को जीतकर और सहस्रो शत्रुओ का हनन करके सग्राम मे युद्ध करते हुए का रणभूमि मे अधिक से वध होना ॥१३॥ उसके द्वारा यह पृथ्वी समस्त सात द्वीप और पत्तनो से युक्त सातो समुद्रो से परिक्षिप्त क्षात्र विधि से प्राप्त की और इसका पालन किया था ॥१४॥ उस बुद्धिमान् के युद्ध करते हुए सहस्र बाहु-ध्वज और रथ माया से प्रादुर्भूत होते थे ॥१५॥ ऐसा सुना जाता है कि धीमान् उसके दश सहस्र यज्ञ उन सात द्वीपो मे बिना ही अर्गला वाले निवृत्त हुए थे ॥१६॥ महान् बाहु वाले उसके जोकि एक विशेष तेज वाला था समस्त यज्ञ सुवर्ण की वेदी वाले और समस्त सुवर्ण के विरचित यूपो से युक्त थे।१७। सब यज्ञ महान् भाग वाले देवो के द्वारा जोकि विमानो मे स्थित होकर वहाँ आये थे अलकृत हुए थे तथा गन्धर्व और अप्सराओ के द्वारा तो वे नित्य ही शोभित रहा करते थे ॥१ ॥

तस्य राज्ञा जगौ गाथा गन्धर्वो नारदस्तथा ।
चरित तस्य राजर्षेर्महिमान निरीक्ष्य च ॥१६

जयध्वजश्च वै पुत्रा अवन्तिषु विशाम्पते ।
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रतापवान् ॥५०

पहिले वरुण ने भास्विन उत्तम पुत्र को प्राप्त किया था । वह वसिष्ठ नाम वाला मुनि जनों का आश्रय लेने वाला विख्यात सुना गया गया है ॥४३॥ यहाँ पर आपत्तियाँ आई तो विभु ने क्रोध से अर्जुन को शप्त किया था । हे हैहय ! यह तेरा वन जिस कारण से मेरे यहाँ वर्जित नहीं है ॥४४॥ इसी कारण से तेरा यह दुष्कर कर्म है और इसको कृतमन्य हनन करेगा । अर्जुन नाम वाला कौन्तेय राजा नहीं होगा ॥४५॥ हे अर्जुन ! प्रहार करने वालों में परमश्रेष्ठ महान् वीर्य वाले परशुराम जो बली हैं शीघ्र ही तुझको छेदकर तेरी सहस्र बाहुओं को प्रमथित करेंगे ।४६। महान् बलवान् तपस्वी और ब्राह्मण तेरा वध करेगा । धीमान् उसके मृत्यु शाप से उस समय राम थे ।।४७।। उस राजा ने पहिले स्वयं ही वर प्राप्त किया था । उसके सौ पुत्र थे जिनमें वहाँ पाँच महारथ थे ॥४८॥ अस्त्रों के अभ्यास करने वाले—बलयुक्त-शूरवीर-यशस्वी और धर्मात्मा ये सब थे । शूर और शूरसेन—वृष्टयाद्य और वृष तथा जयध्वज अवन्तियों में उस विशाम्पति के पुत्र थे । जयध्वज का पुत्र तालजङ्घ प्रतापवाला था ॥४९-५०॥

तस्य पुत्रशतं ह्येव तालजङ्घा इति श्रुतम् ।
तेषां पञ्च गणाः ख्याता हैहयानां महात्मनाम् ॥५१
वीरहोत्र ह्यसङ्घयाता भोजाश्चावर्त्तयस्तथा ।
तुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च ॥५२
वीरहोत्रसुतश्चापि अनन्तो नाम पार्थिव ।
दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रदर्शन ॥५३
अनष्टद्रव्यता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह ।
प्रभावेण महाराज प्रजास्ता पर्य्यपालयत् ॥५४
न तस्य वित्तनाशश्च नष्टं प्रतिलभेत स ।
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमत ॥५५

गये और उन्होंने अर्जुन को प्रसन्न किया था। तब राजा ने पुलस्त्य के द्वारा अनुपालित उस पौलस्त्य (रावण) को छोड़ दिया था ॥३६॥ उसके बाहु सहस्र का ज्या तल का शब्द युग के अन्त में स्फुटित अम्बुद वृक्ष के वज्र की भाँति था ॥३७॥ अहो (बड़े आश्चर्य की बात है) युद्ध में महान् वीर्य वाले जिसके बाहुओं के सहस्र को हेमताल वन के समान युद्ध में भार्गव ने छेदन कर दिया था। ३८॥ किसी समय प्यासे चित्रभानु ने उससे भिक्षा माँगी थी। विशाम्पति ने चित्रभानु को सात द्वीपों की भिक्षा देदी थी ॥३६॥ चित्रभानु ने दिधक्षता से उसके बाणों से पुर–घोष–ग्राम और पत्तनों को सब ओर से जला दिया था ॥४ ।। उस पुरुषेन्द्र के प्रभाव से महान् यश वाले उसने कार्त्तवीर्य के शैल और वनों को भी दग्ध कर दिया था ॥४१॥ हैहय के साथ उस चित्रभानु ने वरुण के आत्मज के समस्त शून्य आश्रम को और वनों के सहित द्वीपों को जला दिया था ॥४२॥

सलेभे वरुण पुत्र पुरा भास्विनमुत्तमम् ।
वसिष्ठनामा स मुनि ख्यातश्चाप श्रित श्रुत ॥४३
तत्रापदस्तदा क्रोधादर्जुन शप्तवाविभु ।
यस्मान्न वर्जितमिद वन ते मम हैहय ॥४४
तस्मात् ते दुष्कर कर्म्म कृतमन्यो हनिष्यति ।
अर्जुनो नाम कौन्तेयो न च राजा भविष्यति ॥४५
अर्जुन त्वा महावीर्यो राम प्रहरता वर ।
छित्वा बाहुसहस्र व प्रमथ्य तरसा बली ॥४६
तपस्वी ब्राह्मणश्च व वधिष्यति महाबलः ।
तस्य रामस्तदा ह्यासीन्मृत्युशापेन धीमत ॥४७
राज्ञा तेन वरश्चैव स्वयमेव वृत पुरा ।
तस्य पुत्रशत ह्यासीत् पञ्च तत्र महारथा ॥४८
कृतास्त्रा बलिन शूरा धर्म्मात्मानो यशस्विन ।
शूरश्च शूरसेनश्च वृष्टयाद्य वृष एव च ॥४९

जयध्वजश्च वै पुत्रा अवन्तिषु विशापते ।
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रतापवान् ॥५०

पहिले वरुण ने भास्विन उत्तम पुत्र को प्राप्त किया था। वह वसिष्ठ नाम वाला मुनि जनो का आश्रय लेने वाला विख्यात सुना गया गया है ॥४३॥ वहाँ पर आपत्तियाँ आई तो विभु ने क्रोध से अर्जुन को शप्त किया था। हे हैहय! यह तेरा वन जिस कारण से मेरे यहाँ वर्जित नही है ॥४४॥ इसी कारण से तेरा यह दुष्कर कर्म है और इसको कृतमन्य हनन करेगा। अर्जुन नाम वाला कौन्तेय राजा नही होगा ॥४५॥ हे अर्जुन! प्रहार करने वालो मे परमश्रेष्ठ महान् वीर्य वाले परशुराम जो बली है शीघ्र ही तुझको छेदकर तेरी सहस्र बाहुओ को प्रमथित करेंगे ।४६। महान् बलवान् तपस्वी और ब्राह्मण तेरा वध करेगा। धीमान् उसके मृत्यु शाप से उस समय राम थे।।४७।। उस राजा ने पहिले स्वय ही वर प्राप्त किया था। उसके सौ पुत्र थे जिनमे वहाँ पाँच महारथ थे ॥४८॥ अस्त्रो के अभ्यास करने वाले—बलयुक्त—शूरवीर—यशस्वी और धर्मात्मा वे सब थे। शूर और शूसेन—वृष्टचाय और वृष तथा जयध्वज अवन्तियो मे उस विशाम्पति के पुत्र थे। जयध्वज का पुत्र तालजङ्घ प्रतापवाला था ॥४९-५०॥

तस्य पुत्रशत ह्यो व तालजङ्घा इति श्रुतम् ।
तेषा पञ्च गणा ख्याता हैहयाना महात्मनाम् ॥५१
वीरहोत्र ह्यसङ्घाता भोजाश्चावर्त्तयस्तथा ।
तुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च ॥५२
वीरहोत्रसुतश्चापि अनन्तो नाम पार्थिव ।
दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रदर्शन ॥५३
अनष्टद्रव्यता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह ।
प्रभावेण महाराज प्रजास्ता पर्य्यपालयत् ॥५४
न तस्य वित्तनाशश्च नष्ट प्रतिलभेत स ।
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमत ॥५५

वित्तवान् भवत्यत्र धर्म्मश्चास्य विवर्द्ध ते ।
त्वष्टा भवेत् यथा दाता तथा स्वर्गे महीयते ॥५६

उनके सौ पुत्र ही तालजङ्घ थे यह हमने सुना है। उन महात्मा हैहयों के पाँच गण परम विख्यात थे ॥५१॥ वीरहोत्र-असख्यात भोज-आवन्त्य-तुण्डिकेर तथा विक्रान्त तालजङ्घ थे ॥५२॥ वीरहोत्र का पुत्र भी राजा अनन्त नाम वाला हुआ था। उसका पुत्र दुर्जय था जोकि अमित्र दशन हुआ था ॥५३॥ उस राजा के कभी नाश को न प्राप्त होने वाले धन का होना था। वह महाराज उन समस्त प्रजाओं का प्रभाव से परिपालन किया करता था ॥५४॥ उसके वित्त का कभी नाश नहीं होता है और जो कुछ कभी नष्ट भी होगया हो तो वह उसे प्राप्त कर लेता है। यहाँ बुद्धिमान् कार्त्तवीर्य के ज म की कथा को जो कोई कहता है वह वित्त वाला यहाँ पर ही होजाता है और इसके धर्म की वृद्धि होती है। वह जिस प्रकार से त्वष्टा और दाता हो उसी तरह से स्वग में प्रति ष्ठित हुआ करता है ॥५५ ५६॥

प्रकरण ५७—ज्यामघ वृत्तान्त कथन

किमर्थं भुवन दग्धमपवस्य महात्मनाम् ।
कार्तवीर्येण विक्रम्य तन्न प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥१
रक्षिता स तु राजर्षि प्रजानामिति न श्रुतम् ।
कथ स रक्षिता भूत्वानाशयत्तत्तपोवनम् ॥२
आदित्यो विप्ररूपेण कार्तवीर्यमुपस्थित ।
तृप्तिकाम प्रयच्छास्मामादित्योऽह न सशय ॥३
भगवन् केन त तुष्टिभवेद् ब्रूहि दिवाकर ।
कीदृश भोजन दद्मि श्रुत्वा च विदधाम्यहम् ॥४
स्थावर देहि मे सवमाहार ददता वर ।
तेन तृप्तो भवेय व न तुष्येऽन्येन पार्थिव ॥५

न शक्य स्थावर सर्व्वं तेजसा मानुषेण तु ।
निर्द्दग्धु तपता श्रेष्ठ त्वामेव प्रणमाम्यहम् ॥६
तुष्टस्तेऽहं शरान् दद्मि अक्षयान् सर्वत सुखान् ।
प्रक्षिप्ता प्रज्वलिष्यन्ति मम तेज.समन्विताः ॥७
आदिष्ट तेजसा मेघसागर शोषयिष्यति ।
शुष्क भस्म करिष्यामि तेन प्रीतो नराधिप ॥८

ऋषियो ने कहा—कार्त्तवीर्य ने विक्रम करके महात्माओ के आपवस्य भुवन को किस लिये जलाया था—वह सब पूछने वाले हमको आप बतलाइये ॥१॥ हमने सुना है कि वह राजर्षि तो प्रजाओ की रक्षा करने वाला था फिर वह रक्षक होकर किस कारण से उसने तपोवन का नाश किया था ॥२॥ सूतजी ने कहा—सूर्य भगवान् ब्राह्मण के रूप से कार्त्तवीर्य के पास उपस्थित हुए थे—मैं तृप्ति की कामना वाला हूँ—मुझे अन्न दो—मैं आदित्य हूँ। इसमे कुछ भी संशय नही है ॥३॥ राजा ने कहा—हे दिवाकर ! यह बतलाइये आपकी तुष्टि किससे होगी। मैं आपको किस प्रकार का भोजन दूँ और यह सुनकर मैं करूँगा ॥४॥ सूर्य ने कहा—हे दान देने वालो मे श्रेष्ठ ! मुझे समस्त आहार स्थावर दो। उससे मेरी तृप्ति होगी हे पार्थिव ! अन्य किसीसे भी मैं सन्तुष्ट नही होऊँगा ॥५॥ राजा ने कहा—हे तपने वालो मे श्रेष्ठ ! मानुष तेज से समस्त स्थावर निर्दग्ध किया नही जा सकता है। मैं आपको ही प्रणाम करता हू ।६। आदित्य ने कहा—तुष्ट हुआ मै तुझे सर्व ओर से सुख प्रद—अक्षय शरो को देता हूँ वे फेंके हुए मेरे तेज से समन्वित होने वाले प्रज्वलित हो जायँगे ॥७॥ हे नराधिप ! तेज से आदिष्ट मेघ-सागर को शोषित कर देगा। उससे प्रसन्न मैं शुष्क को भस्म कर दूँगा ॥८॥

ततः शरानथादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छति ।
ततः सम्प्राप्य सुमहत्स्थावर सर्व्वमेव हि ॥९
आश्रमानथ ग्रामाश्च घोषाश्च नगराणि च ।
तपोवनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ॥१०

एव प्राचीनमदहत्तत सूर्य्यप्रदक्षिणम् ।
निवृ क्षा निस्तृणा भूमिदग्धा सूर्येण तेजसा ॥११
एतस्मिन्न व काले तु मपो निलयमाश्रित ।
दशवर्षसहस्राणि जलवासा महानृषि ॥१२
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठत्तपोधन ।
सोऽपश्यदाश्रम दग्धमजु नेन महानृषि ।
क्रोधाच्छशाप राजर्षि कीत्तित वो यथा मया ॥१३

इसके अनन्तर आदित्य अर्जुन के लिये शरो को दे देता है। फिर उन्हें पाकर सुमहान् समस्त स्थावर को—आश्रमो को—घोषो को और नगरो को—तपो वनो को—रम्यतम वनो को और उपवनो को सबको इस प्रकार से प्राचीन को सूर्य प्रदक्षिण को दाह कर दिया था। समस्त यह भूमि बिना वृक्षो वाली—तृण रहित सूर्य के तेज से जली हुई होगई थी ॥६ १ ११॥ इसी समय मे महान् ऋषि जल के घर मे आश्रित होगया और दश सहस्र वर्ष तक जल मे ही वास करने वाले हुए थे ॥१२॥ व्रत के पूर्ण होजाने पर महान् तेज वाले तपोधन उठकर खड़े हुए थे। उन महान् ऋषियो ने अर्जु न के द्वारा दग्ध आश्रम को देखा था। तब क्रोध से राजर्षि को शाप दे दिया था जसा कि मैंने तुमसे कहा था ॥१३॥

क्रोष्टो शृणुत राजर्षेर्वंशमुत्तमपूरुषम् ।
यस्यान्ववाये सम्भूतो वृष्णिर्वृष्णिकुलोद्वह ॥१४
क्रोष्टोरेकोऽभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महायशा ।
वाजिनीवतमिच्छन्ति स्वाहि स्वाहोवता वरम् ॥१५
स्वाहे पुत्रोऽभवद्राजा रुशद्गुवदता वर ।
घृतम्प्रसूतमिच्छन्ति रुशादोरस्य मात्मजम् ॥१६
महाक्रतुभिरीजे स विविधैराप्तदक्षिण ।
चित्र श्चित्ररथस्तस्य पुत्र कर्म्मभिरन्वित ॥१७
एव चित्ररथो वीरो यज्ञान् विपुलदक्षिणान् ।
शशबिन्दुः पर वृत्ता राजर्षीणामनुष्ठित ॥१८

चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रज ।
तत्रानुवशश्लोकोऽय यस्मिन् गीत पुराविदै ॥१६
शशबिन्दोस्तु पुत्राणा शतानाभभवच्छतम् ।
धीमतामनुरूपाणा भूरिद्रविणतेजसाम् ॥२०

सूतजी ने कहा—अब राजर्षि क्रोष्टु के उत्तम पुरुष वाले वश का श्रवण करो जिसके अन्वाय मे वृष्णि कुल का उद्वह वृष्णि उत्पन्न हुआ था ॥१४॥ क्रोष्टु के एक ही पुत्र था जोकि वृजिनी वाल्य और महान् यशवाला था जो वाजिनी वाले स्वाहि को स्वाहो वालो मे श्रेष्ठ को चाहला था ॥१५॥ स्वाहि का पुत्र दान देने वालो मे उत्तम रसादु का सबसे पहिला पुत्र घृत प्रसूत हुआ था ॥१६॥ उसने बडे बडे महान् क्रतुओ के द्वारा यजन किया था जिनमे बहुत ही अधिक दक्षिणा प्राप्त की गई थी तथा अनेक प्रकार के थे । उसका पुत्र कर्मों से अन्वित चित्ररथ हुआ था ॥१७॥ इस प्रकार से चित्ररथ वीर ने विशेष अधिक दक्षिणा वाले यज्ञो को करके राजर्षियो द्वारा अनुष्ठित शशबिन्दु नाम वाला पुत्र प्राप्त किया था ॥१८॥ वह शशबिन्दु महान् सत्व वाला—चक्रवर्ती—महावीर्य और बहुत सी सन्तति वाला हुआ था । वहाँ पर उसके वश का यह श्लोक पुरा वेत्ताओ के द्वारा गाया गया है ॥१६॥ शशबिन्दु के परम बुद्धिमान्—बहुत धन एव तेजवाले तथा अनुरूप सौ पुत्र हुए थे ॥२०॥

तेषा पट् च प्रधानास्तु पृथुषाट्का महाबला ।
पृथुश्रवा पृथुयशा पृथुधर्म्मा पृथुञ्जय ॥२१
पृथुकीर्त्ति पृथुन्दाता राजान. शाशिबिन्दवा ।
शसन्ति च पुराणानि पार्थश्रवसमन्तरम् ।
अन्तरः स पुरा यस्तु यज्ञस्य तनयोऽभवत् ॥२२
उशना सुतधर्म्मात्मा अवाप्य पृथिवीमिमाम् ।
आजहाराश्वमेधाना शतमुत्तमधार्म्मिक ॥२३
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुष्ठित ।
वीर कम्वलवर्हिस्तु मरुत्ततनय स्मृत ॥२४

पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान् कम्बलबर्हिष ।
निहत्य रुक्मकवच पुरा कवचिनो रणे ।।२५
धन्विनो निशितर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमम् ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तमश्वमेधमहायशा ।।२६
राज्ञस्तु रुक्मकवचादपरावृत्य वीरहा ।
जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महासत्वा महाबला ।।२७।।
रुक्मेषु पृथुरुक्मश्च ज्यामध परिघो हरि ।
परिघञ्च हरिञ्च व विदेहे स्थापयत्पिता ।।२८

उन सौ पुत्रो मे महान् बल वाले पृथुपाटक छः पुत्र प्रधान थे जिनके नाम ये हैं—पृथुश्रवा–पृथुयशा–पृथुधर्मा–पृथुञ्जय–पृथुकीर्त्ति और पृथुदाता ये सब शशिबिन्दव राजा थे। पुराण पृथुश्रवा के अन्तर नामक पुत्र को बतलाते हैं। अन्तर वह था जो पहिले यज्ञ का पुत्र हुआ था ।।२१ २२।। सुतधर्मा का आत्मा उशना ने इस पृथ्वी को प्राप्त करके उत्तम धार्मिक उसने सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे ।।२३।। राजर्षियो का अनुष्ठित मरुत्त नाम वाला उसका पुत्र हुआ था। मरुत्त का पुत्र वीर कम्बलबर्हि कहा गया है ।।२४।। कम्बलबर्हि का पुत्र परम विद्वान् रुक्म कवच हुआ था। रुक्म कवच ने पहिले अपने तीखे बाणों के द्वारा रण में धन्वी तथा कवच धारियो को मारकर उत्तम श्री को प्राप्त किया था और अश्व मेधो से महान् यश वाले उसने बहुत सा धन ब्राह्मणो को दान मे दे दिया था ।।२५ २६।। राजा रुक्म कवच से महान् सत्त्व वाले तथा महान् बल वाले पाँच पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था ।।२७।। जिनके नाम रुक्मेषु–पृथुरुक्म–ज्यामघ–परिघ और हरि ये थे। परिघ को और हरि को पिता ने विदेह मे स्थापित किया था ।।२८।।

ब्रह्म पुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः ।
तेभ्य प्रव्रजितो राज्या ज्यामघोऽभवदाश्रमे ।।२९
प्रशान्तस्तु वने घोरे ब्राह्मणेनावबोधित ।
जगाम धनुरादाय देशमन्य रथी ध्वजी ।।३०

नर्मदानूप एकाकी मेकलावृत्तिका अगि ।
ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा शुक्तिमन्यामथाविशत् ॥३१
ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या बलवती भृशम् ।
अपुत्रोऽपि स वै राजा भार्यामन्यां न विन्दति ॥३२
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप स ।
भार्यामुवाच राजा स स्नुषेति तु नरेश्वर । ३३
एवमुक्ताब्रवीदेव कास्येयं यस्ते स्नुषेति सा ।
यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति ॥३४
तस्य सा तपसोग्रेण शैब्या वैशं प्रसूयत ।
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ॥३५
राजपुत्री तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकौशिकौ ।
पुत्रौ विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ॥३६

अहीपु राजा हुआ था उसके आश्रम में रहने वाला पृथुरुक्म था । राज्य से प्रव्रजित ज्यामघ आश्रम में हुआ था ॥२६॥ घोर वन में प्रशान्त और ब्राह्मण के द्वारा अवबोधित वह रथ तथा ध्वज वाला धनुष लेकर देश के मध्य में गया था ॥३०॥ नर्मदा के अनूप में एकाकी मेकला वृत्तिवाला ऋक्षवान् पर्वत में जाकर एक अन्य शुक्ति में प्रवेश कर गया था ॥३१॥ ज्यामघ की भार्या बहुत ही बल वाली शैव्या थी वह राजा पुत्र हीन भी था किन्तु उसने दूसरी भार्या को प्राप्त नहीं किया था ॥३२॥ उसको युद्ध में विजय हुई थी । इसके पश्चात् उसने एक कन्या प्राप्त की थी । वह नरेश्वर राजा अपनी भार्या से यह स्नुषा है—ऐसा बोला था ॥३३॥ इस प्रकार से कही जाने वाली उसने कहा यह चाही हुई आपकी स्नुषा है तो जो आपका पुत्र उत्पन्न होगा यह उसकी भार्या होगी ॥३४॥ उसके उग्र तपसे शैव्या ने वैश को प्रसूत किया था । परिणत सती शैव्या ने विदर्भ नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥३५॥ विदर्भ ने स्नुषा में विद्वान् क्रथु और कौशिक दो राजपुत्रों को उत्पन्न किया था जोकि रण के विशारद तथा बड़े ही शूरवीर थे ॥३६॥

लोमपादं तृतीयन्तु पश्चाज्जज्ञे सुधार्मिकं ।
लोमपादात्मजोवस्तुराहुतिस्तस्य चात्मज ॥३७

कौशिकस्य चिदि पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपा स्मृता ।
क्रथोविदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥३८
कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे पुरोधृष्ट प्रतापवान् ।
धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निवृ ति परवीरहा ॥३९
तस्य पुत्रो दशार्हस्तु महाबलपराक्रम ।
दशार्हस्य सुतो व्योमा ततो जीमूत उच्यते ॥४०
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथ सुत ।
अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो रथवर किल ॥४१
दाता धर्म्मरतो नित्य शीलसत्यपरायण ।
तस्य पुत्रो नवरथस्ततो दशरथ स्मृत ॥४२
तस्य चकादशरथ शकुनिस्तस्य चात्मजः ।
तस्मात् करम्भको धन्वी देवरातोऽभवत्तत ॥४३
देवक्षत्रोऽभवद्राजा देवरातिम्महायशा ।
देवक्षत्रसुतो जज्ञे देवन क्षत्रनन्दन ॥४४

तीसरा पुत्र लोमपाद नाम वाला पीछे उत्पन्न हुआ था जो बहुत ही धार्मिक वृत्ति वाला था। लोमपाद का पुत्र वस्तु हुआ और उसका आत्मज आवृति हुआ था ॥३७॥ कौशिक का पुत्र चिदि था उससे चैद्य राजा कहे गये हैं। क्रथु का पुत्र विदर्भ हुआ और उसका पुत्र कुन्ति नाम वाला हुआ था ।३८। कुन्ति के धृष्टि सुत ने प्रताप वाला पुरोधृष्ट उत्पन्न किया था । धृष्ट का पुत्र धर्मात्मा परवीरहा निवृ ति हुआ था ॥३९॥ उसका दशार्ह हुआ था जो बल तथा पराक्रम में महान् था। दशार्ह का पुत्र व्योमा नामक था और फिर उसका पुत्र जीमूत नाम वाला कहा जाता है ।४ ।। जीमूत का पुत्र विकृति नामक हुआ और उस का पुत्र भीमरथ हुआ था । इसके अनन्तर भीमरथ का पुत्र रथवर पैदा हुआ ॥४१॥ यह बहुत ही दान देने वाला तथा धर्म में रति रखने वाला था और नित्य ही शील एवं सत्य में परायण रहा करता था। उसका पुत्र नवरथ हुआ और फिर उसका पुत्र दशरथ हुआ था ॥४२॥ उसके पुत्र का नाम एकादशरथ था तथा उसके आत्मज शकुनि नाम वाले ने जन्म ग्रहण किया

था। उससे धन्वी करम्भक हुआ और इसके पश्चात् उसके देवरात पुत्र उत्पन्न हुआ था ।।४३।। देवक्षत्र राजा हुआ था और देवरानि महान् यश वाला था। देवक्षत्र के सुत ने क्षत्रियों को आनंद देने वाला देवन पुत्र को जन्म दिया था ।४४।

देवनात् सु मधुर्जज्ञे यस्य मेधार्थसम्भव ।
मधोश्चापि महातेजा मनुमनुवशस्तथा ।।४५
नन्दश्च महातेजा महापुरवशस्तथा ।
आसीत् पुरुवशात् पुत्र पुरुद्वान् पुरुषोद्यम ।।४६
जज्ञे पुरुद्वत पुत्रो भद्रवत्या पुरुद्वह ।
ऐक्षाकी त्वभवद्भार्या सत्वस्तस्यामजायत ।
सत्त्वात् सत्त्वगुणो पेत सात्त्वत कीर्तिवर्द्धन ।।४७
इमा विसृष्टि विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मन ।
प्रजावानेति सायुज्य राज्ञ सोमस्य धीमत ।।४८

देवन से मधु ने जन्म ग्रहण किया जिसका मेधार्थ सम्भव है। मधु के भी महान् तेज वाला मनु तथा मनुवश हुआ ।।४५।। और नन्दन तथा महान् तेज वाला महा पुरुवश हुआ था। पुरुवश से पुरुषोत्तम पुरु विद्वान् पुत्र हुआ था ।।४६।। पुरुद्वान् से भद्रवती मे पुरुद्वह पुत्र ने जन्म लिया था। उसकी भार्या ऐक्षाकी हुई थी उसमे सत्त्व पैदा हुआ था। सत्त्व से सत्त्वगुण से युक्त कीर्त्तिवर्द्धन सात्त्वत हुआ था ।।४७।। महात्मा ज्यामघ की इस विशेष सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करके पुरुष प्रजा वाला होता है और धीमान् राजा सोम के सायुज्य को प्राप्त करता है ।।४८।।

प्रकरण—५८ विष्णु वंश वर्णन

सात्वती रूपसम्पन्न कौशल्या सुषुवे सुतम् ।
भजिन भजमान च दिव्य देवावृध नृपम् ।।१
अन्धकञ्च महाभोज वृष्णिञ्च यदुनन्दनम् ।
तेषा हि सर्गाश्चत्वार शृणुध्व विस्तरेण वै ।।२

पुराण के ज्ञाता द्विजगण गाथा का गान किया करते हैं ॥१३। महान् आत्मा वाले देववृध के भी गुणों का कीर्तन करते हुए जैसा ही दूर से सुनते हैं वैसा ही समीप में आकर देखते हैं ॥१४॥ बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ देवों के समान देवावृध था। पाँच हजार सत्तर वर्ष तक जो पुरुष अमृतत्व को प्राप्त हुये थे। बभ्रु देव वृद्ध से भी अधिक यज्वा-दानपति-वीर-ब्रह्मण्य-सत्यवचन वाला-पण्डित-कीर्तिमान् और महान् भाग वाला सात्वतों में महारथ था ॥१५ १६॥

तस्या ह्यवाये सुमहाभोजयेमातिकावला ।
गान्धारी चैव माद्री च वृष्ण्योर्भार्य्ये बभूवतु ॥१७
गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम् ।
माद्री युधाजितं पुत्रं सा तु वै देवमीढुषम् ॥१८
अनमित्र सुतस्त्वं व तावुभौ पुरुषोत्तमौ ।
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतु ॥१९
प्रसेनश्च महाभाग शक्रजिच्च सुतावुभौ ।
तस्य शक्रजित पूर्व सखा प्राणसमोऽभवत् ॥२०
स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनावर ।
तोयकूलादप स्प्रष्टुमुपस्थातु ययौ रविम् ॥२१
तस्योपतिष्ठत सूर्यो विवस्वानग्रत स्थित ।
अस्पष्टमूर्तिभगवा स्तेजोमण्डलवान् विभु ॥२२
अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रत ।
यथैव व्योम्नि पश्यामि त्वामहं ज्योतिषाम्पते ॥२३
तेजोमण्डलिनञ्च व तथ वाप्यग्रत स्थितम् ।
को विशेषो विवस्वस्ते साक्षादुपगतेन व ॥२४

उसके अन्ववाय में भांति करने वाली अबलाएँ भलीभाँति भोग के योग्य होती थी। गान्धारी और माद्री ये दो भार्या वृष्णि की हुई थी ॥१७॥ गान्धारी ने मित्रों को आनन्द देने वाला सुमित्र पुत्र को उत्पन्न किया था। माद्री ने युधाजित पुत्र को जन्म दिया था और उसने तो देवमीढुष को उत्पन्न किया था ॥१८॥ और अनमित्र पुत्रको जन्म दिया था। वे दोनों उत्तम पुरुष थे। अनमित्र

ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यञ्च नगमुत्तमम् ।
अन्वेषणपरिश्रान्त स ददर्श महामना ॥३८
साश्वं हतं प्रसेनं त नाविन्दत्तत्र वै मणिम् ।
अथ सिंह प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ॥३९
ऋक्षेण निहतो दृष्ट पादैर्ऋक्षस्य सूचिताम् ।
पदैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य यादव ॥४०

किसी समय उस स्यमन्तक मणि को धारण कर भूषित होते हुए शिकार करने के लिये गया था और स्यमन्तक के लिये ही सुदारुण वध को सिंह से प्राप्त होगया था ॥१-२॥ रीछ के राजा जाम्बवान् ने उस प्रसेन के वध करने वाले सिंह को मार डाला और उस दिव्य मणि को लेकर अपनी गुहा में प्रविष्ट होगया था ॥३४॥ इसके पश्चात् उस कर्म को कृष्ण का सभी वृष्णि-अन्धक महत्तर यादव लोग कहने लगे और मणि के लेने वाले कृष्ण को मानते हुए उन्हीं पर शङ्का करते थे ॥३५॥ उन सभी लोगों की इस तरह अपवाद पूर्ण झूठी चर्चा को बलवान् अरिसूदन भगवान् सहन न करते हुए वन में विचरण करने लगे ॥३६॥ और उनने प्रसेन की खोज करने का काम किया था। प्रसेन के चरण चिन्हों को देख कर आप्तकारी पुरुषों के द्वारा बताये जाने पर गिरियों में श्रेष्ठ ऋक्षवान् तथा उत्तम पर्वत विन्ध्य की खोज से थके हुए उन महामन वाले ने देखा था ॥३८॥ अश्व के सहित मरे हुए उस प्रसेन को देखा किन्तु उस मणि को नहीं देखा था। इसके पश्चात् प्रसेन के मृत शरीर के निकट ही ऋक्ष द्वारा मारे हुए सिंह को देखा। रीछ के चरण चिन्हों से सूचित भगवान् कृष्ण ने ऋक्षराज की गुहा की खोज की थी ॥३९-४०॥

यह सुनकर उन भगवान् सूर्यदेव ने स्यमन्तक नाम वाली श्रेष्ठ मणि को अपने कण्ठ से उतार कर राजा के कण्ठ मे उस समय बाँध दी थी ।।२५।। तब तो उस समय मे राजा ने देहधारी उनका दर्शन किया था । इसके बाद उस प्रतिमा को देखकर मुहूर्त्त भर राजा ने वैसा ही किया ।।२६।। फिर अति प्रस्थित उन सूर्यदेव से शक्रजित् ने कहा—अग्नि के समान आप जिससे लोको को जायगे उस समय वह मणि रत्न आप मुझे देने के योग्य होते हैं ।।२७।। भास्कर ने स्यमन्तक नाम वाली मणि उसको देदी थी और वह राजा उसे अपने कण्ठ मे बाँध कर नगर मे प्रविष्ट हुआ था ।।२८।। मनुष्य उसके चारो ओर दौड लगाते थे कि यह सूर्य जा रहा है । राजा ने अपनी पूरी सभा को विस्मय मे डालते हुए तथा पूरी पुरी को विस्मित करके फिर वह अन्तःपुर मे गया था ।।२९।। उस परम दिव्य उत्तम मणिरत्न स्यमन्तक को राजा शक्रजित् ने प्रेम से अपने भाई प्रसेनजित को देदी थी ।।३ ।। जिसके राज्य मे स्यमन्तक नाम वाली मणि स्थित रहती है वहाँ पर पर्जन्य (मेघ) समय पर वर्षने वाले होते हैं और तब फिर कोई भी व्याधि का भय नही रहता है ।।३१।। भगवान् गोविन्द ने प्रसेन से उस स्यमन्तक मणि के स्वय प्राप्त करने की लिप्सा की थी किन्तु उसे नही प्राप्त किया था और सबतो भाव से शान्ति सम्पन्न होते हुए भी उसका हरण नही किया था ।।३२।।

कदा चिन्मृगया यात प्रसेनस्तेन भूषित ।
स्यमन्तककृते सिंहाद्वध प्राप्त सुदारुणम् ।।३३
जाम्बवानृक्षराजस्तु त सिंह निजघान व ।
आदाय च मणि दिव्य स्व बिल प्रविवेश ह ।।३४
तत्कर्म कृष्णस्य ततो वृष्ण्यन्धकमहत्तरा ।
मणौगृध्नुन्तु मन्वानास्तमेव विशशङ्किरे ।।३५
मिथ्याभिशस्ति तम्यस्ता बलवानरिसूदन ।
अमृष्यमाणो भगवान् वन स विचचार ह ।।३६
स तु प्रसेनमृगयामचरत्तत्र चाप्यथ ।
प्रसेनस्य पद गृह्य पुरुष राप्तकारिभि ।।३७

ऋक्षवन्त गिरिवर विन्ध्यञ्च नगमुत्तमम् ।
अन्वेषणपरिश्रान्त स ददर्श महामना ॥३८
साश्व हत प्रसेन त नाविन्दत्तत्र वै मणिम् ।
अथ सिंह प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरत ॥३९
ऋक्षेण निहतो दृष्ट पादैर्ऋक्षस्य सूचिताम् ।
पदैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य यादव ॥४०

किसी समय उस स्यमन्तक मणि को धारण कर भूषित होते हुए शिकार करने के लिये गया था और स्यमन्तक के लिये ही सुदारुण वध को सिंह से प्राप्त होगया था ॥३॥ रीछों के राजा जाम्बवान् ने उस प्रसेन के वध करने वाले सिंह को मार डाला और उस दिव्य मणि को लेकर अपनी गुहा में प्रविष्ट होगया था ॥३४॥ इसके पश्चात् उस कर्म को कृष्ण का सभी वृष्णि-अन्धक महत्तर यादव लोग कहने लगे और मणि के लेने वाले कृष्ण को मानते हुए उन्हीं पर शङ्का करते थे ॥३५॥ उन सभी लोगों की इस तरह अपवाद पूर्ण झूठी चर्चा को बलवान् अरिसूदन भगवान् सहन न करते हुए वन में विचरण करने लगे ॥३६॥ और उनने प्रसेन की खोज करने का काम किया था। प्रसेन के चरण चिन्हों को देख कर आप्तकारी पुरुषों के द्वारा बताये जाने पर गिरियों में श्रेष्ठ ऋक्षवान् तथा उत्तम पर्वत विन्ध्य की खोज से थके हुए उन महामन वाले ने देखा था ॥३८॥ अश्व के सहित मरे हुए उस प्रसेन को देखा किन्तु उस मणि को नहीं देखा था। इसके पश्चात् प्रसेन के मृत शरीर के निकट ही ऋक्ष के द्वारा मारे हुए सिंह को देखा। रीछ के चरण चिन्हों से सूचित भगवान् श्रीकृष्ण ने ऋक्षराज की गुहा की खोज की थी ॥३९-४०॥

महत्यतिबिले वाणी शुश्राव प्रमदेरिताम् ।
धात्र्या कुमारमादाय सुत जाम्बवतो द्विजा ।
प्रीतिमत्याय मणिना मारोदीरित्युदीरिताम् ॥४१
प्रसेनमवधीत् सिंह सिंहो जाम्बवता हत ।
सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तक ॥ ४२

व्यक्तीकृतश्च शब्द त तूर्णं सोऽपि ययौ बिलम् ।
अपश्यच्च विलाभ्याशे प्रसेनमवदारितम् ॥ ४३
प्रविश्य चापि भगवास्तदृक्षबिलमञ्जसा ।
ददर्श ऋक्षराजान जाम्बव तमुदारधीः ॥ ४४
युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह ।
बाहुभ्यामेव गोवि दो दिवसानेकविंशतिम् ॥४५
प्रविष्टे च विल कृष्णे वासुदेव पुर सरा ।
पुनर्द्वारवतीमेत्य हत कृष्ण न्यवेदयन् ॥४६
वासुदेवस्तु निर्जित्य जाम्बवन्त महाबलम् ।
लेभे जाम्बवती कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ॥४७
भगवत्तजसा ग्रस्तो जाम्बवान् प्रसभ मणिम् ।
सुता जाम्बवतीमाशु विष्वक्सेनाय दत्तवान् ॥४८

उस बहुत बडी गुफा मे प्रमदा के द्वारा कही हुई वाणी को सुना था। कोई धात्री कुमार पुत्र को लेकर हे द्विजगण! जाम्बवान् की प्राप्ति वाली मणि के द्वारा (अर्थात् उसे दिखाते हुए) यह कह रही थी कि बच्चे! रोदन मत करे। इस प्रकार कही हुई वाणी श्री कृष्ण ने सुनी थी ॥४१॥ धात्री ने कहा—सिंह ने प्रसेन को मार दिया और जाम्बवान् ने उस सिंह को मार डार डाला है। हे सुकुमार! अब तू रुदन मत कर—यह मणि स्यमन्तक तेरी ही है ॥४२॥ उस शब्द को स्पष्ट तथा सुनकर शीघ्र ही वह श्रीकृष्ण बिल मे भन्दर चले गये थे और बिल के समीप में अवदारित प्रसेन को देखा था ॥४३॥ भगवान् ने उस गुफा मे प्रवेश करके जोकि ऋक्षराज के रहने की थी उन उदार बुद्धि वाले श्रीकृष्ण ने रीछो के राजा जाम्बवान् का वहाँ देखा था ॥४४॥ वासुदेव ने उस गुफा मे इक्कीस दिन तक जाम्बवान् क साथ बाहुओ से युद्ध किया था ॥४५॥ वासुदेव के पुरस्सर साथ म आने वाल लोगो ने गुफा म श्रीकृष्ण के प्रवेश करने पर द्वारका म वापिस आकर कृष्ण मारे गये ऐसा सबसे कह दिया था ॥४६॥ वासुदेव न उस महान् बलवान् जाम्बवान् को जीतकर ऋक्षराज क द्वारा सम्मत जाम्बवती कन्या की प्राप्ति की थी ॥४७॥ भगवान् क तेज स ग्रस्त हो जाने

थाले जाम्बवान् ने भगवान् स्यमन्तक मणि को और अपनी पुत्री जाम्बवती को विष्वक्सेन के लिए दे दिया था ॥४८॥

मणि स्यमन्तक चैव जग्राहात्मविशुद्धये ।
अनुनीय ऋक्षराज निर्ययौ च तदा बिलात् ॥४६
एव स मणिमादाय विशोद्ध्यात्मानमात्मना ।
ददौ सत्राजिते त वै मणि सात्वतसनिधौ ॥५०
कन्या धुनजाम्बवतीमुवाच मधुसूदन ।
तस्मान्मिथ्याभिशापात् स व्यमुच्यत जनार्दन ॥५१
इमा मिथ्याभिशस्ति यः कृष्णस्येह व्यपोहिताम् ।
वेद मिथ्याभिशस्ते स नाभिशस्यति कर्हिचित् ॥५२
दश स्वसृभ्यो भार्याभ्यः सत्रजितः शत सुताः ।
ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषा भङ्गकारस्तु पूर्वज ।
वीरो व्रतपतिश्चैव ह्यपस्वान्तश्च सुप्रिय ॥५३
अथ द्वारवती नाम भङ्गकारस्य सुप्रजा ।
सुषुवे सा कुमारीस्तु तिस्रो रूपगुणान्विता ॥५४
सत्यभामोत्तमा स्त्रीणा व्रतिनीव दृढव्रता ।
तथा तपस्विनी चैव पिता कृष्णस्य ता ददौ ॥५५
यत्तत् सत्राजिते कृष्णो मणिरत्न स्यमन्तकम् ।
प्रादात्तदाहरद्रत्न भोजेन शतधन्वना ॥५६
तदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम् ।
अक्रूरो रत्नमन्विच्छन् मणिश्चैव स्यमन्तकम् ॥५७
सत्रकार ततो हत्वा शतधन्वा महाबल ।
रात्रौ त मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान् ॥५८

अपनी आत्मा की विशुद्धि के लिए स्यमन्तक मणि का उनने ग्रहण किया था और ऋक्षराज से उसके लिये अनुनय किया था। इसके पश्चात् वह उस गुफा से बाहर निकल गये थे ॥४६॥ इस तरह उनने मणि को लाकर अपने आत्मा के द्वारा अपने आत्माभिशाप का शोधन करके समस्त सात्वतो की सन्निधि

म उम स्यमन्तक मणि को सत्राजित् को दे दिया था ॥५८ ॥ फिर मधुसूदन ने जाम्बवती नाम वाली कन्या से कहा कि उस मिथ्या अभिशाप से जनार्दन अर्थात् मैं अब विमुक्त होगया हूँ ॥५१॥ इस कृष्ण के ऊपर व्यपोहित मिथ्याभिशस्ति जो कोई जानता है अर्थात् इसे पढ़ता या सुनता है वह कभी भी मिथ्या अपवाद से दूषित नहीं होता है ॥५२॥ दश बहिन भार्याओं में सत्राजित् के सौ पुत्र बहुत ही प्रसिद्धि वाले हुए थे उनमें भङ्गकार सबसे बड़ा था। वह वीर—व्रतपति—अपस्वान्न और सुप्रिय था ॥५३॥ इसके अनन्तर भङ्गकार श्री सुन्दर सन्तति द्वारवती नाम वाली ने तीन रूप और गुण से युक्त कुमारियों का प्रसव किया था ॥५४॥ स्त्रियों में अति उत्तम व्रत वाली की भाँति दृढ व्रतवाली सत्यभामा थी जो परम तपस्विनी थी उसने उसके पिता ने श्रीकृष्ण को दे दिया था ॥५५॥ जो मणियों में सर्वश्रेष्ठ स्यमन्तक मणि कृष्ण ने सत्राजित को दे दी थी उसे शत धन्वा ने भोज से हरण कर लिया था ।५६। उस समय स्यमन्तक मणि को चाहते हुए अक्रूर ने प्रतिदिन सत्यभामा से प्रार्थना की थी ॥५७॥ तब शतधन्वा ने जोकि महान् बलवान् था भद्रकार को मारकर रात्रि में उस मणि को लाकर अक्रूर को दे दी थी ॥५ ॥

अक्रूरस्तु तदा रत्न मादाय स नरर्षभ ।
समय कारण चक्रे बोध्यो नान्यस्त्वयेत्युत ॥५९
वयमभ्युपपत्स्यामः कृष्णेन त्वं प्रधर्षित ।
मम च द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्यसशयम् ॥६०
हते पितरि दु खार्त्ता सत्यभामा यशस्विनी ।
प्रययौ रथमारुह्य नगर वारणावतम् ॥६१
सत्यभामा तु तद्वृत्त भोजस्य शतधन्वन ।
भर्तु निवेद्य दु खार्त्ता पार्श्वस्थाश्रूण्यवर्तयत् ॥६२
पाण्डवानान्तु दग्धाना हरि कृत्वोदकक्रियाम् ।
तुल्यार्थे चैव भ्रातृणा नियोजयति सात्यकिम् ॥६३
ततस्त्वरितमागम्य द्वारका मधुसूदन ।
पूर्व्वज हलिन श्रीमानिद वचनमब्रवीत् ॥६४

हतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना ।
स्यमन्तकमहं मार्गे तस्य प्रहर हे प्रभो ॥६५
तदारोह रथं शीघ्रम् भोजं हत्वा महाबलम् ।
स्यमन्तको महाबाहो तदास्माकं भविष्यति ॥६६

उस नगर में श्रेष्ठ अक्रूर ने उस समय उस रत्न को लेकर प्रतिज्ञा कराई थी सत्य कराली थी कि इसके प्राप्त होने का कारण तुझे अन्य किसी को भी नहीं ज्ञात कराना चाहिए ॥५९॥ हम अभ्युपपन्न करेंगे। तुमको कृष्ण ने प्रचलित किया है। अब यह समस्त द्वारका निराश्रय मेरे वश में रहेगी ॥६०॥ अपने पिता के मारे जाने पर यशस्विनी सत्यभामा दुःख से पीड़ित हुई रथ पर सवार होकर वारणावत नगर में गई थी ॥६१॥ सत्यभामा ने शतधन्वा भोज का वह समस्त कृत भर्ता से निवेदन किया और दुःख से आर्त होकर पास में स्थित होते हुए अश्रुपात किया था ॥६२॥ मरे हुए पाण्डवों की उदक क्रिया को हरि ने पूर्ण करके भाइयों के तुल्य अर्थ में सात्यकि को नियोजित किया था ॥६३॥ इसके पश्चात् मधुसूदन तुरन्त ही द्वारका में आकर अपने बड़े भाई बलरामजी से यह वचन बोले—॥६४॥ हे प्रभो! सिंह ने प्रसेन को मार दिया था और शतधन्वा ने सत्राजित् को मार दिया है। उसके स्यमन्तक को मैं खोजता हूँ, आप प्रहार करिये ॥६५॥ सो अब आप रथ पर आरोहण करिये और महान् बलवान् उस भोज को शीघ्र मार कर दें महाबाहो! तब यह स्यमन्तक हमारी हो जायगी ॥६६॥

ततः प्रवृत्ते युद्धे तु तुमुले भोजकृष्णयोः ।
शतधन्वा न चाक्रूरमवैक्षत् सर्वतो दिशि ॥६७
अनष्टा दशावरोहन्तु कृत्वा भोजजनार्दनौ ।
शक्तोऽपि शाठ्याद्धार्द्दं यथा नाक्रूरोऽभ्युपपद्यत ॥६८
अपयाने ततो बुद्धिं भूयश्चक्रे भयान्वितः ।
योजनानां शतं साग्रं यया च प्रत्यपद्यत ॥६९
विख्याताहृदया नाम शतयोजनगामिनी ।
भोजस्य वडवा दित्यो यया कृष्णमयोधयत् ॥७०

प्रवद्धवेगा वडवा त्वध्वना शतयोजनम् ।
दृष्टा रथगतिस्तस्य शतधन्वानमर्द्दयत् ।।७१
ततस्तस्य हयास्ते तु श्रमात् खेदाच्च वै द्विजा ।
खमुत्पेतू रथप्राणा कृष्णो राममथाब्रवीत् ।।७२
तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा मया हया ।
पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।।७३
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युत ।
मिथिलाधिपतिं तं वै जघान परमास्त्रवित् ।।७४

इसके पश्चात् भोज और कृष्ण का तुमुल युद्ध प्रवृत्त हो जाने पर शत धन्वा ने समस्त दिशाओं में अक्रूर को नहीं देखा था ।।६७।। भोज और जनार्दन नष्ट न होने वाले अश्वों का अवरोह करके शक्त होते हुए भी साल्व वाचक्य से अक्रूर अभ्युपपन्न नहीं हुआ ।।६८।। भय से युक्त होते हुए फिर उसने अपयान करने में बुद्धि की थी । सौ योजन आगे जिससे प्रतिपन्न होगया ।।६९।। विख्यात हृदया–इस नाम वाली सौ योजन तक गमन करने वाली भोज की बड़वा थी जिसके द्वारा उसने श्रीकृष्ण के साथ युद्ध किया था ।।७० ।। बढ़े हुए वेग वाली बड़वा (घोड़ी) थी जिसने उसके रथ की गति मार्ग के सौ योजन में देखी थी उसने शतधन्वा को अर्दित कर दिया था ।।७१।। हे द्विजगण ! इसके पश्चात् रथ के प्राण स्वरूप उसके घोड़े श्रम से और खेद के होने से आकाश में उड़ गये थे । श्रीकृष्ण राम से बोले ।।७२।। हे महाबाहो ! यहाँ पर ठहरो मैंने अश्वों के दोषों को देख लिया है । मैं परों से जाकर मणिरत्न स्यमन्तक का हरण करूँगा ।।७३।। इसके पश्चात् परों से ही जाकर अच्युत ने मिथिला के अधिपति शत धन्वा को अस्त्र विद्या के परम पण्डित श्रीकृष्ण ने मार दिया था ।।७४।।

स्यमन्तकं न चापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम् ।
निवृत्तं चाब्रवीत् कृष्णं रत्नं देहीति लाङ्गली ।।७५
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्वित ।
धिकशब्दमसकृत् पूर्व्वं प्रत्युवाच जनार्द्दनम् ।।७६

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ।
कृत्य न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभि ॥७७
प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्द्दन ।
सर्व्वकामैरुपहृतैर्मैथिलेनैव पूजित ॥७८
एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतावर ।
नानारूपान् क्रतून् सर्व्वानाजहार निरर्गलान् ॥७९
दीक्षामय सकवच रक्षार्थं प्रविवेश ह ।
स्यमन्तककृते राजा गाधिपुत्रो महायशा ॥८०
अर्थान् रत्नानि चाग्र्याणि द्रव्याणि विविधानि च ।
षष्ठिवर्षगते काले यज्ञेषु विन्ययोजयत् ॥८१
अक्रूरयज्ञ इत्येते ख्यातास्तस्य महात्मन ।
बह्वन्नदक्षिणा सर्व्वे सर्व्वकामप्रदायिन ॥८२

और महान् बलवान् भोज को मार कर स्यमन्तक मणि को नही देखा था। लौटे हुए कृष्ण से लाङ्गलधारी बलराम ने कहा रत्न को देदो ॥७५॥ श्रीकृष्ण ने कहा वह मणि नही है। तब तो बलराम क्रोध से युक्त हो उठे। बार-बार धिक्—इस शब्द को पहिले कहते हुए जनार्दन से बोले ॥७६॥ मेरे भाई के होने के कारण से मैं यह सहन करता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो—मैं तो अब जाता हूँ। मुझे द्वारका से कोई काम नही है, न तुझसे और न वृष्णियो से कुछ प्रयोजन है ॥७७॥ इसके पश्चात् बलराम ने जोकि शत्रुओ के मर्दन करने वाले थे मिथिला मे प्रवेश किया था और वहाँ समस्त कामना वाले उपहृतो के द्वारा मैथिल से ही पूजित हुए थे ॥७८॥ इसी बीच मे बुद्धिमानो में श्रेष्ठ बभ्रु ने अनेक रूप वाले निरगल सभी क्रतुओ को आहृत किया था ॥७९॥ महान् यश वाले राजा गाधि पुत्र ने स्यमन्तक के लिये दीक्षामय सकवच को रक्षा के लिये प्रविष्ट किया था ॥८०॥ साठ वर्ष के काल मे यज्ञो मे धनो को—रत्नो को और उत्तम विविध भाँति के द्रव्यो को विनियोजित किया था ॥८१॥ उस महान् आत्मा वाले ये सब 'अक्रूर यज्ञ' इस नाम से ख्यात हुए थे। जिनमे बहुत सा अन्न और दक्षिणा वाले तथा समस्त कामनाओ को देने वाले वे यज्ञ थे ॥८२॥

अथ दुर्योधनो राजा गत्वाऽथ मिथिला प्रभु ।
गदाशिक्षा ततो दिव्या बलभद्रादवाप्तवान् ॥८३
प्रसाद्य तु ततो विप्रा वृष्ण्यन्धकमहारथ ।
आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥८४
अक्रूरमन्धक साद्धमुपायात् पुरुषषभ ।
युद्धं हत्वा तु शत्रुघ्न सह व भुमता बली ॥८५
श्वफल्कतनयायान्तु नराया नरसत्तमौ ।
भङ्कारस्य तनयो विश्रुतौ सुमहाबलौ ॥८६
जज्ञातेऽन्धकमुख्यस्य शत्रुघ्नो व धुमाश्च तौ ।
वधाय भङ्कारस्य कृष्णो न प्रीतिमान् भवेत् ॥८७
ज्ञातिभेदभयाद्भीत समुपेक्षितवास्तथा ।
अपयाते तथाक्रूरे नावषत्पाकशासन ॥८८
अनावृष्ट्या हत राष्ट्रमभवत्तद्वधोद्यतम् ।
तत प्रसादयामासुरक्रूर कुकुरान्धका ॥८९
पुनर्द्वारवती प्राप्ते तदा दानपतौ तथा ।
प्रववष सहस्राक्ष कुक्षौ जलनिधेस्तत ॥९

इसके पश्चात् प्रभु राजा दुर्योधन ने मिथिला म जाकर बलभद्र से दिव्य गदा की शिक्षा को प्राप्त किया था ॥८३॥ हे विप्र वृन्द ! इसके अनन्तर वृष्णि अन्धक और महारथो के द्वारा बलरामजी को प्रसन्न करके महात्मा कृष्ण के द्वारा उन्हे फिर द्वारकापुरी मे ही वापिस ले आये गये थे ॥८४॥ उस पुरुषो मे श्रेष्ठ बली बलराम ने युद्ध मे बभ्रुमान् के साथ मे शत्रुघ्न को मार कर अन्धको के साथ अक्रूर के पास पहुचे थे ॥८५॥ श्वफल्क की तनया मे नरामे भङ्कारके नरश्रेष्ठ महान् बल वाले एव प्रसिद्ध दो तनय हुए ॥८६॥ उस अन्धका म मुख्य शत्रुघ्न और बभ्रुमान् ये दो पुत्र थे । भङ्कार के बध के लिये कृष्ण प्रीति वाले नही हुए थे ॥८७॥ ज्ञाति के भेद के भय से डरे हुए उसकी उस प्रकार से उपेक्षा करदी थी । अक्रूर के अपयात होजाने पर इन्द्र ने वर्षा नही की थी ॥८८॥ अनावृष्टि से हत हुए राष्ट्र ने उसके वध करदेने की तयारी की थी । तब कुकुरान्ध

को ने अक्रूर को प्रसन्न किया था ।८६। तब उस समय फिर दानपति के द्वारका पुरी में प्राप्त हो जाने पर फिर जलनिधि की कुक्षि में इन्द्र देव ने खूब वर्षा की थी ।।९०।।

कन्याञ्च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मताम् ।
अक्रूरः प्रददौ श्रीमान् प्रीत्यर्थं यदुपुङ्गव ।।९१
अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम् ।
सभामध्ये तदा प्राह तमक्रूरं जनार्दन ।।९२
यत्तु रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं प्रभो ।
तत् प्रयच्छस्व मानार्ह विमतिन्चात्र मा कृथा ।।९३
षष्टिवर्षगते काले यद्रोषोऽभूत्तदा मम ।
सुसरूढ सकृत् प्राप्तस्तत्कालातिथ स महान् ।।९४
ततः कृष्णस्य वचनात् सर्व्वसात्वतससदि ।
प्रददौ तं मणि बभ्रुरक्लेशेन महामति ।।९५
तत आर्जवसम्प्राप्तबभ्रुहस्तादरिन्दम ।
ददौ प्रहृष्टमनसा तं मणि बभ्रवे पुनः ।।९६
स कृष्णहस्तात् सम्प्राप्य मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
आबद्ध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव ।।९७
इमा मिथ्याभिशस्ति यो विशुद्धामपि चोत्तमाम् ।
वेद मिथ्याभिशस्ति स न व्रजेच्च कथञ्चन ।।९८

यदुओं में श्रेष्ठ अक्रूर ने अपनी कन्या और शील से सम्मत बहिन को वासुदेव के लिये उनकी प्रीति के लिये देदी थी ।।९१।। इसके अनन्तर श्रीकृष्ण ने योग के द्वारा बभ्रु के पास मणि होने को जानकर जनार्दन ने सभा के मध्य में उस अक्रूर से कहा ।।९२।। हे प्रभो ! और रत्न श्रेष्ठ मणि तुम्हारे हाथ लग गई है हे मानार्ह ! उसे अब देदो और इस काम में यहाँ कोई भी विमति मत करो ।।९३।। साठ वर्ष के समय में तब जो मुझे रोष हुआ है एकबार प्राप्त होजाने वाला वह इस लम्बे काल का सहारा पाकर वह बहुत ज्यादा होते हुए भली भाँति से दृढ होगया है ।।९४।। इसके पश्चात् समस्त सात्वतों की संसद में श्रीकृष्ण के

इन वचनो से महा बुद्धि वाले बभ्रु ने बिना किसी क्लेश के उस मणि को दे दिया था ।।९५।। इसके पश्चात् सरलता से बभ्रु के हाथ से प्राप्त हुई उस मणि को अरिन्दम ने बडे ही प्रसन्न मन से पुन उस मणि को बभ्रु को देदी थी ।९६। उस गान्दिनी पुत्र ने श्रीकृष्ण के हाथ से उस मणिरत्न स्यमन्तक को पाकर और कण्ठ मे बाँधकर अंशुमान् की तरह सुशोभित हुए ।।९७।। इस मिथ्याभिशस्ति को जो कोई विशुद्ध को भी उत्तम को जानेगा वह कभी मिथ्याभिशस्ति को प्राप्त नही होगा ।।९८।।

अनमित्राच्छिनिर्जज्ञ कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ।।९९
सत्यवाक सत्यसम्पन्न सत्यकस्तस्य चात्मज ।
सात्यकियु युधानस्य तस्य भूति सुतोऽभवत् ।।१००
भूतेयु गन्धर पुत्र इति भौत्या प्रकीर्त्तिता ।
जज्ञाते तनयौ पृश्ने श्वफल्कश्चित्रकश्च य ।।१ १
श्वफल्कस्तु महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्त्तते ।
नास्ति व्याधिभय तत्र न चावृष्टिभय तथा ।।१०२
कदाचित् काशिराजस्य विभोस्तु द्विजसत्तमा ।
त्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत्पाकशासन ।।१०३
स तत्र वासयामास श्वफल्क परमार्चितम् ।
श्वफल्कपरिवासेन प्रावर्षत्पाकशासन ।।१०४
श्वफल्क काशिराजस्य सुता भार्यामनिन्दिताम् ।
गान्दिनी नाम गा सा हि ददौ विप्राय नित्यश ।।१ ५
सा मातुरुदरस्था व बहुवर्ष शतान् किल ।
वसति स्म न वै जज्ञ गर्भस्थान्ता पिताब्रवीत् ।।१०६

राजा अनमित्र से शिनि का जन्म हुआ जोकि वृष्णि का सबसे छोटा पुत्र था ।।९९।। उसके पुन सत्यवाक–सत्यसम्पन्न और सत्यक थे । युयुधान का सात्यकि पुत्र हुआ था । और उसका पुत्र भूति नाम वाला उत्पन्न हुआ था ।।१ ।। भूति का पुत्र युगन्धर नामक हुआ । ये सब ससार मे भौत्य इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे । प्रश्नि के श्वफल्क और चित्रक ये दो पुत्रो का जन्म हुआ था

॥१०१॥ जहाँ महाराज श्वफल्क तो धर्मात्मा हुए है। वहाँ पर किसी भी व्याधि का कभी कोई भय ही नही हुआ था तथा न कभी अनावृष्टि (वर्षा होने का अभाव) ही हुई थी ॥१०२॥ हे द्विजगण ! किसी समय मे विभु काशिराज के समय मे तीन वर्ष तक देश मे इन्द्रदेव ने वर्षा ही नही की थी ॥१०३॥ उसने वहाँ पर श्वफल्क को भली भाँति समर्पित करके बसाया था। फिर श्वफल्क के परि निवास होने से पाकशासन ने वर्षा की थी ॥१०४॥ श्वफल्क ने काशिराज की सुता को आनन्दित भार्या गान्दिनी नाम वाली की थी। वह एक गौ रोज ही ब्राह्मण को दिया करती थी ॥१०५॥ वह माता के उदर मे ही बहुत से सैकडो वर्ष तक स्थित रही थी और उसने जन्म ही ग्रहण नही किया था तब उदर मे स्थित उससे उसके पिता ने कहा था ॥१०६॥

जायस्व शीघ्र भद्रन्ते किमर्थं चापि तिष्ठसि ।
प्रोवाच चैन गर्भस्था सा कन्या गौर्दिने दिने ॥१०७
यदि दत्ता तदा स्या हि यदि स्यामीहुता पित ।
तथेत्युवाच ता तस्या पिता काममपूपुरत् ॥१०८
दाता यज्वा च शूरश्च श्रुतवानतिथिप्रिय ।
तस्या पुत्र स्मृतोऽक्रूर श्वफल्को भूरिदक्षिण ॥१०९
उपमगुस्तथा मगुर्मृदुरश्चारिमेजयः ।
गिरिरक्षस्ततो यक्ष शत्रुघ्नो वारिमर्द्दनः ॥११०
धर्मभृद्व शृष्टचयो वर्मभोचस्तथापर ।
आवाहप्रतिवाहो च वसुदेवा वराङ्गना ॥१११
अक्रूरादुग्रसेन्यान्तु सुतौ द्वौ कुलनन्दिनौ ।
देवश्चानुपदेवश्च जज्ञाते देवसमितौ ॥११२
चित्रकस्याभवन् पुत्रा पृथुर्विपृथुरेव च ।
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥११३
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्मधर्मभृत् ।
अभूमिर्बहुभूमिश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥११४

हे पुत्री ! तुम जन्म ग्रहण करो तुम्हारा कल्याण होगा। क्या कारण है जिससे तुम उदर से बाहिर नहीं निकल रही हो और वहीं पर बठी हो ? तब उस गर्भ में स्थित कन्या ने इस अपने पिता से कहा था कि यदि रोज रोज गौ का दान करने वाला हो तो मैं जन्म लूंगी। हे पिता ! मैं यही चाहती हूँ। तब उनके पिता ने ऐसा ही होगा'—यह कहकर उसकी कामना को पूर्ण किया था ॥१०७१०८॥ उसका पुत्र अक्रूर अक्रूर बहुत दाता—यज्वा—शूर—शास्त्रों का ज्ञाता—बहुत दक्षिणा देने वाला और अतिथियों का प्रिय हुआ था ॥१०९॥ उपमगु—मगु—मृदुर—अरिमेजय—गिरिरक्ष और उससे यक्ष—शत्रुघ्न—वारि मदन—धर्मभृत्—मृष्टचय तथा दूसरा नगमोच—आवाद और प्रतिवाद तथा वराङ्गना वसुदेवा हुए थे ॥११० १११॥ अक्रूर से उग्रसेनी में कुल को आनन्दित करने वाले दो पुत्र पैदा हुए थे जिनका नाम देव और अनुपदेव था और वे दोनों देवों के समान थे ॥११२॥ चित्रक के पृथु—विपृथु—अश्वग्रीव—अश्वबाहु—सुपार्श्वक—गवेषण—अरिष्टनेमि—अश्व—सुधर्मा—धर्मचयभृत्—अभूमि—बहुभूमि पुत्र उत्पन्न हुए थे। श्रविष्ठा और श्रवणा दो स्त्रियाँ थीं ॥११३ ११४॥

सत्यकात् काशिदुहिता लेभे सा चतुर सुतान्।
भकुद भजमानञ्च शमीकवलबर्हिषौ ॥११५

ककुदस्य सुतौ वृष्टिवृ ष्टस्तु तनयोऽभवत्।
कपोतरोमा तस्याथ रेवतोऽभवदात्मज ॥११६

तस्यासीत्तुम्बुरुसखा विद्वान् पुत्रोऽभवत्किल।
ख्यायते यस्य नाम्ना स च दनोदकदुदुभिः ॥११७

तस्मान्नाभिजित पुत्र उत्पन्नस्तु पुनर्वसु।
अश्वमेधन्तु पुत्रार्थे आजहार नरोत्तम ॥११८

तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सदोमध्यात्समुत्थितम्।
ततस्तु विद्वान् धर्मज्ञो दाता यज्वा पुनर्वसु ॥११९
तस्यापि पुत्रमिथुन बाहुवाणाजित किल।
आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ मतिमतावरौ ॥१२०

इमाश्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकान् प्रति तमाहुकम् ।
सोपासङ्गानुकर्षाणां सध्वजानां वरूथिनाम् ॥१२१
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ।
नासत्यवादी तत्रासीन्नायज्वा नासहस्रदः ॥१२२
नाशुचिर्नाप्यधर्मात्मा नाविद्वान्न कृशोऽभवत् ।
आहुकस्य भृतिः पुत्र इत्येवमनुशुश्रुम ॥१२३

सत्यक ने काशि दुहिता व चार पुत्रों को प्राप्त किया था जिनके नाम कुकुर-भजमान शमीक तथा बलबर्हिष थे ॥११५॥ कुकुर का पुत्र वृष्णि नाम वाला हुआ और वृष्णि का पुत्र कपोतरोमा हुआ था और उसका पुत्र रेवत हुआ था ॥११६॥ उसके तुम्बुरु सखा परम विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसके नाम से चन्दनोदक दुन्दुभि प्रसिद्ध होता है ॥११७॥ और उससे अभिजित् पुत्र हुआ और पुनर्वसु उत्पन्न हुआ था ? उस नरोत्तम ने पुत्र के लिए अश्वमेध यज्ञ किया था ॥११८॥ उस अतिरात्र के मध्य में सभामध्य से समुत्थित हुआ था। उससे परम विद्वान्—दान देने वाला—यज्ञ का कर्ता और सज्जन पुनर्वसु हुआ था ॥११९॥ उसके भी पुत्रों का जोड़ा समुत्पादित हुआ जो कि आहुक और आहुकि—इन नामों से मतिमानों में परमश्रेष्ठ ख्यात हुए थे ॥१२०॥ यहाँ पर उस आहुक के प्रति ये श्लोक उदाहृत होते हैं। उसके उपासङ्ग, अनुकर्षों के सहित तथा ध्वजाओं के सहित वरूथियों के और मेघघोष वाले रथों के दश सहस्र थे। वह असत्यवादी नहीं था और अयज्वा तथा असहस्रद नहीं था, न वह अशुचि और न अधर्मात्मा ही था, वह अविद्वान् तथा कृश भी नहीं हुआ था। आहुक का पुत्र भृति हुआ था—यही हम सुनते हैं ॥१२१-१२२-१२३॥

श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमान् हयान् ।
अशीतियुक्तनियुतान्याहुकप्रतिमोऽव्रजत् ॥१२४
पूर्वस्यान्दिशि नागानां भोजस्य प्रतिरेजिरे ।
रूप्यकाञ्चनकक्षाणां सहस्राण्येकविंशति ॥१२५
तावन्त्येव सहस्राणि उत्तरस्यान्तथा दिशि ।
भूमिपालस्य भोजस्य उत्तिष्ठेत् किङ्किणी किल ॥१२६

विदुर पुन हुआ था। उस शूर ने अधिक बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम वात निवात–शोणित–श्वेतवाहन–शमी–गदवर्मा–निहात और शक्रशक्रजित् थे। शमी के पुत्र प्रतिक्षित हुआ और प्रतिक्षित का आत्मज स्वयम्भोज हुआ तथा स्वयम्भोज से हृदिक पुत्र उत्पन्न हुआ था। हृदिक के भीम के समान पराक्रम वाले दश पुत्र हुए थे ॥१३५ से १३८॥ उनके नाम ये हैं—कृतवर्मा–कृत जोकि उनम मध्यम था—देवाहु–वनाहु–भिषक–दृढरथ–सुदान्त–धियान्त–नकवान्–कनोद्भव ये नाम है। देवाहु का पुत्र बड़ा विद्वान् कम्बलबर्हिष नाम वाला हुआ था ॥१३९ १४० ॥ उसका पुत्र असमौज और सुमहौजा विश्रुत हुए अपुत्र असमौजस के लिये मज दिये थे। सुदष्ट्र–सुरूप और कृष्ण ये सब अन्धक कहे गये हैं ॥१४१॥ अन्धकों के इस वंश का नित्य ही कीर्त्तन वाला पुरुष अपना बहुत वंश प्राप्त किया करता है—इसमे कुछ सशय नहीं है ॥१४२॥

अस्मक्या जनयामास शूरो व देवमानुषिम् ।
माध्यान्तु जनयामास शूरो व देवमीढुषम् ॥१४३
माप्यान्तु जज्ञिरे शूराद्भोजाया पुरुषा दश ।
वसुदेवो महाबाहु पूर्वमानकदुन्दुभि ॥१४४
जज्ञ तस्य प्रसूतस्य दुन्दुभि प्राणदद्दिवि ।
आनकानाञ्च सह्लाद सुमहानभवद्दिवि ॥१४५
पपात पुष्पवर्षञ्च शूरस्य भवने महत् ।
मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ॥१४६
यस्यासीत् पुरुषाग्र यस्य कीर्तिश्च द्रमसो यथा ।
देवभागस्ततो जने ततो देवश्रवा पुन ॥१४७
अनाधृष्टिस्तङ्श्च व नन्दनश्च व भृञ्जिन ।
श्याम शमीको गण्डूप चतस्रस्तु वराङ्गना ॥१४८
पृथा च श्रुतवेदा च श्रुतकीर्त्ति श्रुतश्रवा ।
राजाधिदेवी च तथा पञ्च ता वीरमातर ॥१४९
पृथा दुहितर चक्र कुन्तिस्ता पाण्डुरावहृत ।
अनपत्याय वृद्धाय कुन्तिभोजाय ता ददौ ॥१५

विदुर पुत्र हुआ था। उस शूर के अधिक बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम वात निवात–शोणित–श्वेतवाहन–शमी–गदवर्मा–निहात और शक्रशक्रजित् थे। शमी के पुत्र प्रतिक्षिप्त हुआ और प्रतिक्षिप्त का आत्मज स्वयम्भोज हुआ तथा स्वयम्भोज से हृदिक पुत्र उत्पन्न हुआ था। हृदिक के भीम के समान परा क्रम वाले दश पुत्र हुए थे ॥१३५ से १३८॥ उनके नाम ये हैं—कृतवर्मा–कृत जोकि उनमे मध्यम था—देवाहृ–वनार्हं–भिषज–द्व तरथ–सुदा त–धियान्त–नकवान्–स्नोद्भव ये नाम हैं। देवाहृ का पुत्र बडा विद्वान् कम्बलबर्हिष नाम वाला हुआ था ॥१ ६ १४ ॥ उसका पुत्र असमौज और सुमहोजा विश्रुत हुए अपुत्र असमौजस के लिये भज दिये थे। सुदंष्ट्र–सुरूप और कृष्ण ये सब अन्धक कहे गये हैं ॥१४१॥ अन्धकों के इस वश का नित्य ही कीर्तन वाला पुरुष अपना बहुत वश प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ सशय नहीं है ॥१४२॥

असमक्या जनयामास शूरो व देवमानुषिम् ।
माष्यान्तु जनयामास शूरो व देवमीढुषम् ॥१४३
माष्यान्तु जनिरे शूराद्भोजाया पुरुषा दश ।
वसुदेवो महाबाहु पूवमानकदुन्दुभि ॥१४४
जन तस्य प्रसूतस्य दुन्दुभि प्राणदद्दिवि ।
आनकानाञ्च सह्लाद सुमहानभवद्दिवि ॥१४५
पपात पुष्पवपश्च शूरस्य भवने महत् ।
मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ॥१४६
यस्यासीत् पुरुषाग्र यस्य कीर्त्तिश्चन्द्रमसो यथा ।
देवभागस्ततो जज्ञे ततो दवश्रवा पुन ॥१४७
अनाधृष्टिश्च डश्च व नन्दनश्च व भृञ्जिन ।
श्याम शमीको गण्डूष चतस्रस्तु वराङ्गना ॥१४८
पृथा च श्र तवेदा च श्र ुतकीर्त्ति श्र ुतश्रवा ।
राजाधिदेवी च तथा पञ्च ता वीरमातर ॥१४९
पृथा दुहितर चक्र कुन्तिस्ता पाण्डुरावहत् ।
अनपत्याय वृद्धाय कुन्तिभोजाय ता ददौ ॥१५०

शूर ने अस्मकी मे देव मानुषी को जन्म दिया था। और मापी मे शूरने देवमीढुष को समुत्पन्न किया था ।।१४३।। मापी मे भोजा मे शूर से दश पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था। महान् बाहु वाले वसुदेव पहिले आनक दुन्दुभि हुए ।।१४४।। उसके प्रसूत होने के समय मे देवलोक मे दुन्दुभि बजाई गई थी और आनकों का बडा भारी शब्द दिवि मे हुआ था ।।१४५।। उस समय शूर के भवन मे पुष्पो की वर्षा हुई थी। समस्त मनुष्य लोक मे रूप मे उसके समान कोई भी नही था ।।१४६।। उस पुरुषो मे श्रेष्ठ की कीर्ति चन्द्रमा के समान थी। इसके पश्चात् देवभाग ने जन्म लिया और फिर देवश्रवा ने जन्म ग्रहण किया था ।१४७ अनाधृष्टि कङ्क–नन्दन–सृञ्जिन–श्याम–शमीक–गण्डूष और चार वराङ्गना जोकि नाम से पृथा–श्रुतदेवा–श्रुतकीर्त्ति–श्रुतश्रवा और राधिदेवी ये पाँच वीर माताये हुई हैं ।।१४८-१४६।। दुहिता पृथा कुन्ति को पाण्डु ने व्याहा था। अनपत्य अर्थात् बिना सन्तति वाले वृद्ध कुन्ति भोज के लिये उसको दे दिया था ।।१५०।।

तस्मात् कुन्तीति विख्याता कुन्तीभोजात्मजा पृथा।
कुरुवीर पाण्डुमुख्यस्तस्माद्भार्यामविन्दत ।।१५१
पृथा जज्ञे तत पुत्रान् त्रीनग्नि समतेजस ।
लोकेऽप्रतिरथान् वीरान् शक्रतुल्यपराक्रमान् ।।१५२
धर्माद्युधिष्ठिर पुत्र मारुताच्च वृकोदरम्।
इन्द्राद्धनञ्जयश्चैव पृथा पुत्रानजीजनत् ।।१५३।।
माद्रवत्यान्तु जनितावाश्विनाविति विश्रुतम् !
नकुल सहदेवश्च रूपसत्त्वगुणान्वितौ ।।१५४
जज्ञे च श्रुतदेवाया तनयो वृद्धशर्मण. ।
करूपाधिपतिर्वीरो दन्तवक्त्रो महाबल ।।१५५
कैकेया श्रुतकीर्त्यान्तु जज्ञे सन्तर्दन पुन ।
चेकितानबृहत्क्षत्रौ तथैवान्यौ महाबलौ ।।१५६
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ भ्रातरौ सुमहाबलौ ।
श्रुतश्रवाया चैद्यस्तु शिशुपालो बभूव ह ।।१५७

दमघोपस्य राजप पुत्रो विख्यातपौरुष ।
य पुरासीद्दशग्रीव सबभूवारिमर्दन ।।१५८

इसी कारण से वह कुन्ती–इस नाम से विख्यात हुई थी क्योंकि वह कुन्तिभोज की आत्मजा पृथा थी। कुरुओ म वीर पाण्डुमुख्य ने इससे उसे भार्या के रूप मे प्राप्त किया था ।।१५११।। उससे पृथा ने अग्नि के समान प्रदीप्त तेज वाले तीन पुत्रो को जन्म दिया था जोकि ससार मे अप्रतिरथ–वीर और इन्द्र के समान पराक्रम वाले हुए थे ।।१५२।। पृथा ने धम से युधिष्ठिर पुत्र को मारुत से वृकोदर को और इन्द्र से धनञ्जय को इस तरह से पृथा ने पुत्रो को जन्म दिया था ।।१५३।। माद्रवती मे दो अश्विनी–इस नाम से विश्रुत रूप तथा गुण से अन्वित नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए थे ।।१५४।। और श्र तदेवा मे वृद्धशर्मा का पुत्र करूप का अधिपति–वीर एव महान बलवाला दन्तवक्त्र उत्पन्न हुआ था ।।१५५।। कैकेय श्रुत कीर्त्ति मे फिर मन्तर्दन उत्पन्न हुआ था। तथा अन्य महान् बल वाले चेकितान और बृहत्क्षत्र उत्पन्न हुए थे ।।१५६।। विन्द और अनुविन्द अन्त मे उत्पन्न होने वाले अर्थात् सबसे छोटे सुमहान् बल वाले दो भाई थे। श्र तश्रवा मे वह शिशुपाल हुआ था ।।१५७।। वह राजर्षि दमघोप का विख्यात पौरुष वाला पुत्र था जो पहिले शत्रुओ का मद न करने वाला दशग्रीव रावण हुआ था ।।१५८।।

यदुश्रवानुजस्तस्य रुजवन्योऽनुजस्तथा ।
पत्न्यस्तु वसुदेवस्य त्रयोदश वराङ्गना ।।१५९
पौरवी रोहिणी चव मदिरा चापरा तथा ।
तथैव भद्रा वशाखी देवकी सप्तमी तथा ।।१६०
सुगन्धिवनराजी च द्व चान्ये परिचारिके ।
रोहिणी पौरवी चव वाल्मीकस्यात्मजाभवत् ।।१६१
ज्येष्ठा पत्नी महाभागा दयितानकदुन्दुभे ।
ज्येष्ठ लेभे सुत राम सारण निशव तथा ।।१६२
दुद् म दमन शुभ्र पिण्डारककुशीतकौ ।
चित्रा नाम कुमारीश्च रोहिण्यष्टौ व्यजायत ।।१६३

पौत्री रामस्य जज्ञाते विज्ञातौ निशितोत्सुकौ ।
पार्श्वी च पार्श्वनन्दी च शिशु सत्यधृतिस्तथा ॥१६४
मन्दवाह्योऽथ रामाणगिरिको गिर एव च ।
शुक्लगुल्मेति गुल्मश्च दरिद्रान्तक एव च ॥१६५
कुमार्यश्चापि पञ्चाद्या नामतस्ता निबोधत ।
अर्चिष्मती सुनन्दा च सुरसा सुवचास्तथा ॥१६६
तथा शतबला चैव सारणस्य सुतास्त्विमा ।
भद्रश्वो भद्रगुप्तिश्च भद्रविघ्नस्तथैव च ॥१६७
भद्रावाहुर्भद्ररथो भद्रकल्पस्तथैव च ।
सुपार्श्वक कीर्तिमाश्च रोहिताश्वश्च भद्रज ॥१६८
दुर्म्मदश्चाभिभूतश्च रोहिण्या कुलजा स्मृता ।
नन्दोपनन्दौ मित्रश्च कुक्षिमित्रस्तथाचल ॥१६९
चित्रोपचित्रे कन्ये च स्थित पुष्टिरथापर ।
मदिराया सुता ह्येते सुदेवोऽथ विजज्ञिरे ॥१७०

उसका अनुज यदुश्रवा था तथा अनुज एकन्या हुआ था । वसुदेव की वर अङ्ग वाली तेरह पत्नियाँ थी ॥१५६॥ उन पत्नियो के नाम इस प्रकार हैं–पौरवी–रोहिणी और अन्य अमरा तथा मदिरा थी । उसी प्रकार से भद्रा–वैशाखी–सातवी देवकी थी ॥१६०॥ सुगन्धी–वनराजी और दो अन्य परिचारिकायें थी । रोहिणी और पौरवी बाल्मीक की आत्मजा थी ॥१६१॥ आनक दुन्दुभि की ज्येष्ठ पत्नी महाभाग वाली दयिता थी । उसने ज्येष्ठ पुत्र राम को तथा शारण और निशव को प्राप्त किया था ॥१६२॥ दुर्दम–दमन–शुभ्र–पिण्डारक और कुशीतक और कुमारीचिन्ना को इस तरह रोहिणी ने आठ को उत्पन्न किया था ॥१६३॥ राम के दो पौत्र प्रसिद्ध निशित और उत्सुक नाम वाले उत्पन्न हुए थे । पार्श्वी–पार्श्वनन्दी–शिशु सत्यधृति–मन्दवाह्य–रामाण–गिरिक और गिर–शुक्लगुल्मा–और गुल्म दरिद्रान्तक ये पुत्र तथा पाँचाद्य कुमारियाँ भी उत्पन्न हुई थी जिनको नाम से समझ लो । अर्चिष्मती–सुनन्दा–सुरसा–सुवचा तथा शतबला ये सारण की पुत्रियाँ थी । भद्राश्व–भद्रगुप्ति–तथा भद्रविघ्न–भद्र-

बाहु–भद्ररथ–भद्रकल्प–सुपार्श्व क–कीर्तिमान् और रोहिताश्व और भद्रज दुमद–और अभिभूत ये सब रोहिणी के कुलज कहे गये हैं। नन्द–उपनन्द–मित्र–कुक्षि मित्र–तथा अचल–चित्रा और उपचित्रा दो कन्यायें–थित और दूसरा पुष्टि ये पुत्र मदिरा के उत्पन्न हुए थे इसके अनन्तर सुवत हुआ था ॥१६४ १६५ १६६ ॥१६७–१६८–१६६–१७ ॥

उपबिम्बोऽथ विम्बश्च सत्त्वदन्तमहौजसौ।
चत्वार एते विख्याता भद्रापुत्रा महाबला ॥१७१
वशाख्या समदाच्छौरि पुत्रं कौशिकमुत्तमम्।
देवक्या जज्ञिरे शौरि सुषेण कीर्तिमानपि ॥१७२
तदयो भद्रसेनश्च यजुदायश्च पञ्चम।
षष्ठो भद्रविदेकश्च कंस सर्वाञ्जघान तान् ॥१७३
अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् सबभूव ह।
लोक नाथः पुनर्विष्णु पूर्वकृष्ण प्रजापति ॥१७४
अनुजाताऽभवत् कृष्णा सुभद्रा भद्रभाषिणी।
कृष्णा सुभद्रेति पुनर्व्याख्याता वृष्णिनन्दिनी ॥१७५
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत।
वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु।
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान्निबोधत ॥१७६
प्रताऽस्य सह देवाया शूरो जज्ञऽभयासख।
शार्ङ्गदेवाजनत्सम्बु शौरी जज्ञ कुलोद्वहम् ॥१७७
उपसङ्ग वसुञ्चापि तनयौ देवरक्षितौ।
एव दश सुतास्तस्य कंसस्तानप्यघातयत् ॥१७८

उपबिम्ब–बिम्ब–सत्त्वदन्त–महोजा ये चार पुत्र जो महान् बल वाले थे भद्रा के सुत कहे गये थे ॥१७१॥ वशाख्या में समद से शौरनि ने उत्तम कौशिक पुत्र को उत्पन्न किया था। देवकी में शौरि–सुषेण–कीर्तिमान्–तदय–भद्रसेन–यजुदाय पाँचवाँ तथा छटा भद्रविदेक था। कंस ने उन सभी पुत्रों को मार दिया था ॥१७२ १७३॥ इसके अनन्तर उस अवस्था में आयुष्मान् हुआ था। लोक-

नाथ–फिर विष्णु–पूव कृष्ण और प्रजापति हुए ।।१७४।। पीछे उत्पन्न होने वाली कृष्णा–सुभद्रा–भद्रभाषिणी–कृष्णा–सुभद्रा ये फिर पाश्चात वृष्णि नन्दिनी थी ।।१७५।। सुभद्रा से पार्थ (अर्जुन) ने रथी अभिमन्यु उत्पन्न हुआ था। वसुदेवकी महान् भाग वाली सात भार्याओं में जो पुत्र उत्पन्न हुए थे उन्हें अब नाम से समझ लो ।।१७६।। इसलिये उसके सहदेवा में नृप अभयासद उत्पन्न हुआ था। शौरी ने कुल का उद्वह करने वाले देवाजनन्मस्तु का जन्म दिया था ।।१७७।। उपसङ्ग और वसु भी दो तनय (पुत्र) थे जो देवा के द्वारा रक्षित हुए थे। इस प्रकार से उनके दश पुत्र थे। कंस ने उनको भी मार गिराया ।।१७८।।

विजय रोचनश्चैव वर्द्धमान तथैव च ।
एतान् सर्व्वान् महाभागानुउपदेवा व्यजायत ।।१७९
स्वगाहव महात्मान वृक देवी न्वजायत ।
अगाही च स्वसा चैव सुरूपा शिशिरायिणी ।।१८०
सप्तम देवकीपुत्र सुनामा सुपुवे भुवम् ।
गवेषण महाभाग सङ्ग्रामे चित्र योधिनम् ।।१८१
श्राद्धदेव पुरा येन वने विरचिता द्विजा ।
शैव्यायामददच्छौरि पुत्र कौशिकमव्ययम् ।।१८२
सुगन्धी वनराजी च शौरेरास्ता परिग्रह ।
पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ हि तौ ।
तयो राजाऽभवत् पुण्ड्र कपिलस्तु वन ययौ ।।१८३
तस्या समभवद्वीरो वसुदेवात्मजो वली ।
राजा नाम निपादोऽसौ प्रथम स धनुर्द्धर. ।।१८४
विख्यातो देवरातस्य महाभाग सुतोऽभवत् ।
पण्डिताना मत प्राहुर्देवश्रवसमुद्भवम् ।।१८५
अस्मक्या लभते पुत्रमनाहृष्टि यशस्विनम् ।
निवर्त्त शक्रशत्रुघ्न श्राद्धदेव महाबलम् ।।१८६

उपदेवा ने विजय–रोचन–वर्द्धमान इन सबको महान् भाग वालों को

उत्पन्न किया था ॥१७९॥ वृकदेवी ने महान् आत्मा वाले स्वगाहव को उत्पन्न किया था। अगाही एक स्वसा भी थी जो सुन्दर रूप वाली शिशिरावणी थी ॥१८॥ सुतासा ने सात्वत देवकी के पुत्र को भुव को प्रसूत किया था। गवेषण महाभाग और सग्राम मे चित्रयोधी और श्राद्धदेव को उत्पन्न किया था जिसने कि पहिले वन मे द्विज बनाये थे। श्वया से शौरि ने अव्यय कौशिक पुत्र को दिया था ॥१८१ १८२॥ सुगन्धि और वनराजी ये शौरि का परिग्रह था। पुण्ड्र और कपिल ये दो वसुदेव के पुत्र थे। उन दोनो मे पुण्ड्र तो राजा हुआ था और कपिल वन मे चला गया था ॥१८३॥ उसमे वीर वसुदेव का पुत्र हुआ था जो बहुत बल वाला था। यह निषाद नाम वाला राजा था जो प्रथम धनु धर हुआ था ॥१८४॥ देवरात का महाभाग विख्यात पुत्र हुआ था। देवश्रव से समुद्भूत वाला पण्डितो का मत कहते है ॥१८५॥ निवृत्त ने अश्मकी मे अना दृष्टि–यशस्विनी–शत्रु शत्रुओ के नाशक एव महा बलवान् श्राद्धदेव पुत्र को प्राप्त किया था ॥१८६॥

अजायत श्राद्धदेवो निषधादियत श्रुत ।
एकलव्यो महावीर्यो निषाद परिवर्द्धित ॥१८७
गण्डूषायानपत्याय कृष्णस्तुष्टोऽददत् सुतौ ।
चारुदेष्णञ्च साम्बञ्च कृतास्त्रौ शस्त्रलक्षणौ ॥१८८
तन्तिजस्तन्तिमालश्च स्वपत्नी कनकस्य तु ।
वस्तावनेस्त्वपुत्राय वसुदेव प्रतापवान् ।
सौतिर्ददौ सुत वीर शौरि कौशिकमेव च ॥१८९
तथाश्च कोधनु श्च द विरजा श्यामसृञ्जिमौ ।
अनपत्योऽभवच्छ्याम श्यामकस्तु वन ययौ ।
जुगुप्समानो भोजत्व राजर्षित्वमवाप्नुयात् ॥१९०
य इद जन्म कृष्णस्य पठते नियतव्रत ।
श्रावयेद्ब्राह्मणाश्चापि सुमहत्सुखमाप्नुयात् ॥१९१
देवदेवो महातेजा पूर्व कृष्ण प्रजापति ।
विहारार्थ मनुष्येषु जज्ञे नारायण प्रभु ॥१९२

देवक्या वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षण ।
चतुर्बाहु स विज्ञेयो दिव्यरूप श्रियान्वित ॥१९३
प्रकाशो भगवान् योगी कृष्णो मानुषमागत ।
अव्यक्तोऽव्यक्तलिङ्गस्थ स एव भगवान् प्रभु ॥ १९४

क्योंकि ऐसा श्रुत है कि श्राद्धदेव निषध के पहिले हुआ था। महान् वीर्य वाला एकलव्य निषादो के द्वारा परिवर्द्धित किया गया था ॥१८७॥ बिना सन्तति वाले गण्डूष के लिये सन्तुष्ट कृष्ण ने दानो पुत्र दे दिये थे। ये दोनो चारु देष्ण और साम्ब थे जो कृतास्त्र एव शस्त्र लक्षण वाले थे ॥१८८॥ सन्तिज और सन्तिमाल वरतारनि कनक के अपने दो पुत्रों को प्रतापवान् वसुदेव ने पुत्र हीन के लिए दे दिया था और सौति ने वीर शौरि और कौशिक पुत्र को दे दिया था ॥१८९॥ तथा—हो गए विरजा—श्याम और सृञ्जिम हुए उनमे श्याम सन्तति हीन था सो वह श्यामक वन मे चला गया था। भोजत्व की जुगुप्सा करता हुआ उसने राजर्षि होने का पद प्राप्त कर लिया था ॥१९०॥ जो इस कृष्ण के जन्म को नियत व्रत वाला होते हुए पढता है और किसी ब्राह्मण को इसे श्रवण कराता है वह महान् सुख का प्राप्त किया करता है ॥१९१॥ महान् तेज वाले देवो के भी देव प्रजापति कृष्ण पहिले विहार करने के लिये प्रभु नारायण ने मनुष्यो मे जन्म ग्रहण किया था ॥१९२॥ वसुदेव से देवकी मे तप के द्वारा पुष्कर के समान सुन्दर नेत्रो वाला—श्री से अन्वित—चार भुजाओ से युक्त तथा दिव्य रूपधारी वह विज्ञेय है ॥१९३॥ प्रकाश, योगी, भगवान् कृष्ण मनुष्य के स्वरूप मे प्राप्त होगये थे। वह प्रभु भगवान् ही जो अव्यक्त हैं और अव्यक्त चिह्नो मे स्थित है, मानुष रूप मे आये थे ॥१९४॥

नारायणो यतश्चक्रं प्रभव चाव्ययो हि स ।
देवो नारायणो भूत्वा हरिरासीत्सनातन ॥१९५
योऽसृजद्वादिपुरुष पुरा चक्रे प्रजापतिम् ।
अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दन ।
देवो विष्णुरिति ख्यात शक्रादवरजोऽभवत् ॥१९६

प्रसादज यस्य विभारदित्या पत्रकारणम् ।
वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१९७
ययातिवंशजस्याथ वसुदेवस्य धीमत ।
कुल पुण्य यत कम भेजे नारायण प्रभु ॥१९८
सागरा समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधरा ।
जज्वलुश्चाग्निहोत्राणि जायमाने जनार्दने ॥१९९
शिवाश्च प्रववुर्वाता प्रशान्तिमभवद्रज ।
ज्योतींष्यभ्यधिक रेजुर्जायमाने जनार्दन ॥ २००
अभिजिन्नाम नक्षत्र जयन्ती नाम शर्वरी ।
मुहूर्त्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दन ॥२०१
अव्यक्त शाश्वत कृष्णो हरिर्नारायण प्रभु ।
जायते स्मव भगवान् नयनर्मोहयन् प्रजा ॥२ २

क्योंकि अव्यय नारायण ने प्रभव किया अर्थात् जन्म ग्रहण किया था देवनारायण होकर सनातन हरि हुए थ ॥१९५॥ जिसने पहिले आदि पुरुष प्रजापति का सृजन किया था वह यादव न दन अदिति के भी पुत्र के स्वरूप को प्राप्त कर देव विष्णु नाम से प्रसिद्ध हुए थे और इन्द्र के छोटे भाई बन गये थे ॥१९६॥ जिस विभु के अदिति के पुत्र होने का कारण केवल प्रसाद ही है। जोकि देवो के शत्रु दैत्य-दानव और राक्षसो के वध करने के लिये ही हुआ था ॥१९७॥ राजा ययाति के वश मे जन्म लेने वाले धीमान् वसुदेव का कुल बहुत पुण्य शाली है और पवित्र है जिसमे कि प्रभु नारायण ने जन्म ग्रहण कर कर्म किया था ॥१९८॥ भगवान् जनार्दन के उत्पन्न होने के समय मे समस्त सागर कम्पमान होगये थे और सब पर्वत चलायमान होगये थे और चारो ओर अग्नि होत्र ज्वलित होगय थे ॥१९९॥ कल्याण कर वायु बहन करने लगी रज ने प्रशान्ति प्राप्त करली थी भगवान् जनार्दन के जायमान होने पर ज्योतियाँ अत्य धिक रूप से प्रकाश वाली होकर शोभित हो रही थीं ॥२ ॥ उस समय मे अभिजित् नाम वाला नक्षत्र था— जयन्ती नाम की शर्वरी थी और विजय नाम वाला मुहूर्त्त था जिस समय मे भगवान् जनार्दन ने अपना जन्म ग्रहण किया

था ॥२०१॥ अव्यक्त-शाश्वत-प्रभु नारायण हरि श्रीकृष्ण भगवान् नेनों के द्वारा प्रजा को मुग्ध करते हुए उत्पन्न हुए थे ॥२०२॥

आकाशात् पुष्पवृष्टीश्च ववर्ष त्रिदशेश्वर ।
गोभिर्मङ्गलयुक्ताभि स्तुवन्तो मधुसूदनम् ।
महर्षय सगन्धर्वा उपतस्थु सहस्रश ॥२०३
वसुदेवस्तु त रात्रौ जात पुत्रमधोक्षजम् ।
श्रीवत्सलक्षरणं दृष्ट्वा दिवि दिव्यै सुलक्षणैं ।
उवाच वसुदेव स्व रूप सहार वै प्रभो ॥२०४
भीतोऽह कसतस्तात एतदेव ब्रवीम्यहम् ।
मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्तेऽद्भुतदर्शना ॥२०५
वसुदेववच श्रुत्वा रूप स हृतवान् प्रभु ।
अनुज्ञात पिता त्वेन नन्दगोपगृह गत ।
उग्रसेनमते तिष्ठन् यशोदायै तदा ददौ ॥२०६
तुल्यकालन्तु गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा ।
यशोदा नन्दगोपस्य पत्नी सा नन्दगोपते ॥२०७

त्रिदशेश्वरों ने आकाश से पुष्पों की वर्षा की थी और भगवान् मधुसूदन की मङ्गलमयी वाणियों के द्वारा स्तुति की थी। उस समय सहस्रों ही महर्षिगण-गन्धर्व लोग वहाँ पर स्तवन गान करने के लिये उपस्थित होगये थे ॥२०३॥ वसुदेव ने तो रात्रि के समय में भगवान् अधोक्षज को पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए देखकर जोकि श्रीवत्स के चिन्ह से युक्त और समस्त अन्य दिव्य लक्षणों से अन्वित थे वसुदेवजी ने कहा—हे प्रभो ! इस समय आप इस अपने स्वरूप का संहरण करिये ।२०४। हे तात ! मैं राजा कंस से भयभीत हो रहा हूँ यही कारण है कि मैं इस समय आपसे यह निवेदन कर रहा हूँ। इस कंस ने अद्भुत दर्शन वाले मेरे आपसे ज्येष्ठ पुत्रों को मार डाला है ॥२०५॥ वसुदेव के इस विनिवेदित वचन को सुनकर भगवान् ने अपने उस स्वरूप का संवरण कर लिया था। उनके द्वारा पिता वसुदेव अनुज्ञात होकर इनको लेकर नन्दगोप के गृह पर चले गये थे। उग्रसेन के मत में रहते हुए उस समय उन्हें यशोदा के

लिये दे दिया था ॥२ ६॥ यशोदा और देवकी दोनों ही एक ही समय में गर्भिणी हुई थीं । वह यशोदा गोपनि न्द की पत्नी थी ॥२ ७॥

यामेव रजनी कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुलप्रभु ।
तामेव रजनी कन्या यशोदापि व्यजायत ॥२०८
त जात रक्षमाणस्तु वसुदेवो महायशा ।
प्रादात् पुत्र यशोदायै कन्यान्तु जगृहे स्वयम् ॥२०९
दत्त्वन नन्दगोपस्य रक्ष मामिति चाब्रवीत् ।
सुतस्ते सर्वकल्याणो यादवाना भविष्यति ।
अय स गर्भो देवक्या अस्मत्क्लेशान् हनिष्यति ॥२१०
उग्रसेनात्मजायाश्च कन्यामानकदुन्दुभे ।
निवेदयामास तदा कन्येति शुभलक्षणा ॥२११
स्वसाया तनय कसो जात नवावधारयत् ।
अथ तामपि दुष्टात्मा ह्युत्ससर्ज मुदान्वित ॥२१२
हता व या यदा कन्या जयत्येव वृथामति ।
कन्या सा ववृधे तत्र वृष्णिसद्मनि पूजिता ॥२१३
पुत्रवत्परिपाल्यन्ता देवा देवान् यथा तदा ।
तामेव विधिनोत्पन्नामाहु कन्या प्रजापतिम् ॥२१४
एकादशा तु जज्ञे वै रक्षार्थ केशवस्य ह ।
ता व सर्वे सुमनस पूजयिष्यन्ति यादवा ।
देवदेवो दिव्यवपु कृष्ण सरक्षितोऽनया ॥२१५

वृष्णि कुल के स्वामी जिस रात्रि म उत्पन्न हुए थे उसी रात में यशोदा ने भी एक कन्या को जन्म दिया था ॥२ ८॥ उन समुत्पन्न श्रीकृष्ण बालक की रक्षा करते हुए वसुदेवजी ने जिनका महान् यश था वह बाल कृष्ण पुत्र तो श्री यशोदा को दे दिया था और उस यशोदा के गर्भ से प्रसूत कन्या को स्वय ग्रहण कर लिया था । २ ६॥ इस बालकृष्ण बालक को नन्दगोप को देकर वसुदेवजी ने कहा–मेरी रक्षा करिये । तुम्हारा यह पुत्र समस्त कल्याणो के करने वाला है जोकि यादवों का मङ्गल करनेवाला होगा यह देवकी का यह गर्भ है जो

समस्त हमारे क्लेशों का हनन कर देगा ।।२१०।। और उग्रसेन की आत्मजा देवकी को आनक दुन्दुभि ने वह कन्या लाकर दे दी थी और उस समय में वह कन्या शुभ लक्षण वाली उत्पन्न हुई है—ऐसा ज्ञात कराया गया था ।।२११।। कंस ने अपनी बहिन के पुत्र हुआ है—यह निश्चय नहीं किया था। इसके अनन्तर उस दुष्टात्मा ने मुदान्वित होते हुए उसको भी उत्सृष्ट कर दिया था। जिस समय में जो कन्या हत हुई यह वृथा बुद्धि वाला मन में विचार करता है कि वृष्णि के घर में पूजित वह कन्या बड़ी हुई है ।।२१२-२१३।। उस समय देवों की भाँति देव पुत्र के समान परिपालन करते हुए विधि के द्वारा उत्पन्न कन्या को प्रजापति से बोले ।।२१४।। यह ग्यारहवी केशव की रक्षा के लिये उत्पन्न हुई है। उसको फिर सभी सुमनस यादव पूजेंगे कि देवों के देव कृष्ण इसके द्वारा रक्षित हुए हैं ।।२१५।।

किमर्थं वसुदेवस्य भोज कंसो नराधिप ।
जघान पुत्रान् बालान् वै तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ।।२१६
शृणुध्वं वै यथा कंस पुत्रानानकदुन्दुभेः ।
जाताञ्जातान्छिशून् सर्व्वान् निष्पिपेष वृथामतिः ।।२१७
भयाद्यथा महाबाहुर्जातः कृष्णो विवासितः ।
तथा च गोपु गोविन्दः संवृद्धः पुरुषोत्तमः ।।२१८
उक्तं हि किल देवक्या वसुदेवस्य धीमतः ।
सारथ्यं कृतवान् कंसो युवराजस्तदाऽभवत् ।।२१९
ततोऽन्तरिक्षे वागासीद्दिव्या भूतस्य कस्यचित् ।
कंसो यया सदा भीतः पुष्कला लोकसाक्षिणी ।।२२०
यामेता वहसे कंस रथेन परकारणात् ।
अस्या यः सप्तमो गर्भः स ते मृत्युर्भविष्यति ।।२२१
तां श्रुत्वा व्यथितो वाणीं तदा कंसो वृथामतिः ।
निष्क्रम्य खड्गं तां कन्यां हन्तुकामोऽभवत्तदा ।।२२२
तमुवाच महाबाहुर्वसुदेवः प्रतापवान् ।
उग्रसेनात्मजं कंस सौहृदात्प्रणयेन च ।।२२३

शब्या सुदवी माद्री च सुशीला नाम चापरा ।
कालिन्दी मित्रविन्दा च लक्ष्मणा जालवासिनी ॥२३४
एवमादीनि देवाना सहस्राणि च षोडश ।
चतुर्द 'ा तु यै प्रोक्ता गणाश्चाप्सरसा दिवि
विचिन्त्य दव शक्रण विशिष्टास्त्विह प्रपिता ॥२३५

सूतजी ने कहा—बबयर के पुत्र थे और अदिति की स्त्रियाँ थी। इसके अनन्तर महाबाहु ने देवकी के कामो का सम्वधन किया था ॥२३ ॥ योगात्मा उसने अपनी योगमाया से समस्त प्राणियो को मोहित करते हुए मानुष शरीर मे प्रवेश करके उस देव ने भूमि मे विचरण किया था ॥२३१॥ धर्म के नष्ट हो जाने पर भगवान् विष्णु ने स्वम वृष्णि कुल मे उस समय जन्म लिया। वह जन्म ग्रहण धम की व्यवस्था करने के लिये तथा असुरो का विनाश करने के लिये ही हुआ था ॥२३२॥ रुक्मिणी कन्या का आहरण किया गया था उस समय मे नग्न जितकी सत्या सत्राजित् की सत्यभामा जाम्बवती और रोहिणी लाई गई थी ॥२३३॥ शब्या—सुदेवी—माद्री—सुशीला—कालिन्दी—मित्रविन्दा—लक्ष्मणा—जालवासिनी—एवमादि देवो की सोलह हजार थी। चौदह तो दिवलोक मे अप्सराओ के गण कहे जाते थे देवो के द्वारा और इन्द्र के द्वारा विशेष रूप से चिन्तन करके जो विशिष्ट थी वे यहाँ प्रेषित करदी गई थी ॥२३४ २३५॥

पत्न्यथ वासुदेवस्य उत्पन्ना राजवेश्मसु ।
एता पत्न्यो महाभागा विष्वक्सेनस्य विश्रुता ॥२३६
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च सुदेष्ण शरभ स्तथा ।
चारुश्च चारुभद्रश्च भद्रचारुस्तथाऽपर ॥२३७
चारुविन्ध्यश्च रुक्मिण्या कन्या चारुमती तथा ।
सानुर्भानुस्तथाक्षश्च रोहितो मन्मथस्तथा ॥२३८
जराान्धकस्ताम्रवक्षा भौमरिश्च जरन्धम ।
चतस्रो जनिरे तेपा स्वसारो गरुडध्वजात् ॥२३९
भानुभी मरिका चव ताम्रपर्णी जरन्धमा ।
सत्यभामासुतानेताञ्जाम्बवत्या प्रजा शृणु ॥२४०

भद्रश्च भद्रगुप्तश्च भद्रविन्द्रस्तथैव च ।
सप्तबाहुश्च विख्यात कन्या भद्रावती तथा ।
सम्बोधनी च विख्याता ज्ञेया जाम्बवतीसुता ॥२४१
संग्रामजिच्च शतजित् तथैव च सहस्रजित् ।
एते पुत्रा सुदेव्याश्च विष्वक्सेनस्य कीर्त्तिता ॥२४२
वृको वृकाश्वो वृकजिद्वृजिनी च तुराङ्गना ।
मित्रबाहु सुनीथश्च नाग्नजित्या प्रजास्त्विह ॥२४३

ये सब यहाँ राजाओं के भवनों में वासुदेव की पत्नी बनने के लिये उत्पन्न हुई थी । ये महान् भाग वाली पत्नियाँ विश्वक्सेन की प्रसिद्ध हुई थी ॥२३६॥ प्रद्युम्न–चारुदेष्ण–सुदेष्ण–शरभ–चारु–चारुभद्र और चारुविन्ध्य रुक्मिणी में पुत्र उत्पन्न हुए तथा एक चारुमती नाम वाली कन्या उत्पन्न हुई थी । सानुर्भानु–अक्ष–रोहित–मन्त्राय–जरान्धक–ताम्रवक्षा–भौमरि और जरन्धम ये सत्यभामा के पुत्र हुए थे और इनकी चार बहिनें गरुड़ध्वज से उत्पन्न हुई थी जिनके नाम भानु–भौमरिका–ताम्रवर्णी और जरन्धमा थे—सत्यभामा के सुत तो बतला दिये गये है अब जाम्बवती के पुत्रों को श्रवण करो ॥२३७-२३८-२३९-२४०॥ भद्र–भद्रगुप्त–भद्रविन्द्र–सप्तबाहु ये सब जाम्बवती के विख्यात पुत्र थे । भद्रावती कन्या थी जोकि सम्बोधनी–इस नाम से विख्यात जाम्बवती के जानने योग्य थे ॥२४१॥ संग्राम जित्–शतजित्–सहस्रजित् ये सुदेवी के पुत्र थे जोकि विष्वक्सेन के कहे गये हैं ॥२४२॥ वृक–वृकाश्व- वृकजित् और वृजिनी सुराङ्गना–मित्रबाहु–सुनीथ ये नाग्नजिती की सन्तति यहाँ पर हुई थी ॥२४३॥

एवमादीनि पुत्राणा सहस्राणि निबोधत ।
प्रयुतन्तु समाख्यात वासुदेवस्य ये सुता ॥२४४
अयुतानि तथाष्टौ च शूरा रणविशारदा ।
जनार्दनस्य वशो व कीर्त्तितोऽय यथातथम् ॥२४५
बृहती नर्तकोन्वैधी सुनये सङ्गता तथा ।
कन्या सा बृहदुच्छस्य शौनेयस्य महात्मन ॥२४६

तस्या पुत्रास्तु विख्यातास्त्रय समितिशोभना ।
अङ्गद कुमुद श्वेत कन्या श्वेता तथव च ॥२४७
अवगाहश्च चित्रश्च शूरश्चित्रवरश्च य ।
चित्रसेन सुतश्चास्य कन्या चित्रवती तथा २४८
तुम्बश्च तुम्बवाणश्च जनस्तम्बश्च तावुभौ ।
उपाङ्गस्य स्मृतौ द्वौ तु वज्रार क्षिप्र एव च ॥२४९
भूरी द्रसेनो भूरिश्च गवेपस्य सुतावुभौ ।
युधिष्ठिरस्य कन्या तु सुतनुर्नाम वि शु ता ॥२५०
तस्यामश्वसुतो जज्ञ वज्रो नाम महायशा ।
वज्रस्य प्रति बाहुस्तु सुचारस्तस्य चात्मज ॥२५१

एवमादि सहस्रो पुत्र थे ऐसा जान लो । वासुदेव के जो पुत्र हुए थे वे प्रयुत थे ऐसा समाख्यात है ॥२४४॥ उनमे आयुत और आठ सो बड़े ही शूर तथा रणविद्या के विशारद थे । मैने आप लोगो से यह जनार्दन के वश का ठीक ठीक वर्णन कर दिया है ॥२४५॥ बृहती नर्तकोमेयी जो सुसय के साथ सङ्गत थी वह महात्मा शैनेय बृहद्बुध की क या थी ॥२४६॥ उसके तीन समित को सुशोभित करने वाले पुत्र विख्यात हुए थे । जिनके नाम अङ्गद-कुमुद और श्वेत थे थे तथा एक श्वेता नाम वाली क या थी ॥२४७॥ और इसके पुत्र अवगाह-चित्र-शूर-चित्रवर और चित्रसेन थे तथा एक चित्रवती नाम वाली कन्या थी ॥२४ ॥ तुम्ब-तुम्बवाण और जनस्तम्ब थे दोनो उपाङ्ग के पुत्र कहे गये है जिनके नाम वज्रार और क्षिप्र हैं ॥२४९॥ भूरीन्द्रसेन और भूरि थे दो गवेप के पुत्र थे और युधिष्ठिर की जो सुतनु नाम से विश्रुत थी एक क या हुई थी ॥२५०॥ उसम महान् यशवाला वज्र नामक अश्वसुत उत्पन्न हुआ था । वज्र के प्रति बाहु हुआ और उसका पुत्र सुचारु उत्प न हुआ था ॥२५१॥

काश्मा सुपार्श्व तनय जज्ञ साम्बा तरस्विनम् ।
तिस्र कोट्यस्तु पुत्राणा यादवाना महात्मनाम् ॥२५२
षष्टिशतसहस्राणि वीर्य्यवन्तो महाबला ।
देवाना सर्व्व एवेह उत्पन्नास्त महौजस ॥२५३

देवासुरे हता ये च असुरा वै महाबलाः ।
इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान् ।
तेषामुत्सादनार्थन्तु उत्पन्ना यादवे कुले ॥२७४
कुलानि दश चैकञ्च यादवानां महात्मनाम् ।
सर्वं मेकुल यद्वद्वर्तन्ते वैष्णवे कुले ॥२७५
विष्णुस्तेषां प्रमाणे च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः ।
निदेशस्थायिभिस्तस्य वद्ध्यन्ते सर्वमानुषाः २७६
इति प्रसूतिर्वृष्णीनां समासव्यासयोगतः ।
कीर्तिता कीर्तनाच्चैव कीर्तिसिद्धिमभीप्सिताम् ॥२७७

कादम्बा ने सुपार्श्व तनय को उत्पन्न किया था और साम्बा ने तरस्वी पुत्र को जन्म दिया था । महान् आत्मा वाले यादवों के तीन करोड़ पुत्रों की संख्या थी ॥२७२॥ साठ हजार वीर्य वाले और महान् बल वाले थे । ये सभी महान् ओज वाले यहां देवों के ही अंश उत्पन्न हुए थे ॥२७३॥ देवासुर युद्ध में जो महान् बल वाले असुर मारे गये थे वे सब यहां मनुष्यों में उत्पन्न हुए थे जोकि समस्त मनुष्यों को बाधा दिया करते थे । उनके उत्सादन करने के लिये ही यादव कुल में उत्पन्न हुए थे ॥२७४॥ महात्मा यादवों के ग्यारह कुल हुए थे । वे सब वैष्णव कुल में एक कुल में एक कुल की भाँति वर्त्तमान रहते हैं ।२७५। उन सबका प्रमाण में और प्रभुत्व में विष्णु व्यवस्थित हुए थे । उसके निदेश में स्थित रहने वालों के द्वारा समस्त मनुष्य वध किये जाते हैं ।२७६। यह वृष्णियों की प्रसूति है जिसका वर्णन संक्षेप और विस्तार से कीर्त्तित हुआ है । जो कीर्त्ति और सिद्धि के चाहने वाले हैं उनको इसके कीर्त्तन करने से प्राप्त होती है ।२७७।

प्रकरण ५९—शम्भुस्तव कीर्तन

मनुष्यप्रकृतीन् देवान् कीर्त्यमानान्निबोधत ।
सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नः साम्ब एव च ॥१

अनिरुद्धश्च पञ्च ते वशवीरा प्रकीर्त्तिता ।
सप्तमय कुवेरश्च यक्षो मणिवरस्तथा ॥२
शालकी बदरश्च व विद्वान् धन्वन्तरिस्तथा ।
नन्दिनश्च महादेव शालङ्कायन उच्यते ।
आदिदेवस्तदा जिष्णुरेभिश्च सह दवत ॥३
विष्णु किमथ सम्भूत स्मृता सम्भूतय कति ।
भविष्या कति चान्ये तु प्रादुर्भावा महात्मन ॥४
ब्रह्मक्षेत्रे युगान्तेषु किमर्थमिह जायते ।
पुन पुनर्मनुष्येषु तन्न प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥५
विस्तरेणव सर्वाणि कर्म्माणि रिपुधातिन ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यग् देहे कष्णस्य धीमत ॥
कम्मणामानपूर्व्यञ्च प्रादुर्भावाश्च ये प्रभो ।
या चास्य प्रकति सूत ताश्चास्मान् वक्तु महसि ॥७
कथ स भगवान् विष्णु सुरेश्वरिनिषूदन ।
वसुदेवकले धीमान् वासुदेवत्व मागत ॥८

मनुष्य की प्रकृति वाले देवों को अब बतलाया जाता है उन कीर्त्यमानों को भली भाँति समझ लो। सङ्कर्षण–वासुदेव–प्रद्युम्न–साम्ब और अनिरुद्ध ये पाँच वशवीर कहे गये हैं। सप्तपि कुवेर–यक्ष–मणिवर–शालकी–बदर–विद्वान् धन्वन्तरि–नन्दिन–महादेव और शालङ्कायन कहे जाते हैं। उस समय इन देवों के साथ जिष्णु आदि देव थे ॥१ २ ३॥ ऋषियों ने कहा––भगवान् विष्णु ने किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये जन्म ग्रहण किया था और उनके कितने जन्मा वतार हैं तथा महान् आत्मा वाले विष्णु के अन्य कितने प्रादुर्भाव भविष्य में होने वाले हैं ? ॥४॥ युगान्तों में ब्रह्मक्षेत्र में यहाँ किस कारण से जन्म लते हैं जोकि मनुष्यों में बार बार जन्म मानवों में लिया करते हैं इसका क्या कारण है––यह पूछने वाले हमको सब बतलाइये ॥५॥ शत्रुओं के घात करने वाले धीमान् कृष्ण के शरीरों के द्वारा जो कर्म होते हैं उन सबको विस्तार के साथ हम लोग सुनना चाहते हैं ॥६॥ हे प्रभो ! उनके कर्मों की आनुपूर्वी–प्रादुर्भाव

और जो इनकी प्रकृति है वह सब हे सूतजी ! हमको आप बताने को योग्य होते है ।।७।। वह भगवान् सुरो मे शत्रुओ के नाश करने वाले धीमान् विष्णु वसुदेव के कुल मे वासुदेवत्व को कैसे प्राप्त हुए थे ? ।।८।।

अमरै सूत किं पुण्यं पुण्यकृद्भिरलंकृतम् ।
देवलोकं समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागत ।।९
देवमानुषयोर्नेता भूर्भुव प्रसवो हरि ।
किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुषे समवेशयत् ।।१०
यश्चक्रं वर्तयत्येको मनुष्याणां मनोमयम् ।
मनुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृतां वर ।।११
गोपायनं य. कुरुते जगतां सार्व्वलौकिकम् ।
स कथं गां गतो विष्णुर्गोपमन्वकरोत्प्रभु ।।१२
महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार ह ।
श्रीगर्भ स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृत ।।१३
येन लोकान् क्रमैर्जित्वा त्रिभिस्त्रीस्त्रिदशेप्सया ।
स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गप्रवरास्त्रय ।।१४
योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपु ।
लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना ।।१५
य पुराणे पुराणात्मा वाराहं वपुरास्थित ।
ददौ जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तम ।।१६

हे सूतजी ! पुण्य करने वाले देवो से अलंकृत पुण्यतम देवलोक का त्याग करके यहाँ मनुष्य लोक मे आये थे अर्थात् विष्णु ने मनुष्यो मे अवतार लिया था ।।९।। भूर्भुव प्रसव हरि जो देव और मनुष्यो के नेता हैं उनने किस लिये अपने दिव्य आत्मा को मनुष्य रूप मे सन्निविष्ट किया था ।।१०।। जो एक मनुष्यो के मनोमय चक्र को चलाता है उस चक्रभृतो मे परम श्रेष्ठ ने मनुष्य बुद्धि कैसे की थी ।।११।। जो प्रभु जगतो का सार्व लौकिक गोपायन अर्थात् सरक्षण किया करता है वह प्रभु विष्णु किस निमित्त से भूमि मे जाकर अर्थात् मानुषावतार लेकर गोप का अनुकरण करता था ? ।।१२।। जो भूतो की आत्मा

महाभूतों को बनाता है और धारण किया करता है श्रीगभ वह भूचरी के द्वारा गर्भ में कसे धारण किया गया था ? ॥१३॥ देवों की इच्छा से जिसने तीन क़दमों से अर्थात् तीन पद से तीन लोकों को जीतकर जगत् के त्रिवग प्रवर तीन मार्ग स्थापित किये थे ॥१४॥ जो अन्त समय में तोयपूर्ण शरीर बनाकर इस समस्त जगत् का पान कर लोक को दृश्य और अदृश्य भाग से एक समुद्र के स्वरूप में कर देता था ॥१५॥ जो पुराण में पुराण आत्मा वाला है और वाराह के शरीर में स्थित हुआ था तथा सुरों में श्रेष्ठ ने वसुमती को जीत कर जिसने सुरों को देदी थी ॥१६॥

येन सह वपु कत्वा द्विधा कत्वा च यत्पुन ।
पूर्व्वदत्यो महावीर्य्यो हिरण्यकशिपुहत ॥१७
य पुराह्यनलो भूत्वा ग्रौर्व्व सवत्तको विभु ।
पातालस्थोर्ऽर्णवगत पपौ तोयमय हवि ॥१८
सहस्रचरण देव सहस्राशु सहस्रश ।
सहस्रशिरस देव यमाहुर्वे युगे युगे ॥१९
नाभ्यारण्या समुद्भूत यस्य पतामह गृहम् ।
एकार्णवगते लोके तत्पङ्कजमपङ्कजम् ॥२०
येन ते निहता दत्या सग्रामे तारकामये ।
सर्व्वदेवमय कत्वा सर्वायुधधर वपु ॥२१
गरुडस्थेन चोत्सिक्त कालनेमिर्निपातित
उत्तराशे समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधे ।
य शेते शाश्वत योगमास्थाय तिमिर
पुराणी गभमधत्त दिव्य तप ॥८दि
शक्रश्च यो दत्यगणाविरुद्ध गर्भावमानेन ॥
जिसने खम्भ को फ
बनाया था और पहिल दत्य
॥१७॥ जो पहिले सवत्तक
स्थित तथा अर्णव गत होता

युग-युग में जिसको सहस्र चरण वाला देव–सहस्र अंशु से युक्त–सहस्र शिर वाला कहते हैं ॥१९॥ जिसकी नाभि की अरणी से अर्थात् कमल नाल से पितामह का घर उत्पन्न हुआ था और वह बिना ही पङ्क के उत्पन्न होने वाला पङ्कज एकार्णव लोक में था ॥२०॥ जिसने तारकामय संग्राम में सर्वदेव पूर्ण और समस्त आयुधों के धारण करने वाले वपु को बनाकर दैत्यों का हनन किया था ॥२१॥ गरुड़ पर स्थित जिसने अमृत का उदधि क्षीर सागर समुद्र के उत्तराश में उत्सिक्त कालनेमि को निपातित कर दिया था जो महान् तिमिर (अन्धकार) में योग से आस्थित होकर शाश्वत शयन किया करता है ॥२२॥ पहिले अरणी ने जिसको दिव्य गर्भ के रूप में धारण किया था और तपस्या के प्रभाव से जिसको अदिति ने गर्भ धारण किया था। जिसने गर्भ के अवमान से इन्द्र को दैत्य के द्वारा अवध्य किया था ॥२३॥

यदानिलो लोकपदानि दहारन चकारदैत्यान् सलिलेशयास्तान् ।
कृत्वादिदेवस्त्रिदिवस्य देवाश्चक्रे सुरेशं पुरुहूतमेव ॥२४
गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्य्येण कर्म्मणा ।
अग्निमाहवनीयश्च वेदिञ्चैव कुशास्तरम् ॥२५
प्रोक्षणीय स्रुवञ्चैव अवभृथ तथैव च ।
अथ त्रीनिह् यश्चके हव्यभाग प्रदान्मखे ॥२६
हव्यादांश्च सुरांश्चक्रे कव्यादांश्च पितृनपि ।
भोगार्थं यज्ञविधिना यो यज्ञो यज्ञकर्म्मणि ॥२७
यूपान् समित्स्रुव सोम पवित्र परिधीनपि ।
यज्ञियानि च द्रव्याणि यज्ञीयांश्च तथानलान् ॥२८
सदस्यान् यजमानांश्च अश्वमेधान् क्रतूत्तमान् ।
विबभ्राज पुरा यश्च पारमेष्ठ्येन कर्म्मणा ॥२९
युगानुरूप य कृत्वा लोकान् हि यथाक्रमम् ।
क्षणा निमेषा काष्ठाश्च कलास्त्रैकालमेव च ॥३०
मुहूर्त्तास्तिथयो मासा दिनसंवत्सरास्तथा ।
ऋतव कालयोगाश्च प्रमाण त्रिविधन्तथा ॥३१

आयु क्ष आण्युपचय लक्षण रूपसौष्ठवम् ।
मधा वित्त च शौय्यञ्च शास्त्रस्यव च पारणम् ।।३२

जब अनिल ने लोक पदो का हरण करके उन दैत्यो को सलिलेशय कर दिया था तब आदि देव ने त्रिदिव के देवो को करके पुरुहूत को ही सुरो का ईश कर दिया था ।।२४।। गार्हपत्य विधि से और अन्वाहार्य कम से अग्नि को आहवनीय को और वेदि को कुशस्त्र को—प्रोक्षणीय स्रु व को तथा अव भृथ को जिसने यहाँ तीन को मध्य मे हव्य भाग को देने वाला किया था ।।२५ २६।। और हव्य के लेने वाले देवो को बनाकर कव्य के लने वाल पितृगो को किया था। यज्ञ के कम मे यज्ञ की विधि से भोग के लिये जो यज्ञ स्वरूप है ।।२७।। यूप-समित्-स्रु व-पवित्र सोम और परिधियो को यज्ञिय द्रव्यो को और यज्ञीय अनलो को—सदस्यो को और यजमानो को—श्रेष्ठ क्रतु अश्वमेधो पारमेष्ठय कम से जो पहिले विभाजित करता था ।।२८।। जो युगो के अनुरूप यथाक्रम तीन लोको को बनाकर क्षण–निमेष–काष्ठा–कला और तीन कालो को जिसने बनाया था ।।३ ।। मुहूर्त–तिथियाँ–मास–दिन–सम्वत्सर–ऋतुऐं –काल योग और तीन प्रकार के प्रमाण जिसने सृजित किये थे ।।३१।। आयु–क्षेम उपचय–लक्षण–रूप का सौष्ठव–मेधा–वित्त–शूरता और शास्त्र का पारण जिसने रचा था ।।३२।।

त्रयो वर्णास्त्रियो लोकास्त्र विद्य पावकास्त्रत ।
त्र काल्य त्रीणि कर्म्माणि तिस्रो मायास्त्रयो गुणा ।।३३
सृष्टा लोका सुराश्च व येनात्य तेन कम्मणा ।
सव्वभूतगणा सृष्टा सव्वभूतगणात्मना ।।३४
नृणामिन्द्रियपूव्वण योगेन रमते च य ।
गतागताना यो नेता सव्वत्र विविधेश्वर ।।३५
यो गतिधर्मयुक्तानामगति पापकर्म्मणाम् ।
चातुवर्ण्य स्य प्रभवश्चातुवर्ण्यस्य रक्षिता ।।३६
चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चतुराश्रमसश्रय ।
दिगन्तर नभो भूमिरापो वायुर्विभावसु ।।३७

चन्द्रसूर्य्यद्वय ज्योतिर्यु गेश क्षणदाचर ।
य पर श्रूयते देवो य पर श्रूयते तप ॥३८
य परन्तपस प्राहुर्य परम्परमात्मवान् ।
आदित्यादिस्तु यो देवो यश्च दैत्यान्तको विभु ॥३९
युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तक ।
सेतुर्यो लोकसेतूना मेध्यो यो मेध्यकर्म्मणाम् ॥४०
वेद्यो यो वेदविदुपा प्रभुर्य प्रभवात्मनाम् ।
सोमभूतस्तु भूतानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् ॥४१
मनुष्याणा मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् ।
विनयो नयतृमाना तेजस्तेजस्विनामपि ॥४२

तीन वर्ण–तीन लोक–तीन विद्या–तीन पावक–तीन काल–तीन कर्म–तीन माया और तीन गुण जिसने निर्मित किये थे ॥३३॥ जिसने अत्यन्त कर्म मे लोको और सुरो का सृजन किया था । सवभूत गणात्मा ने समस्त भूतगणो को बनाया था ॥३४॥ नरो के इन्द्रिय पूव योग से जो रमण करता है गत और आगतो का जो विविधेश्वर सर्वत्र नेता है ॥३५॥ जो धम मे युक्तो का गति है और पाप कम वालो का अगति है । चातुवर्ण्य का जो प्रभव है और चारो वर्णों का जो रक्षा करने वाला है ॥३६॥ जो चार विद्याओ का जानने वाला और चारो आश्रमो का सश्रय है जो दिशाओ का अन्तर–नभ–भूमि–जल–वायु–विभावसु है ॥३७॥ जो चन्द्र और सूर्य दोनों की ज्योति–युगो का स्वामी—क्षणदाचर है और जो परदेव सुना जाता है और जो पर तप सुना जाता है ॥३८॥ जो परन्तपस और जो परम्परमात्मवान् कहा जाता है । जो देव आदित्यादि है जो विभु दैत्यान्तक है ॥३९॥ युगो के अन्त मे अन्त करने वाला है और जो लोको के अन्तक का भी अन्त करने वाला है। लोकसेतुओ का जो सेतु है और जो मेध्य कर्मों का मेध्य है ॥४०॥ वेद के विद्वानो का जो जानने के योग्य है और जो प्रभवात्माओ का प्रभु है । भूतो का जो सोमभूत है और अग्निवर्चसो का जो अग्नि भूत है ॥४१॥ जो मनुष्यो का मनोभूत और तपस्वियो

का तपोभून है। जप से शूम पुरुषों का विनय और तेजस्वियों का भी जो तेज है ॥४२॥

विग्रहो विग्रहाणां यो गतिर्मतिमतामपि ।
आकाश प्रभवो वायुर्वायुप्राणा हुताशन ॥४३
दिवा हुताशन प्राणा प्राणोऽनेमधुसूदन ।
रसोऽभवच्छोणित व शोणिता मासमुच्यते ॥४४
मासात्तु मेदसो ज म मेदसोऽस्थि निरूप्यते ।
अस्थ्ना मज्जा समभव मज्जात शुक्रसम्भव ॥४५
शुक्राद्ग र्भ समभवद्रसमूलेन कर्म्मणा ।
तत्रापि प्रथमश्चापस्ता सौम्यराशिरुच्यते ॥४६
गर्भोष्मसम्भवो ज्ञ यो द्वितीयो राशिरुच्यते ।
शुक्र सोमात्मक विद्यादात्तव पावकात्मकम् ॥४७
भावौ रसानुगावेतौ वीर्य्ये च शशिपावकौ ।
कफवर्गेऽभवच्छुक्र पित्तवर्गे च शोणितम् ॥४८
कफस्य हृदय स्थान नाभ्या पित्त प्रतिष्ठितम् ।
देहस्य मध्ये हृदय स्थानन्तु मनस स्मृतम् ॥४९
नाभिकोष्ठान्तर यत्तु तत्र देवो हुताशन ।
मन प्रजापतिर्ज्ञेय कफ सोमो विभाव्यते ॥५०

जो विग्रहों का विग्रह है और गतिमानों का भी गति है। आकाश में उत्पन्न होने वाला वायु है और वायु प्राण वाला हुताशन(अग्नि)है ॥४३॥ हुताशन का प्राण दिवा है और अग्नि का प्राण मधुसूदन है। रस से शोणित(रक्त) हुआ और शोणित माँस को कहा जाता है ॥ ४॥ माँस से मेद की उत्पत्ति होती है और मेद से अस्थि निरूपित की जाती है। अस्थि से मज्जा हुई और मज्जा से शुक्र का जन्म हुआ करता है ॥४५॥ शुक्र से गर्भ रस मूल कर्म से हुआ था। वहाँ पर भी प्रथम आप (जल) है वह सौम्य राशि कहा जाता है ॥४६॥ गर्भ की उष्मा से सम्भव वाला द्वितीय राशि है। शुक्र को सोमात्मक जानो और आत्तव को पावकात्मक जानना चाहिए ॥४७॥ रसानुग ये दोनों भाव

होते हैं और वीर्य में शक्ति तरा पावक है। कफ वर्ग में शुक्र होता है और पित्त वर्गमें शोणित होता है ॥४८॥ कफ का स्थान हृदय है और पित्त नाभी में प्रतिष्ठित रहा करता है। देह के मध्य में हृदय होता है जो मन का स्थान कहा गया है ॥४९॥ नाभिकोष का अन्तर जो होता है वहाँ देव हुताशन रहता है। मन को प्रजापति जानना चाहिए और कफ सोम विभाजित किया जाता है। ५०।

पित्तमग्नि स्मृतावेतावग्निसोमात्मक जगत् ।
एव प्रवर्तितो गर्भो वर्त्ततेऽम्बुदसन्निभ ॥५१
वायु प्रवेशन चक्रे सङ्गत परमात्मना ।
स पञ्चधा शरीरस्थो विद्यते वर्द्धयेत् पुन ॥५२
प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च ।
प्राणोऽस्य परमात्मान वर्द्धयन् परिवर्त्तते ॥५३
अपान पश्चिम कायमुदानोर्द्ध शरीरग. ।
व्यानो व्यानस्यते येन समान सर्व्वसन्धिषु ॥५४
भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरा ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥५५
सर्व्वेन्द्रिया निविष्टास्त स्व स्व योग प्रचक्रिरे ।
पार्थिव देहमाहुस्त प्राणात्मान च मारुतम् ॥५६
छिद्राण्याकाशयोनीनि जलास्राव प्रवर्त्तते ।
नेजश्चक्षु ष्विता ज्योत्स्ना लेपा यन्नामत स्मृतम् ।
सङ ग्रामा विषयाश्चैव यस्य वीर्य्यात्प्रवर्त्तिता ॥५७
इत्येतान् पुरुष सर्व्वान् सृजँल्लोकान् सनातन ।
नैधनेऽस्मिन् कथ लोके नरत्व विष्णुरागत ॥५८

पित्त अग्नि है। ये दोनों अग्नि और सोम के स्वरूप वाला जगत् कहा गया है। इस प्रकार से प्रवर्त्तित गर्भ अम्बुद (मेघ) के समान होता है ॥५१॥ परमात्मा में सङ्गत वायु ने प्रवेशन किया था। वह वायु शरीर में स्थित पाँच प्रकार का होता है और फिर बढाता है ॥५२॥ प्राण–अपान–समान–उदान और व्यान ये पाँच वायु हैं। इसका प्राण परमात्मा को वर्द्धित करता हुआ परि-

वर्त्तित होता है ॥५३॥ अपान पीछे को शरीर के और उदान आगे शरीर मे गमन करने वाला होता है। व्यान वह है जिससे यह व्यानस्यमान किया जाता है और शरीर की समस्त सन्धियों मे रहा करता है ॥५४॥ इसके पश्चात् उसकी भूतावाप्ति इन्द्रिय गोचर होती है। पृथिवी–वायु–आकाश–जल और पाँचवाँ ज्योति मे भव होते है ॥५५॥ समस्त इन्द्रिया उसमे निविष्ट होती हुई अपने अपने योग को किया करती है। उसको पार्थिव देह कहते हैं और मारुत को प्राण स्वरूप कहते हैं ॥५६॥ छिद्र आकाश योनि होते है जिनसे जलास्राव प्रवृत्त होता है। तेज चक्षुओ मे होता है जो नाम से उनकी ज्योत्स्ना कही गई है। सग्राम और विजय ही मे जिसके वीर्य से प्रवर्त्तित होते है ॥५७॥ सनातन प्रभु इन सब लोको को सृष्ट करता हुआ इस नश्वर (मृत्युशील) लोक मे विष्णु कैसे आगये थे ? ॥५८॥

एष न सशयो धीमन्नेष च विस्मयो महान् ।
कथ गतिगतिमतामापन्नो मानुपी तनुम् ॥५६
श्रोतुमिच्छामहे विष्णो कर्म्माणि च यथाक्रमम् ।
आश्चर्य्याणि पर विष्णोर्वेददेवश्च कथ्यते ॥६०
विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्य्यं कथयस्व महामते ।
एतदाश्चर्य्यमाख्यान कथ्यता व सुखावहम् ॥६१
प्रख्यातबलवीर्य्यस्य प्रादुर्भावा महात्मन ।
कर्म्मणाश्चर्य्यभूतस्य विष्णो सत्त्वमि होच्यताम् ॥६२
अहश्च कीर्त्त यिष्यामि प्रादुर्भाव महात्मन
यथा स भगवाञ्जातो मानुषेपु महातपा ॥६३
सहस्रसतप प्रोक्ता भृगुशापेन मानुपे ।
जायते च युगान्तेपु देवकार्य्यार्थ सिद्धये ॥६४
तस्य दिव्यतनु विष्णोगदतो मे निबोधत ।
युगधर्म्मे परावृत्त काले च शिथिले प्रभु ॥६५
-कनु धर्म्मव्यवस्थान जायते मानुपेष्विह ।
भृगो शापनिमित्त न देवासुरकृतन च ॥६६

कथं देवासुरकृतं ग्रध्याहारमवाप्नुयात् ।
एतद्व दितुमिच्छामो वृत्तं देवासुरं कथम् ॥६७
देवासुरं यथावृत्तं श्रृणुलम्तन्निबोधत ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्त्रैलोक्यं प्राक् प्रशासति ॥६८

हे धीमान् ! यह ही हमारा एक बहुत भारी संशय है और एक बहुत अधिक विस्मय भी होता है। गतिमानो की मानुषी तनु को गति को कैसे प्राप्त हुआ था ? ॥५६॥ हम सब भगवान् विष्णु के कर्मों का यथाक्रम सुनना चाहते हैं। विष्णु ही इस परम आश्चर्य को जानते हैं और वेदों के द्वारा कहे जाते हैं ॥६०॥ हे महामते ! विष्णु की उत्पत्ति एक बड़ा आश्चर्य है उसे आप बताइये यह आख्यान आश्रय पूर्ण है या सुख देने वाला उसे आप कहें। ॥६१॥ प्रख्यात बल और वीर्य वाले महान् आत्मा से युक्त भगवान् विष्णु के आदि कर्म में आश्रय भूत हैं, प्रादुर्भावों को और उसके तत्त्व को यहाँ बताइये। श्री सूतजी ने कहा—मैं उस महान् आत्मा वाले के प्रादुर्भाव को कहूँगा जिस तरह महातप वाले वह भगवान् मनुष्यों में उत्पन्न हुए थे ॥६३॥ यज्ञ यज्ञ तप क्रम गये भृगु के शाप से मानुष लोक में युगों के अन्त समयों में देवों के कार्यों की सिद्धि के लिये जन्म ग्रहण करते हैं ॥६४॥ बतलाते हुए शुभम सुम लोग उस विष्णु के दिव्य तनु को भली-भाँति समझ लो। प्रभु युग जब व परावृत्त हो जाने पर और काल के विविध होने पर जब भी व्यवस्था करने के लिये यहाँ मनुष्यों में जन्म लिया करते हैं यह जन्म ग्रहण भी देवासुरों के द्वारा कृत और भृगु के शाप के निमित्त से होता है ॥६६॥ ऋषियों ने कहा—देवासुर कृत युद्ध में कैसे अभ्याहार को प्राप्त होते हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि देवासुर युद्ध कैसे हुआ था ?॥६७॥ सूतजी बोले—देवासुर युद्ध जिस तरह से हुआ था यह बताने वाले मुझसे सब तुम जान लो। पहिले हिरण्यकशिपु राजा तीनों लोकों पर प्रशासन करता था ॥६८॥

बलिनाधिष्ठितं राष्ट्रं पुनर्लोकत्रये क्रमात् ।
साख्यमासीत्परं तेषां देवानामसुरैः सह ॥६९

सवृतान् दानवाश्च व सङ्गुतान् कृत्स्नशश्च तान् ।
तथा विष्णुसहायेन महेन्द्रेण निर्वाहिता ॥८४
हतो ध्वजो महेन्द्रेण मायाच्छन्नश्च योधमन् ।
ध्वजे लक्ष्य समाविश्य विप्रवत्तिमहाभुज ॥८५
दत्याश्च दानवाश्च व सहतान् कृत्स्नशश्च तान् ।
रजि कालाहले सर्वान् देव परिवृतोऽजयत् ।
यज्ञामृतेन विजितौ षण्डामार्कौ तु दवत ॥८६
एते देवासुरा वृत्ता सग्रामा द्वादशव तु ।
देवासुरक्षयकरा प्रजानामहिताय च ॥८७
हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामबुदं बभौ ।
तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्तति ।
अशीति च सहस्राणि त्र लोक्यस्येश्वरोऽभवत् । ८८
पर्याये तस्य राजाऽज बलिवर्षाबुद पुन ।
षष्ठि चव सहस्राणि त्रिशत नियुतानि च ॥८९
बले राज्याधिकारस्तु यावत्काल बभूव ह ।
प्रह्लादेन गृहीतो भूतावत्काल तदासुरै ॥९०

अष्टम मे असुर–राक्षस और भयकारक जीते हुए मनुष्य और देवो तथा पितृगणो से सङ्गुत तथा सवृत दानवो को और पूर्ण रूप से सङ्गुत उन सबको विष्णु की सहायता प्राप्त करने वाले इन्द्र ने निर्वाहित किया था ॥८३ ८४॥ माया से आच्छन्न–ध्वज युद्ध करते हुए महेन्द्र ने मारा था । ध्वज मे लक्ष्य का समावेश करके महाभुज विप्रवत्ति हुआ था ॥८५॥ दत्य और पूर्ण रूप से सहत समस्त दानवो को देवो के द्वारा परिवृत रजि ने कोलाहल मे जीता था यज्ञामृत से देवो ने षण्डामार्कों को जीता था ॥८६॥ ये इतने प्रजाओ के अमङ्गल करने के लिये देव और असुरो के क्षय करने वाले बारह सग्राम हुए थे जो देवासुर इस नाम से कहे गये है ॥८७॥ हिरण्यकशिपु राजा एक अर्बुद वर्ष तक सुशोभित रहा था और इसी प्रकार से सौ सहस्र–बहत्तर अधिक और अस्सी सहस्र तक त्रैलोक्य का स्वामी रहा था ॥८ ॥ पर्याय मे उसके पश्चात्

राजा बलि फिर एक असुर वर्ष तक तथा साठ हजार तीन सौ नियुत पर्यन्त रहा था ॥८६॥ बलि का राज्याधिकार जितने समय तक रहा था तब तक उस समय असुरों से वह प्रह्लाद के द्वारा गृहीत रहा था ॥६०॥

इन्द्रास्त्रयस्ते विख्याता असुराणां महौजसः ।
दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद्दशयुगं किल ॥६१
असपत्नं ततः सर्वं राष्ट्रं दशयुगं पुरा ।
त्रैलोक्यमव्ययमिदं महेन्द्रेण तु पाल्यते ॥६२
प्रह्लादस्य ततश्चादस्त्रैलोक्यं कालपर्ययात् ।
पर्यायेण च सम्प्राप्तं त्रैलोक्ये पाकशासनः ॥६३
ततोऽसुरान् परित्यज्य यज्ञे देवा उपागमन् ।
यज्ञे देवानथ गते काव्यं ते ह्यसुराब्रुवन् ॥६४
कृतं नो मिषता राष्ट्रं त्यक्त्वा यज्ञं पुनर्गताः ।
स्थातुं न शक्नुमो ह्यद्य प्रविशामो रसातलम् ॥६५
एवमुक्तोऽब्रवीदेतान् विषण्णान् सान्त्वयन् गिरा ।
मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन चासुराः ६६
वृष्टिरोषधयश्चैव रसा वसु च यद्द्वयम् ।
कृत्स्ना मयि च तिष्ठन्ति पादस्तेषां सुरेषु वै ।
युष्मदर्थं प्रदास्यामि तत्सर्वं धार्यते मया ॥६७
ततो देवासुरान् दृष्ट्वा धृतान् काव्येन धीमता ।
अमन्त्रयस्तदा ते वै सविग्ना विजिगीषया । ६८

वे महान् ओज वाले असुरों के तीन इन्द्र विख्यात हुए थे। यह समस्त दश युग तक दैत्यों के कब्जे में रहा था ॥६१॥ पहिले यह समस्त राष्ट्र शत्रुओं से रहित रहा था। यह अव्यय त्रैलोक्य महेन्द्र के द्वारा ही पालित होता था ॥६२॥ इसके पश्चात् प्रह्लाद के कालपर्यय से इस त्रैलोक्य पर पर्याय से पाकशासन (इन्द्र) ने शासन प्राप्त कर लिया था ॥६३॥ इसके अनन्तर असुरों का त्याग कर देवगण यज्ञ में उपागत हुए थे। देवों के यज्ञ में जाने पर काव्य (शुक्र) से असुरों ने कहा ॥६४॥ राष्ट्र को त्याग कर भूल करने वाले हमारे

किये हुए यज्ञ को पुनः चले गये। मात्र हम ठहर नहीं सकते हैं रसातल में प्रवेश करें ॥६५॥ इस प्रकार से कहे गये विषाद युक्त शुक्र ने इनसे वाणी द्वारा सान्त्वना देते हुए कहा—डरो मत वह सब हे असुरो! मेरे द्वारा अपने तेज से धारण किया जा रहा है ॥६६॥ भूमि—रस—ओषधियाँ और जो दोनों प्रकार का धन है ये सब पूर्ण सूक्ष्म ही रहा करते हैं उनका चतुर्थ भाग देवगण में रहता है। तुम्हारे लिये मैं दूँगा। वह अब मेरे द्वारा धारण किये जाते हैं ॥६७॥ इसके अनन्तर धीमान् काव्य के द्वारा धृत देवासुरों का देखकर तब उन्होंने विशेष रूप से जीतने की इच्छा से सविग्न होते हुए मन्त्रणा की थी ॥६८॥

एष काव्य इदं सर्वं व्यावर्त्तयति नो बलात्।
साधु गच्छामहे तूर्णं क्षीणान्नाप्याययस्व तान्।
प्रसह्य हत्वा शिष्टान् वै पातालं प्रापयामहे ॥९९
ततो देवा सुसंरब्धा दानवानभिसृत्य वै।
जघ्नुस्ते वध्यमानास्ते काव्यमेवाभिदुद्रुवु ॥१०
ततः काव्यस्तु तान्दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान्।
समरक्षत्ततस्तान् देवेभ्यस्तान् दितेः सुतान् १०१
काव्यो दृष्ट्वा स्थितान् देवान् तत्र देवोऽथ चिन्तयत्।
तानुवाच ततो ध्यात्वा पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥१ २
त्रैलोक्यं विजितं सर्वं वामनेन त्रिभिः क्रमैः।
बलिर्बद्धो हतो जम्भो निहतश्च विरोचनः ॥१ ३
महासुरेषु द्वादशसु संग्रामेषु सुरैर्हताः।
तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठा निहता वै प्रधानतः ॥१ ४
किञ्चिच्छिष्टास्तु वै यूयं युद्धं ब्रूतेषु वै स्वयम्।
नीतिं वो हि विधास्यामि कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥१०५

वह काव्य इस सबको बलसे हमको दबा देगे। अच्छी बात है शीघ्र जायें और उन क्षीणों को भी तृप्त करें बलपूर्वक शिष्टों का हरण करके पाताल में प्रवेश करा देव ॥९९॥ इसके देवों ने सुसंरब्ध होते हुए दानवों पर अभि

किये हुए यश को पुन चले गये। आज हम ठहर नहीं सकते है रसातल मे प्रवेश करे ।।६५।। इस प्रकार से कहे गये विपाद युक्त शुक ने इनसे वाणी द्वारा सान्त्वना देते हुए कहा—डरो मत वह सब हे असुरो ! मेरे द्वारा अपने तेज से धारण किया जा रहा है ।।६६।। वृ‍ि-रस-औषधियाँ और जो दोनो प्रकार का धन है ये सब पूर्ण मुझमे ही रहा करते हैं उनका चतुर्थ भाग देवगण मे रहता है। तुम्हारे लिय मैं दूगा। वह अब मरे द्वारा धारण किये जाते हैं ।।६७।। इसके अनन्तर धीमान् काव्य के द्वारा धृत देवासुरो को देखकर तब उन्होने विशेष रूप स जीतने की इच्छा से समन्वित होते हुए मन्त्रणा की थी ।।६८।।

एष काव्य इद सर्व यावत्सयति नो बलात् ।
साधु गच्छामहे तूर्ण क्षीणानाप्याययस्व तान् ।
प्रसह्य हत्वा शिष्टान् व पाताल प्रापयामहे ।।६६
ततो देवा सुसरब्धा दानवानभिसृत्य व ।
जघ्नुस्त वध्यमानास्ते काव्यमेवाभिदुद्रुवु ।।१००
तत काव्यस्तु ता दृष्ट्वा तूर्ण देवरभिद्र तान् ।
समरेऽस्त्रै क्षतार्त्तास्तान् देवेभ्यस्तान् दिते सुतान् १०१
काव्यो दृष्ट्वा स्थितान् देवान् तत्र वेवाऽभ्यचिन्तयत् ।
तानुवाच ततो ध्यात्वा पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ।।१०२
त्रलोक्य विजित सर्व वामनन त्रिभि क्रम ।
बलिर्बद्धो हतो जम्भा निहतश्च विरोचन ।।१ ३
महासुरेषु द्वादशसु सग्रामेषु सुरर्हता ।
तैस्तरुपायर्भू यिष्ठा निहता य प्रधानत ।।१०४
किञ्चिच्छिष्टास्तु व यूय युद्ध ध्वन्त्येषु व स्वयम् ।
नीति वो हि विधास्यामि काल कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ।।१०५

यह काव्य इस सबको बलसे हमको बचा देंगे। अच्छी बात है शीघ्र जाये और उन क्षीणों को भी तृप्त करें बलपूर्वक शिष्ट का हरण करके पाताल म प्रवेश करा देव ।।६६।। इसके देवो ने सुसरब्ध होते ए दानवो पर अभि

सरण करके मार दिया था और उन देवों के द्वारा वध्यमान वे काव्य के ही पास होते थे ॥१००॥ इसके पश्चात् देवों के द्वारा भगाये गये उनको शुक्र ने शीघ्र देखकर जोकि ममर अम्बा के क्षता से दुःखित थे और वे दिति के पुत्र देवों के द्वारा अभिद्रुत किये हुए थे ॥१०१॥ वहाँ पर स्थित हुए देवों को काव्य ने देखकर सोचा और फिर ध्यान करके पूर्व वृत्त का अनुस्मरण करते हुए उनसे बोले ॥१०२॥ वामन ने इस समस्त त्रैलोक्य को तीन कदमों से ही जीत लिया है। बलि को बाँध दिया गया है और जम्भ तथा विरोचन को मार दिया गया है ॥१०३॥ महान् बारह संग्रामों में देवों के द्वारा ये सब मारे गये हैं। जो प्रधान थे वे उन-उन उपायों के द्वारा बहुत से मारे गये हैं। तुम लोग कुछ थोड़े से शेष रह गये हो। अब अन्तिम युद्धों में आपकी नीति को मैं स्वयं ही धारण करूँगा कुछ समय प्रतीक्षा करो ॥१०४-१०५॥

यास्याम्यहं महादेवं मन्त्रार्थं विजयाय वः ।
अग्निं माप्याययेद्धोता मन्त्रैरेव बृहस्पतिः ॥१०६॥
ततो यास्याम्यहं देवं मन्त्रार्थं नीललोहितम् ।
युष्माननुग्रहीष्यामि पुनः पश्चादिहागतः ॥१०७॥
यूयं तपश्चरध्वं वै संवृता वल्कलैर्वने ।
न वै देवा वधिष्यन्ति यावदागमनं मम ॥१०८॥
अप्रतीपास्ततो मन्त्रान् देवात् प्राप्य महेश्वरात् ।
योत्स्यामहे पुनर्देवास्ततः प्राप्स्यथ वै जयम् ॥१०९॥
ततस्ते कृतसंवादा देवानूचुस्ततोऽसुराः ।
न्यस्तवादा वयं सर्वे लोकान् यूयं क्रमन्तु वै ॥११०॥
वयं तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्वने ।
प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्यव्याहरणं तु तत् ॥१११॥
ततो देवा निवृत्ता वै विज्वरा मुदिताश्च ह ।
न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु स्वान् वै जग्मुर्यथागतान् ॥११२॥
ततस्तानब्रवीत्काव्यः कञ्चित्कालमुपास्यताम् ।
निरुत्सुकैस्तपोयुक्तैः कालं कार्यार्थसाधकैः ।
पितुमाश्रमस्था वै सर्वे देवाः सवासवाः ॥११३॥

स त्वन्दियासुरान् काव्यो महादेव प्रपद्य च ।
प्रणम्यैनमुवाचाय जगत्प्रभवमीश्वरम् ॥११४॥

मैं आप लोगों की विजय के लिए मन्त्राय मैं महादेव के पास जाऊँगा। होता बृहस्पति मन्त्रों से ही अग्नि को आच्छादित करते हैं ॥१०६॥ इससे मैं मन्त्राय के लिए नील लोहित (महादेव) के समीप मैं जाऊँगा। आप लोगों के ऊपर अनुग्रह करूँगा और फिर पीछे यहाँ आऊँगा ॥१०७॥ तुम लोग वन में वल्कलों से संवृत होते हुए अर्थात् वृक्षों की छाल के वस्त्र पहिनते हुए तपस्या करो फिर देवता लोग वध नहीं करेंगे जब तक कि मेरा आगमन यहाँ होता है ॥१०८॥ महेश्वर देव से अप्रतीप मन्त्रों को प्राप्त करके अर्थात् शत्रु नाशक मन्त्रों को जानकर के फिर देवों के साथ युद्ध करेंगे और फिर अवश्य ही विजय प्राप्त करेंगे ॥१०६॥ इसके अनन्तर सम्वाद करने वाले असुर देवगण से बोले—हम लोग सब झगड़ा छोड़ने वाले हो गये हैं अब तुम लोग समस्त लोकों को प्राप्त कर भोग करो ॥११०॥ हम लोग सब तपस्या करते हैं और वल्कल वसनों से संवृत होते हैं। प्रह्लाद के वचन को सुनकर जो कि बिल्कुल सत्य ही कथन था ॥१११॥ इसके पश्चात् दुःख रहित एवं परम प्रसन्न देवता लोग निवृत्त होगये थे। दैत्यों के शस्त्र त्याग देने वाले हो जाने पर देवगण अपने स्थानों को जैसे वे आये थे चले गये थे ॥ ११२ ॥ इसके अनन्तर शुक्राचार्य ने उन से (दैत्यों से) कहा कि तुम लोग कुछ समय तक निरुत्सुक-तप से युक्त और कार्यार्थ के साधक होते हुए उपासना करो। इन्द्र के सहित समस्त देव गण इस समय में मेरे पिता के आश्रम में स्थित हैं ॥११३॥ यह काव्य (शुक्राचार्य—गुरु) असुरों को सन्देश देकर महादेव के पास गये और वहाँ पहुँच कर इनको प्रणाम करके समस्त जगत् प्रभव ईश्वर महादेव से कहा—॥११४॥

मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ।
पराभवाय देवानामसुरेष्वभयावहान् ॥११५॥
एवमुक्तोऽब्रवीद् देवो मन्त्रानिच्छसि वै द्विज।
व्रतं चर मयादिष्टं ब्रह्मचारी समाहितः ॥११६॥

पूर्णं वर्षसहस्रं वै कुण्डधूममवाक्शिराः ।
यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मन्त्रमवाप्स्यसि ॥११७॥
तथोक्तो देवदेवेन स शुक्रस्तु महातपाः ।
पादौ संस्पृश्य देवस्य बाढमित्यभ्यभाषत ॥११८॥
व्रतं चराम्यहं देव यथोद्दिष्टोऽस्मि वै प्रभो ।
ततो नियुक्तो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत् ॥११९॥
असुराणां हितार्थाय तस्मिञ्छुक्रे गते तदा ।
मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरे ॥१२०॥
तद्बुद्ध्वा नीतिपूर्वं तु राज्यं न्यस्तं तदासुरैः ।
तस्मिञ्छिद्रे तदामर्षाद्देवास्तान् समभिद्रवन् ।
दंशिताः सायुधाः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥१२१॥
दृष्ट्वासुरगणा देवान् प्रगृहीतायुधान् पुनः ।
उत्पेतुः सहसा सर्वे सन्त्रस्तास्ते ततोऽभवन् ॥१२२॥

हे देव ! मैं मन्त्रों को चाहता हूँ बृहस्पति के रहते हुए मेरे पास मन्त्र नहीं हैं मैं ऐसे मन्त्रों को चाहता हूँ जो असुरों को अभय देने वाले हों और देवों का पराभव करने वाले हों ॥११५॥ जब इस तरह से महादेवजी से कहा गया तो महादेव बोले—हे द्विज ? यदि इस प्रकार के मन्त्रों को चाहते हो तो मेरे बताये हुए व्रत का ब्रह्मचारी और पूर्ण समाहित होते हुए आचरण करो ॥११६॥ पूरे एक सहस्र वर्ष तक अवाक् शिरा होते हुए कुण्ड धूप की यदि उपासना करोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा और मुझ से मन्त्रों को प्राप्त कर लोगे ॥११७॥ इस प्रकार से देवों के देव महादेव के द्वारा कहे जाने पर महान् तपस्वी शुक्राचार्य ने महादेव के चरणों का संस्पर्श करके "बहुत अच्छा"—यह कहा था ॥११८॥ मैं देव व्रत का चरण करूँगा हे प्रभो ! जैसा भी आपके द्वारा आदेश किया गया है। इसके पश्चात् महादेव ने इसको धूम कृत कुण्ड धार नियुक्त किया था ॥११९॥ असुरों के हित के लिये तब उस शुक्राचार्य के चले जाने पर मन्त्र के लिए महेश्वर यहाँ ब्रह्मचर्य में निवास करते हैं ॥१२०॥ यह जानकर कि नीति पूर्व में तब असुरों के द्वारा राज्य नहीं न्यस्त किया गया

था। उस छिद्र में इसके समय वाले देवों ने बृहस्पति को अग्रगामी बनाकर और तीक्ष्ण आयुधों को ग्रहण करके उन असुरों को खदेड़ दिया था ॥ १२१ ॥ तब असुरों ने देवों को पुनः आयुध ग्रहण करने वाले देखकर सहसा सब उत्पन्न करने लगे और वे एकदम सन्त्रस्त हो गये थे अर्थात् बहुत ही डर गये थे ॥१२२॥

न्यस्तशस्त्रे जये दत्त आचार्यव्रतमास्थिते ।
सन्त्यज्य समयं देवास्ते सपत्नजिघांसव ॥१२ ॥
अनाचार्यास्तु भद्रं वो विश्वस्तास्तपसि स्थिता ।
चीरवल्काजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहा ॥१२४॥
रणे विजेतु देवान् व न शक्यामः कथञ्चन ।
अयुद्ध न प्रपद्याम शरणं काव्यमातरम् ॥१२५॥
ज्ञापयामस्ततमिदं यावदागमनं गुरो ।
विनिवृत्ते ततः काये योत्स्यामो युधि तान् सुरान् ॥१२६॥
एवमुक्त्वा सुरान् योग्य शरणं काव्यमातरम् ।
प्रापद्यन्त ततो भीतास्तदा चव सदाऽभयम् ॥१२७॥
वत्त तेषान्तु भीताना दत्वा नामभयार्थिनाम् ।
न भेतव्य नभेतव्य भयन्त्यजत दानवा ॥१२८॥
मत्सन्निधौ वतता वो न भीमर्वितुमर्हति ।
भयाच्चाप्यभिपन्नास्तान् दृष्ट्वा देवासुरास्तदा ॥१२६॥
अभिजग्मु प्रसह्य तानविचार्य बलाबलम् ।
तास्तस्तान् वध्यमानाश्च देवदृष्ट्वासुरास्तदा ॥१३०॥
देवी क्रुद्धाब्रवीदेनाननि द्रत्व करोम्यहम् ।
सस्तम्भ शीघ्रं तरम्भादिन्द्र साऽम्यचरत्तत ॥१३१॥

असुरों द्वारा शस्त्रों के त्याग देने पर जय के दे देने पर और आचार्य के व्रत में आस्थित होने पर उन देवताओं ने व्रत का त्याग करके शत्रुओं के मारने की इच्छा करली थी। १२३। आचार्यत्व से हीन आपका कल्याण हो इस

तरह से पूर्ण विध्वस्त तपश्चर्या मे स्थित-चीर और वल्कलो के धारण करने वाले, क्रिया से रहित्त और बिना परिग्रह वाले हम किसी प्रकार से भी देवो को युद्ध मे जीत नही सकेंगे इसलिये अब अयुद्ध के द्वारा काव्य की माता के शरण मे चलें ॥१२५॥ जब तक गुरु का आगमन हो इस मत को ज्ञापित करें। शुक्राचार्य के वापिस लौट आने पर हम उनसे देवो से रण भूमि मे युद्ध करेंगे ॥१२६॥ इस प्रकार से देवों से कहकर योग्य शरण (रक्षक) शुक्राचार्य की माता को शरणागति मे प्राप्त हुए थे उस समय वे एकदम डरे हुए थे। अभय के चाहने वाले भीत उन दैत्यों को उस समय मे ही अभय दिया गया। हे दानवो ! मत डरो-मत डरो, भय का त्याग कर दो ॥१२७-१२८॥ आप लोग मेरे पास रहो, आपको कोई भी भय नही हो सकता है। भय से अभिपन्न उन देवासुरो को उस समय मे देखकर देवी ने ऐसा कहा था ॥१२९॥ बलाबल का विचार न करके इनके ऊपर बल करके अभिगमन किया था। उस समय मे डरे हुए और देवो के द्वारा वृध्यमान होते हुए उन असुरो को देखकर क्रुद्ध होते हुए देवी इनसे बोली मैं अनिन्द्रत्व अर्थात् इन्द्र का सर्वथा अभाव कर दूँगी। उसने शीघ्र ही इन्द्र को सरम्भ से (क्रोध से) स्तम्भित करके अभिचरण किया था ॥१३१॥

तत सस्तम्भित दृष्ट्वा शक्र देवास्तु यूपवत् ।
व्यद्रवन्त ततो भीता दृष्ट्वा शक्र वशीकृतम् ॥१३२॥
गतेषु सुरसघेषु विष्णुरिन्द्रमभाषत ।
माँ त्व प्रविश भद्रन्ते नेष्यामि त्वा सुरेश्वर ॥१३३॥
एवमुक्तस्ततो विष्णु प्रविवेश पुरन्दर ।
विष्णुना रक्षित दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽब्रवत् ॥१३४॥
एष त्वा विष्णुना सार्द्ध दहामि मघवानिव ।
मिषता सर्वभूताना दृश्यता मे तपोबलम् ॥१३५॥
तयाभिभूतौ तौ देवाविन्द्रविष्णू जजल्पतु ।
कथ मुच्येव सहितौ विष्णुरिन्द्रमभाषत ॥१३६॥

इ द्रोऽब्रवीज्ज ह् ह्या ना यावद्यौ न दहेद्विभो ।
विशयेणाभिभूतोऽहमतस्त्वञ्च हि मा चिरम् ॥१२७॥
तत समीक्ष्य ता विष्णु स्त्रीवध क त्तु मास्थित ।
अभिध्याय ततश्चक्रमापन्न सत्वर प्रभु ॥१३८॥
तस्या सत्वरमत्णाया शीघ्रकारी मुरारिहा ।
स्निया विष्णुस्ततो देव्या क्रूर बुद्धा चिकीर्पितम् ।
क्रुद्धस्तदस्त्रमाविद्धय शिरश्चिच्छेद माधव ॥१३६॥

इसक अनन्तर देवी न यूप की भाँति इन्द्र को सस्तम्भित देखकर डरे हुए होकर शक्र को वशीकृत देखकर वे वहाँ से भ ग गये थे ॥१३२॥ देव समूहो क चले जाने पर विष्णु इन्द्र स बोले—हे सुरेश्वर ! तुम मुझ मे प्रवेश कर जाओ—तरा भला होगा—मैं तुमको ले जाऊ गा ॥१३३॥ इस प्रकार से विष्णु क द्वारा कहन पर इन्द्र ने विष्णु मे प्रवेश किया था। विष्णु के द्वारा रक्षित इन्द्र को देखकर देवी ने क्रुद्ध होकर यह वचन कहा ॥१३४॥ यह मैं आज समस्त भूतो के देखते हुए भगवान् की तरह तुमको विष्णु के साथ जलाती हूँ यह मेरा तपोबल देखो ॥१३५॥ उस देवी के द्वारा अभिभूत वे दोनो देव इन्द्र और विष्णु बोले। सहित दोनो कसे छोडें यह विष्णु ने इन्द्र से कहा था ॥१३६ इन्द्र न कहा देवियो ! इसे त्याग दो जब तक हम दोनो दग्ध न होवें। मैं विशेष रूप से अभिभूत हूँ और तुम अधिक मत होओ ॥१३७॥ इसके पश्चात् उस देवी को देखकर भगवान् विष्णु स्त्री का वध करने के लिए अस्थित हो गये थे। यह कहकर इसके उपरान्त प्रभु विष्णु ने शीघ्र चक्र को उठाया था॥ १३८ ॥ सत्वरमाण उससे भी शीघ्रकारी सुर शत्रुओ के नाशक विष्णु ने देवी स्त्री के क्रूर चिकीर्पित को जानकर क्रोध किया और उस अस्त्र को चलाकर माधव ने शिर काट डाला था ॥१३६॥

त दृष्टवा स्त्रीवध घोर चुकोप भृगुरीश्वर ।
ततोऽभिशस्ता भृगुणा विष्णुर्भार्यावधे तदा ॥१४ ॥
यस्मात्ते जानता धर्ममवध्या स्त्री निपूदिता ।
तस्मात्त्व सप्तकृत्वा व मानुदेपु प्रपत्स्यसि ॥१४१॥

तीत करके जल लेकर यह बोले ॥१४३॥ यह विष्णु के द्वारा सत्य से हत तुझे मैं सजीवित करता हूँ। यदि मैंने पूर्ण धर्म का आचरण किया है और धर्म को ज्ञान रखता हूँ तो उस सत्य से जीवित हो जाओ मैं यह सत्य बोलता हूँ ॥१४४॥ सत्य से अभिव्याहृत उसकी देवी उस समय सजीवित होगई थी। फिर इसके पश्चात् उस समय उसका शीतल जल से प्रोक्षण करके 'जीवित रहो'—यह शुक्राचार्य ने कहा था ॥१४५॥ इसके अनन्तर समस्त प्राणीवृन्द सोकर उठी हुई की भाँति उस देवी को देखकर—साधु साधु अर्थात् बहुत अच्छा-अच्छा ऐसी वाणियाँ जो अदृश्य थे उनकी सब दिशाओं से सुनाई दी थी ॥१४६॥ इस प्रकार से भृगु ने उस समय में उस देवी को सञ्जीवित देख कर समस्त प्राणियों के देखते हुए वह कार्य एक अद्भुत की तरह हुआ था ॥१४७॥ असम्भ्रान्त भृगु के द्वारा उनकी पत्नी को सजीवित देखकर काव्य के भय से फिर शान्ति प्राप्त नहीं की थी ॥१४८॥ प्रजागर में इन्द्र ने अपनी पुत्री जयन्ती से कहा। जयन्ती उस मतिमान् पाक शासन की कन्या थी। उसने कहा यह शुक्र इन्द्र के अभाव के लिये दारुण तप कर रहे हैं। हे पुत्रि! इस कारण से मैं बहुत ही अधिक व्याकुल हूँ। उस धृतिमान् ने यह पक्का इरादा कर लिया है ॥१५०॥

गच्छ सम्भावयस्वैनं श्रमापनयनैः शुभैः ।
तैस्तैर्मनोनुकूलैश्च ह्युपचारैरतन्द्रिता ॥१५१॥
देवी सा हीन्द्रदुहिता जयन्ती शुभचारिणी ।
युक्तध्यानश्च शाम्यं त दुर्बलं पतितमास्थितम् ॥१५२॥
पित्रा यथोक्तं काव्यं सा काव्ये कृतवती सदा ।
गीर्भिश्चैवानुकूलाभिः स्तुवती वल्गुभाषिणी ॥१५३॥
गात्रसंवाहनैः काले सेवमाना सुखावहैः ।
शुश्रूषन्त्यनुकूला च उवास बहुला समाः ॥१५४॥
पूर्णे धूमव्रते चापि घोरे वर्षसहस्रिके ।
वरेण च्छन्दयामास काव्यं प्रीतोऽभवत्तदा ॥१५५॥

एव व्रुवस्त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित् ।
तस्मात्त्व तपसा बुद्धया श्रुतेन च वलेन च ॥१५६॥
तेजसा चापि विबुधान् सर्वानभिभविष्यसि ।
यच्च किञ्चिन्मम ब्रह्मन् विद्यते भृगुनन्दन ॥१५७॥
साङ्गञ्च सरहस्यञ्च यज्ञोपनिषदान्तथा ।
प्रतिभास्यति ते सर्व तच्चाद्यन्त न कस्यचित् ॥१५८॥

सो तुम वहाँ जाओ और इसको शुभ श्रम के अपनयनो के द्वारा सम्मानित करो। उन-उन उसके मन के अनुकूल उपचारो से उसे प्रसन्न करो किन्तु इस कार्य मे अतन्द्रित अर्थात् आलस्य रहित होकर लग जाना ॥ १५१ ॥ वह देवी इन्द्र की दुहिता जयन्ती शुभ चारिणी थी। युक्त ध्यान वाला-दास्य-दुर्बल-धृति मे आस्थित उस काव्य का जैसा पिता के द्वारा कहा गया था उसने काव्य के विषय मे उस समय किया। अनुकूल वाणियो के द्वारा वल्गुभाषिणी उसने उसकी स्तुति की थी ॥१५२-१५३॥ सुख प्रदान करने वाले गात्र सवाहनो के द्वारा समय पर सेवा करती हुई और शुश्रूषा करती हुई तथा अनुकूल रहती हुई बहुत वर्षों तक उसने वहाँ निवास किया ॥ १५४ ॥ एक सहस्र वर्ष वाले परम घोर धूम्रव्रत के पूर्ण हो जाने पर तब महादेव ने प्रसन्न होकर काव्य को वरदान से समन्वित किया था ॥१५५॥ वरदान देने के समय मे ऐसा कहते हुए कि यह व्रत तुझ एक ने किया है अन्य किसी ने पूर्ण नहीं किया है। इसलिए तू तप, बुद्धि, श्रुत, बल और तेज से भी समस्त देवो को अभिभूत कर देगा और जो भी कुछ हे भृगुनन्दन ! हे ब्रह्मन् ! मेरे पास है साङ्ग और रहस्य के सहित यह सब तथा यज्ञोपनिषद् तुझे प्रतिभासित हो जाँयगे और वह आदि से अन्ततक किसी को भी नहीं होते है ॥१५६।१५७।१५८॥

सर्वाभिभावी तेन त्व द्विजश्रेष्ठो भविष्यसि ।
एव दत्वा वरास्तस्मै भार्गवाय पुन पुन ॥१५९॥
अजेयत्व धनेशत्वमवध्यत्व च वै ददौ ।
एतान् लब्ध्वा वरान् काव्य सम्प्रहृष्टतनूरुह ॥१६०॥

हर्षात् प्रादुर्बभौ तस्य देवस्तोत्र महेश्वरम् ।
तदा तिर्यक्स्थितस्तस्तेव तुष्टुवे नीललोहितम् ॥१६१
नमोऽस्तु शितिकण्ठाय सुरापाय सुवचसे ।
रिरिह्मणाय लोपाय वत्सराय जगत्पते ॥१६२
कपर्दिने ह्य ूर्द्ध रोम्णे हयाय करणाय च ।
संस्कृताय सुतीर्थाय देवदेवाय रहसे ॥१६३
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
वसुरेताय रुद्राय तपसे चीरवाससे ॥१६४
ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च ॥१६५
कवये राजवृद्धाय तक्षकक्रीडनाय च ।
गिरिशायार्द्धनेत्राय यतिने जाम्बवाय च ।
सुवृत्ताय सुहस्ताय धन्विने भार्गवाय च ॥१६६

इससे तू सबको अभिभूत करने वाला विजयश्व हो जायगा । इस प्रकार से मानव के लिये बार-बार वरों को देकर अजेयत्व-धनेशत्व और अवध्यत्व का भी वरदान दे दिया था । इन समस्त वरों को प्राप्त कर काव्य सम्प्रहृष्ट तनूरुहों वाला अर्थात् अत्यन्त प्रसन्नता से प्रफुल्लित होगये ॥१५६ १६०॥ हर्ष के अतिरेक होने से उसके हृदय में महेश्वर हेमस्तोत्र का प्रादुर्भाव हुआ । तब तिरछा स्थित होकर इस प्रकार से नीललोहित की स्तुति की थी ॥१६१॥ सुरापान करने वाले सुन्दर वचस वाले तथा शितिकण्ठ से युक्त के लिये नमस्कार है। रिरिह्मण-लोप-वत्सर और जगत् के पति के लिये नमस्कार है ॥१६२॥ कपर्दी-उद्ध रोम वाले-हय-और करण के लिये नमस्कार है । संस्कृत-सुतीर्थ-रह और देवों के भी देव के लिये नमस्कार है ॥१६३॥ उष्णीषी सुवक्त्र वाले-सहस्र नेत्रों वाले मीढुष-वसुरेता-तप-चीरों के वस्त्र धारण करने वाले रुद्र के लिये नमस्कार है ॥१६४॥ ह्रस्व-मुक्त केशों वाले-सेनानी-रोहित के लिये नमस्कार है ॥१६५॥ कवि-राजवृद्ध-तक्षक के खिलौने वाल-गिरिश-अर्द्धनेत्र-यति-जाम्बव के लिये नमस्कार है ॥१६६॥

सहस्रबाहवे चैव सहस्रामलचक्षुषे ।
सहस्रकुक्षये चैव सहस्रचरणाय च ॥१६७
सहस्रशिरसे चैव बहुरूपाय वेधसे ।
भवाय विश्वरूपाय श्वेताय पुरुषाय च ॥१६८
निषङ्गिणे कवचिने सूक्ष्माय क्षपणाय च ।
ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च ॥१६९
बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारुणाय च ।
महादेवाय शर्वाय विश्वरूपशिवाय च ॥१७०
हिरण्याय च शिष्टाय श्रेष्ठाय मध्यमाय च ।
पिनाकिने चेषुमते चित्राय रोहिताय च ॥१७१
दुन्दुभ्यायैकपादाय अर्हाय बुद्धये तथा ।
मृगव्याधाय सर्पाय स्थाणवे भीषणाय च ॥१७२
बहुरूपाय चोग्राय त्रिनेत्रायेश्वराय च ।
कपिलायैकवीराय मृत्यवे त्र्यम्बकाय च ॥१७३
वास्तोष्पते पिनाकाय शङ्कराय शिवाय च ।
आरण्याय गुहस्थाय यतिने ब्रह्मचारिणे ॥१७४

सहस्र बाहुओं वाले–सहस्र निर्मल नेत्रों वाले–सहस्र कुक्षि और सहस्र चरणों वाले के लिये नमस्कार है ॥१६७॥ सहस्र शिर वाले–बहुत से रूप वाले वेधा–भव–विश्वरूप–श्वेत और पुरुष के लिये नमस्कार है ॥१६८॥ निषङ्गी–कवची–सूक्ष्म–क्षपण–ताम्र–भीम–उग्र और शिव के लिये नमस्कार है ॥१६९॥ बभ्रु–पिशाङ्ग–पिङ्गल–अरुण–महादेव–शर्व और विश्वरूप शिव के लिये नमस्कार है ॥१७०॥ हिरण्य–शिष्ट–श्रेष्ठ–मध्यम–पिनाकी–इषुमान्–चित्र और रोहित के लिये नमस्कार है ॥१७१॥ दुन्दुभ्य–एकपाद–अर्हबुद्धि–मृगव्याध–सर्प–स्थाणु और भीषण के लिये नमस्कार है ॥१७२॥ बहुरूप–उग्र–त्रिनेत्र–ईश्वर–कपिल–एकवीर–मृत्यु और त्र्यम्बक के लिये नमस्कार है ॥१७३॥ वास्तोष्पति–पिनाक–शङ्कर–शिव–आरण्य–गुहा में स्थित रहने वाले–यति और ब्रह्मचारी के लिये नमस्कार है ॥१७४॥

साङ्ख्याय चैव योगाय ध्यानिने दीक्षिताय च ।
अन्तर्हिताय शर्वाय माग्याय मालिने तथा ॥१७५
बुद्धाय चैव शुद्धाय मुक्तये केवलाय च ।
रोधने चेकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये ॥१७६
चतुष्पादाय मेध्याय धर्मिणे शीघ्रगाय च ।
शिखण्डिने कपालाय दंष्ट्रिणे विश्वमेधसे ॥१७७
अप्रतीघाताय दीप्ताय भास्कराय सुमेधसे ।
क्रूराय विकृतायव बीभत्साय शिवाय च ॥१७८
सौम्याय चैव पुण्याय धार्मिकाय शुभाय च ।
अवध्याय मृताङ्गाय नित्याय शाश्वताय च ॥१७९
साद्याय शरभायैव शूलिने च त्रिचक्षुषे ।
सोमपायाज्यपायव धूमपायोष्मपाय च ॥१८०
शुचये रेरिहाणाय सद्योजाताय मृत्यवे ।
पिशिताशाय सर्वाय मेघाय वद्युताय च ॥१८१
व्याश्रिताय वरिष्ठाय भास्तायान्तरिक्षये ।
क्षमाय सहमानाय सत्याय तपनाय च ॥१८२
त्रिपुरघ्नाय दीप्ताय चक्राय रोमशाय च ।
तिग्मायुधाय मेध्याय सिद्धाय च पुलस्तये ॥१८३

साङ्ख्य–योग–ध्यानी–दीक्षित–अन्तर्हित–शर्व–मान्य तथा माली के लिये नमस्कार है ॥१७५॥ बुद्ध–शुद्ध–मुक्ति–केवल–रोधा–चेकितान–ब्रह्मिष्ठ और महर्षि के लिये नमस्कार है ॥१७६॥ चतुष्पाद–मेध्य–धर्मी–शीघ्र गमन करने वाले–शिखण्डी–कपाल–दंष्ट्री और विश्वमेधा के लिये नमस्कार है ॥१७७॥ अप्रतीघात–दीप्त–भास्कर–सुमेधा–क्रूर विकृत–बीभत्स और शिवके लिये नमस्कार है ॥१७८॥ सौम्य पुण्य धार्मिक–शुभ–अवध्य–मृताङ्ग–नित्य और शाश्वत के लिये नमस्कार है ॥१७९॥ साद्य–शरभ–शूली–तीन नेत्रों वाले–सोमपान करने वाले–घृतपान करने वाले–धूमप–ऊष्मप के लिये नमस्कार है ॥१८०॥ शुचि–रेरिहाणा–सद्योजात–मृत्यु–मांस का अशन करने वाले–सर्व–मेघ और वैद्युत के

लिये नमस्कार है ॥१८१॥ व्याश्रित–श्रनिग्र–भाग्स–अन्तरिक्षि–क्षम–महमान–सत्य श्रौर तपन के लिये नमस्कार है ॥१८२॥ त्रिपुर के नाश करने वाले–दीप्त-चक्र–रोमश–तिग्मआयुध वाले–मेघ्य–मिद्ध श्रौर पुलस्ति के लिये नमस्वार है ॥ १८३ ॥

रोचमानाय खण्डाय स्फीताय ऋषभाय च ।
भोगिने पुञ्जमानाय शान्तायॅवोर्द्ध रेतसे ॥१८४
अघघ्नाय मखघ्नाय मृत्यवे यज्ञियाय च ।
कृशानवे प्रचेताय वह्नये किशलाय च ॥१८५
सिकत्याय प्रसन्नाय वरेण्यायॅव चक्षुषे ।
क्षिप्रगवे सुधन्वाय प्रमेघ्याय पिवाय च ॥१८६
रक्षोघ्नाय पशुघ्नाय विघ्नाय शयनाय च ।
विभ्रान्ताय महन्ताय अन्तये दुर्गमाय च ॥१८७
दक्षाय च जघन्याय लोकानामीश्वराय च ।
अनामयाय चोर्द्धाय सहत्याधिष्ठिताय च ॥१८८
हिरण्यवाहवे चैव सत्याय शमनाय च ।
असिकल्याय माघाय रीरिण्यायॅकचक्षुषे ॥१८९
श्रेष्ठाय वामदेवाय ईशानाय च धीमते ।
महाकल्पाय दीप्ताय रोदनाय हसाय च ॥१९०
वृतधन्वने कवचिने रथिने च वरूथिने ।
भृगुनाथाय शुक्राय वह्निरिष्टाय धीमते ॥१९१
अधाय अघशसाय विप्रियाय प्रियाय च ।
दिग्वास कृत्तिवासाय भगघ्नाय नमोऽस्तु ते ॥१९२

रोचमान–खण्ड–स्फीत–ऋषभ–भोगी–पुञ्जमान–शान्त — ऊर्द्ध रेता–अघों के नाशक–मख के नाश करने वाले–मृत्यु–यज्ञिय–कृशानु–प्रचेत–वह्नि श्रौर किशलय के लिये नमस्कार है ॥१८४-१८५॥ सिकत्य–प्रसन्न–वरेण्य चक्षु–क्षिप्रगु–सुधन्वा–प्रमेघ्य–पिव–रक्षोघ्न–पशुओं के हनन करने वाले–विघ्न–शयन विभ्रान्त–महन्त–अन्ति श्रौर दुर्गम के लिये नमस्कार है ॥१८६-१८७॥ दक्ष–

तत सोऽन्तर्हिते तस्मिन् दवेशानुचरे तदा ।
तिष्ठन्ती प्राञ्जलिभू त्वा जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥३
कस्य त्व सुभग का वा दु खिते मयि दु खिता ।
महता तपसा युक्त किमथ मान्जुगोपसि ॥४
अनया सतत भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च ।
स्नेहेन चव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि ॥५
त्रिमिच्छसि वरारोहे कस्ते काम समृध्यताम् ।
त ते सपूरयाम्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥६
एवमुक्ताऽब्रवीदेन तपसा ज्ञातुमर्हसि ।
चिकीर्पित मे ब्रह्मिष्ठ त्व हि वेत्थ यथातथम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से देवो के ईश नीललोहित ईशान की आराधना करके उसके लिये ब्रह्म इस भावसे प्रणत हुआ था और हाथ जोड़कर बोला ॥१॥ महादेव ने परम प्रीति युक्त होकर अपने हाथ से शुक्राचार्य के शरीर का स्पर्श किया था और पूर्ण रूप से दर्शन देकर फिर वह वहाँ पर ही अन्तर्धान होगये थे ॥२॥ इसके पश्चात् देवेशानुचर उसके अन्तर्हित होजाने पर वह सामने खड़ी हुई जयन्ती से प्राञ्जलि होकर यह बोला—॥३॥ हे सुभगे ! तू किसी की है और कौन है अथवा दुःखित होरही है ? महान् तपसे युक्त मुझको तू किस प्रयोजन के लिये रक्षा करती है ? ॥४॥ इस तेरी निरन्तर होने वाली भक्ति से–प्रश्रय–दमन और स्नेह से हे सुश्रोणि ! हे वरवर्णिनि ! मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ ॥५॥ हे वरारोहे ! तू क्या चाहती है और तेरी क्या कामना बढ़ी हुई है ? मैं तेरे उस मनोरथ को पूर्ण करूँगा चाहे भले ही वह कैसा भी दुर्लभ क्यों न हो ॥६॥ जब इस प्रकार से वह जयन्ती कही गई तो उसने शुक्र से कहा आप मेरे मनोरथ को तपोबल से जानने के योग्य होते हैं। हे ब्रह्मिष्ठ ! आप मेरे चिकीर्षित को ठीक ठीक जानते हैं ॥७॥

एवमुक्तोऽब्रवीदेना दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ।
माहेन्द्री त्व वरारोहे मत्कृतार्थमिहागता ॥८

मया सह त्व सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि ।
अदृश्य सर्वभूतैस्तु सप्रयोगमिहेच्छसि ॥६
देवेन्द्रानलवर्णाभे वरारोहे सुलोचने ।
एम वृणीश्व काम ते मत्तो वै वल्गुभाषिणि ॥१०
एव भवतु गच्छामो गृहान् वै मत्तकाशिनि ।
ततः स्वगृहमागम्य जयन्त्या सहित प्रभु ॥११
स तया सह सद्ध्या दश वर्षाणि भार्गव ।
अदृश्य सर्वभूताना मायया सवृतस्तदा ॥१२
कृतार्थमागत दृष्ट्वा काव्य सर्वे दिते सुता ।
अभिजग्मुर्गृह तस्य मुदितास्ते दिदृक्षव ॥१३
गता यदा न पश्यन्तो जयन्त्या सवृत गुरुम् ।
दाक्षिण्य तस्य तद्बुध्वा प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥१४

जब जयन्ती ने इस तरह शुक्र से कहा तो उसने दिव्य चक्षु से देख कर इससे कहा—हे वरारोहे ! तू महेन्द्र की पुत्री है और मेरे हित के लिये ही यहाँ पर आई है ॥८॥ हे भामिनी ! हे सुश्रोणि ! तू मेरे साथ, जोकि समस्त प्राणियों से अदृश्य रहना, दश वर्ष तक सम्प्र योग की इच्छा करती है ॥६॥ हे देवेन्द्र ! अनल प्रभो ! हे वरारोहे ! हे सुन्दर नेत्रों वाली ! हे वल्गुभाषण करने वाली ! सब ही तू मुझसे इस कामना को प्राप्त कर ॥१०॥ हे मत्तकाशिनी ! ऐसा होवे अवगृहों को चले । इसके अनन्तर अपने घर में आकर प्रभु शुक्र जयन्ती के साथ रहे ॥११॥ फिर वह उस देवी के साथ भार्गव दश वर्ष तक निवास कर रहे थे और उस समय वह समस्त प्राणियों से अदृश्य तथा माया में सवृत रहते थे ॥१२॥ समस्त दिति के पुत्र दैत्य सफल होकर आये हुए काव्य को देखकर उसके घर में देखने की इच्छा रखते हुए परम प्रसन्न होकर गये थे ॥१३॥ वे सब यहाँ गये तो जयन्ती के द्वारा सवृत गुरु को उन्होंने जब नहीं देखा था तो उनके उस दाक्षिण्य को जान कर जैसे ही आये थे वापिस चले गये ॥१४।

बृहस्पतिस्तु सरुद्ध ज्ञात्वा काव्य चकार ह ।
पिप्रर्थे दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया ॥१५

बुद्ध्वा तदन्तर सोऽथ दत्यानामिव चोदित ।
काव्यस्य रूपमास्थाय सोऽसुरा समभाषत ॥१६
तत समागतान् दृष्ट्वा बृहस्पतिरुवाच तान् ।
स्वागत मम याज्याना सम्प्राप्तोऽस्मि हिताय च ॥१७
अह वोऽध्यापयिष्यामि प्राप्ता विद्या मया हि सा ।
ततस्ते हृष्टमनसो विद्यार्थमुपपेदिरे ॥१८
पूर्णकामस्तदा तस्मिन् समये दशवार्षिके ।
ययौ च समकाल स सद्योत्पन्नमतिस्तदा ॥१९
समयान्ते देवयानी सद्यो जाता सुता तदा ।
बुद्धि चक्र ततश्चापि याज्याना प्रत्यवेक्षणे ॥२०

बृहस्पति ने तो यह जान लिया था कि हित की कामना वाली जयन्ती के द्वारा पिता के लिए काव्य को सरुद्ध किया गया है ॥१५॥ इसके अनन्तर वह जानकर दत्यो की भाँति प्रेरित होकर काव्य के स्वरूप को धारण कर असुरो से बोला ॥१६॥ फिर आये हुए उनसे बृहस्पति ने कहा—मेरे याज्य अर्थात् यजमानो का स्वागत है। मैं तुम्हारे सबके हित सम्पादन करने के लिये यहाँ आगया हूँ ॥१७॥ मैंने जो वहाँ विद्या प्राप्त की है उसे आप लोगो को सबको बताऊँगा। इसके प्रसन्न चित्त वाले वे सब असुर विद्या ग्रहण करने के लिये उपस्थित हुए थे ॥१८॥ उस समय मे दश वार्षिक समय मे पूर्ण काम सद्योत्पन्न मति वाला समकाल ही मे वहाँ गया था ॥१९॥ समय के अन्त मे तब देवयानी सुता सद्य उत्पन्न हुई और इसके पश्चात् याज्यो के प्रत्यवेक्षण करने के काय म अपनी बुद्धि की थी ॥२०॥

देवि गच्छामहे द्रष्टु तव याज्यान् शुचिस्मिते ।
विभ्रान्तप्रक्षिते साध्वि त्रिवर्णायतलोचने ॥२१
एवमुक्ताऽब्रवीद्देवी भज भक्तान् महाव्रत ।
एष ब्रह्मन् सता धर्मो न धर्म लोपयामि ते ॥२२
तता गत्वासुरान् दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता ।
वञ्चितान् का यरूपेण वेधसाऽमुग्मब्रवीत् ॥२३

काव्य मा तात जानीध्व एष ह्याङ्गिरसो भुवि ।
वञ्चिता वत यूय वै मयि यक्ते तु दानवा ।।२४
श्रुत्वा तथा ब्रुवाणन्त सम्भ्रान्ता दितिजास्तत ।
प्रेक्षन्ते स्म ह्यु भौ तत्र सितासितशुचिस्मितौ ।।२५
सम्प्रमूढा स्थिता सर्वे प्रापद्यन्त न किञ्चन ।
ततस्तेषु प्रमूढेषु काव्यस्तान् पुनरब्रवीत् ।।२६
आचार्यो वो ह्यहं काव्यो देवाचार्योऽयमङ्गिरा ।
अनुगच्छत मा सर्वे त्यजतैनं बृहस्पतिम् ।।२७

श्री शुक्र ने कहा—हे देवि ! हे शुचिस्मित वाली ! तेरे बाज्यो को देखने के लिये अब जाते हैं हे विभ्रान्त प्रेक्षित वाली ! हे साध्वि ! हे त्रिवर्णा-यत सोचने हम चलते हैं ।।२१।। जब इस प्रकार देवी से कहा गया तो वह बोली हे महाव्रत ! अपने भक्तों को देखो । हे ब्रह्मन् ! यह सत्पुरुषो का धर्म होता है और मैं आपके धर्म का लोप नही करूँगी ।।२२।। सूतजी ने कहा—इसके पश्चात् शुक्राचार्य ने जाकर असुरो को देखा जोकि परम धीमान् देवो के आचार्य बृहस्पति के द्वारा वञ्चित किये गये थे और काव्य के स्वरूप को धारण करके यह प्रवञ्चना की थी । तब वेधा असुरो से बोले ।।२३।। हे तात ! मुझे ही यथार्थ म काव्य समझो यह तो भूमि मे अंगिरा का पुत्र बृहस्पति है । हे दानवो ! आप लोग समय मेरे रहते हुए वञ्चित किये गये हो ।।२४।। उस तरह से बोलते हुए उनका वचन सुनकर उस समय मे दिति के पुत्र सब बहुत ही भ्रान्ति से पूर्ण होगये थे । तब वे वहाँ उस समय मे उन दोनो को जो सित एव असित शुचिस्मित वाले थे उनको देख रहे थे ।।२५।। वे सब सम्प्रमूढ होते हुए स्थित होगये और किसी निर्णय पर नही प्राप्त हुए । इसके अनन्तर उनके प्रकृष्ट रूप से मूढ हो जाने पर काव्य ने उनसे पुन कहा ।।२६।। आपका आचार्य मैं हूँ और यह अङ्गिरा देवाचार्य है । आप सब मेरा अनुगमन करो और इस बृहस्पति का त्याग कर दो ।।२७।।

एवमुक्तासुरा सर्वे तावुभौ समवैक्षत ।
तदाऽसुरा विशेषन्तु न व्यजानस्तयोर्द्वयो ।।२८

बृहस्पतिरुवाचतानसम्भ्रान्तोऽप्यमङ्गिरा ।
काव्योऽहं यो गुरुर्दैत्या मद्रूपोऽयं बृहस्पति ॥२९
स मोहयति रूपेण मामकेनय बोऽसुरा ।
श्रुत्वा तस्य ततस्ते व समभ्यायवचोऽब्रुवन् ॥३०
अयमस्मो दश वर्षाणि सततं शास्ति व प्रभु ।
एष व गुरुरस्माकमन्तरेप्सुरय द्विज ॥३१
ततस्ते दानवा सर्वे प्रणिपत्याभिवाद्य च ।
वचन जगृहुस्तस्य चिराभ्यासेन मोहिता ॥३२
ऊचुस्तमसुरा सर्वे क्रुद्धा सरक्तलोचना ।
अयह गुरुर्हितेऽस्माक गच्छ त्व नासि नो गुरु ॥३३
भार्गवोऽङ्गिरसो वाय भवत्वेवष नो गुरु ।
स्थिता वय निदेशेऽस्य गच्छ त्व साधु मा चिरम् ॥३४
एवमुक्त्वासुरा सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम् ।
यदा न प्रतिपद्यन्ते तेनोक्त तन्महद्धितम् ॥३५

इस तरह से कहे गये सब असुर उन दोनो को देखने लगे । तब असुरो ने उन दोनो मे विशेषता कुछ भी नही जानी थी ॥२८॥ बृहस्पति ने इन असुरो से कहा—यह अंगिरा है और मेरा स्वरूप इसने धारण कर लिया है। ऐसा इसे बृहस्पति समझो । हे दैत्यो ! जो तुम्हारा गुरु है वह मैं ही काव्य हूँ ॥२९॥ हे असुरो ! यह वह है जो मेरे रूप से आपको मोहित कर रहा है । इसके पश्चात् उन्होने श्रवण कर और उसके अर्थ वचन को भली भाँति विचार कर वे बोले ॥३० ॥ इसने दश वर्ष तक निरन्तर प्रभु ने हमको शिक्षा दी है । इसी हेतु से यही हमारा गुरु है और यह द्विज अन्तरेप्सु है ॥३१॥ इसके अनन्तर वे समस्त दानव प्रणिपात एवं अभिवादन करके चिरकाल से मोहित होते हुए उसके अर्थात् बृहस्पति के वचन को ग्रहण करने लगे थे ॥३२॥ समस्त असुर लाल नेत्रो वाले अत्यन्त क्रुद्ध होते हुए उससे बोले—यह हमारे हित मे गुरु है तुम चले जाओ तुम हमारे गुरु नही हो ॥३३॥ चाहे भार्गव हो अथवा आङ्गिरस हो हमारा यह ही गुरु है । हम इनके ही निदेश मे ही स्थित हैं तुम जाओ अब

भलाई इसी मे है कि अपने चले जाने मे विलम्ब मत करो ॥३४॥ इस प्रकार शुक्र से समस्त असुरों ने कहकर वे बृहस्पति को ही प्राप्त हुए थे। वे प्रतिपन्न नहीं होते हैं जब उसने उनका महान् हित कहा था ॥३५॥

चुकोप भार्गवस्तेषामवलेपेन वै तदा।
बोधिता हि मया यस्मान्न मा भजत दानवा ॥३६
तस्मात् प्रनष्ट सज्ञा वै पराभवङ्गमिष्यथ।
इति व्याहृत्य तान् काव्यो जगामाथ यथागतम् ॥३७
ज्ञात्वाऽभिशस्तानसुरान् काव्येन तु बृहस्पतिः।
कृतार्थः स तदा हृष्ट स्व रूप प्रत्यपद्यत।
बुद्ध्वाऽसुरास्तदा भ्रष्टान् कृतार्थोऽन्तरधीयत ॥३८
तत प्रनष्टे तस्मिंस्ते विभ्रान्ता दानवास्तदा।
अहो विप्रवञ्चिता स्मेह परस्परमथाब्रुवन् ॥३९
पृष्ठतो विमुखाश्चैव ताडिता वेधसा वयम्।
दग्धाश्चैववोपयोगाश्च स्वेस्वे चार्थेषु मायया ॥४०
ततोऽसुरा परित्रस्ता देवेभ्यस्त्वरिता ययु।
प्रह्लादमग्रत कृत्वा काव्यस्यानुगम पुन. ॥४१

तब तो भार्गव मद से उन असुरो पर अत्यन्त क्रोधित हुए। मैंने उन्हे खूब समझाया तो भी दानव मुझको नहीं भजते हैं ॥३६॥ इस कारण से सज्ञा नष्ट करने वाले निसन्देह वे पराभव को प्राप्त होंगे। काव्य ने इस तरह ये वचन उन असुरों से कहे और जैसे ही वह आये थे चले गये ॥३७॥ काव्य के द्वारा अभिशस्त असुरो को बृहस्पति ने जानकर अपने आपको परम सफल समझते हुए अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने ही स्वरूप को प्राप्त हुए। तब असुरों को भ्रष्ट जानकर कृतार्थ हुए अन्तर्धान होगये थे ॥३८॥ इसके बाद उसके प्रनष्ट होने पर उस समय दानव विभ्रान्त होगये और वे आपस मे कहने लगे कि हम लोगो को धिक्कार है आज वंचित होगये है ॥३९॥ पीछे से हम विमुख होगये और वेधा के द्वारा हम ताडित हुए है। और अपने-अपने उपयोग से हम अर्थों मे माया से

बृहस्पतिरुवाचतानसम्भ्रान्ताश्यमङ्गिरा ।
काव्योऽहं यो गुरुर्देत्या मद्र पोऽयं बृहस्पति ॥२६
स मोहयति रूपेण मामकेनैष वोऽसुरा ।
श्रुत्वा तस्य ततस्ते व समभ्याथवचाऽब्रुवन् ॥३
अयमो दश वर्षाणि सततं नास्ति व प्रभु ।
एप व गुरुरस्माकमन्तरेप्सुरयं द्विज ॥३१
ततस्ते दानवा सर्वे प्रणिपत्याभिवाद्य च ।
वचन जगृहुस्तस्य चिराभ्यासेन माहिता ॥३२
ऊचुस्तमसुरा सर्वे क्रुद्धा सरक्तलोचना ।
अयड गुर्हितेऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरु ॥३३
भार्गवोऽङ्गिरसो वाथ भवत्वेवप नो गुरु ।
स्थिता वय निदेशेऽस्य गच्छ त्व साधु मा चिरम् ॥३४
एवमुक्त्वासुरा सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम् ।
यदा न प्रतिपद्यन्ते तेनोक्त त महद्धितम् ॥३५

इस तरह से कहे गये सब असुर उन दोनों को देखने लगे। तब असुरों ने उन दोनों मे विशेषता कुछ भी नहीं जानी थी ॥२८॥ बृहस्पति ने इन असुरों से कहा—यह अंगिरा है और मेरा स्वरूप इसने धारण कर लिया है। ऐसा इसे बृहस्पति समझो। हे दैत्यो ! जो तुम्हारा गुरु है वह मैं ही काव्य हूँ ॥२६॥ हे असुरो ! यह वह है जो मेरे रूप से आपको मोहित कर रहा है। इसके पश्चात् उन्होने श्रवण कर और उसके अर्थ वचन को भली भाँति विचार कर वे बोले ॥३०॥ इसने दश वर्ष तक निरन्तर प्रभु ने हमको शिक्षा दी है। इसी हेतु से यही हमारा गुरु है और यह द्विज अन्तरेप्सु है ॥३१॥ इसके अनन्तर वे समस्त दानव प्रणिपात एवं अभिवादन करके चिरकाल से मोहित होते हुए उसके अर्थात् बृहस्पति के वचन को ग्रहण करने लगे थे ॥३२॥ समस्त असुर लाल नेत्रों वाले अत्यन्त क्रुद्ध होते हुए उससे बोले—यह हमारे हित में गुरु है तुम चले जाओ तुम हमारे गुरु नहीं हो ॥३३॥ चाहे भार्गव हो अथवा आङ्गिरस हो हमारा यह ही गुरु है। हम इनके ही निदेश मे ही स्थित है तुम जाओ अब

भलाई इसी में है कि अपने चले जाने मे विलम्ब मत करो ।।३४।। इस प्रकार शुक्र से समस्त असुरों ने कहकर वे बृहस्पति को ही प्राप्त हुए थे । वे प्रतिपन्न नहीं होते है जब उसने उनका महान् हित कहा था ।।३५।।

चुकोप भार्गवस्तेषामवलेपेन वै तदा ।
बोधिता हि मया यस्मान्न मा भजत दानवा ।।३६
तस्माद् प्रनष्ट सञ्ज्ञा वै पराभवङ्गमिष्यथ ।
इति व्याहृत्य तान् काव्यो जगामाथ यथागतम् ।।३७
ज्ञात्वाऽभिशस्तानसुरान् काव्येन तु बृहस्पतिः ।
कृतार्थ. स तदा हृष्ट स्व रूप प्रत्यपद्यत ।
बुद्ध्वाऽसुरास्तदा भ्रष्टान् कृतार्थोऽन्तरधीयत ।।३८
तत प्रनष्टे तस्मिंस्ते विभ्रान्ता दानवास्तदा ।
अहो धिग्वञ्चिता स्मेह परस्परमथाब्रुवन् ।।३९
पृष्ठतो विमुखाश्चैव ताडिता वेधसा वयम् ।
दग्धाश्चैवोपयोगाच्च स्वेस्वे चार्थेषु मायया ।।४०
ततोऽसुरा परित्रस्ता देवेभ्यस्त्वरिता ययु ।
प्रह्लादमग्रत कृत्वा काव्यस्यानुगम पुन. ।।४१

तब तो भार्गव गर्व से उन असुरों पर अत्यन्त क्रोधित हुए । मैंने उन्हे खूब समझाया तो भी दानव मुझको नहीं भजते है ।।३६।। इस कारण से सञ्ज्ञा नष्ट करने वाले निस्सन्देह वे पराभव को प्राप्त होंगे । काव्य ने इस तरह ये वचन उन असुरों से कहे और जैसे ही वह आये थे चले गये ।।३७।। काव्य के द्वारा अभिशस्त असुरों को बृहस्पति ने जानकर अपने आपको परम सफल समझते हुए अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने ही स्वरूप को प्राप्त हुए । तब असुरो को भ्रष्ट जानकर कृतार्थ हुए अन्तर्धान होगये थे ।।३८।। इसके बाद उसके प्रनष्ट होने पर उस समय दानव विभ्रान्त होगये और वे आपस मे कहने लगे कि हम लोगो को धिक्कार है आज वञ्चित होगये है ।।३९।। पीछे से हम विमुख होगये और वेधा के द्वारा हम ताडित हुए है । और अपने-अपने उपयोग से हम अर्थों मे माया से

दग्ध होगये हैं ॥४ ॥ इसके अनन्तर देवों से परित्यक्त असुर प्रह्लाद को आगे करके शीघ्रता वाले होकर काव्य के अनुगम को पुनः गये ॥४१॥

तत काव्य समासाद्य अभितस्थु रवाङ मुखा ।
तानागतान् पुनद्दृष्ट्वा काव्यो याज्यानुवाच ह ।४२
मयापि बोधिता काले यतो मा नाभिनन्दथ ।
ततस्तेनावलेपेन गता यूय पराभवम् ॥४३
प्रह्लादस्तमथोवाच मान त्व त्यज भार्गव ।
स्वान् याज्यान् भजमानाश्च भक्ताश्च व विशेषत ॥४४
त्वया पृष्टा वय तेन देवाचार्येण मोहिता ।
भक्तानर्हसि नस्त्रातु ज्ञात्वा दीर्घेण चक्षुषा ॥४५
यदि नस्त्व न कुरुषे प्रसाद भृगुनन्दन ।
अपध्यातास्त्वया ह्यद्य प्रवेक्ष्यामो रसातलम् ॥४६
ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्व कारुण्येनानुकम्पया ।
एवमुक्तोऽनुनीत स स्तुत कोप न्यवच्छत ॥४७
उवाचेदन भेतव्य न गन्तव्य रसातलम् ।
अवश्यम्भावी ह्यर्थोऽय प्राप्तो वो मयि जाग्रति ॥४८

इसके अनन्तर काव्य के समीप मे जाकर नीचे की ओर मुख वाले होते हुए बैठ गये। उन याज्यों को फिर आये हुए देखकर काव्य उनसे बोले ॥४२॥ मेरे द्वारा भली भाँति समझाये हुए भी तुम लोगो ने समय पर जिस कारण से अभिनन्दन नही किया था उसी हेतु के फल से तुम अभिमान के वश होकर पराभव को प्राप्त हुए हो ॥४३॥ इसके उपरान्त प्रह्लाद ने उनसे कहा—हे भार्गव ! आप अब मान को परित्याग कर दीजिएगा और अपने याज्यो को जो भजमान है और विशेष रूप ो भक्त है अङ्गीकार कीजिएगा ॥४४॥ आपने जब पूछा था उस समय हम उस देवाचार्य बृहस्पति के द्वारा मोहित होगये थे। अब दूर की लम्बी दृष्टि से सभी बात जानकर हम भक्तो की रक्षा करने के आप योग्य होते हैं ॥४५॥ हे भृगु नन्दन ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न नही होते है तो हम अब आपके द्वारा अपध्यात होते हुए आज ही रसातल मे प्रवेश कर जायगे ॥४६।

सूतजी ने कहा— काव्य ने यथा तत्व को सब कुछ जानकर करुणा और कृपा से इस तरह कहे जाने पर बहुत अनुनय किया हुआ होकर तथा स्तुत होते हुए उसने जो असुरों पर बड़ा भारी क्रोध हो रहा था उसको त्याग दिया ।।४७।। और वह यह बोला—डरो मत और रसातल को भी नहीं जाना चाहिए। मेरे जाग्रत रहते हुए भी यह कुछ अवश्यभावी अर्थ ही था जोकि आप लोगों को प्राप्त होगया है ।।४८।।

न शक्यमन्यथा कर्त्तुं दिष्टं हि बलवत्तरम् ।
सञ्ज्ञा प्रनष्टा या वोऽद्य कामं तां प्रतिलप्स्यथ ।।४९
प्राप्तः पर्य्यायकालो व इति ब्रह्माऽभ्यभाषत ।
मत्प्रसादाच्च युष्माभिर्भुक्तं त्रैलोक्यमूर्जितम् ।।५०
युगाख्यो दश संपूर्णो देवानाक्रम्य मूर्द्धनि ।
तावन्तमेव कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत ।।५१
सावर्णिके पुनस्तुभ्यं राज्यं किल भविष्यति ।
लोकानामीश्वरो भावी पौत्रस्तव पुनर्बलिः ।।५२
एवं किलमहं प्रोक्तं पौत्रस्ते ब्रह्मणा स्वयम् ।
तथाहृतेषु लोकेषु तपोऽस्य न किलाभवत् ।।५३
यस्मात् प्रवृत्तयश्चास्य न कामानभिसन्धिता ।
तस्मादजेन प्रीतेन दत्तं सावर्णिकेऽन्तरे ।।५४
देवराज्यं बलेर्भाव्यमिति मामीश्वरोऽब्रवीत् ।
तस्माददृश्यो भूतानां कालाकाङ्क्षी स तिष्ठति ।।५५
प्रीतेन चामरत्वं वै दत्तं तुभ्यं स्वयम्भुवा ।
तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्य्यायं सह माकुल ५६

अब अन्यथा नहीं किया जा सकता है क्योंकि भाग्य सबसे अधिक बलवान् होता है। आज जो आप लोगों की सञ्ज्ञा प्रनष्ट हुई उसको फिर कामना पूर्वक प्राप्त करलोगे ।।४९।। आपको पर्याप्त काल प्राप्त होगया है—यह ब्रह्मा ने कहा—और मेरे प्रसाद से इस ऊर्जित त्रैलोक्य का आप लोगों ने भोग किया है ।।५०।। देवों को आक्रान्त करके उनके मूर्द्धा पर सम्पूर्ण दश युगाख्य होगया

है। उतने ही काल तक मह्मा ने राज्य बोला था ।।५१।। सार्वाणिक मनु के समय में फिर तेरे लिये राज्य होगा। तुम्हारा पौत्र बलि फिर लोकों का ईश्वर होने वाला होगा। ५२।। ब्रह्मा के द्वारा स्वय तेरा पौत्र इस तरह से मुझे कहा गया है। तथा माहूरण किये गये लोकों म इसका तप निश्चय ही नहीं हुआ था ।।५३।। जिस कारण से इसकी प्रवृत्तियाँ कामो को अभिसन्धित नहीं थी इससे प्रसन्न होने वाले भ्रज ने सार्वाणिक मन्तर म दिया है ।।५४।। ईश्वर ने मुझसे कहा है कि बलि का देवराज्य होगा। इससे भूतो को अदृश्य यह काल की आकाङ्क्षा रखने वाला स्थित है ।।५५।। स्वयम्भू ने परम प्रसन्न होकर तेरे लिये अमरत्व को प्रदान किया है इसलिये निरुत्सुक तू पर्याय को सहन कर और बेचैन मत हो ।।५६।।

न च शक्य मया तुभ्य पुरस्ताद्व विसर्पितुम् ।
ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोऽस्मि भविष्य जानता प्रभो ।।५७
इमौ च शिष्यौ द्वौ मह्य तुल्यावेतौ बृहस्पते ।
दवत सह सरन्धान् सर्व्वान् वो धारयिष्यत ।।५८
एवमुक्तास्तु दतेया काव्येनाक्लिष्टकम्मणा ।
ततस्ताभ्या ययु साद्ध प्रह्लादप्रमुखास्तदा ।।५९
अवश्यम्भावमथाच श्र त्वा शुक्राच्च दानवा ।
सकृदाशसमानास्ते जय काव्येन भाषितम् ।।६०
दशिता सायुधा सर्वे ततो देवान् समाह्वयन् ।
अथ देवासुरान् दृष्ट्वा सग्रामे समुपस्थितान् ।।६१
तत सवृतसन्नाहा देवास्तान् समयोधयन् ।
दवासुरे ततस्तस्मिन् वत्तमाने शत समा ।
अजयन्नसुरा देवान् भग्ना देवा अमन्त्रयन् ।।६२
षण्डामाकप्रभाव न जानीमस्त्व सुरवयम् ।
तस्माद्यज्ञ समुद्दिश्य काव्य चात्महितञ्च यत् ।।६३
तज्ज्ञानाद्दशावेतौ कृत्वा जेष्यामहेऽसुरान् ।
अथोपाम न्त्रयन् देवा षण्डामाको तु तावुभौ ।।६४

मुझसे तेरे लिये पहिले विसर्पण नहीं किया जा सकता है ब्रह्मा के द्वारा मैं प्रतिषिद्ध किया हुआ हूँ हे प्रभो ! क्योंकि ब्रह्माजी समस्त भविष्य में होने वाली बातों को जानते है ।।५७।। ये दो शिष्य मेरे लिये बृहस्पति के तुल्य हैं देवों के साथ सरब्ध आप सबको धारण करेंगे ।।५८।। अविलष्ट कर्मा काव्य के द्वारा इस तरह कहे गये दिति के पुत्र उस समय वे सब जिनमे प्रह्लाद प्रमुख थे उन दोनों के साथ उस समय चले गये थे ।।५९।। दानवों ने शुक्राचार्य गुरु से अवश्यम्भाव अर्थत्व को सुनकर काव्य के द्वारा भाषित जय को एकबार कहते हुए जा रहे थे ।।६०।। दशित और आयुधों से सुसज्जित उन्होंने देवों का समाह्वान किया । इसके पश्चात् सग्राम भूमि मे उपस्थित असुरों को देखकर सवृत्त सन्नाद देवगण ने उनसे वहाँ आकर युद्ध किया था । उस देवासुर सग्राम में जो लगातार सौ वर्ष तक चलता रहा था असुरों ने देवों को जीत लिया था और भग्न हुए देवों ने विचार किया था ।।६१-६२।। देवों ने कहा—हम असुरों के द्वारा षण्डामक का जो प्रभाव है उसे नहीं जानते है इससे यज्ञ का उद्देश्य करके और जो आत्महित हो उसे ही करना चाहिए ।।६३।। सो इन दोनों को ज्ञानाहूत करके असुरों को जीत लेंगे । इसके उपरात देवगण ने इन दोनों षण्डामार्कों को उपामन्त्रित किया था ।।६४।।

यज्ञे समाह्वयिष्यामस्त्यजतमसुरान् द्विजौ ।
ग्रह त वा ग्रहीष्यामो ह्यनुजित्य तु दानवान् ।।६५
एव तत्यजतुस्तौ तु षण्डामार्कौ तदासुरान् ।
ततो देवा जय प्राप्ता दानवाश्च पराभवम् ।।६६
देवासुरान् पराभाव्य षण्डामार्कावुपागमन् ।
काव्यशापाभिभूताश्च ह्यनाधाराश्च ते पुन ।।६७
वध्यमानास्तदा देवैर्विविशुस्ते रसातलम् ।
एव निरुद्यमास्ते वै कृता शक्रेण दानवा ।
तत प्रभृति शापेन भृगुनैमित्तिकेन च ।।६८
जज्ञे पुन पुर्नाविष्णुर्यज्ञे च सिथिले प्रभु ।
कर्तुं धर्म्मव्यवस्थानमधर्म्मस्य च नाशनम् ।।६९

प्रह्लादस्य निदेशे तु येऽसुरा न व्यवस्थिता ।
मनुष्यवध्यास्तान् सर्वान् ब्रह्मा व्याहारयत् प्रभुः ॥७०
धर्म्मान्नारायणस्तस्मात् सम्भूतश्चाक्षुषेऽन्तरे ।
यज्ञं प्रवर्तयामास चत्ये वैवस्वतेऽन्तरे ॥७१

हे द्विजो ! हम आप दोनों को यज्ञ में बुलायेंगे अतः असुरों को छोड़ दो। अथवा उस ग्रह को दानवों को जीत कर ग्रहण कर लेंगे ॥६५॥ इस तरह से उस समय में उन दोनों षण्डामार्क ब्राह्मणों ने असुरों को त्याग दिया था। इसके पश्चात् देवता जय को प्राप्त होगये और दानव सब पराभूत होगये थे ॥६६॥ देवासुरों को पराभूत कराके षण्डामार्क भागये थे किन्तु वे काव्य के शाप से अभिभूत और फिर वे निराधार होगये थे ॥६७॥ तब उस समय में देवगणों के द्वारा वध्यमान होते हुए वे असुर रसातल में प्रवेश करने लगे थे। इस तरह से उद्यमहीन उन असुरों के समूह इन्द्र के द्वारा बेकार कर दिये गये थे। तब से लेकर वे भृगु निमित्तक शाप से पूर्ण प्रभावित होगये थे ॥ ६८॥ भगवान् विष्णु ने बार बार यज्ञों के शिथिल हो जाने पर धर्म की व्यवस्था करने के लिए तथा अधर्म का समूलोन्मूलन करने के लिये जन्म ग्रहण किया था ॥६९॥ जो असुर प्रह्लाद के निदेश में स्थित नहीं रहे थे उन सबको प्रभु ब्रह्मा ने मनुष्यों के द्वारा वध करने के योग्य बताया था ॥७०॥ चाक्षुष मन्वन्तर में धर्म से नारायण सम्भूत हुए थे और वैवस्वत अन्तर में चत्य में उन्होंने यज्ञ को प्रवृत्त कराया था ॥७१॥

प्रादुर्भावे तदाऽन्यस्य ब्रह्मा वासीत् पुरोहितः ।
चतुर्थ्यां तु युगाख्यायामापन्नेष्वसुरेष्वथ ॥७२
सम्भूतः स समुद्रान्तर्हिरण्यकशिपोर्वधे ।
द्वितीयो नरसिंहोऽभूद्रुद्रः सुरपुरस्सरः ॥७३
बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे ।
दैत्यैस्त्रैलोक्य आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥७४
संक्षिप्यात्मानमङ्गेषु बृहस्पतिपुरस्सरम् ।

यजमानन्तु दैत्येन्द्रमदित्याः कुलनन्दन ।
द्विजो भूत्वा शुभे काले वलिं वैरोचनम्पुरा ॥७५
त्रैलोक्यस्य भवान् राजा त्वयि सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ।
दातुमर्हसि मे राजन् विक्रमांस्त्रीनिति प्रभु ॥७६
ददामीत्येव तं राजा वलिर्वैरोचनोऽब्रवीत् ।
वामनन्तं च विज्ञाय ततोऽनुमुदितः स्वयम् ॥७७
स वामनो दिवं खं च पृथिवीं च द्विजोत्तमाः ।
त्रिभिः क्रमैर्विश्वमिदं जगदाक्रामत प्रभुः ॥७८
अत्यरिच्यत भूतात्मा भास्करं स्वेन तेजसा ।
प्रकाशयन् दिशः सर्व्वाः प्रदिशश्च महायशाः ॥७९

इसके उपरान्त चतुर्थी युगाख्या में असुरों के आपन्न होने पर उस समय असुरों के प्रादुर्भाव होने पर ब्रह्मा ही पुरोहित हुए थे ॥७२॥ हिरण्यकशिपु के वध में यह समुद्र के मध्य से सम्भूत हुए थे। द्वितीय सुर पुरस्सर रुद्र नारसिंह हुआ था ॥७३॥ सप्तम युग में त्रेता में लोकों के वलिसस्य होने पर दैत्यों के द्वारा तीनों लोकों को आक्रान्त कर लेने पर तृतीय वामन के रूप में अवतीर्ण हुए थे ॥७४॥ बृहस्पति के पुरस्सर अंगों में अपने आपको संक्षिप्त करके अदिति के कुल नन्दन ने दैत्यों के स्वामी वलि को यजमान बनाया था। स्वयं एक द्विज होकर शुभ समय पहिले वैरोचन वलि के पास पहुँचे थे ॥७५॥ और राजा वलि से वामन देव ने एक ब्राह्मण के स्वरूप में जाकर कहा—आप तीनों लोकों के राजा हैं। आपमें सभी कुछ प्रतिष्ठित है अर्थात् आपके पास सभी कुछ है। हे राजन्! प्रभु आप मुझे तीन पैंड भूमि को दान देने के योग्य होते हैं ॥७६॥ उस समय में वैरोचन राजा वलि ने उनसे यह वचन कहा—हाँ, मैं आपको तीन पैंड भूमि का दान देता हूँ। और उस ब्राह्मण को वामन (बौना) जानकर स्वयं अनुमुदित हुआ था ॥७७॥ हे द्विजगणो! उस वामन देव ने दिव-आकाश और पृथिवी को तीन ही पैरों से प्रभु ने इस विश्व समस्त जगत् को आक्रान्त कर लिया था ॥७८॥ उस भूतों के आत्मा ने अपने तेज से भास्कर को भी

प्रह्लादस्य निदेशे तु येऽसुरा न व्यवस्थिता ।
मनुष्यवध्यास्तान् सर्व्वान् ब्रह्मा व्याहारयत् प्रभु ॥७०
धर्म्मान्नारायणस्तस्मात् सम्भूतश्चाक्ष पेऽन्तरे ।
यज्ञं प्रवर्तयामास चत्ये वैवस्वतेऽन्तरे ॥७१

हे द्विजो ! हम आप दोनो को यज्ञ में बुलायेगे अत असुरो को छोड दो। अथवा उस वह को दानवो को जीत कर ग्रहण कर लगे ॥६५॥ इस तरह से उस समय मे उन दोनो षण्डामार्क ब्राह्मणो ने असुरो को त्याग दिया था। इसके पश्चात् देवता जय को प्राप्त होगये और दानव सब पराभूत होगये थे ॥६६॥ देवासुरो को पराभूत कराके षण्डामार्क आगये थे किन्तु वे काव्य के शाप से अभिभूत और फिर वे निराधार होगये थे ॥६७॥ तब उस समय मे देवगणो के द्वारा वध्यमान होते हुए वे असुर रसातल म प्रवेश करने लगे थे। इस तरह से उद्यमहीन उन असुरो के समूह इन्द्र के द्वारा बेकार कर दिये गये थे। तब से लेकर वे भृगु निमित्तक शाप से पूर्ण प्रभावित होगये थे ॥६८॥ भगवान् विष्णु ने बार बार यज्ञो के शिथिल हो जाने पर धर्म की व्यवस्था करने के लिए तथा अधर्म का समूलोन्मूलन करने के लिये जन्म ग्रहण किया था ॥६९॥ जो असुर प्रह्लाद के निदेश मे स्थित नहीं रहे थे उन सबको प्रभु ब्रह्मा ने मनुष्यो के द्वारा वध्य करने के योग्य बताया था ॥७०॥ चाक्षुप अन्तर मे धर्म से नारायण सम्भूत हुए थ और वैवस्वत अन्तर मे चत्य मे उन्होने यज्ञ को प्रवृत्त कराया था ॥७१॥

प्रादुर्भावे तदान्यस्य ब्रह्मा वासीत् पुरोहित ।
चतुर्थ्यां तु युगाख्यायामापन्न ष्वसुरेष्वथ ॥७२
सम्भूत स समुद्रान्तर्हिरण्यकशिपोर्वधे ।
द्वितीयो नरसिंहोऽभूद्र द्र सुरपुरस्सर ॥७३
बलिसस्थेषु लोकेषु त्रेताया सप्तमे युगे ।
दैत्यस्त्र लोकय आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥७४
सक्षिप्यात्मानमङ्ग षु बृहस्पतिपुरस्सरम् ।

यजमानन्तु दैत्येन्द्रमदित्याः कुलनन्दन ।
द्विजो भूत्वा शुभे काले बलिं वैरोचनम्पुरा ॥७५
त्रैलोक्यस्य भवान् राजा त्वयि सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ।
दातुमर्हसि मे राजन् विक्रमांस्त्रीनिति प्रभु ॥७६
ददामीत्येव तं राजा बलिर्वैरोचनोऽब्रवीत् ।
वामनन्त्वं च विज्ञाय ततोऽनुमुदितः स्वयम् ॥७७
स वामनो दिवं खं च पृथिवीं च द्विजोत्तमा ।
त्रिभिः क्रमैर्विश्वमिदं जगदाक्रामत प्रभुः ॥७८
अत्यरिच्यत भूतात्मा भास्करं स्वेन तेजसा ।
प्रकाशयन् दिशः सर्व्वाः प्रदिशश्च महायशा ॥७९

उसके उपरान्त चतुर्थी युगाख्या में असुरों के आपन्न होने पर उस समय अन्य के प्रादुर्भाव होने पर ब्रह्मा ही पुरोहित हुए थे ॥७२॥ हिरण्यकशिपु के वध में वह समुद्र के मध्य में सम्भूत हुए थे। द्वितीय सुर पुरस्सर रुद्र नरसिंह हुआ था ॥७३॥ सप्तम युग में त्रेता में लोकों के बलिमय होने पर दैत्यों के द्वारा तीनों लोकों को आक्रान्त कर लेने पर तृतीय वामन के रूप में अवतीर्ण हुए थे ॥७४॥ बृहस्पति के पुरस्सर अंगों में अपने आपको संक्षिप्त करके अदिति के कुल नन्दन ने दैत्यों के स्वामी बलि को यजमान बनाया था। स्वयं एक द्विज होकर शुभ समय पहिले वैरोचन बलि के पास पहुँचे थे ॥७५॥ और राजा बलि से वामन देव ने एक ब्राह्मण के स्वरूप में जाकर कहा—आप तीनों लोकों के राजा हैं। आपमें सभी कुछ प्रतिष्ठित है अर्थात् आपके पास सभी कुछ है। हे राजन्! प्रभु आप मुझे तीन पैंड भूमि का दान देने के योग्य होते हैं ॥७६॥ उस समय में वैरोचन राजा बलि ने उनसे यह वचन कहा—हाँ, मैं आपको तीन पैंड भूमि का दान देता हूँ। और उस ब्राह्मण को वामन (बौना) जानकर स्वयं अनुमुदित हुआ था ॥७७॥ हे द्विजगणो! उस वामन देव ने दिव-आकाश और पृथिवी को तीन ही पैरों से प्रभु ने इस विश्व समस्त जगत् को आक्रान्त कर लिया था ॥७८॥ उस भूतों के आत्मा ने अपने तेज से भास्कर को भी

अतिरिक्त कर दिया था। उस महान् यश वाले प्रभु वामन ने दिशा और प्रदिशाओं को अपने तेज से प्रकाश युक्त कर लिया था ॥७६॥

शुशुभे स महाबाहु सर्व्वलोकान् प्रकाशयन्।
आसुरी श्रियमाहृत्य त्रींल्लोकांश्च जनार्दन।
सपुत्रपौत्रानसुरान् पातालतलमानयत् ॥८०
नमुचि शम्बरश्चैव प्रह्लादश्चैव विष्णुना।
क्रूरा हृता विनिद्धूता दिश सम्प्रतिपेदिरे ॥८१
महाभूतानि भूतात्मा सविशेषाणि माधव।
कालञ्च सकल विप्रास्तत्राद्भुतमदर्शयत् ॥८२
तस्य गात्रे जगत्सर्वमात्मानमनुपश्यति।
न किञ्चिदस्ति लोकेषु यदव्याप्तं महात्मना ॥८३
तद्ध रूपमुपेन्द्रस्य देवदानवमानवा।
दृष्ट्वा सम्मुमुहु सर्वे विष्णुतेजोविमोहिता। ८४
बलि सितो महापाश सबन्धु ससुहृद्गण।
विरोचन कुल सर्व पाताले सन्निवेशितम् ॥८५
ततः सर्वामरैश्वर्यं दत्त्वेन्द्राय महात्मने।
मानुषेषु महाबाहु प्रादुरासीज्जनार्दन ॥८६
एतास्तिस्र स्मृतास्तस्य दिव्या सम्भूतय शुभा।
मानुष्या सप्त यास्तस्य शापजास्ताग्निबोधत ॥८७

उस समय भगवान् जनार्दन तीनों लोकों को और असुरों की समस्त श्री का आहरण करके महान् बाहु वाले समस्त लोकों को प्रकाश देते हुए परम शोभा को प्राप्त हुए थे। तथा पुत्र एवं पौत्रों के सहित समस्त असुरों को पाताल लोक में ले आये थे ॥८०॥ विष्णु के द्वारा नमुचि शम्बर और प्रह्लाद जो भी क्रूर दस्य थे वे मार डाले गये थे शेष विनिद्ध त होकर दिशाओं में चले गये थे ॥८१॥ माधव ने जो कि समस्त भूतों के आत्मा है सविशेष महाभूतों को तथा समस्त काल को वहाँ पर ब्रह्मणों को अपना एक अद्भुत ही स्वरूप दिखलाया था ॥८२॥ उन वाम देव के शरीर में इस समस्त जगत् को आत्मा देखता है।

लोकों में कुछ भी ऐसी वस्तु नहीं है जो इस महान् आत्मा के द्वारा व्याप्त न हो अर्थात् सभी कुछ उसमे व्याप्त था ॥८३॥ उस उपेन्द्र भगवान् के स्वरूप का दर्शन कर सभी देव–दानव और मानव विष्णु भगवान् उसके अद्भुत तेज से विशेष रूप से मोहित होते हुए अत्यन्त मुग्ध होगये थे ॥८४॥ राजा बलि उसके समस्त बन्धु और मित्रगण के सहित महापाशों से बद्ध किया हुआ तथा पूर्ण विरोचन–कुल पाताल लोक मे सन्निवेशित कर दिया गया था ॥८५॥ इसके पश्चात् समस्त देवो के द्वारा समस्त वैभव महान् आत्मा वाले इन्द्र के लिये देकर महान् बाहु वाले भगवान् जनार्दन मानुषों मे प्रादुर्भूत हुए थे ॥८६॥ ये तीन उसकी दिव्य एवं शुभ सन्निभूतियाँ कही गई हैं। उसकी जो सात मानुष्य है उनको शापज समझना चाहिए ॥८७॥

त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह ।
नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुर सर. ॥८८
पञ्चम पञ्चदश्या तु त्रेताया सम्बभूव ह ।
मान्धातुश्चक्रवर्त्तित्वे तस्थौ तथ्यपुर सुर ॥८९
एकोनविंशे त्रेताया सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत् ।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुर सर ॥९०
चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा ।
सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मज ॥९१
अष्टमो द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात् ।
वेदव्यासस्ततो जज्ञे जातूकर्णपुर सर ॥९२
तथैव नवमो विष्णुरदित्याः कश्यपात्मज ।
देवक्या वसुदेवात्तु ब्रह्मगार्ग्यपुर सर ॥९३

दशम त्रेता युग मे दत्तात्रेय हुए थे। जबकि यहाँ धर्म का नाश होगया था उस समय में मार्कण्डेय को आगे रखने वाला यह चतुर्थ अवतार था ॥८८॥ पाँचवाँ पञ्चदशी मे त्रेता मे हुआ था जोकि मान्धाता के चक्रवर्ती होने पर तथ्य का पुरस्सर करने वाला स्थित हुआ था ॥८९॥ उन्नीसवें त्रेतायुग मे समस्त क्षत्रियों का अन्त कर देने वाला अवतार हुआ था जोकि जमदग्नि से हुआ था

और विश्वामित्र को पुरस्सर रखने वाला छठा अवतार था ॥६ ॥ चौबीसवें त्रेतायग में पुरोहित वसिष्ठ के द्वारा श्रीराम हुए थे। यह दशरथ महाराज के पुत्र थी राघव रावण के लिये अर्थात् दशग्रीव के वध करने के लिये सातवाँ अवतार हुआ था ॥६१॥ अट्ठाईसवें युग में द्वापर में पराशर से विष्णु का आठवाँ अवतार हुआ था। इसके पश्चात् जातूकर्ण पुरस्सर श्री वेद व्यास ने जन्म ग्रहण किया था ॥६२॥ इसी प्रकार से नवम कश्यप ऋषि का पुत्र अदिति से विष्णु का अवतार हुआ था ॥६३॥

अप्रमेयो नियोज्यश्च यत्र कामचरो वशी।
क्रीडते भगवाँल्लोके बालः क्रीडनकैरिव ॥६४
न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽसौ मधुसूदन।
परं परममेतस्माद्विश्वरूपान्न विद्यते ॥६५
अष्टाविंशतिमे तद्वद्द्वापरस्याशसङक्षये।
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः ॥६६
कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्।
मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥६७
प्रविष्टो मानुषीं योनिं प्रच्छन्नश्चरते महीम्।
विहारार्थं मनुष्येषु सान्दीपनिपुर सरः ॥६८
यत्र कंसश्च शाल्वश्च द्विविदश्च महासुरम्।
अरिष्टं वृषभश्च व पूतना केशिनं हयम् ॥६९
नागं कुवलयापीडं मल्लराजगृहाधिपम्।
दत्यान् मानुषदेहस्थान् सूदयामास वीर्यवान् ॥१००

वसुदेव से देवकी में ब्रह्म और गर्ग को पुरस्सर रखने वाला अवतार हुआ था जो अप्रमेय अर्थात् बुद्धि में न आने के योग्य और नियोज्य था। जिस अवतार में कामचर वशी भगवान् बाल स्वरूप में स्थित होते हुए लोक में क्रीडन को अर्थात् खिलौनों से क्रीडा किया करते हैं ॥६४॥ यह महाबाहु मधुसूदन भगवान् प्रमा का विषय नहीं हो सकता है। इस विश्वरूप से परम पर कोई भी नहीं है ॥६५॥ अट्ठाईसवें उस द्वापर युग के अंश के सक्षय के समय में धर्म के

नष्ट हो जाने पर उस समय में प्रभु विष्णु ने वृष्णियों के कुल में अपने जन्म को ग्रहण किया था ॥९६॥ भगवान् विष्णु ने विनष्ट धर्म को संस्थापित करने की व्यवस्था करने के लिये और महान् दुष्ट असुरों का नाश करने के हेतु योगात्मा ने अपनी योग माया से समस्त प्राणियों को मोहित करते हुए इस मानुषी योनि में प्रवेश किया था और वह प्रच्छन्न होते हुए ही भूमण्डल में विचरण करते हैं। सान्दीपनि के पुरस्सर मनुष्यों में विहार करने के लिये ही उनने जन्म लिया था ॥९७-९८॥ जहाँ पर कंस–शाल्व–द्विविद महासुर–अरिष्ट–वृषभ–पूतना–हयकेशी–कुवलयापीड हाथी–मल्लराजगृहाधिप इन सब मानुष देह में स्थित दैत्यों को वीर्यवान् ने निहत किया था ॥९९-१००॥

छिन्न बाहुसहस्रञ्च बाणस्याद्भुतकर्मणः ।
नरकश्च हतः सङ्ख्ये यवनश्च महाबलः ॥१०१
हृतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा ।
दुराचाराश्च निहताः पार्थिवा ये रसातले ॥१०२
एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः ।
अस्मिन्नेव युगे क्षीणे सन्ध्याश्लिष्टे भविष्यति ॥१०३
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान् ।
दशमो भाव्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुरःसरः ॥१०४
अनुकर्षन् सर्वसेनां हस्त्यश्वरथसङ्कुलाम् ।
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्रशः ॥१०५
नात्यर्थं धार्मिका ये च ये च धर्मद्विषः क्वचित् ।
उदीच्यान्मध्यदेशांश्च तथा विन्ध्यापरान्तिकान् ॥१०६
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ।
गान्धारान् पारदांश्चैव पह्लवान् यवनाञ्छकान् ॥१०७
तुषारान् बर्बरांश्चैव पुलिन्दान् दरदान् खसान् ।
लम्पाकानन्धकान् रुद्रान् किरातांश्चैव स प्रभुः ॥१०८
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्बली ।
अदृश्यः सर्वभूतानां पृथिवीं विचरिष्यति ॥१०९

अत्यन्त अद्भुत कर्म करने वाले बाण के सहस्र बाहुओं का छेदन किया था और युद्ध भूमि में नरकासुर का वध कर दिया था तथा महान् बलवान् यवन का हनन किया था ।।१०१।। अपने तेज से महीपालों के समस्त रत्नों का हरण कर लिया था । जो रसातल में दुष्ट आचार वाले राजा थे वे सब मार डाले थे ।।१०२।। महान् आत्मा वाले विष्णु भगवान् के समस्त प्रादुर्भाव लोकों के हित-सम्पादन के हुए थे । विष्णु का यह अवतार इस ही युग में सन्ध्या से क्लिष्ट एवं क्षीण हो जाने पर होगा ।।१०३।। विष्णुयश नाम वाला प्रतापवाला पाराशर्य कल्कि नाम याज्ञवल्क्य पुरस्सर असम्भूत है क्योंकि भविष्य में होने वाला है ।।१०४।। आयुध ग्रहण करने वाले सहस्रों की संख्या में ब्राह्मणों से युक्त अर्थात् घिरे हुए कल्कि ने हाथी-अश्व और रथों से संकुल समस्त सेना को अनुकर्षित कर दिया था ।।१०५।। जो राजा अत्यन्त धार्मिक नहीं थे और जो नहीं धर्म से द्वेष करने वाले लोग थे । उत्तर दिशा में होने वाले—मध्य देश के रहने वाले तथा जो विन्ध्यापरान्तिक थे और उसी प्रकार से दाक्षिणात्य एवं सिंहलों के साथ द्रविड थे गान्धार-पारद-पह्लव-यवन-शक-तुषार-बर्बर-पुलिन्द-दरद खस-लम्पक-आन्ध्रक-रुद्र और किरात इन सबको उस प्रभु ने ध्वस्त करने के लिये जो चक्र को चलाने वाले—महाबल वाले-बली और म्लेच्छों का अन्त करने वाले थे समस्त प्राणियों के द्वारा न देखने के योग्य होते हुए पृथिवी पर विचरण करेंगे ।।१०६ से १०६।।

मानवः स तु सञ्जज्ञे देवस्यांशेन धीमतः ।
पूर्वजन्मनि विष्णुर्यः प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ।।११०
गोत्रेण वै चन्द्रमसः पूर्णे कलियुगेऽभवत् ।
इत्येतास्तस्य देवस्य दश सम्भूतयः स्मृताः ।।१११
स तं कालञ्च कार्यञ्च तत्तद्दृदिस्य कारणम् ।
अंशेन त्रिषु लोकेषु शास्ता योनौ प्रपत्स्यते ।।११२
पञ्चविंशोत्थिते कल्पे पञ्चविंशति वै समाः ।
विनिघ्नन् सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वशः ।।११३

कृत्वा बीजावशेषान्तु मही क्रूरेण कर्म्मणा ।
सधातयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्म्मिकान् ॥११४
तत स वै तदा कल्किश्चरितार्थ ससैनिक ।
कर्मणा निहता ये तु सिद्धास्ते तु पुन स्वयम् ११५
अकस्मात् कुपितान्योन्य भविष्यन्ति च मोहिता ।
क्षपयित्वा तु तान् सर्वान् भाविनार्थेन चोदितान् ॥११६
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठा प्राप्स्यति सानुग. ।
ततो व्यतीते कल्कौ तु सामान्यै सह सैनिकैः ११७
नृपेष्वथ विनष्टेषु तदा त्वप्रग्रहा प्रजा ।
रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्वा चान्योन्यमाहवे ॥११८

श्रीमान् देव के अश से उस मानव ने जन्म ग्रहण किया था। जो विष्णु पहिले जन्म मे वीर्य वाला प्रमिति नाम वाला था ॥११०॥ पूर्ण कलियुग मे शरीर से चन्द्रमा के तुल्य हुआ था ये इतन उस देव के जन्म (अवतार) कहे गये हैं ॥१११॥ उस-उस काल को और उस-उस कार्य को उस-उस कारण का उद्देश्य करके तीनो लोको मे अश से उन-उन योनियो को प्राप्त करेंगे ॥११२॥ पच्चीसवे कल्प के उपस्थित होने पर पच्चीस वर्ष जब होगे तब समस्त प्राणियो को हनन करते हुए सब ओर से मनुष्यो की ही बीजावशेष वाली मही को करके क्रूर कर्म से युक्त हुए लोको तथा प्राय जो अधार्मिक थे उन सबको मारकर इसके पश्चात् उस समय वह कल्कि सेना के सहित चरितार्थ हुए थे। जो कर्म से निहत हुए थे वे पुन स्वय सिद्ध होगये थे ॥११३-११४-११५॥ मनुष्य अचानक ही परस्पर मे कुपित हो जाने वाले और मोहित हो जायगे। भावी और अर्थ से प्रेरित उन सबको समाप्त करके गङ्गा और यमुना के मध्य मे अनुग के सहित वह निष्ठा को प्राप्त करेंगे इनके उपरान्त सामान्य सैनिको के साथ कल्कि के व्यतीत हो जाने पर और इनके अनन्तर राजाओ के विनष्ट हो जाने पर उस समय समस्त प्रजा अप्रग्रह (निरकुश) हो जायगी। रक्षण के समाप्त हो जाने पर आपस मे ही युद्ध करके हनन करने लगेगे ॥११६-११७-११८॥

परस्परहृताश्वासा निराक्रन्दा सुदुःखिता ।
पुराणि हित्वा ग्रामाश्च तुल्यास्ता निष्परिग्रहा ॥११६
प्रनष्टश्रुतिधर्माश्च नष्टधर्माश्रमास्तथा ।
ह्रस्वा अल्पायुषश्च व वनौकस इमे स्मृता ॥१२
सरित्पर्वतसेविन्य पत्रमूलफलाशना ।
चीर पत्राजिनधरा सङ्कर घोरमास्थिता ॥१२१
अल्पायुषो नष्टवार्त्ता बहुबाधा सुदुःखिता ।
एव कष्टमनुप्राप्ता कलिसन्ध्यंशके तदा ॥१२२
प्रजा क्षय प्रयास्यन्ति सार्द्ध कलियुगेन तु ।
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् प्रवृत्त च कृते पुन ॥१२३
प्रपत्स्यन्ते यथा याय स्वभावादेव नान्यथा ।
इत्येतत् कीर्तित सव देवासुरविचेष्टितम् ॥१२४
यदुवशप्रसङ्गेन महद्वो वष्णव यश ।
तुवसोस्तु प्रवक्ष्यामि पूरोद्रुह्योरनोस्तथा ॥१२५

परस्पर मे हृताश्वास–निराक्रन्द अर्थात् निरन्तर रुदन करने वाले और परम दुःखित लोग नगरो को और ग्रामो को त्याग करके सब समान निष्परिग्रह हो जायेगे ॥११६॥ सब लोग ऐसे हो जायगे जिनका श्रुतिधर्म नष्ट होगया है और आश्रम धर्म नष्ट होजाने वाले हैं—कद मे बहुत ही छोटे–अल्प आयु वाले एकतरह जगली जीवो की भाँति ये कहे गये है ॥ १२ ॥ नदी और पर्वतो पर रहने वाले–पत्त–मूल और फलो को भक्षण करने वाले–चीर पत्र तथा चम को धारण करने वाले और परम घोर सङ्कर अवस्था मे आस्थित हो जायगे ॥१२१॥ बहुत ही थोडी उम्र वाले नष्ट वार्त्ता वाले–बहुत बाधाओ से यक्त–अत्यन्त दुःखित होते हुए उस समय मे कलियुग की सन्धि के अश मे सब लोग कष्ट को प्राप्त होने वाले होगे ॥१२२॥ इस घोर कलियुग के साथ ही समस्त प्रजा क्षय को प्राप्त हो जायगी । उस कलियुग के क्षीण होजाने पर और पुन कृत युग की प्रवृत्ति होती है ॥१२३॥ जब कृत युग प्रवृत्त होगा तो फिर न्याय के अनुसार स्वभाव से ही सब ठीक होजायगे और कोई भी अन्यथा नही

रहेगा। यह समस्त देवासुर विचेष्टित का वर्णन कर दिया है ॥१२४॥ अब मैं यदुवंश के प्रसङ्ग से अन्य लोगों से महान् वैष्णव वंश तुर्वसु—पुरु-द्रुह्यु और अनु का वंश वर्णन करूँगा ॥१२५॥

प्रकरण ६१—अनुषंगपाद समाप्ति

तुर्वसोस्तु सुतो बह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मज ।
गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसानुरपराजित ॥१
करन्धमस्त्रिसानोस्तु मरुत्तस्तस्य चात्मज ।
अन्यस्त्ववीक्षितो राजा मरुत्त कथित· पुरा ॥२
अनपत्यो मरुत्तस्तु स राजासीदिति श्रुतम् ।
दुष्कृत पौरव चापि सर्वे पुत्रमकल्पयन् ॥३
एव ययातिशापेन जराया सक्रमेण तु ।
तुर्वसो पौरव वश प्रविवेश पुरा किल ॥४
दुष्कृतस्य तु दायादः शरूथो नाम पार्थिव ।
शरूथात् जनापीडश्चत्वारस्तस्य चात्मजा ॥५
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोल कुल्यस्तथैव च ।
तेषा जनपदा कुल्या पाड्याश्चोला सकेरला ॥६
द्रुह्योस्तु तनयौ वीरौ बभ्रु: सेतुश्च विश्रुतौ ।
अरुद्ध सेतुपुत्रस्तु बाभ्रवो रिपुरुच्यते ॥७
यौवनाश्वेन समिति कृच्छ्रेण निहतो बली ।
युद्ध सुमहदासीत्तु मासान् परि चतुर्दश ॥८

श्री सूतजी ने कहा—तुर्वसु का पुत्र वह्नि था और वह्नि का आत्मज गोभानु हुआ था। फिर गोभानु का पुत्र अपराजित तथा वीर त्रिसानु नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥१॥ त्रिसानु का पुत्र करन्धम हुआ और उसका पुत्र मरुत्त नामक समुत्पन्न हुआ। पहिले मरुत्त राजा अन्यस्त्ववीक्षित कहा गया था ॥२॥

वह मरुत्त राजा सन्तान हीन था— ऐसा सुना गया है। दुष्कृत और पौरव ने भी सबने पुत्र को कल्पित किया था ॥३॥ इस प्रकार से ययाति के शाप से जरा के सक्रमण से तुवसु से पौरव वंश में पहिले प्रवेश किया था ॥४॥ दुष्कृत का दायाद अर्थात् पुत्र शरुथ नाम वाला राजा हुआ और शरुथ से जनापीड हुआ। उसके चार पुत्र हुए थे ॥५॥ पाण्ड्य–करल–चोल और कुल्य ये उन चारों के नाम थे। उनके जनपद भी कुल्य–पाण्ड्या–चोल और सकेरल इन्हीं नामों से हुए थे ॥६॥ द्रुह्य के दो वीर पुत्र हुए थे जो बभ्रु और सेतु इन नामों से प्रसिद्ध थे। सेतु का पुत्र अरद्ध था और बभ्रु का रिपु इस नाम से कहा जाता है ॥७॥ यौवनाश्व के द्वारा समिति कठिनाई से वलो सिहत हुआ था और चौदह मास तक बहुत बड़ा यद्ध हुआ था ॥८॥

अरुद्धस्य तु दायादो गान्धारो नाम पार्थिव ।
ख्यायते यस्य नाम्ना तु गान्धारविषयो महान् ॥६
गान्धारदेशजाश्चापि तुरगा वाजिना वरा ।
गान्धारपुत्रो धर्मस्तु घृतस्तस्य सुतोऽभवद् ॥१०
घृतस्य दुदमो जज्ञ प्रचेतास्तस्य चात्मज ।
प्रचेतस पुत्रशत राजान सव एव ते ॥११
म्लेच्छराष्ट्राधिपा सर्वे ह्युदीची दिशमाश्रिता ।
अनो पुत्रा महात्मानस्त्रय परमधार्म्मिका ॥१२
सभानरश्च पक्षश्च परपक्षस्तथव च ।
सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृप ॥१३
कालानलस्य धर्म्मात्मा सृञ्जयो नाम धार्मिक ।
सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जय ॥१४
जनमेजयो महा सत्व पुरञ्जयसुतोऽभवत् ।
जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवन्नृप ॥१५
आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशा दिवि ।
महामना सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिक ॥१६

अरुद्ध का दायाद गान्धार नाम वाला नृप हुआ था। जिसके नाम से एक बहुत बड़ा देश प्रसिद्ध है। ६॥ गान्धार देश मे उत्पन्न होने वाले घोड़ो मे परम श्रेष्ठ तुरग होते है। गान्धार का पुत्र धर्म था और उसका सुत घृत नामक हुआ था ॥१०॥ घृत के दुर्दम ने जन्म लिया और दुर्दम ने जन्म लिया और दुर्दम का पुत्र प्रचेता हुआ। प्रचेता के एक सौ पुत्र हुए थे और वे सभी राजा हुए थे ॥११॥ वे सब म्लेच्छ राष्ट्रो के स्वामी हुए थे और उनने उत्तर दिशा का आश्रय लिया था। अनु के परम धार्मिक महान् आत्मा वाले तीन पुत्र हुए थे ॥१२॥ उन तीनो के नाम सभानर–पक्ष और पर पक्ष थे। सभानर के यहाँ उसका पुत्र परम विद्वान् कालानल नृप हुआ था ॥१३॥ कालानल का धर्मात्मा सृञ्जय नाम वाला धार्मिक पुत्र हुआ था। सृञ्जय का पुत्र वीर पुरञ्जय ? राजा हुआ था ॥१४॥ महान् सत्त्व वाला जनमेजय पुरञ्जय का पुत्र उत्पन्न हुआ था। राजर्षि जनमेजय का पुत्र महाशाल नाम वाला नृप हुआ था ॥१५॥ यह राजा दिवलोक प्रतिष्ठित यश वाला इन्द्र के समान हुआ था। उस महाशालका महामना नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ था ॥१६॥

समद्वीपेश्वरो राजा चक्रवर्त्ती महायशा ।
महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास विश्रुतौ ॥१७
उशीनरञ्च धर्मज्ञं तितिक्षुञ्चैव धार्मिकम् ।
उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजा ॥१८
मृगा कृमी नवा दर्वा पञ्चमी च दृपद्वती ।
उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहा ।
तपसा ते सुमहता जातवृद्धाश्च धार्मिका ॥१९
मृगायास्तु मृग पुत्रो नवाया नव एव तु ।
कृम्या कृमिस्तु दर्वाया सुव्रतो नाम धार्मिक ॥२०
दृपद्वतीसुतश्चापि शिबिरौशीनरो द्विजा ।
शिबे शिवपुर ख्यात यौधेयस्तु मृगस्य तु ॥२१
नवस्य नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु कृमिला पुरी ।
सुव्रतस्य तथा वृष्टा शिबिपुत्रान्निबोधत ॥२२

शिवेस्तु शिवय पुत्राश्चत्वारो लोकसम्मता ।
वृषदम सुवीरस्तु केकयो मद्रकस्तथा ।।२३
तेषाम्जनपदा स्फीता केकया माद्रकास्तथा ।
वृषदर्भा सूचिदर्भास्तितिक्षो शृणुत प्रजा ।।२४

यह महामना सातो द्वीपो का स्वामी महान् यश वाला चक्रवर्ती राजा हुआ था। उस महामना ने परम प्रसिद्ध दो पुत्रो को जन्म दिया था अर्थात् उत्पन्न किया था ।।१७।। एक का नाम धर्म का ज्ञाता उशीनर था और दूसरा परम धार्मिक तितक्षु हुआ था। उशीनर की राजर्षियो के वश मे उत्पन्न होने वाली पाँच पत्नियाँ थी ।।१८।। उनके नाम मृगा–कृमी–नवा–दर्वा और पाँचवी दृषद्वती था। उशीनर के उन पत्नियो मे कुलके उद्वहन करने वाले पाँच पुत्र हुए थे। वे महान् तपसे जातवृद्ध और धार्मिक हुए थे ।।१६।। मृगा के मृग पुत्र था और नवा के नव–इस नाम वाला ही पुत्र हुआ था। कृमी के कृमि और दर्वा के धार्मिक सुव्रत पुत्र हुआ ।।२ ।। हे द्विजगणो ! दृषद्वती का पुत्र भी औशीनर शिवि हुआ था। शिवि का शिवपुर और मृग का यौदेय पुर हुए ।।२१।। नव का नवराष्ट्र था और कृमी की कृमिला नाम वाली पुरी थी। सुव्रत की दृष्टा पुरी थी। अब शिवि के पुत्रो को बतलाया जाता है उन्हे समझ लो ।।२२।। राजा शिवि के शिवय नाम के चार पुत्र लोक सम्मत हुए थे जिनके नाम—वृषदर्भ–सुवीर–केकय और मद्रक थे थे ।।२३।। उनके बड़े ही विस्तृत (फलेहुए) जनपद केकय–माद्रक–वृषदम और सूचिदर्भ इन नामो वाले हुए थे। अब आगे तितिक्षु के सन्तान के विषय मे श्रवण करो ।।२४।।

तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुत ।
उशद्रथो महाबाहुस्तस्य हेम सुतोऽभवत् ।।२५
हेमस्य सुतपा जज्ञे सुत सुतयशा बली ।
जातो मनुष्ययोन्या वै क्षीणे वशे प्रजेप्सया ।।२६
महायोगी स तु बलिवद्धो य स महामना ।
पुत्रानुत्पादयामास चातर्वर्ण्यकरान् भुवि ।।२७

अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च।
पुण्ड्रं कलिङ्गञ्च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते ॥२८
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा प्रभो।
बलेस्तु ब्रह्मणा दत्ता वराः प्रीतेन धीमते ॥२९
महायोगित्वमायुश्च कल्पायुः परिमाणकम्।
संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रभावना ॥३०
त्रैलोक्यदर्शनञ्चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा।
बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ॥३१
चतुरो नियतान् वर्णान् त्वं वै स्थापयितेति च।
इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिम्परां ययौ ॥३२

तितिक्षु पूर्व दिशा में परम प्रसिद्ध राजा हुआ था। उषद्रथ महाबाहु उसका एक पुत्र हुआ था ॥२४॥ हेम का सुतपा, बली सुतपा से उत्पन्न हुआ था। वह बल के क्षीण होजाने पर प्रजा की इच्छा से मनुष्य की योनि में उत्पन्न हुआ था ॥२६॥ नृपबलि जो था वह महामना और महायोगी था। उसने भूमि में पाँचो वंशों के करने वाले पुत्रों को उत्पन्न किया था ॥२७॥ उसने अङ्ग-वङ्ग-सुह्म-पुण्ड्र-कलिङ्ग तथा बालेय का जन्म दिया था जो क्षत्र कहे जाते हैं। बालेय और ब्राह्मण उस प्रभु के वंश करने वाले थे। बुद्धिमान् बलि के लिये प्रसन्न होने वाले ब्रह्मा ने यह दान दिये थे ॥२९॥ वे वरदान ये थे—महान् योगित्व का होना और कल्पायु परिमाण वाली आयु-संग्राम में अजय रहना और धर्म में प्रकृष्ट भावना का रहना ॥३०॥ त्रैलोक्य का दर्शन और प्रसव में प्राधान्य-बल में अनुपम होना तथा धर्म के तत्त्वार्थ का दर्शन—ये वरदान देते हुए ब्रह्माजी ने कहा था तुम नियत चार वर्णों को स्थापित करने वाले हो—इस तरह से विभु के द्वारा जब कहा गया तो राजा बलि को परम शान्ति प्राप्त

उस रौद्राश्व के पुत्रों का भी ज्ञान प्राप्त करलो । रौद्राश्व के शुक्र से घृताची नाम वाली अप्सरा में दश पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥४४॥ उन दश पुत्रों के नाम—रजेयु-कृतेयु-वक्षेय-स्थण्डिलेय-धृतेयु-जलेय और सातवाँ स्थलेयु था ॥४५॥ धर्मेयु-सन्नतेय तथा दसवाँ वनेयु था । रुद्रा-शूद्रा-भद्रा-शुभा-वाय लजा-तला-खला-ये सात और गोपबला कही गई थी तथा तामरसा और वसी ही रत्नकूटी थी ॥४६ ४७॥ वश से आत्रेय प्रभाकर नाम वाला उनका स्वामी था । अनरद्द राजर्षि रिवेयु उसका पुत्र था ॥४८॥

रिवेयोर्ज्वलना नाम भार्या च तक्षकात्मजा ।
यस्या देव्या स राजर्षी रन्ति नाम त्वजीजनत् ॥४९
रन्तिर्नारः सरस्वत्या पुत्रानजनयच्छुभान् ।
त्रसु तथा प्रतिरथ ध्रुवञ्च वातिधार्मिकम् ॥५०
गौरी कन्या च विख्याता मान्धातुजननी शुभा ।
ध्रुव प्रतिरथस्यापि कण्ठस्तस्याभवत् सुत ॥५१
मेधातिथि सुतस्तस्य यस्मात् काण्ठायना द्विजा ।
इलितानुयमस्यासीत् कन्या साजनयत्सुतान् ॥५२
त्रसु सुदयित्त पुत्र मलिन ब्रह्मवादिनम् ।
उपदात तत्तो लेभे चतुरस्त्वित सात्मजान् ॥५३
सुष्मन्तमथ दुष्यन्त प्रवीरमनघन्तथा ।
चक्रवर्त्ती ततो जज्ञ दौष्यन्तिनृ पसत्तम ॥५४
शकुन्तलाया भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम् ।
दुष्यन्तं प्रति राजान वागुवाचाशरीरिणी ॥५५
माता भस्त्रा पितु पुत्रो येन जात स एव स ।
भरस्व पुत्र दुष्यन्त सत्यमाह शकुन्तला ॥५६
रेतोधा पुत्र नयति नरदेव यमक्षयात् ।
त्वञ्चास्य धाता गर्भस्य भावमस्या शकुन्तलाम् ॥५७

रिवेयु की 'ज्वलना'—इस नाम वाली तक्षक पुत्री भार्या हुई थी । उस राजर्षि रिवेयु ने जिस ज्वलना देवी में रन्ति नाम वाला पुत्र उत्पन्न किया था

थे जो कि परम धर्म के मानने वाले थे। उन तीनों के नाम अजमीढ़—द्विमीढ़ तथा पुरुमीढ़ थे थे ॥७३॥ अजमीढ़ के जो पुत्र हुए थे वे बहुत ही शुभ और कुल के उद्वहन करने वाले थे। सुमहान् तप के अन्त में वृद्ध राजा के धार्मिक हुए थे। ७४॥ वे भरद्वाज के प्रसाद से ही हुए थे अब उनका विस्तार का श्रवण करो। अजमीढ़ नाम वाले के केशिनी में कण्वनाम धारी उत्पन्न हुआ था ॥७५॥ मधातिथि नाम वाला उसका पुत्र था। उससे फिर कण्ठायन द्विज उत्पन्न हुए थे ॥७६॥

बृहद्वसोर्बृहद्विष्णुः पुत्रस्तस्य महाबलः ।
बृहत्कर्मा सुतस्तस्य पुत्रस्तस्य बृहद्रथः ॥७७
विश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्य चात्मजः ।
अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥७८
रुचिराश्वश्च काव्यश्च रामो दृढधनुस्तथा ।
वत्सश्चावन्तको राजा यस्य ते परिवत्सराः ॥७९
रुचिराश्वस्य दायादः पृथुषेणो महायशाः ।
पृथुषेणस्य पारस्तु पारान्नीपोऽथ जज्ञिवान् ८०
यस्य चैकशतश्चासीत् पुत्राणामिति नः श्रुतम् ।
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते ॥८१
तेषां वंशकरः श्रीमान् राजासीत्कीर्तिवर्द्धनः ।
काम्पिल्ये समरो नाम स चेष्टसमरोऽभवत् ॥८२
समरस्य परः पारः सद्श्वदश्व इति त्रयः ।
पुत्राः सर्वगुणोपेताः पारपुत्रो वृषुर्वमी ॥८३
वृषोस्तु सुकृतिर्नाम सुकृतेनेह कर्मणा ।
जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः ॥८४

अजमीढ़ के धूमिनी में बृहद्वसु राजा ने जन्म ग्रहण किया था ॥७७॥ बृहद्वसु से बृहद्विष्णु पुत्र हुआ था जो महान् बल वाला था उसका पुत्र बृहत्कर्मा हुआ और फिर उसका पुत्र बृहद्रथ नाम वाला हुआ था। उसका अर्थात् बृहद्रथ का तनय विश्वजित् हुआ और उसका सेनजित आत्मज हुआ था। इसके उप

शान्त फिर सेनजित् के चार ही परम प्रसिद्ध चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥७८॥ उन चारों पुत्रों के नाम रुचिराश्व—काव्य—राम और दृढहनु थे। वत्स आवन्तक राजा था जिसके ये परिवत्सर हुए हैं ॥७९॥ रुचिराश्व का दायाद महान् यश वाला पृथुषेण था। पृथुषेण का पार हुआ और पार से नीप ने जन्म लिया था ॥८०॥ जिसके एक शत पुत्र हुए थे—यह हमने सुना गया है। ये समस्त राजा लोग नीपा—नाम से समाख्यात हुए थे ॥८१॥ उनके वंश का करने अर्थात् चलाने वाला श्रीमान् कीर्त्तिवर्द्धन राजा हुआ था काम्पिल्य में समर नाम वाला वह सचेष्ट उमर हुआ था ॥८२॥ समर के पर पार और सदश्व ये तीन आत्मज हुए थे। ये समस्त पुत्र सर्वगुण गण से सम्पन्न थे। पार का पुत्र पृथु सुशोभित हुआ था ॥८३॥ पृथु का सुकृति नामक पुत्र यहाँ सुकृत कर्म के द्वारा समस्त गुणों से युक्त हुआ था और उसका पुत्र विभ्राज नाम वाला हुआ था ॥८४॥

विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम पार्थिव ।
वभूव शुकजामाता कृत्वीभर्त्ता महायशा ॥८५
अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महातपा ।
योगसूनु सुतस्तस्य विष्वक्सेनो ऽभवन्नृप ॥८६
विभ्राजपुत्रा राजान सुकृतेनेह कर्म्मणा ।
विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो वभूव ह ॥८७
भल्लाटस्तस्य दायादो येन राजा पुरा हत ।
भल्लाटस्य तु दायादो राजासीज्जनमेजय ।
उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपा प्रणाशिता ॥८८
परीक्षितस्य दायादो वभूव जनमेजय ।
श्रुतसेनस्य दायादो भीमसेनोऽपि नामत ॥८९
जह्नुस्त्वजनयत्पुत्र सुरथ नाम भूमिपम् ।
सुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथ ॥९०
विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति श्रुति ।
सार्वभौमाज्जयत्सेन आराधिस्तस्य चात्मज ॥९१

आराधितो महासत्त्व अयुतायुस्तत स्मृत ।
अक्रोधनोऽयुतायास्तु तस्माद् वातिथि स्मृत ॥९२
देवातिथेस्तु दायाद ऋक्ष एव बभूव ह ।
भीमसेनस्तथा ऋक्षाद्दिलीपस्तस्य चात्मज ॥९३
दिलीपसूनु प्रतिपस्तस्य पुत्रास्त्रय स्मृता ।
देवापि शान्तनुश्च व बाह्लीकश्चैव ते त्रय ॥९४

विभ्राज का दायाद अणुह नामधारी राजा हुआ था। शुकजा माता थी और महान् यशवाला ऋषीक भर्त्ता ॥८५॥ अणुह का दाया" (पुत्र) महान् तपस्वी ब्रह्मदत्त हुआ था और उसका तनय योग सूनु और उसका पुत्र विष्वक सेन नृप हुआ था ॥८६॥ विभ्राज के पुत्र सब यहाँ सुकृत कर्म के द्वारा राजा हुए थे। विष्वक्सेन का पुत्र उदक्सेन हुआ था ॥८७॥ उसका दायाद भल्लाट था जिसने पहिले राजा का हनन किया था भल्लाट का दायाद राजा जनमेजय था। उसके लिए उग्रायुध ने समस्त नीपो प्रणष्ट कर दिया था ॥८८॥ श्री सूतजी ने कहा—परीक्षित का दायाद जनमेजय नाम वाला हुआ था। श्रुतसेन का पुत्र नाम से भीमसेन हुआ था ॥८९॥ जह्नु ने सुरथ नाम वाला राजा पुत्र के रूप मे उत्पन्न किया था। सुरथ का दायाद परम वीर राजा विदूरथ हुआ था ॥९ ॥ विदूरथ का पुत्र स वभौम था—ऐसी श्रुति है। सार्वभौम से जयत्सेन उत्पन्न हुआ और उस जयत्सेन का पुत्र आराधि नाम वाला हुआ था ॥९१॥ आराधि से अयुताय हुआ था जो महान् सत्त्व वाला कहा गया है। फिर उस अयनायु का अक्रोधन पुत्र हुआ और उस अक्रोधन से देवातिथि पुत्र हुआ था ॥९२॥ देवातिथि का यादद ऋक्ष नाम वाला हुआ था। ऋक्ष स भीमसेन की उत्पत्ति हुई और उसका पुत्र दिलीप नामधारी हुआ था ॥९३॥ दिलीप का पुत्र प्रतिप हुआ और उस प्रतिप के तीन पुत्र कहे गये हैं। जिनके नाम देवापि-शान्तनु और बाह्लीक ये तीन थे ॥९४॥

बाह्लीकस्य तु विज्ञेय सप्तबाह्लीश्वरो नृप ।
बाह्लीकस्य सुतश्च व सामदत्तो महायशा ॥९५

खञ्वमश्वकमुख्याना खञ्वमङ्गनिवासिनाम् ।
खञ्वश्च मध्यदेशानां त्रिखर्वी जनमेजय ।
विपादाद् ब्राह्मणैं सार्द्ध मभिशस्त क्षय ययौ ॥११६
तस्य पुत्र शतानीको बलवान् सत्यविक्रम ।
तत सुत शतानीक विप्रास्तमभ्यषेचयत् ॥११७
पुत्रोऽश्वमेध दत्तोऽभूच्छतानीकस्य वीर्य्यवान् ।
पुत्रोऽश्वमेधदत्ताद्व जात परपुरजय ॥११८
अधिसामकृष्णो धर्मात्मा साम्प्रतोऽय महायशा ।
यस्मिन् प्रशासति मही युष्माभिरिदमा हृतम् ॥११९
दुराप दीर्घसत्र व त्रीणि वर्षाणि दुश्चरम् ।
वपद्वय कुरुक्षेत्रे दृपद्वत्या द्विजोत्तमा ॥१२०

परीक्षित के पुत्र पौरव जनमेजय ने दो अश्वमेध यज्ञो का आहरण करके इसके पश्चात् वाजसनेय को प्रवृत्त कराकर तब जनमेजय महात्रिखर्वी होगया था ॥११५॥ मुख्य अश्वो की एक खब सख्या—अङ्गनिवासियो का एक खर्व और मध्य देशो का एक खब इस तरह से जनमेजय त्रिखर्वी हुआ था। विपाद से ब्राह्मणो के साथ अभिशस्त होता हुआ क्षय को प्राप्त हुआ था ॥११६॥ उसका पुत्र शतानीक था जो बहुत बलवान् और सत्य विक्रम वाला था। इसके पश्चात् ब्राह्मणो ने उस पुत्र शतानीक को राज्य पर अभिषेक कर दिया था ॥११७॥ शतानीक का पुत्र अश्वमेध दत्त बडा वीयवान् हुआ था। अश्वमेध दत्त से परपुरजय पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥११८॥ यह महान् यशवाला साम्प्रत बहुत धर्मात्मा अधिसाम कृष्ण है जिसके भूमिपर प्रशासन करने पर तुम लोगो ने यह आहृत किया है। जोकि तीन वर्ष पयन्त बडा दुश्चर एव दुराप बह दीघ सत्र है। हे द्विजोत्तमो ! दो वप तक कुरुक्षेत्र म दृपद्वती म हुआ था ॥११९ १२ ॥

श्रोतु भविष्यमिच्छाम प्रजाना वै महामते ।
सूत सार्द्ध नृपर्भाव्य व्यतीत कीत्तित त्वया ॥१२१
यत्त मस्थास्यते कृत्यमुत्पत्स्यन्ति च ये नृपा ।
वर्षाग्रतोऽपि प्रब्रू हि नामतश्च व ता नृपान् ॥१२२

काल युगप्रमाणञ्च गुणदोषान् भविष्यत ।
सुखदु खे प्रजानाञ्च धर्मत कामतोऽर्थत ॥१२३
एतत्सर्वं प्रसङ्ख्याय पृच्छता ब्रू हि तत्त्वत ।
स एवमुक्तो मुनिभिः सूतो बुद्धिमता वर ।
आचचक्षे यथावृत्त यथादृष्ट यथाश्रुतम् ॥१२४
यथा मे कीर्त्तित सर्वं व्यासेनाद्भुतकर्म्मणा ।
भाव्य कलियुगञ्चैव तथा मन्वन्तराणि तु ॥१२५
अनागतानि सर्वाणि ध्रु वतो मे निबोधत ।
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्यन्ति नृपास्तु ये ॥१२६
ऐलाश्चैव तथेक्ष्वाकून् सौद्युम्नाश्चैव पार्थिवान् ।
येषु सस्थाप्यते क्षेत्रमैक्ष्वाकवमिद शुभम् ॥१२७
तान् सर्वान् कीर्त्तयिष्यामि भविष्ये पठितान्नृपान् ।
तेभ्य परे च ये चान्ये उत्पत्स्यन्ते महीक्षित ॥१२८
क्षत्रा पारशवा शूद्रास्तथा ये च द्विजातय ।
अन्धा शका पुलिन्दाश्च तूलिका यवनै सह ॥१२९
कैवर्त्ताभीरसबरा ये चान्ये म्लेच्छजातय ।
वर्षाग्रत प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान्नृपान् ॥१३०

ऋषियो ने कहा—हे महान् मति वाले ! अब हम लोग प्रजाओ का आगे आने वाला भविष्यकाल सुनने की उत्कट इच्छा करते हैं। हे सूत ! आपने अब तक तो जो होगया और होरहा है वह ही वर्णन किया है ॥१२१॥ जो कृत्य सस्थित होगा और जो राजा लोग उत्पन्न होगे। उन समस्त राजाओ को वर्षाग्र से और नाम से बतलाइये ॥१२२॥ काल और युग का प्रमाण तथा होने वाले गुण एव दोषो को बताइये। धम से और काम से प्रजाओ के सुख तथा दु खो को भी बताइये ॥१२३॥ यह सब प्रसख्यान करके पूछने वाले हमको आप कृपा करके तात्विक रूप से बताइये। बुद्धिमानो मे परम श्रेष्ठ इस तरह से मुनियो के द्वारा पूछे गये श्री सूतजी ने जैसा भी हुआ जैसा देखा और जिस प्रकार से सुना था वह कहना आरम्भ कर दिया था ॥१२४॥ श्री सूतजी ने

कहा—अद्भुत कर्म करने वाले श्री व्यासजी ने जिस तरह से मुझसे यह सब कहा था। भाव्य-कलियुग और मन्वन्तर उन सब अनागतों को मुझसे जान लो। इसके आगे जो नृप होंगे उनको बताऊँगा ॥१२५ १२६॥ ऐलों को-इक्ष्वाकुओं को और सौद्यम्न राजाओं को जिनमें यह शुभ ऐक्ष्वाकव क्षेत्र सस्थापित किया जाता है उन सब भविष्य में घटित राजाओं का वर्णन करूँगा। और उनके आगे जो अन्य राजा लोग उत्पन्न होंगे ॥१२७ १२८॥ पारशव क्षत्रियों का समूह तथा शूद्र और जो द्विजातिगण थे अन्ध-शक-पुलिन्द-यवनों के साथ चूलिक-कैवर्त-अभीर-शबर और जो अन्य म्लेच्छ जाति वाले लोग इन समस्त नृपों को वर्षाग्र तथा नाम से बतलाऊँगा ॥१२९ १३ ॥

अधिसामकृष्णः सोऽय साम्प्रत पौरवान्नृप ।
तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये तावतो नृपान् ॥१३१
अधिसामकृष्णपुत्रो निवक्त्रे भविता किल ।
गङ्गयापहृते तस्मिन्नगरे नागसाह्वये ।
त्यक्त्वा च त सुवासञ्च कौशाम्ब्या स निवत्स्यति ॥१३२
भविष्यदुष्णस्तत्पुत्र उष्णाच्चित्ररथ स्मृत ।
शुचिद्रथश्चित्ररथाद्वृतिमाश्च शुचिद्रथात् ॥१३३
सुषेणो वै महावीर्यो भविष्यति महायशा ।
तस्मात्सुषेणाद्भविता सुतीर्थो नाम पार्थिव ॥१३४
रुच सुतीर्थाद्भविता त्रिचक्षो भविता तत ।
त्रिचक्षस्य तु दायादो भविता च सुखीवल ॥१३५
सुखीबलसुतश्चापि भाव्यो राजा परिप्लुत ।
परिप्लुतसुतश्चापि भविता सुनयो नृप ॥१३६
मेधावी सुनयस्याथ भविष्यति नराधिप ।
मेधाविन सुतश्चापि दण्डपाणिर्भविष्यति ॥१३७
दण्डपाणेर्निरामित्रो निरामित्राच्च क्षेमक ।
पञ्चविंशनृपा ह्येते भविष्या पूर्ववराजा ॥१३८

अधिसाम कृष्ण यह महा यशस्वी पौरवों का राजा है। उसी के वंश
मे भविष्य मे उतने राजाओं का वर्णन करूँगा ॥१३१॥ अधिसाम कृष्ण का
पुत्र निर्वक्र मे होगा। नागस नामक उस नगर के गङ्गा के द्वारा अपहृत होजाने
पर वह उसका निवास त्याग करके कौशाम्बी मे निवास करेगा ॥१३२॥ उसका
पुत्र उष्ण होगा और उष्ण से चित्ररथ होगा। चित्ररथ का पुत्र शुचिद्रथ होगा
और शुचिद्रथ से वृष्णिमान् होगा ॥१३३॥ सुषेण निश्चय ही महान् यशवाला
होगा। उस सुषेण का आत्मज सुनीथ नाम वाला राजा होगा ॥१३४॥ सुनीथ
से रुच का जन्म होगा और फिर उससे त्रिचक्ष होगा। त्रिचक्ष का दायाद सुखी-
बल नाम वाला होगा ॥१३५॥ सुखीबल का पुत्र परिप्लुत नामक राजा होगा।
फिर परिप्लुत का पुत्र सुनय नाम वाला राजा होगा ॥१३६॥ सुनय का पुत्र
मेधावी नामक राजा होगा और मेधावी का पुत्र दण्डपाणि नाम वाला जन्म
ग्रहण करेगा ॥१३७॥ दण्डपाणि से निरामित्र होगा और निरामित्र से क्षेमक
नाम वाला जन्म प्राप्त करेगा। ये पच्चीस राजा पूरु वंशज होंगे ॥१३८॥

आग्नुवशश्लोकोऽय गीतो विप्रै पुराविदै ।
ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृत ॥१३९
क्षेमक प्राप्य राजान सस्था प्राप्स्यति वै कलौ ।
इत्येष पौरवो वशो यथावदनुकीर्त्तित ॥१४०
धीमत पाण्डुपुत्रस्य ह्यर्जुनस्य महात्मन ।
अत ऊर्द्ध्व प्रवक्ष्यामि इक्ष्वाकूणा महात्मनाम् ॥१४१
बृहद्रथस्य दायादो वीरो राजा बृहत्क्षय ।
तत क्षय सुतस्तस्य वत्सव्यूहस्तत क्षयात् ॥१४२
वत्सव्यूहात्प्रतिव्यूहस्तस्य पुत्रो दिवाकर ।
यश्च साप्रतमध्यास्त अयोध्या नगरी नृप ॥१४३
दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशा ।
सहदेवस्य दायादो बृहदश्वो भविष्यति ॥१४४
तस्य भानुरथो भाव्य प्रतीताश्वश्च तत्सुत ।
प्रतीताश्वसुतश्चापि सुप्रतीतो भविष्यति ॥१४५

सहदेव सुतस्तस्य सुनक्षत्रश्च तत्सुत ॥१४६

यहाँ पर पुरावेत्ता विप्रो के द्वारा अनुवंश का यह श्लोक गाया गया है जो ब्रह्मक्षत्र की योनि है वह वश देवर्षियो के द्वारा सत्कृत हुआ है ॥१३६॥ यथावत् अनुकीर्तित यह पौरव वश क्षेमक राजा को प्राप्त करके कलियुग मे सस्था को प्राप्त करेगा ॥१४ ॥ परम बुद्धिमान् महान् आत्मा वाले पाण्डु के पुत्र अर्जुन का यह वश है। अब इसके आगे महात्मा इक्ष्वाकुओ के वश का वर्णन करूगा ॥१४१॥ बृहद्रथ का दायाद वीर राजा बृहत्क्षय है फिर उसके पश्चात् उसका पुत्र वत्सव्यूह क्षय से हुआ ॥१४२॥ वत्सव्यूह से प्रतिव्यूह और उसका पुत्र दिवाकर हुआ है जो इस समय मे अयोध्या नगरी का राजा है ॥१४३॥ दिवाकर का पुत्र महान् यशवाला सहदेव होगा और सहदेव का उत्तराधिकारी पुत्र बृहदश्व होगा ॥१४४॥ उस बृहदश्व राजा का पुत्र भानुरथ होगा और उसका पत्र प्रतीताश्व होगा। प्रतीताश्व का पुत्र सुप्रतीत नाम वाला जन्म ग्रहण करेगा ॥१४५॥ उस सुप्रतीत का पुत्र सहदेव होगा और सहदेव का पुत्र सुनक्षत्र जन्म लेगा ॥१४६॥

किन्नरस्तु सुनक्षत्राद्भविष्यति परतप ।
भविता चान्तरिक्षस्तु किन्नरस्य सुतो महान् ॥१४७
अन्तरिक्षात्सुपर्णस्तु सुपर्णाच्चाप्यमित्रजित् ।
पुत्रस्तस्य भरद्वाजो धर्मी तस्य सुत स्मृत ।
पुत्र कृतञ्जयो नाम धर्मिरणा स भविष्यति ।
कृतञ्जयसुतो व्रातो तस्य पुत्रो रणञ्जय ॥१४८
भविता सञ्जयश्चापि वीरो राजा रणञ्जयात् ।
सञ्जयस्य सुत शाक्य शाक्याच्छुद्धोदनोऽभवत् ॥१४९
शुद्धोदनस्य भविता शाक्यार्थे राहुल स्मृत ।
प्रसेनजित्ततो भाव्य क्षुद्रको भविता तत ॥१५
क्षुद्रकात्क्षुलिको भाव्य क्षुलिकात्सुरथ स्मृत ।
सुमित्र सुरथस्यापि पन्त्यश्च भविता नृप ॥१५१

एते ऐक्ष्वाकवा प्रोक्ता भवितारः कलौ युगे ।
बृहद्वलान्वये जाता भवितार कलौ युगे ।
शूराश्च कृतविद्याश्च सत्यमन्धा जितेन्द्रिया ॥१५२

सुनक्षत्र का पुत्र किन्नर नामधारी परन्तप होगा । और फिर किन्नर का पुत्र बृहद् ही महान् अन्तरिक्ष होगा ॥१४७॥ अन्तरिक्ष से सुपर्ण नामक पुत्र जन्म लेगा और सुपर्ण का पुत्र अमित्रजित् नामधारी होगा । उसका पुत्र भरद्वाज और उससे यहाँ पर धर्मी नामक पुत्र होगा । फिर धर्मी का कृतञ्जय नाम वाला पुत्र समुत्पन्न होगा । कृतञ्जय का पुत्र व्रात नामक होगा और इसका पुत्र रणञ्जय नाम वाला जन्म ग्रहण करेगा ॥१४८॥ रणञ्जय से सञ्जय नाम का वीर राजा होगा । सञ्जय का पुत्र शाक्य होगा और शाक्य से शुद्धोदन नाम वाला हुआ था ॥१४९॥ शुद्धोदन शाक्यार्थ में राहुल नाम से कहे जाने वाला पुत्र होगा । उससे फिर प्रसेनजित् होगा और उस प्रसेनजित् से क्षुद्रक होगा ॥१५०॥ क्षुद्रक का पुत्र क्षुलिक होगा और क्षुलिक से सुरथ नाम से कहा जाने वाला पुत्र जन्म धारण करेगा । सुरथ से सुमित्र नामक अन्त में होने वाला राजा होगा ॥१५१॥ ये इतने इक्ष्वाकु के वंश में होने वाले बताये गये हैं जोकि आगे कलियुग में जन्म धारण कर शासन करेंगे । ये सब बृहद्बल के वंश में जन्म ग्रहण करेंगे और कलियुग में ही होंगे ये सभी राजा शूरवीर थे—कृतविद्य अर्थात् विद्या पढ़े हुए—ये सब सत्य सन्धा प्रतिज्ञा वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले थे ॥१५२॥

अत्रानुवंशश्लोकोऽयं भविष्यज्ञैरुदाहृत ।
इक्ष्वाकूणामयं वंश सुमित्रान्तो भविष्यति ।
सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्था प्राप्स्यति वै कलौ ।
इत्येतन्मानवं क्षेत्रमैलञ्च समुदाहृतम् ॥१५३
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधेयान्बृहद्रथान् ।
जरासन्धस्य ये वंशे सहदेवान्वये नृपा ॥१५४
अतीता वर्त्तमानाश्च भविष्याश्च तथा पुनः ।
प्राधान्यत प्रवक्ष्यामि गदतो मे निबोधत ॥१५५

सग्रामे भारते तस्मिन् सहदेवो निपातित ।
सोमाभिस्तस्य तनयो राजर्षि स गिरिव्रजे ॥१५६
पञ्चाशत तथाष्टौ च समा राज्यमकारयत् ।
श्रु तश्रवा चतु षष्टिसमास्तस्य सुतोऽभवद् ।
अयुतायुस्तु षड्विंश राज्य वर्षाण्यकारयत् ।
समा शत निरामित्रो मही भुक्त्वा दिवङ्गत ॥१५७
पञ्चाशत समा षट च सुकृत्तः प्राप्तवान्महीम् ।
त्रयोविंश बृहत्कर्मा राज्य वर्षाण्यकारयत् ॥१५८
सेनाजित्साम्प्रत चापि एता व भुज्यते समा ।
श्रु तञ्जयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥१५९
महाबाहुर्महाबुद्धिर्महाभीमपराक्रम ।
पञ्चत्रिंशत्तु वर्षाणि मही पालयिता नृप ॥१६०

यहाँ पर भविष्य के ज्ञाताओ के द्वारा यह अनुवश श्लोक उदाहृत किया गया है कि इक्ष्वाकुओ का यह वंश सुमित्र के अ त तक ही होगा । सुमित्र राजा को प्राप्त करके कलियुग मे संस्था को प्राप्त करेगा । यह इतना ऐल का मानव उदाहृत किया गया है ॥१५३॥ इसके आगे मागधेय बृहद्रथो का वर्णन करू गा जो सहदेव के अन्वय मे जरासन्ध के वश मे राजा थे ॥१५४॥ जो व्यतीत होगये और जो इस समय मे वर्त्तमान हैं तथा जो भविष्य मे राजा होंगे मैं इन सबको प्राधान्य रूप से बताऊ गा । बताने वाले मुझसे इन सबका ज्ञान प्राप्त करो ॥१५५॥ उस भारत सग्राम मे सहदेव निपातित होगया था । उसका पुत्र राजर्षि सोमाधि हुआ उसने गिरि व्रज मे अट्ठावन वर्ष पर्य त राज्य किया था फिर चौंसठ वर्ष तक उसका पुत्र श्रुतश्रवा नाम वाला हुआ । अयुतायु ने छब्बीस वर्ष राज्य किया था । निरामित्र सौ वर्ष तक राज्य करके दिवङ्गत हुआ था ॥१५६ १५७॥ पचास और छै छप्पन वर्ष तक सुकृत्त ने इस भूमि को प्राप्त किया था । तेईस वर्ष बृहत्कर्मा ने राज्य शासन किया था ॥१५८॥ इस समय सेनजित् इस भूमण्डल को भोग रहा है । श्रुतञ्जय चालीस वर्ष तक भविष्य मे

राज्य शासन करेगा ॥१५६॥ महान् बुद्धि वाला और महान् भीम पराक्रम वाला महाबाहु नृप पैंतीस वर्ष तक भूमि का पालक होगा ॥१६०॥

अष्टपञ्चाशत चाब्दान् राज्ये स्थास्यति वै शुचि ।
अष्टाविंशत्समा पूर्णा क्षेमो राजा भविष्यति ॥१६१
भुवतस्तु चतु षष्टीराज्य प्राप्स्यति वीर्य्यवान् ।
पञ्चवर्षाणि पूर्णानि धर्मनेत्रो भविष्यति ॥१६२
भोक्ष्यते नृपतिश्चैव ह्यष्टपञ्चाशत समा ।
अष्टात्रिंशत्समा राज्य सुव्रतस्य भविष्यति ॥१६३
चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दृढसेनो भविष्यति ।
त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि सुमति प्राप्स्यते तत ॥१६४
द्वाविंशतिसमा राज्य सुचलो भोक्ष्यते तत ।
चत्वारिंशत्समा राजा सुनेत्रो भोक्ष्यते तत ॥१६५
सत्यजित्पृथिवीराज्य त्र्यशीति भोक्ष्यते समा ।
प्राप्येमा वीरजिच्चापि पञ्चत्रिंशद्भविष्यति ॥१६६
अरिञ्जयस्तु वर्षाणि पञ्चाशत्प्राप्स्यते महीम् ।
द्वात्रिंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथा ॥१६७

शुचि नाम वाला राजा अट्ठावन वर्ष तक राज्य मे स्थित रहेगा और क्षेम नामधारी राजा अट्ठाईस वर्ष तक होगा ॥१६१॥ वीर्यवान् भुवत चौसठ वर्ष तक राज्य को प्राप्त करेगा। पूरे पाँच वर्ष तक धर्मनेत्र राजा रहेगा ॥१६२॥ अट्ठावन वर्ष तक नृपति इस भूमि का उपयोग करेगा। अड़तीस वर्ष तक सुव्रत का राज्य होगा ॥१६३॥ चालीस दश और आठ वर्ष तक दृढसेन राजा होगा। तेतीस वर्ष पर्यन्त फिर सुमति नाम वाला भूमि को प्राप्त करेगा ॥१६४॥ इसके उपरान्त बाईस वर्ष तक सुचल नाम वाला भूमि के शासन का उपभोग करेगा। चालीस वर्ष तक सुनेत्र भूमण्डल का भोग करेगा ॥१६५॥ सत्यजित् राजा तिरासी वर्ष पर्यन्त भूमि का भोग करेगा। फिर इस भूमि को प्राप्त करके पैंतीस वर्ष तक वीरजित् राजा होगा। १६६॥ अरिञ्जय राजा पचास वर्ष तक

इस भूमण्डल पर शासन करेगा। ये बत्तीस राजा बृहद्रथ नाम वाले इस भूमि पर होंगे ॥१६७॥

पूर्ण वर्षसहस्रं च तेषां राज्यं भविष्यति ।
बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतहोत्रेषु वर्तिषु ॥१६८
मुनिकः स्वामिनं हत्वा पुत्रं समभिषेक्ष्यति ।
मिषतां क्षत्रियाणां हि प्रद्योतो मुनिको बलात् ॥१६९
स वै प्रणतसामन्तो भविष्ये नयवर्जितः ।
त्रयोविंशत्समा राजा भविता स नरोत्तमः ॥१७०
चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः ।
विशाखयूपो भविता नृपः पञ्चाशती समाः ॥१७१
एकत्रिंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति ।
भविष्यति समा विंशत्तत्सुतो वर्त्तिवर्द्धनः ॥१७२
अष्टात्रिंशच्छतं भाव्या प्राद्योताः पञ्च ते सुताः ।
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनाको भविष्यति ॥१७३
वाराणस्यां सुतस्तस्य सम्प्राप्स्यति गिरिव्रजम् ।
शिशुनाकस्य वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥१७४
क्षत्रवर्णा सुतस्तस्य षट्त्रिंशच्च भविष्यति ।
ततस्तु विंशतिं राजा क्षेमवर्मा भविष्यति ॥१७५
अजातशत्रुर्भविता पञ्चविंशत्समा नृपः ।
चत्वारिंशत्समा राज्यं क्षत्रौजाः प्राप्स्यते ततः ॥१७६

पूरे सौ वर्ष पर्यन्त उनका राज्य होगा। बृहद्रथों के व्यतीत हो जाने पर और वीत होत्रों को समाप्त होने पर मुनिक स्वामी को मारकर पुत्र का अभिषेक करेगा। क्षत्रियों को हटाकर मुनिक बलपूर्वक राज्य को छीन लेगा ॥१६८-१६९॥ वह नयवर्जित प्रणत समस्त भविष्य में नरोत्तम तेईस वर्ष तक राजा होगा ॥१७०॥ फिर इसके उपरान्त पालक नाम वाला इस भूमि का राजा होगा। विशाखयूप नाम वाला पचास वर्ष तक राजा होगा ॥१७१॥ इक्तीस वर्ष तक यहाँ पर अजक का राज्य होगा। फिर उसके पुत्र वर्त्तिवर्द्धन का राज्य

बीस वर्ष तक रहेगा ॥१७२॥ वे पाँच प्राद्योत पुत्र अड़तीस सौ वर्ष तक होंगे फिर उनके समस्त यश को समाप्त कर शिशु नाक वाला राजा होगा ॥१७३॥ उसका पुत्र वाराणसी में गिरिव्रज को प्राप्त करेगा। शिशु नाक का राज्य चालीस वर्ष तक होगा ॥१७४॥ उसका पुत्र शक वर्ण छत्तीस वर्ष पर्यन्त राज्य करेगा। फिर इसके उपरान्त क्षेम वर्मा बीस वर्ष तक राज्य शासन करेगा ॥१७५॥ पच्चीस वर्ष तक इसके पश्चात् अजात शत्रु नाम धारी राजा रहेगा। फिर चालीस वर्ष पर्यन्त क्षत्रौजा इस राज्य को प्राप्त करेगा ॥१७६॥

अष्टाविंशत्समा राजा बिंबिसारो भविष्यति ।
पञ्चविंशत्समा राजा दर्शकस्तु भविष्यति ॥१७७
उदायी भविता तस्मात्त्रयस्त्रिंशत्समा नृप ।
स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम् ।
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति १७८
द्वाचत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्द्धन ।
चत्वारिंशत्त्रयञ्चैव महानन्दी भविष्यति ॥१७९
इत्येते भवितारो वै शैशुनाका नृपा दश ।
शतानि त्रीणि वर्षाणि द्विषष्टयभ्यधिकानि तु ॥१८०
शैशुनाका भविष्यन्ति तावत्कालं नृपा परे ।
एतैः सार्द्धं भविष्यन्ति राजानः क्षत्रबान्धवा ॥१८१
ऐक्ष्वाकवाश्चतुर्विंशत्पाञ्चाला पञ्चविंशति ।
कालकास्तु चतुर्विंशच्चतुर्विंशत्तु हैहया ॥१८२
द्वात्रिंशद्वै कलिङ्गास्तु पञ्चविंशत्तथा शका ।
कुरवश्चापि षड्विंशदष्टाविंशति मैथिला ॥१८३
शूरसेनास्त्रयोविंशद्वीतिहोत्राश्च विंशतिः ।
तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्व एव महीक्षित ॥१८४
महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कालसंवृत ।
उत्पत्स्यते महापद्म सर्वक्षत्रान्तरे नृप ॥१८५

वसुमित्र सुतो भाव्यो दशवर्षाणि पार्थिव ।
ततो भ्रक समा द्व तु भविष्यति सुतश्च व ॥१६८
भविष्यन्ति समास्तस्मात्तिस्र एव पुलिन्दका ।
राजा घोषसुतश्चापि वर्षाणि भविता त्रय ॥१६६
ततो व विक्रमित्रस्तु समा राजा तत पुन ।
द्वात्रिंशद्भविता चापि समा भागवतो नृप ॥२००
भविष्यति सुतस्तस्य क्षेमभू म समा दश ।
दशते तुङ्गराजानो भोक्ष्यन्तीमा वसुन्धराम् ॥२०१
शत पूर्ण दश द्व च तेम्य कि वा गमिष्यति ।
अपार्थिवसुदेव नु बाल्यादासनिन नृपम् ॥२०२
देवभूमिस्ततोऽन्यश्च शृङ्ग पु भविता नृप ।
भविष्यति समा राजा नव कण्ठायनस्तु स ॥२०३
भूतिमित्र सुतस्तस्य चतुर्विशद्भविष्यति ।
भविता द्वादश समास्तस्मान्नारायणो नृप ॥२०४

सेनानी पुष्य मित्र बृहद्रथ का उद्धार करके साठ वर्ष तक सदैव राज्य शासन करायेगा ॥१६६॥ पुष्यमित्र के पुत्र आठ वर्ष तक राजा होंगे । उनमें जो सबसे बड़ा है वह सात वर्ष तक राज्य का शासन करेगा ॥१६७॥ वसुमित्र पुत्र दश वर्ष तक इस भूमि का राजा होगा । इसके पश्चात् सुत भ्रक दो वर्ष तक शासन होगा ॥१६८॥ इससे तीन पुलिन्दक राजा होंगे । राजा घोष सुत तीन वर्ष तक रहेगा ॥१६६॥ इसके अनन्तर विक्रमित्र राजा होगा फिर भाग वत राजा बत्तीस वर्ष तक उपभोग करेगा ॥२ ॥ भागवत राजा का पुत्र क्षेम भूमि नाम वाला दश वर्ष पर्यन्त इस भूमण्डल का भोग करेगा । ये दश तुङ्ग नामधारी राजा इस वसुन्धरा का सुखोपभोग करेंगे ॥२ १॥ अथवा एक सौ बारह वर्ष तक यह वचन है व्यासश्री अपार्थिव सुदेव नृप की यह रहेगी ॥२ २॥ इसके पश्चात् एक अन्य देवभूमि नृप शृङ्गो में होगा । वह कण्ठायन राजा नौ वर्ष तक रहेगा ॥२ ३॥ उसका पुत्र भूतिमित्र होगा और वह चौबीस

वर्ष तक भूमि का शासन करेगा। उससे फिर नारायण नाम वाला राजा बारह वर्ष तक भूमि का भोग करेगा ॥२०४॥

सुशर्म्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति समा दश।
चतुरस्तुङ्गकृत्यास्ते नृपाः कण्ठायना द्विजा ॥२०५
भाव्या प्रणतसामन्ताश्चत्वारिंशच्च पञ्च च।
तेषां पर्य्यायकाले तु तरन्धा तु भविष्यति ॥२०६
कण्ठायनमथोद्धृत्य सुशर्म्माणं प्रसह्य तम्।
शृङ्गाणां चापि यच्छिष्ट क्षययित्वा बल तदा।
सिन्धुको ह्यन्ध्रजातीय प्राप्स्यतीमां वसुन्धराम् ॥२०७
त्रयोविंशत्समा राजा सिन्धुको भविता त्वथ।
अष्टौ भातश्च वर्षाणि तस्माद्दश भविष्यति ॥२०८
श्रीसातकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै महान्।
पञ्चाशत समा षट् च सातकर्णिर्भविष्यति ॥२०६
आपादवद्धो दश वै तस्य पुत्रो भविष्यति।
चतुर्विंशत्तु वर्षाणि षट् समा वै भविष्यति ॥२१०
भविता नेमिकृष्णस्तु वर्षाणां पञ्चविंशतिम्।
ततः संवत्सरं पूर्णं हालो राजा भविष्यति ॥२११

उसका पुत्र सुशर्मा नामधारी दश वर्ष तक राजा होगा। हे द्विजवृन्द! ये चार कण्ठायन तुङ्गकृत्य राजा होंगे ॥२०५॥ पैंतालीस प्रणत सामन्त होंगे। उनके पर्याय काल में तरन्धा होगा ॥२०६॥ कण्ठायन सुशर्मा को बलपूर्वक उद्धृत करके और शृङ्गों का जो भी कुछ शेष था उस बल को क्षीण करके आन्ध्र जाति वाला सिन्धुक नामक राजा इस वसुन्धरा को प्राप्त करेगा ॥२०७॥ इसके अनन्तर वह सिन्धुक तेईस वर्ष तक राज्य का शासक नृप होगा। फिर भात अठारह वर्ष तक रहेगा ॥२०८॥ उसका महान् पुत्र श्री सातकर्णि छप्पन वर्ष पर्यन्त राज्य-शासन करने वाला होगा ॥२०६॥ दश आपाद बद्ध उसका पुत्र होगा। वह तीस वर्ष तक यहाँ भूमि का राजा होगा ॥२१०॥ फिर नेमि कृष्ण नाम वाला पच्चीस वर्ष तक राजा रहेगा। फिर पूरे एक वर्ष तक 'हाल'—इस नाम वाला राजा होगा ॥२११॥

पञ्च सप्तक राजानो भविष्यन्ति महाबला ।
भाव्य पुत्रिकषेणस्तु समा सोऽप्येकविंशतिम् ॥२१२
सातकर्णिवर्षमेकं भविष्यति नराधिप ।
अष्टाविंशत्तु वर्षाणि शिवस्वामी भविष्यति ॥२१३
राजा च गौतमीपुत्र एकविंशत्समा नृपु ।
एकोनविंशति राजा यज्ञश्री सातकर्ण्यथ ॥२१४
षडेव भविता तस्माद्विजयस्तु समा नृप ।
दण्डश्री सातकर्णी च तस्य पुत्र समास्त्रय ॥२१५
पुलोवापि समा सप्त अन्येषाञ्च भविष्यति ।
इत्येते व नृपास्त्रिंशद् ध्रा भोक्ष्यन्ति ये महीम् ॥२१६
समा शतानि चत्वारि पञ्च षड वै तथैव च ।
अ ध्राणां संस्थिता पञ्च तेषां वंशा समा पुन ॥२१७
सप्तव तु भविष्यन्ति दशाभीरास्ततो नृपा ।
सप्त गर्दभिनश्चापि ततोऽथ दश व शका ॥२१८
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषारास्तु चतुर्दश ।
त्रयोदश गरुण्डाश्च मौना ह्यष्टादशाव तु २१९
अ ध्रा भोक्ष्यन्ति वसुधा शते द्व च शत च व ।
शतानि त्राण्यशीतिश्च भोक्ष्यन्ति वसुधा शका ॥२२०

पञ्च सप्तक महान् बलवान् राजा होवें । एक पुत्रिकषेण होगा वह भी एक और बीस वर्ष तक राजा रहेगा ॥२१२॥ सातकर्णि एक ही वर्ष तक नराधिप होगा । अट्ठाईस वर्ष तक शिव स्वामी राजा होगा ॥२१३॥ गौतमी पुत्र नाम वाला राजा मनुष्यों पर इक्कीस वर्ष पर्यन्त शासन करेगा । उन्नीस वर्ष तक राजा यज्ञ श्री और इसके अनन्तर सातकर्णि होगा ॥२१४॥ उससे फिर छै ही राजा होंगे । विजय—दण्ड श्री और सातकर्णि उसके ये तीन पुत्र होवें ॥२१५॥ सात वर्ष तक पुलोवापि होगा और दूसरों का भी होगा । ये तीस अन्ध्र राजा इस मही का भोग करेंगे ॥२१६॥ चार सौ ग्यारह उन अन्ध्रों के समान पाँच वंश संस्थित होंगे ॥२१७॥ सात ही दशाभीरक नृप होंगे ।

सात गद भी होंगे फिर इसके पश्चात् दश शक होंगे ।।२१८।। आठ यवन राजा होंगे फिर चौदह तुषाद नाम वाले राजा होंगे । तेरह गरुण्ड और उनके पश्चात अठारह मौर होंगे ।।२१६।। तीन सौ वर्ष तक अन्ध्र जाति वाले लोग उस वसुधा का भोग करेंगे और फिर तीनसौ अस्सी वर्ष तक शक जाति वाले उस वसुन्धरा का भोग करेंगे ।।२२०।।

अशीतिश्चैव वर्षाणि भोक्तारो यवना महीम् ।
पञ्चवर्षशतानीह तुषाराणां मही स्मृता ।।२२१
शतान्यर्द्धं चतुर्थानि भवितारस्त्रयोदश ।
गरुण्डा वृषलैः सार्द्धं भाव्यान्याम्लेच्छजातय ।।२२२
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति म्लेच्छा एकादशैव तु ।
तच्छन्नेन च कालेन तत कोलिकिला वृषा ।।२२३
तत. कोलिकिलेभ्यश्च विन्ध्यशक्तिर्भविष्यति ।
समा षण्णवति ज्ञात्वा पृथिवी च समेष्यति ।।२२४
वृषान् वै दिशकांश्चापि भविष्यांश्च निबोधत ।
शेषस्य नागराज्यस्य पुत्र स्वरपुरञ्जय ।।२२५
भोगी भविष्यते राजा नृपो नागकुलोद्वह ।
सदाचन्द्रस्तु चन्द्रांशो द्वितीयो नखवास्तथा ।।२२६
धनधर्मा ततश्चापि चतुर्थो विश्वज स्मृत ।
भूतिनन्दस्ततश्चापि वैदेशे तु भविष्यति ।।२२७
अङ्गाना नन्दनस्यान्ते मधुनन्दिर्भविष्यति ।
तस्य भ्राता यवीयास्तु नाम्ना नन्दियशा किल ।।२२८
तस्यान्वये भविष्यन्ति राजानस्ते त्रयस्तु वै ।
दौहित्र शिशुको नामपुरिकाया नृपोऽभवत् ।।२२९
विन्ध्यशक्तिसुतश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान् ।
भोक्ष्यन्ति च समा षष्टि पुरी काञ्चनकाञ्च वै ।।२३०
यक्ष्यन्ति वाजपेयैश्च समाप्तवरदक्षिणैः ।
तस्य पुत्रास्तु चत्वारो भविष्यन्ति नराधिपा २३१

विन्ध्यकाना कुलेऽतीते नृपा व वाह्लिकास्त्रय ।
सुप्रतीको नभीरस्तु समा भोक्ष्यति त्रिंशतिम् ॥२३२

अस्सी वर्ष तक यवन लोग इस मही को भोगेंगे। यहाँ पाँच सौ वर्ष तक तुसारो की यह भूमि कही जायगी ॥२२१॥ अद्ध चतुर्थ सौ वर्ष तक तेरह मरुण्ड वृपलों के साथ होंगे जो अन्य म्लेच्छ जाति वाले होंगे ॥२२२॥ ग्यारह म्लेच्छ तीन सौ वर्ष तक इस भूमि का भोग करेंगे। और उनके अन्तकाल में कोलिकिल वृप होंगे ॥२२३॥ फिर उन कोलिकिलो से विन्ध्य शक्ति होगा। छयानवे वर्ष तक पृथिवी को ज्ञान प्राप्त करके आयेगा ॥२२४॥ अब नृपों को और दिशको को जोकि आगे होने वाले हैं भली भाँति समझ लो। नागराज शेष का पुत्र स्वरपुरञ्जय नाग कुलका उद्वहन करने वाला भोग करने वाला राजा होगा। चन्द्रांश सदाचन्द्र और दूसरा नखवान् है ॥२२५॥ इसके बाद धनधर्मा और चौथा विंशज कहा गया है। इसके पश्चात् भूतिनन्द जोकि वदेश में होगा ॥२२७॥ अंगो के नन्दन के अन्त मे मधुनन्दि राजा होगा। उसका छोटा भाई नन्दियश नाम वाला है ॥२२८॥ उसके अन्वय मे (वश मे) तीन राजा होंगे। शिशुक नाम वाला दौहित्र तुरिका मे राजा होगा ॥२२९॥ विन्ध्य शक्ति का पुत्र वीर्य वाला प्रवीर नामधारी होगा और साठ वर्ष तक काञ्चनका पुरी का भोग करेंगे ॥२३ ॥ व श्रष्ठ दक्षिणा देकर समाप्त करने वाले वाजपेयो के द्वारा यजन करेंगे। उसके चार पुत्र नराधिप होंगे ॥२३१॥ विन्ध्यकों के कुल के व्यतीत होजाने पर तीन बाह्लीक राजा होंगे। सुप्रतीक नभीर तो तीस वर्ष तक पृथ्वी का भोग करेगा ॥२३२॥

शक्यमा नाम वै राजा माहिषीना महीपति ।
पुष्पमित्रा भविष्यन्ति पट्टमित्रास्त्रयोदश ॥२३३
मेकलाया नृपा सप्त भविष्यन्ति च सत्तमा ।
कोमलायन्तु राजानो भविष्यन्ति महाबला ॥२३४
मेधा इति समाख्याता बुद्धिमन्तो नवव तु ।
नैषधा पार्थिया सर्व्वे भविष्यन्त्यामनुक्षयात् ॥२३५

नलवंशप्रसूतास्ते वीर्यवन्तो महाबला ।
मागधानां महावीर्यो विश्वस्फानिर्भविष्यति ॥२३६
उत्साद्य पार्थिवान् सर्व्वान्सोऽन्यान् वर्णान् करिष्यति ।
कैवर्त्तान् पञ्चकांश्चैव पुलिन्दान् ब्राह्मणास्तथा ॥२३७
स्थापयिष्यन्ति राजानो नानादेशेषु तेजसा ।
विश्वस्फानिर्महासत्त्वो युद्धे विष्णुसमो बली ॥२३८
विश्वस्फानिर्नरपति क्लीबाकृतिरिवोच्यते ।
उत्सादयित्वा क्षत्रन्तु क्षत्रमन्यत् करिष्यति ॥२३६
देवान् पितृंश्च विप्रांश्च तर्पयित्वा सकृत्पुन ।
जाह्नवीतीरमासाद्य शरीरं यस्यते बली ॥२४०
सन्यस्य स्वशरीरन्तु शक्रलोक गमिष्यति ।
नवनाकास्तु भोक्ष्यन्ति पुरी चम्पावती नृपाः ॥२४१

धवयमा नाम वाला राजा माहिषियों का महीपति होगा । पुष्पमित्र होंगे और तेरह पट्टमित्र होंगे ॥२३३॥ मेकला मे सात श्रेष्ठतम राजा होंगे । कोमला में तो महान् बल वाले राजा होंगे ॥२३४॥ मेघ इस नाम से समाख्यात होने वाले नौ बुद्धिमान् राजा होंगे । मनुक्षय पर्यन्त सब नैषध पार्थिव होंगे ॥२३५॥ ये सब नल के वंश में उत्पन्न वाले महान् बलवान् और वीर्य वाले राजा होंगे । मागधों में विश्व स्फानि नाम वाला महान् वीर्य वाला राजा होगा ॥२३६॥ वह समस्त पार्थिवों को उत्सादित करके अन्य वर्णों को करेगा । कैवर्त्तों को-पञ्चकों को-पुलिन्दकों तथा ब्राह्मणों को अनेक देशों में तेज से राजाओं को स्थापित करेंगे । विश्वस्फानि महान् सत्त्व वाला और युद्ध में विष्णु के समान बली था ॥२३७-२३८॥ विश्वस्फानि जो राजा होगा वह क्लीब के समान आकृति वाला कहा जाता है । क्षत्र को उत्सादित करके अन्य क्षत्र को करेगा ॥२३६॥ यह बली देवों को-पितरों को और ब्राह्मणों फिर एक बार तृप्त करके अन्त में गङ्गा के तट पर पहुँच कर शरीर को त्याग करेगा ॥२४०॥ अपने शरीर का त्याग करके फिर इन्द्र के लोक को चला जायगा । जब तक राजा चम्पावती पुरी का भोग करेंगे ॥२४१॥

मथुराञ्च पुरी रम्या नागा भोक्ष्यन्ति सप्त वै ।
अनुगङ्गं प्रयागञ्च साकेत मगधास्तथा ।
एताञ्जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजा ॥२४२
निषाद् यदुकांश्चैव शशीतान् कालतोयकान् ।
एताञ्जनपदान् सर्व्वान् भोक्ष्यन्ति मणिधान्यजा ॥२४३
कोशलांश्च ध्रपौण्ड्रांश्च ताम्रलिप्तान् ससागरान् ।
चम्पा चैव पुरी रम्या भोक्ष्यन्ति देवरक्षिताम् ॥२४४
कलिङ्गा महिषाश्चैव महेन्द्रनिलयाश्च ये ।
एताञ्जनपदान् सर्व्वान् पालयिष्यति वै गुह ॥२४५
स्त्रीराष्ट्रं भक्ष्यकाश्चैव भोक्ष्यते कनकाह्वय ।
तुल्यकाल भविष्यन्ति सर्वे ह्येते महीक्षित ॥२४६
अल्पप्रसादा ह्यनृता महाक्रोधा ह्यधार्मिका ।
भविष्यन्तीह यवना धर्मत कामतोऽर्थत ॥२४७
नैव मूर्द्धाभिषिक्तास्ते भविष्यन्ति नराधिपा ।
युगदोषदुराचारा भविष्यन्ति नृपास्तु ते ॥२४८
स्त्रीणां बलवधेनैव हत्वा चैव परस्परम् ।
भोक्ष्यन्ति कलिशेषे तु वसुधां पार्थिवास्तथा ॥२४९

परम रम्य मथुरा नगरी को सात नाग उपभोग करेंगे । गङ्गा के साथ साथ प्रयाग-साकेत तथा मगध देशों को—इन जनपदों को सबको गुप्त वंश में उत्पन्न होने वाले नृप भोग करेंगे ॥२४२॥ मणिधान्यज लोग निषध देशों को—यदुकों को—शशीनों को—काल तोयकों को—इन समस्त जनपदों को भोग करेंगे कलिङ्ग—महिष और जो महेन्द्र निलय हैं वे कोशल देशों को—आन्ध्र पौण्डों को—ताम्रलिप्तों को सागरों के सहित तथा सुरम्य चम्पा नगरी जोकि देवों के द्वारा सुरक्षित है भोग करते इन समस्त जनपदों को गुह पालन करेगा ॥२४४ २४५॥ कनक नाम वाला स्त्री राष्ट्र और भक्ष्यकों का भोग करेगा । ये समस्त राजा तुल्य काल में ही होंगे ॥२४६॥ यहाँ पर धर्म से और काम से अल्प प्रसाद वाले—झूठे—महान् क्रोध करने वाले और अधार्मिक यवन होंगे ॥२४७॥ ये राजा मूर्द्धा

भिषिक्त नहीं होंगे। ये समस्त नृप युग के दोषों से दुराचार वाले होंगे ॥२४८॥ ये समस्त राजा स्त्रियों का बलपूर्वक वध के द्वारा आपस में हनन करके कलियुग के शेष में वसुधा का भोग करेंगे ॥२४९॥

उदितोदितवंशास्ते उदितास्तमितास्तथा ।
भविष्यन्तीह पर्याये कालेन पृथिवीक्षित ॥२५०
विहीनास्तु भविष्यन्ति धर्मतः कामतोऽर्थतः ।
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाचाराश्च सर्वशः ॥२५१
विपर्ययेन वर्त्तन्ते नाशयिष्यन्ति वै प्रजा ।
लुब्धानृतरताश्चैव भवितारस्तदा नृपा ॥२५२
तेषां व्यतीते पर्याये बहुस्त्रीके युगे तदा ।
लवाल्लवं भ्रश्यमाना आयूरूपबलश्रुतं ॥२५३
तथा गतास्तु वै काष्ठां प्रजासु जगतीश्वराः ।
राजानः सम्प्रणश्यन्ति कालेनोपहतास्तदा ॥२५४
कल्किनोपहताः सर्वे म्लेच्छा यास्यन्ति सर्वशः ।
अधार्मिकाश्च तेऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैव सर्वशः ॥२५५
प्रनष्टे नृपशब्दे च सन्ध्याश्लिष्टे कलौ युगे ।
किञ्चिच्छिष्टाः प्रजास्ता वै धर्मे नष्टेऽपरिग्रहाः ॥२५६

समय के प्रभाव से राजा लोग उदितोदित वंश वाले तथा उदितास्तमित यहाँ पर्याय में होंगे ॥२५०॥ ये समस्त काम से और अर्थ से विहीन होंगे। उनके द्वारा विशेष रूप से मिश्रित म्लेच्छों के समान आचार करने वाले सभी प्रकार से दूषित जनपद हो जाँयगे ॥२५१॥ ये सभी विपरीत व्यवहार करते हैं तथा हर प्रकार से प्रजाओं का नाश करेंगे। उस समय में राजा लोग लोभी और मिथ्या में रति करने वाले हो जाँयगे ॥२५२॥ उनके पर्याय के व्यतीत हो जाने पर और उस समय में बहुत स्त्रियों वाले युग में क्षण से क्षण में आयु-रूप-बल और श्रुत सभी भ्रश्यमान हो जायगे ॥२५३॥ इस प्रकार से प्रजाओं के विषय में परम सीमा को प्राप्त हुए राजा लोग उस समय कालवश सब उपहृत होते हुए नष्ट हो जाँयगे ॥२५४॥ समस्त म्लेच्छगण कल्कि के द्वारा सब

ओर से उपहृत होंगे। वे सभी परम अधार्मिक और सब तरह से पाखण्ड युक्त होंगे ॥२५५॥ कलियुग के सन्ध्या क्लिष्ट होने पर नृप—यह शब्द ही प्रणष्ट हो जायगा जो कुछ थोड़ी सी प्रजा शेष रहेगी वह भी धर्म के नष्ट हो जाने पर बिना परिग्रह वाली हो जायगी ॥२५६॥

असाधना हृताश्वासा व्याधिशोकेन पीडिता।
अनावृष्टिहताश्च व परस्परवधेन च ॥२५७
अनाथा हि परित्रस्ता वार्तामुत्सृज्य दुःखिताः।
त्यक्त्वा पुराणि ग्रामांश्च भविष्यन्ति वनौकस ॥२५८
एव नृपेषु नष्टेषु प्रजास्त्यक्त्वा गृहाणि तु।
नष्टे स्नेहे दुरापन्ना भ्रष्टस्नेहा सुहृज्जना ॥२५९
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा सङ्कर घोरमास्थिता।
सरित्पर्वतसेविन्यो भविष्यन्ति प्रजास्तदा ॥२६०
सरित सागरानूपान् सेवन्ते पर्वतानि च।
अङ्गान् कलिङ्गान् वङ्गांश्च काश्मीरान् काशिकोशलान् ॥२६१
ऋषिकान्तगिरिद्रोणी सश्रयिष्यन्ति मानवा।
कृत्स्न हिमवत पृष्ठ कूल हि लवणाम्भस ॥२६२
अरण्यान्यभिपत्स्यन्ति ह्यार्या म्लेच्छजन सह।
मृगमीनैर्विहङ्गैश्च श्वापदस्तस्नुभिस्तथा।
मधुशाकफलमूलवर्त्तयिष्यन्ति मानवा ॥२६३

समस्त प्रजा साधनों से शून्य—हृताश्वास और व्याधि तथा शोक से परम पीड़ित—वर्षा के बिल्कुल ही अभाव होने के कारण हत तथा आपस में ही एक-दूसरों के वध करने में अनाथ-भयभीत-रोगी का त्याग करके अत्यन्त ही दुःखित प्रजाजन नगरों का तथा ग्रामों का त्याग करके वन में निवास करने वाले जंगली जसे हो जायँगे ॥२५७ २५८॥ इस प्रकार से समस्त नृपों के नष्ट हो जाने पर प्रजा अपने अपने घरों को त्याग करके स्नेह के नष्ट हो जाने पर दुरापन्न—भ्रष्ट स्नेह और सुहृज्जनों से रहित हो जायगी ॥२५९॥ वर्णों तथा आश्रमों से परिभ्रष्ट होते हुए घोर सङ्कट अवस्था में आस्थित नदी तथा पर्वतों

के सेवन करने वाली उस समय समस्त प्रजा हो जायगी। २६०।। मनुष्य नदियों को–सागरों को–अनूपों को और पर्वतों को सेवन करते हैं। अङ्ग–वङ्ग–कलिङ्ग काश्मीर–काशि कोशलों को सेवन करते हैं ।।२६१।। तथा मानव ऋषिकान्त गिरि द्रोणी का आश्रय ग्रहण करेंगे। पूरा हिमवान् पर्वत का पृष्ठ भाग तथा क्षार समुद्र का तट और अरण्यों को आर्य लोग म्लेच्छों के साथ चले जायेंगे। और मानव मृग–मीन–विहङ्ग तथा श्वापद तथा तक्षुओं से एवं मधु–शाक–फल–मूलों से अपना उदरपूर्ति का निर्वाह करेंगे ।।२६२ २६३।।

चीर पर्णञ्च विविध वल्कलान्यजिनानि च।
स्वयं कृत्वा विवस्त्यन्ति यथा मुनिजना स्तथा ।।२६४
बीजान्नानि तथा निम्नेष्वीहन्त काष्ठशङ्कुभि ।
अजैडक खरोष्ट्रञ्च पालयिष्यन्ति यत्नत ।।२६५
नदीर्वत्स्यन्ति तोयार्थे कूलमाश्रित्य मानवा ।
पार्थिवान् व्यवहारेण विबाधन्त परस्परम् ।२६६
बहुमन्या प्रजाहीना शौचाचारविवर्जिता ।
एव भविष्यन्ति नरास्तदावर्म्मे व्यवस्थिता ।।२६७
हीनाद्धीनास्तथा धर्म्मान् प्रजा समनुवर्त्तते ।
आयुस्तदा त्रयोविंश न कश्चिदतिवर्त्तते ।।२६८
दुर्वला विषयग्लाना जरया सपरिप्लुता ।
पत्रमूलफलाहाराश्चीरकृष्णाजिनाम्बरा ।।२६९

चीर–पर्ण (पत्ते) विविध प्रकार की पेड़ों की छाल और चमड़ों को स्वयं काट कर मुनिजनों की भाँति धारण करेंगे ।।२६४।। बीजान्नों को निम्न भागों काष्ठ तथा शकुओं से इच्छा करते हुए अर्थात् निकाल कर प्राप्त करने की चेष्टा करते हुए बकरी–भेड़–गधा ऊँटों को बड़े यत्न से पालेंगे ।।२६५।। मानव जल के प्राप्त करने के लिए नदियों के किनारों के निकट आश्रय ग्रहण कर वास किया करेंगे। व्यवहार ऐसा होगा कि उसके द्वारा परस्पर में राजाओं को विशेष बाधा पहुँचायेंगे ।।२६६।। अपने आपको बहुत कुछ मानने वाले–सन्तति से हीन और शौच (शुद्धि) और आचार से रहित अधर्म में पूर्ण रूप से व्यव-

स्थित रहने वाले ऐसे ही उस समय में मनुष्य हो जाँयगे । ।२६७।। उस समय में प्रजा हीन से भी हीन धर्मों का समनुवर्त्तन करेंगे । उस समय में तेईस वर्ष की आयु को कोई भी पार नहीं करेंगे अर्थात् परमायु इतनी कम हो जायगी ।।२६८।। मनुष्य उस समय में अत्यन्त कमजोर हो जाँयगे और वह ऐसा भीषण समय आयेगा कि सभी विषयों में लिप्त और जरा से (वाद्ध वय से) सपरिप्लुत होंगे । पत्र-फल और मूलों के आहार वाले होंगे तथा चीर-कतीर और कृष्णाजिन के वस्त्र वाले हो जाँयगे ।।२६९।।

वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्तश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् ।
एतत्कालमनुप्राप्ता प्रजा कलियुगान्तके ।।२७०
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षसहस्रके ।
निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्द्ध कलियुगेन तु ।
ससन्ध्यांशे तु निःशेषे कृतं वै प्रतिपत्स्यते ।।२७१
यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ।
एकराशौ भविष्यन्ति तदा कृतयुगं भवेत् ।।२७२
एष वंशक्रमः कृत्स्नः कीर्त्तितो वो यथाक्रमम् ।
अतीता वर्त्तमानाश्च तथवानागताश्च ये ।।२७३
महादेवाभिषेकात्तु जन्म यावत्परिक्षित ।
एतद्वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम् ।।२७४
प्रमाणं वै तथा चोक्तं महापद्मान्तरं च यत् ।
अन्तरं तच्छतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समाः स्मृताः ।।२७५
एतत्कालान्तरं भाव्या अन्ध्रान्ता ये प्रकीर्त्तिताः ।
भविष्यैस्तत्र सङ्ख्याता पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ।।२७६
सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् ।
सप्तविंशैः शतैर्भाव्या अन्ध्राणां ते त्वया पुनः ।।२७७
सप्तविंशतिपर्य्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम् ।
सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया सङ्ख्यया स्मृतम् ।।२७८

अपनी वृत्ति (रोजी) के लिये अत्यन्त लालायित होते हुए पृथ्वी पर विचरण किया करेंगे। कलियुग के अन्त में समस्त प्रजा ऐसा समय प्राप्त करने वाले होंगे ॥२७०॥ दिव्य एक सहस्र वर्ष वाले कलियुग के क्षीण होजाने पर कलियुग के साथ ही सब नि शेष हो जायगे। सन्ध्यांश के सहित नि शेष होजाने पर फिर कृतयुग की प्राप्ति होगी ॥२७१॥ जिस समय में चन्द्र और सूर्य तथा तिष्य और बृहस्पति एक ही दिन में भर जायगे तब कृतयुग का प्रारम्भ होगा ॥२७२॥ मैंने यह वंश का क्रम आप लोगों के सामने यथाक्रम वर्णित कर दिया है। जो व्यतीत हो चुके हैं और वर्त्तमान है तथा जो अनागत अर्थात् भविष्य में होने वाले हैं सबका पूरा वर्णन कर दिया है ॥२७३॥ जन्म को परिक्षित महादेव के अभिषेक से जितना भी समय है वह एक सहस्र पचास वर्ष जानना चाहिये ॥२७४॥ इसका प्रमाण महापद्मान्तर में कहा गया है वह अन्तर आठसौ छत्तीस वर्ष कहा गया है ॥२७५॥ यह कालान्तर में जो अन्धान्त कहे गये हैं वे होंगे। वहाँ पर होने वाले श्रुतर्षि पुराणों के ज्ञाताओं के द्वारा सख्यात हुए है ॥२७६॥ उस समय में सप्तर्षियों ने वे प्रतीप राजा सौ कहे हैं और आपने अन्ध्रो के सत्ताईस सौ होने वाले बताये हैं ॥२७७॥ सप्तविंशति पर्यन्त पूरे नक्षत्र मण्डल में पर्याय से सौ-सौ सप्तर्षिगण रहा करते हैं। यह युग दिव्य सख्या के द्वारा सप्तर्षियों का कहा गया है ॥२७८॥

सा सा दिव्या स्मृता पद्दिव्याह्नाश्चैव सप्तभि ।
तेभ्य प्रवर्त्तते कालो दिव्य सप्तर्षिभिस्तु तै ॥२७९
सप्तर्षीणान्तु ये पूर्वा दृश्यन्ते उत्तरादिशि ।
ततो मध्येन च क्षेत्र दृश्यते यत्सम दिवि ॥२८०
तेन सप्तर्षयो युक्ता ज्ञेया व्योम्नि शत समा ।
नक्षत्राणामृषीणाञ्च योगस्यैतन्निदर्शनम् ॥२८१
सप्तर्षयो मघायुक्ता. काले पारिक्षिते शतम् ।
अन्ध्रांशे स चतुर्विंशे भविष्यन्ति मते मम ॥२८२
इमास्तदा तु प्रकृतिर्व्यापत्स्यन्ति प्रजा भृशम् ।
अनृतोपहृता सर्वा धर्मत. कामतोऽर्थत ॥२८३

श्रौतस्मार्ते प्रशिथिले धर्मे वर्णाश्रमे तदा ।
सङ्कर दुर्बलात्मान प्रतिपत्स्यन्ति मोहिता ॥२८४
ससक्ताश्च भविष्यन्ति शूद्रा सार्द्ध द्विजातिभि ।
ब्राह्मणा शूद्रयष्टार शूद्रा व मन्त्रयोनयः ॥२८५

वह–वह दिव्य पढि कही गई है और सातो के द्वारा दिव्याह्न कहे गये है। उन सप्तर्षियो के द्वारा दिव्यकाल प्रवृत्त होता है ॥२७६॥ सप्तर्षियो के पहिले उत्तर दिशा मे जो दिखलाई देते हैं और उसके मध्य से जो दिव म क्षेत्र दिखलाई देता है ॥२८ ॥ उससे आकाश मे सौ वर्ष युक्त सप्तर्षिगण जानने चाहिये। और ऋषियो का तथा नक्षत्रो का जो योग है उसका यही निदर्शन होता है ॥२८१॥ पारिक्षित काल मे मघा से युक्त सौ सप्तर्षिगण हैं। वह मेरे मत मे चौबीसवें अन्ध्राश मे होगे ॥२८२॥ उस समय ये प्रकृति बहुत अधिक प्रजा को प्राप्त करेगी। धर्म से और काम से तथा अर्थ से सभी प्रजा अनृत (मिथ्या) से उपहत होगी ॥२८३॥ उस समय मे श्रौत (वदिक) तथा स्मार्त वर्णों और आश्रमो के धर्मों के विशेष रूप से शिथिल होजाने पर दुर्वल आत्मा वाले एव मोहको प्राप्त होजाने वाले मनुष्य सङ्करता को प्राप्त हो जायगे ॥२८४॥ शूद्र लोग द्विजातियो के साथ ससक्त हो जायगे। ब्राह्मण लोग तो शूद्रयष्टा हो जायगे और शूद्र लोग मन्त्रयोनि वाले हो जायगे ॥२८५॥

उपस्थास्यन्ति तात् विप्रास्तदा वै वृत्तिलिप्सव ।
लव लव भ्रस्यमाना प्रजा सर्वा क्रमेण तु ॥२८६
क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये ।
यस्मिन् कृष्णो दिव यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने ॥२८७
प्रतिपन्न कलियुगस्तस्य सङ्ख्या निबोधत ।
सहस्राणां शतानीह त्रीणि मानुषसङ्ख्यया ।
षष्टि चव सहस्राणि वर्षाणामुच्यते कलि ॥२८८
दिव्ये वर्षसहस्र तु तत्सन्ध्याश प्रकीर्तितम् ।
नि शेषे च तदा तस्मिन् कृत वै प्रतिपत्स्यते ॥२८९

ऐल इक्ष्वाकुवंशश्च सह भेदैं प्रकीर्त्तितौ ।
इक्ष्वाकोस्तु स्मृत क्षत्र सुमित्रान्त विवस्वत ॥२६०
ऐल क्षत्र क्षेमकान्त सोमवशविदो विदु. ।
एते विवस्वत पुत्रा. कीर्त्तिता कीर्त्तिवर्द्धनाः ॥२६१
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैवान्वये स्मृता ॥२६२
युगे युगे महात्मान समतीता सहस्रश ।
बहुत्वान्नामधेयाना परिसख्या कुले कुले ॥२६३

विप्रगण अपनी वृत्ति के लालच मे रहने वाले होते हुए उस समय मे उन शूद्रो के समीप मे जाकर स्थित होगे । क्षण-क्षण मे अपने कर्त्तव्य से भ्रष्ट होते हुए समस्त प्रजा जन क्रम से क्षय को प्राप्त होगे जो भी उस युग के क्षय मे क्षीण होने से शेप रह जायगे । जिस दिन मे श्रीकृष्ण अन्तर्हित होकर दिव-लोक को गये उसी दिन और उसी समय मे कलियुग प्रतिपन्न होगया अब उसकी सख्या को आप लोग जान लो । मानुप सख्या से कलियुग तीन सौ हजार अर्थात् तीन लाख साठ हजार वर्ष की कही जाती है ॥२८६-२८७-२८८॥ दिव्य मे एक सहस्र वर्ष उसका सन्ध्याश कहा गया है । फिर उस समय उसके नि शेष मे कृतयुग प्राप्त हो जायगा ॥२८९॥ ऐल वश और इक्ष्वाकु का वश भेदो के सहित प्रकीर्त्तित किये गये हैं । विवस्वान् इक्ष्वाकु का क्षत्र सुमित्र के अन्त तक कहा गया है ॥२९०॥ ऐल क्षत्रिय वश को सोमवश के ज्ञाता लोग क्षेमक के अन्त तक जानते हैं । ये विवस्वान् के कीर्त्ति बढाने वाले पुत्र कहे गये हैं ॥२९१॥ अतीत अर्थात् जो पहिले हो चुके है, वर्त्तमान जो इस समय मे मौजूद है और अनागत जो आगे भविष्य मे होने वाले है ऐसे ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र वश मे कहे गये है ॥२९२॥ युग-युग मे महान् आत्मा वाले सहस्रो ही हुए हैं । नामो के अधिक होने से कुल-कुल में परि सख्या है ॥२९३॥

पुनरुक्ता बहुत्वाच्च न मया परिकीर्त्तिता ।
वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् निमिवश समाप्यते ॥२९४

एवायान्तु युगाख्याया यत क्षत्र प्रपत्स्यते ।
तथा हि कथयिष्यामि गदतो मे निबोधत ॥२६५
देवापि पौरवो राजा इक्ष्वाकाश्च व यो मत ।
महायोगबलोपेत कलापग्राममास्थित ॥२६६
सुवर्चा सोमपुत्रस्तु इक्ष्वाकास्तु भविष्यति ।
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ चतुर्विशे चतुयु गे ॥२६७
न च विंशे युगे सोमवशस्यादिभविष्यति ।
देवापिरसपनस्तु ऐलादिभविता नृप ॥२६८
क्षत्रप्रावर्त्तको ह्य तौ भविष्येते चतुयु गे ।
एव सवत्र विज्ञ य सन्तानार्थे तु लक्षणम् ॥२९९
क्षोणे कलियुगे तस्मिन् भविष्ये तु कृते युगे ।
सप्तर्षिभिस्तु तै साद्ध माद्य त्रेतायुगे पुन ॥३००
गोत्राणा क्षत्रियाणाञ्च भविष्येत प्रवत्तकौ ।
द्वापराश न तिष्ठन्ति क्षत्रिया ऋषिभि सह ॥३०१

बहुत होने के कारण से पुनरुक्ती को मैंने नही कहा है। इस वैवस्वत मन्वन्तर मे निमि का वश समाप्त होजाता है ॥२६४॥ आने वाली युगाख्या मे जहाँ से क्षत्र प्रपत्तित होगा उसी प्रकार से उसको मैं कहूँगा। बतलाने वाले मुझसे उसका आपलोग ज्ञान प्राप्त करें ॥२६५॥ देवापि पौरव राजा था जो इक्ष्वाकु का माना गया है। वह महान् बल से युक्त और कलाप ग्राम मे आस्थित था ॥२६६॥ सुन्दर वर्चा वाला सोमपुत्र इक्ष्वाकु से होगा। ये दोनो चतुयु ग मे जो कि चौबीसवाँ है क्षत्रियो के प्रणेता होगे ॥२६७॥ बीसवें युग मे सोमवश का आदि नही होगा। देवापि असपत्न अर्थात् शत्रु रहित है ऐलादि नृप होगा ॥२६८॥ ये दोनो क्षत्र के प्रावत्तक चारो युगो मे होगे। इस प्रकार से सर्वत्र सन्तान के अर्थ मे लक्षण जानना चाहिए ॥२६९॥ उस कलियुग के क्षीण होजाने पर और कृतयुग के होने वाले होने पर आद्य त्रेता युग मे पुन उन सप्तर्षियो के साथ गोत्रो के और क्षत्रियो के ये दोनो प्रवत्तक होगे। द्वापरांश मे ऋषियो के साथ क्षत्रिय नही रहते हैं ॥३० ३ १॥

काले कृतयुगे चैव क्षीणे त्रेतायुगे पुन ।
बीजार्थन्ते भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्य वै पुन ॥३०२
एवमेव तु सर्वेषु तिष्ठन्तीह्यान्तरेषु वै ।
सप्तर्षयो नृपै सार्द्धं सन्तानार्थं युगे युगे ॥३०३
क्षत्रस्यैव समुच्छेद सम्बन्धो वै द्विजै स्मृतः ।
मन्वन्तराणां सप्तानां सन्तानाश्च श्रुताश्च ते ३०४
परम्परा युगानाञ्च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भव ।
यथा प्रवृत्तिस्तेषां वै प्रवृत्तानां तथा क्षय ॥३०५
सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुष्ट्वाक्षयन्तु ते ।
एतेन क्रमयोगेन ऐलेक्ष्वाक्वन्वया द्विजा ॥३०६
उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणे कलौ पुनः ।
अनुयान्ति युगाख्या तु यावन्मन्वन्तरक्षय ॥३०७
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते ।
कृते वंशकुला सर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ।
द्विवंशकरणार्थं व कीर्त्तयिष्ये निबोधत ॥३०८
ऐलस्येक्ष्वाकुनन्दस्य प्रकृति परिवर्त्तते ।
राजान श्रेणिबद्धास्तु तथान्ये क्षत्रिया नृपा ॥३०९
ऐलवंशस्य ये ख्यातास्तथैवेक्ष्वाकवा नृपा ।
तेषामेकशतं पूर्णं कुलानामभिषेकिनाम् ॥३१०

कृतयुग का समय क्षीण होजाने पर फिर त्रेतायुग मे ब्रह्म और क्षत्र के बीज के लिये वे पुन होंगे ॥३०२॥ इस प्रकार से यहाँ पर सभी अन्तरो मे युग-युग मे सप्तर्षिगण नृपो के साथ रहते है ॥३०३॥ द्विजो के साथ क्षत्र का ही समुच्छेद सम्बन्ध कहा गया है। सात सात मन्वन्तरो के वे सन्तान श्रुत है ॥३०४॥ युगो की परम्परा और ब्राह्मण क्षत्रियो का उद्भव उनकी जिस प्रकार से प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार से उनका क्षय होता है ॥३०५॥ वे सप्तर्षिगण उनके दीर्घ आयु देने वाले थे। इस क्रम के योग से ऐल और इक्ष्वाकु के अन्वय द्विज है ॥३०६॥ त्रेता में उत्पद्यमान पुन कलियुग के क्षीय माण होने पर जब

तक मन्वन्तर का क्षय होता है यगायया का अनुगमन करता है ।।३ ७।। जमदग्नि के पुत्र परशुराम के द्वारा क्षत्रियों को निरवशेषित करने पर सभी वसुधा के स्वामी क्षत्रियों के द्वारा वंशकुल और दो वंशकरण थे उनको मैं अब बतलाऊँगा उनका ज्ञान प्राप्त करलो ।।३ ८।। इक्ष्वाकु के पुत्र ऐल की प्रकृति परिवर्तित होती है। श्रेणिबद्ध राजा लोग तथा अन्य क्षत्रिय नृप ।।३ ९।। जो कि ऐल वंश के रयात थे उसी प्रकार से इक्ष्वाकु के वंश के नृप थे। अभिषेक प्राप्त करते वाले कुलों की पूर्ण सख्या एकशत थी ।।३१ ।।

तावदेव तु भोजाना विस्तारो द्विगुण स्मृत ।
भजते त्रिशक क्षत्र चतुर्धा तद्यथादिशम् ।।३११
तेष्वतीता समाना ये ब्रुवतस्तान्निबोधत ।
शत व प्रतिविन्ध्याना शत नागा शत हया ।।३१२
धृतराष्ट्राश्च कशतमशीतिर्जनमेजया ।
शतञ्च ब्रह्मदत्ताना शीरिणा वीरिणा शतम् ।।३१३
तत शत पुलोमाना श्वेतकाशकुशादय ।
ततोऽपरे सहस्र व मेऽतीता शतबिन्दव ।।३१४
ईजिरे चाश्वमेधस्ते सर्वे नियुतदक्षिणं ।
एव राजर्षयोऽतीता शतशोऽथ सहस्रश ।।३१५
मनर्वैवस्वतस्यास्मिन् वर्त्तमानेऽन्तरे तु ये ।
तेषा निबोधतोत्पन्ना लोके सत्ततय स्मृता ।।३१६
न शक्य विस्तर तेषा सन्तानाना परम्परा ।
तत्पूर्वापरयोगेन वक्तु वर्षशतैरपि ।।३१७
अष्टाविंशद्युगाख्यास्तु गता वैवस्वतेऽन्तरे ।
एता राजर्षिभि साद्ध शिष्टा यास्ता निबोधत ।।३१८

उतना ही भोजों का विस्तार दुगुना कहा गया है। वह क्षत्र तीस थे जो यथा दिशा मे चारों ओर थे ।।३११।। उनमे जो अतीत होगये और जो समान हैं उन्हें बतलाने वाले मुझ से भली भाँति जान लो। सौ तो प्रतिविन्ध्यों का था और एक सौ नागा थे तथा सौ हय थे ।।३१२।। धृतराष्ट्र थे एक सौ थे

तथा जनमेजय के अस्सी थे। ब्रह्मदत्तो के एक सौ थे तथा शीरि और वीरियो के एक शत थे ॥३१३॥ इसके अनन्तर पुलोमो के सौ श्वेत काश कुशादि थे। इसके पश्चात् दूसरे एक सहस्र थे जो शतविन्द व अतीत हो चुके हैं ॥३१४॥ उन सब ने नियुत दक्षिणा वाले अश्वमेधो के द्वारा यजन किया था। इस प्रकार से सैकडो तथा सहस्रो ही राजर्षि गण अतीत हो चुके है ॥३१५॥ वैवस्वत मन्वन्तर मे तो जो उत्पन्न हुए उनकी सन्तति लोक मे कही गई है, उसका ज्ञान प्राप्त करलो ॥३१६॥ विस्तार से वह नही कहा जा सकता है। उनके सन्तानो की परम्परा तथा उसका पूर्वा पर योग यह सब सैकडो वर्षो मे भी नही बतलाया जा सकता है ॥३१७॥ वैवस्वत अन्तर से अट्ठाईस युगारया गत होगई। यह राजर्षियो के साथ जो शिष्ट है उसे जानलो ॥३१८॥

चत्वारिंशञ्च ये चैव भविष्या सह राजभि ।
युगाख्याना विशिष्टास्तु ततो वैवस्वतक्षये ॥३१९
एतद्व कथित सर्व्वं समासव्यासयोगत ।
पुनरुक्त बहुत्वाच्च न शक्यन्तु युगै सह ॥३२०
एते ययातिपुत्राणा पञ्चविंशा विशा हिता ।
कीर्त्तिताश्चामिता ये मे लोकान् नै धारयन्त्युत ॥३२१
लभते च वरेण्यञ्च दुर्लभानिह लौकिकान् ।
आयु कीर्त्ति धन पुत्रान् स्वर्गं चानन्त्यमश्नुते ॥३२२
धारणाच्छ्रवणाच्च व ते लोकान् धारयन्त्युत ।
इत्येष वो मया पादस्तृतीय कथितो द्विजा ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च किम्भूयो वर्त्तयाम्यहम् ॥३२३

जो चालीस राजाओ के साथ आगे होगे इसके पश्चात् वैवस्वत के क्षय मे युगाख्याओ के वे विशिष्ट है ॥३१९॥ यह सब कुछ सक्षेप और विस्तार से मैंने कह दिया है। बहुत होने के कारण से पुन कहना युगो के साथ नही हो सकता है ॥३२०॥ ये विशो के हित करने वाले ययाति के पुत्रो के पच्चीस हुए थे उन्हें मेरे द्वारा बतला दिया गया है और जो लोको को धारण किया करते हैं ॥३२१॥ वे वरेण्यता को प्राप्त किया करते है और यहाँ पर लौकिक दुर्लभ

प र्थों को प्राप्त करते है। आयु–कीर्त्ति–धन–पुत्र–स्वर्ग और अनन्तता को भी प्राप्त किया करते है ॥३२२॥ धारण करने से तथा श्रवण करने से वे लोकों को धारण किया करते हैं। हे द्विजवृन्द ! यह मैंने तृतीय याद कह दिया है जोकि विस्तार पूर्वक तथा आनुपूर्वी के सहित ही कह दिया है। अब पुन क्या मैं कहूँ ॥ ३२३ ॥

प्रकरण ६२—मन्वन्तर कथन

नि शेषेपु च सर्वेपु तदा मन्वतरेष्विह ।
अ तेऽनेकयुगे तस्मिन् क्षीणे सहार उच्यते ॥१
सप्तैते भगवा देवा अन्ते म वन्तरे तदा ।
भुक्त्वा त्रलोक्यमध्यस्था युगाख्या ह्य कसप्ततिम् ॥२
पितृभिमनुभिश्च व सा.द्ध सप्तर्षिभिस्तु ये ।
यज्वानश्च व तेऽप्यन्ये तद्भक्ताश्च व त सह ॥३
महर्लोक गमिष्यन्ति त्यक्त्वा त्रलोक्यमीश्वरा ।
ततस्तेपु गतेपूद्ध क्षीणे मन्वन्तर तदा ।
अनाधारमिद सर्व त्र लोक्य व भविष्यति ॥४
तत स्थानानि शून्यानि स्थानिना तानि वै द्विजा ।
प्रभ्रश्यन्ति विमुक्तानि ताराऋक्षग्रहैस्तथा ॥५
ततस्तेपु व्यतीतेषु त्र लोक्यस्येश्वरेष्विह ।
से द्राद्ध पु महर्लोक यस्मिंस्ते कल्पवासिन ॥६
जिताद्याश्च गणा ह्यत्र चाक्षुपान्ताश्चतुर्दश ।
म वन्तरेपु सर्वेपु देवास्तु व महौजस ॥७
ततस्तेपु गतेपूद्ध सायोज्य कल्पवासिनाम् ।
समेत्य देवास्ते सर्वे प्राप्ते सकलने तदा ॥८

श्री सूतजी ने कहा—यहाँ उस समय सब म वन्तरों के नि शेष होजाने पर अनेक युग के अन्त म उनके क्षीण होजाने पर सहार कहा जाता है ॥१॥

उस समय मन्वन्तर के अन्त में ये सात भार्गव देव हुए जो त्रैलोक्य के मध्य में मे स्थित होते हुए एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर युगाख्या का भोग करने वाले थे ॥२॥ पितरगण–मनुवृन्द और सप्तर्षियों के साथ जो यज्वा थे और जो अन्य उनके भक्त थे उनके साथ इस त्रैलोक्य का त्याग करके महर्लोक में वे ईश्वर चले जायगे। इसके पश्चात् उनके ऊर्द्ध को चले जाने पर उस समय मन्वन्तर के क्षीण होने पर यह समस्त त्रैलोक्य अनाधार हो जायगा ॥३-४॥ हे द्विज-गण! तत्र स्थानियों के वे देव समस्त स्थान शून्य होते हुए तारा ऋक्ष और ग्रहों के द्वारा विमुक्त होकर प्रभ्रष्ट हो जायेंगे ॥५॥ इसके अनन्तर त्रैलोक्य के व्यतीत हो जाने पर जोकि इन्द्र के सहित आठ थे, वे सभी कल्प तक महर्लोक में वास करने वाले हैं ॥यहाँ पर जिताद्य और चाक्षुषान्त चौदहगण हैं समस्त मन्वन्तरों में वे महान् ओज वाले देव थे ॥७॥ इसके पश्चात् उनके ऊपर चले जाने पर कल्प वासियों के सायोज्य को प्राप्त कर उस समय सकलन प्राप्त होने पर वे सब देव जो थे ॥८॥

महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते वै चतुर्दश।
सशरीराश्च श्रूयन्ते जनलोकं सहानुगा ॥९
एवं देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जनं प्रति।
भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु चाप्युत ॥१०
शून्येषु लोकस्थानेषु महान्तेषु भूरादिषु।
देवेषु च गतेषूर्द्ध्वं सायोज्यं कल्पवासिनाम् ॥११
संहृत्य तान्ततो ब्रह्मा देवर्षिपितृदानवान्।
संस्थापयति वै सर्गं महद्दृष्ट्वा युगक्षये ॥१२
तत्र युगसहस्रान्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदु।
रात्रिं युगसहस्रान्तामहोरात्रविदो जना. ॥१३
नैमित्तिक प्राकृतिको यश्चैवात्यन्तिकोऽर्थत।
त्रिविध सर्वभूतानामित्येष प्रतिसञ्चर ॥१४
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाह प्रसयम।
प्रतिसर्गे तु भूताना प्राकृत करणक्षय ॥१५

ज्ञानाच्चात्यन्तिकं प्रोक्तं कारणानामसम्भवं ।
ततः संहृत्य वान् ब्रह्मा देवास्त्रैलोक्यवासिनः ।।१६
अहरन्ते प्रकुरुते सर्गस्य प्रलयं पुनः ।
सुषुप्सुर्भगवान् ब्रह्मा प्रजाः संहरते तदा ।।१७

वे सब देव महर्लोक का परित्याग करके सशरीर कौम्हगण अनुगो के साथ जनलोक मे गये ऐसा सुना जाता है ।।६।। इस प्रकार से महर्लोक से उन देवो के जनलोक के प्रति चले जाने पर अवशिष्ट भूतादि और स्थान राओ के साथ लोक स्थानो के एव महान् भू आदि के शून्य होजाने पर फिर उन देवो के ऊपर जाने पर कल्प पर्यन्त वास हुआ और उनको सायोज्य प्राप्त हुआ था ।।१ ११।। इसके उपरान्त उनको वहाँ से संहृत करके ब्रह्माजी देवर्षि-पितृ तथा मानवो को युगक्षय मे महर्लोक स सग को सस्थापित करते हैं ।। १२।। वहाँ एक सहस्र युग तक जो ब्रह्माजी का दिन कहा जाता है और रात्रि का युग सहस्र पर्यन्त होता है । इस प्रकार से ब्रह्मा के अहोरात्र को मनुष्य जानते हैं ।।१३।। नमित्तिक-प्राकृतिक और जो अर्थ से आत्यन्तिक यह तीन प्रकार का समस्त प्राणियो का सञ्चार होता है ।।१४।। ब्राह्म नमित्तिक होता है उसका कल्पहार प्रसयम होता है । प्राणियो के प्रत्येक सग मे करण क्षय प्राकृतिक होता है ।।१५।। और ज्ञान आत्यन्तिक कहा गया है जो कारणो का असम्भव होता है । इसके पश्चात् ब्रह्माजी त्रलोक्य वासी उन देवो को संहृत करके दिन के अन्त मे सग का प्रलय किया करते हैं । सोने की इच्छा वाले ब्रह्मा उस समय मे प्रजाओ का संहार किया करते हैं ।।१६ १७।।

ततो युगसहस्रान्ते सम्प्राप्ते च युगक्षये ।
तत्रात्मस्थाः प्रजाः कर्त्तुं प्रपेदे स प्रजापतिः ।।१८
तदा भवत्यनावृष्टिस्तदा सा शतवार्षिकी ।
तथा यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले ।।१९
तान्येवात्र प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च
सप्तरश्मिरथो भूत्वा ह्यु दतिष्ठद्विभावसुः ।।२०

असह्यरश्मिर्भगवान् पिवन्नम्भो गभस्तिभि ।
हरिता रश्मयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्तभि ॥२१
भूय एव विवर्त्तन्ते व्याप्नुवन्तो वन शनै ।
भौम काष्ठ घन तेजो भृशमद्भिस्तु दीप्यते ॥२२
तस्मादुदक सूर्य्यस्य तपतोऽस्ति हि कथ्यते ।
नावृष्टया तपते सूर्यो नावृष्टया परिविष्यते ॥२३

इसके पश्चात् सहस्र युग के अन्त मे युग क्षय के सम्प्राप्त होने पर वह प्रजापति वहाँ पर अपनी आत्मा मे स्थित प्रजा के करने के लिये प्रस्तुत होते है ॥१८॥ उस समय मे सौ वर्ष पर्यन्त अनावृष्टि हुआ करती है। इस प्रकार से अल्पसार वाले जो जीव इस पृथ्वी तल मे होते हैं वे यहाँ पर ही प्रलीन हो जाया करते हैं और भूमि मे मिल जाया करते हैं। इसके उपरान्त विभावसु (सूर्य) सप्तरश्मि होकर उदित होता है ॥१६-२०॥ भगवान् सूर्य बहुत ही तीक्ष्ण किरणो वाले होते हैं। जिनको कोई सहन नहीं कर सकता है। वे अपनी किरणो के द्वारा जल का पान किया करते हैं। उनकी हरित रश्मियाँ अत्यन्त ही सप्तो के द्वारा ही दीप्यमान होती है ॥२१॥ शनैं शनैं वन मे व्याप्त होते हुए फिर विवर्तित होती हैं। भूमि के काष्ठ, घन, तेज को बहुत ही भक्षण करते हुए दीप्त होते हैं ॥२२॥ इसमे तपते हुए सूर्य का उदक कहा जाता है। अनावृष्टि से सूर्य तपता है और नावृष्टि से परिविष्ट होता है ॥२३॥

नावृष्टया परिविन्दन्ति वारिणा दीप्यते रवि ।
तस्मादप पिबन् या वै दीप्यते रविरम्बरे ॥२४
तस्य ते रश्मय सप्त पिवन्त्यम्भो महार्णवात् ।
तेनाहारेण सन्दीप्त सूर्य्य सप्त भवत्युत ॥२५
ततस्ते रश्मय सप्त सूर्यभूताश्चतुर्दिशम् ।
चतुर्लोकमिम सर्व दहन्ति शिखिनस्तदा ॥२६
प्राप्नुवन्ति च भाभिस्तु ह्यूर्द्ध चाधश्च रश्मिभि ।
दीप्यन्ते भास्करा सप्त युगान्ताग्नि प्रतापिनः ॥२७

ते वारिणा च सदीप्ता बहुसाहस्ररश्मय ।
ख समावृत्य तिष्ठन्ति निदहन्तो वसुधराम् ॥२८
ततस्तेषा प्रतापेन दह्यमाना वसुधरा ।
साद्रि नद्यर्णवा पृथ्वी विस्नेहा समपद्यत ॥२९
दीप्ताभि सन्तताभिश्च चित्राभिश्च समन्तत ।
अधश्चोर्ध्वञ्च तियक च सरुद्ध सूर्यरश्मिभि ॥३

नावृष्टि से रवि परिविम्बित होता है और वारि (जल) से दीप्त हुआ करता है। इससे जो जल का पान करती है उससे सूय अम्बर म दीप्त हुआ करता है ॥२४॥ उसकी सात रश्मियाँ महाशन से जल का पान किया करती हैं। उस आहार से स दीप्त होने वाला सूर्य सप्त होता है ॥२५॥ इसके अनन्तर सात रश्मियाँ चारो दिशाओ मे सूय भत होती हुई उस समय शिखी (अग्नि रूप) वे इस चतुर्लोक को सर्व को दग्ध किया करती है ॥२६॥ ऊपर और नीचे अपनी दीप्तियो से रश्मियाँ सवत्र प्राप्त हो जाती है। प्रताप वाले सूय की युगाग्नि सप्त भास्कर दीप्यमान होते हैं ॥२७॥ वे बहु सहस्र रश्मियाँ जल के द्वारा स दीप्त हो जाया करती हैं। इस वसुन्धरा को जलाती हुई आकाश को आवृत करके रहा करती हैं ॥२८॥ इसके अनन्तर उनके प्रकृष्ट ताप से यह समस्त वसुधरा दह्यमान हो जाया करती है। पवतो के सहित नदी और समुद्र से युक्त यह समस्त पृथ्वी बिना स्नेह वाली अर्थात् एकदम शुष्क हो जाती ॥२९॥ दीप्त-सवत्र फली हुई — विचित्र तेज से युक्त सूय की किरणो से नीचे के भाग और ऊपर का भाग और तिरछे भाग सभी सरुद्ध हो जाते हैं ॥३ ॥

सूर्याग्नीनां प्रवृद्धाना ससृष्टाना परस्परम् ।
एकत्वमुपयातानामेकज्वाल भवत्युत ॥३१
सवलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वा तु मण्डली ।
चतुर्लोकमिद सव निदहत्याशु तेजसा ॥३२
ततः प्रलीयते सव्व जङ्गम स्थावर तदा ।
निवृक्षा निस्तृणा भूमि कूर्मपृष्ठसमा भवेत् ॥३३

अम्बरीषमिवाभाति सर्वं मार्गितिं जगत् ।
सर्वमेव तदार्चिभि पूर्णं जज्वाल्यते नभ ॥३४
पाताले यानि भूतानि महोदधिगतानि च ।
ततस्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥३५

इस प्रकार से उठी हुई और परस्पर म सगृष्ट अर्थात् मिली हुई सूर्य की अर्चियो का जोकि सभी मिलकर एक स्वरूप का प्राप्त हो गई है फिर सबकी एक ही महान् ज्वाला का रूप हो जाया करता है ॥३१॥ यह मण्डली इस प्रकार से भीषण अग्नि का स्वरूप धारण करके तेज से समस्त लोकों का प्रकृष्ट नाश किया करता है और इस चतुर्लोक को समस्त को शीघ्र ही तेज से निर्दग्ध कर देता है ॥३२॥ इसके पश्चात् यह समस्त स्थावर और जङ्गम उस समय प्रलीन हो जाता है। यह भूमि ऐसी हो जाती है कि इस पर एक भी वृक्ष नही रहता है तथा तृणो से हीन कूर्म के पृष्ठ के समान एकदम पट्ट सी होजाती है ॥३३॥ यह समस्त मार्गीपित जगत् अम्बरीष की भाति प्रतीत होता है। उस समय मे अर्चियो के द्वारा यह समस्त आकाश मण्डल परिपूर्ण रूप से जाज्वल्यमान हो जाता है ॥३४॥ पाताल मे जो प्राणी है और महा समुद्र मे हैं वे भी उस समय प्रलीन हो जाते है और भूमित्व को प्राप्त हो जाया करते हैं अर्थात् भूमि मे मिलकर अपना अस्तित्व खो देते है ॥३५॥

द्वीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महोदधि ।
सर्वं तद्भस्मसाच्चक्रे सर्वात्मा पावकस्तु स ॥३६
समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वत ।
पिबन्नप समिद्धोऽग्नि पृथिवीमाश्रितो ज्वलन् ॥३७
तत सवर्त्तक शैलानतिक्रम्य महास्तथा ।
लोकान् सहरते दीप्तो घोर सवर्त्तकोऽनल ॥३८
तत स पृथिवी भित्त्वा रसातलमशोषयत् ।
निर्दह्य तास्तु पातालान्नागलोकमथादहत् ॥३९
अधस्तात्पृथिवी दग्ध्वा ह्यूर्ध्वं स दहते दिवम् ।
योजनाना सहस्राणि ह्ययुतान्यर्बुदानि च ॥४०

उदतिष्ठच्छिखास्तस्य वह्वेर्ध सवर्त्तकस्य तु ।
गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च समहोरगराक्षसान् ।
तदा दहति सन्दीप्तो गोलक चव सव्वश ॥४१
भूर्लोकन्तु भुवर्लोक स्वर्लोकञ्च महस्तथा ।
घोर दहति कालाग्निरेव लोकचतुष्टयम् ॥४२
व्याप्तपु तेषु लोकेषु तिर्यगूर्द्ध्वमथाग्निना ।
तत्तेज समनुप्राप्त कृत्स्न जगदि॰ शनै ।
अयोगुडनिभ सव्व तदा ह्य व प्रकाशते ॥४३
ततो गजकुलाकारास्तडिद्भि समलङ्कृता ।
उत्तिष्ठन्ति तदा घोरा व्योम्नि सवत्त का घना ॥४४

सर्वामा उस पावक ने द्वीप-पर्वत-वर्ष और महा समुद्र इन सबको भस्म सात् कर दिया था ।३६॥ समुद्रो से-नदियो से और पातालो से सब ओर से जल का पान करते हुए समिद्ध हुआ वह अग्नि जलता हुआ पृथिवी में प्राश्रित होगया था । इसके अनन्तर वह महान् सवत्तक अग्नि वालो का प्रति क्रमण करके अत्यन्त और तथा दीप्त होता हुआ लोको का सहार करता है ॥३७-३८॥ इसके पश्चात् वह इस पृथ्वी का भेदन करके रसातल मे पहुचता है और उसने उसका शोषण कर दिया था । उन पाताल लोको को निर्दग्ध करके उसके पश्चात् उसने नागलोक को भी जला दिया था ॥३६॥ नीचे के समस्त भाग मे पृथ्वी को दग्ध करके वह फिर ऊद्ध भाग म दिवलोक जला देता है । सहस्र अयुत और अबु द योजनो तक उस सवर्त्तक अग्नि की बहुत सी ज्वालाऐं उठ गई थीं । फिर वह गन्धर्वों को-पिशाचो को-महोरगो को और राक्षसो को उस समय सन्दीप्त होता हुआ जलाता है ॥४० ४१॥ भूर्लोक-भुवर्लोक-स्वर्लोक और महर्लोक इन चारो लोको को इस प्रकार से वह घोर कालाग्नि दग्ध कर दिया करता है ॥४२॥ तिर्यग् और ऊद्ध्व भाग मे उस अग्नि के द्वारा उन लोको म व्याप्त हो जाने पर वह तेज धीरे धीरे सम्पूण इस जगत् म प्राप्त हो जाता है । उस समय यह सब अयोगुड के समान प्रकाशित होने लगता है ॥४३॥

इसके पश्चात् हाथियों के समान आकार वाले विद्युत् से अनकृत उस समय आकाश में परम घोर स्वरूप वाले संवर्त्तक मेघ उठ आते हैं ॥४४॥

केचिन्नीलोत्पलश्यामा केचित्कुमुदसन्निभा ।
केचिद्वैदूर्यसङ्काशा इन्द्रनीलनिभा परे ॥४५
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभास्तथा ।
धूम्रवर्णा घना केचित्केचित्पीता पयोधरा ॥४६
केचिद्रासभवर्णाभा लाक्षारक्तनिभास्तथा ।
मन शिलाभास्त्वपरे कपोताभास्तथाम्बुदा ॥४७
इन्द्रगोपनिभा केचिदुत्तिष्ठन्ति घना दिवि ।
केचित्पुरवराकारा, केचिद्गजकुलोपमा ॥४८
केचित्पर्वतसङ्काशा केचित्स्थलनिभा घना ।
कुण्डागारनिभा केचित्केचिन्मीनकुलोपमा ॥४९

उन मेघों में कुछ तो नील कमल के सदृश श्याम होते हैं और कुछ कुमुद के समान हुआ करते हैं। कुछ वैदूर्य के तुल्य हैं तो दूसरे इन्द्र नील के सदृश होते हैं ॥४५॥ अन्य शंख और कुन्द के तुल्य हैं तो कुछ अञ्जन के समान होते हैं। कुछ मेघ धूम्र वर्ण वाले होते हैं तो कुछ मेघ पीत हैं ॥४६॥ कुछ रासभ (गधा) के वर्ण जैसे वर्ण वाले हैं तो कुछ लाख के जैसे रक्त वर्ण वाले हैं। कुछ मैनसिल के समान आभा से युक्त हैं तथा कुछ मेघ कपोत (कबूतर) की सी आभा वाले होते हैं ॥४७॥ कुछ बादल इन्द्र गोप के तुल्य इस आकाश में उठते हैं। कुछ पुरवर के आकार वाले हैं तो कुछ गजों के समूह के समान होते हैं ॥४८॥ कुछ पर्वतों के समान हैं तो कुछ स्थल के सदृश मेघ होते हैं। कुण्डागार के तुल्य कुछ हैं तो कुछ मीन कुल के तुल्य होते हैं ॥४९॥

बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिन ।
तदा जलधरा सर्वे पूरयन्ति नभ स्थलम् ॥५०
ततस्ते जलदा घोरा नवीना भास्करात्मिका ।
सप्तधा संवृतात्मानस्तमग्निं शमयन्त्युत ॥५१

ततस्ते जलदा वप मुञ्चन्ति च महोद्यमम् ।
सुघोरमशिव नाशयन्ति च त पावकम् ॥५२
प्रवृष्टश्च तथात्यथ वारिभि पूर्य्यते जगत् ।
अद्भिस्तेजोऽभिभूतञ्च तदाग्नि प्राविशत्यप ॥५३
नष्टे चाग्नौ वर्षशते पयोदा पाकसम्भवा ।
प्लावयन्ति जगत्सव बृहज्जालपरिस्रव ॥५४

बहुत से रूपो वाले तथा घोर स्वरूप धारी और अति घोर निनाद करने वाले जलधर उस समय मे नभ के स्थल भर दिया करते हैं ॥५ ॥ इसके अनन्तर भास्वरात्मिक वे नये मेघ जिनका कि परम घोर स्वरूप है सात प्रकार से सवृत आत्मा वाले उस अग्नि को शमन कर देते है ॥५१॥ इसके उपरान्त वे जलधर महान् उद्यम वाली वर्षा का त्याग किया करते हैं अर्थात् अत्यन्त जोर से बरसते हैं और उस परम घोर अमङ्गल उस पावक का नाश कर देते हैं ॥५२॥ प्रकृष्ट रूप से वर्षा करने वाले अग्नि जलो के द्वारा यह जगत् पूरित हो जाता है। फिर वह तेजोऽभिभूत अग्नि जलो के द्वारा जल ही मे प्रवेश कर जाता था ॥५३॥ पाक से समुत्पन्न वे जलद वृन्द सौ वष तक बरसते हुए अग्नि को शान्त कर देने पर वृहत् जल के समूह के परिस्रवो के द्वारा इस समस्त जगत् को प्लावित कर देते है ॥५४॥

धाराभि पूरयन्तीम चोद्यमाना स्वयम्भुवा।
अन्ये तु सलिलौघस्तु वेलामभिभवन्त्यपि ।
साद्रिद्वीपान्तर पृथ्वी ह्यद्भि सञ्छाद्यते तदा ॥५५
तस्य वृष्ट्या च तोय तत्सर्व्व हि परिमण्डितम् ।
प्रविशत्युदधौ विप्रा प्रीत सूर्य्यस्य रश्मिभि ॥५६
आदित्यरश्मिभि पीत जलमभ्रे षु तिष्ठति ।
पुन पतति तद्भूमौ तेन पूर्य्यन्ति चार्णवा ॥५७
तत समुद्रा स्वा वेला परिक्रामन्ति सर्व्वश ।
पर्व्वताश्च विशीर्य्यन्त मही चाप्सु निमज्जति ॥५८

ततस्तु सहसोद्भ्रान्त पयोदास्ताम्नभस्तले ।
सवेष्टयंति घोरात्मा दिवि वायुः समन्ततः ॥७६
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
पूर्णे युगसहस्रे वै निःशेष कल्प उच्यते ॥६०
अथाम्भसा वृते लोके प्राहुरेकार्णवं बुधा ।
अथ भूमितलं खञ्च वायुश्चै कार्णवे तदा ।
नष्टे भावेऽवलीन तत्प्राज्ञायत न किञ्चन ॥६१
पार्थिवास्त्वथ सामुद्रा आपो हैमाश्च सर्व्वश ।
प्रसरन्त्यो व्रजन्त्येक सलिलाख्या भजन्त्युत ॥६२

स्वयम्भु के द्वारा प्रेरित हुए ये मेघ अपनी मूसलाधार धाराओं के द्वारा इस जगत् को भर दिया करते हैं । अन्य तो अपने जल के ओघों के द्वारा वेला को भी अभिभूत कर देते है । उस समय मे पर्वत और द्वीपो के अन्तरो के सहित यह पृथ्वी जलो के द्वारा समाच्छादित हो जाया करती है ॥५५॥ और उसकी वृष्टि से हे द्विजगण ! परिमण्डित यह समस्त जल सूर्य की किरणों के द्वारा पान किये गये समुद्र मे प्रवेश करता है ॥५६॥ सूर्य के द्वारा पीया हुआ यह जल मेघो मे स्थित हो जाता है फिर वही जल यहाँ पर भूमि मे पडता है उससे समुद्र भर जाया करते है ॥५७॥ इसके उपरान्त ये समुद्र अपनी वेला को सभी ओर से परिक्रान्त कर दिया करते है । तब पर्वत विशीर्ण हो जाते है और समस्त भूमि जल मे डूब जाया करती है ॥५८॥ इसके पश्चात् सहसा उद्भ्रान्त वायु सभी ओर से घोर रूप धारण करके आकाश मे उन मेघो को संवेष्टित कर लेता हैं ॥५९॥ उस समुद्र मे समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर पूरे एक सहस्र युग मे निःशेष कल्प कहा जाता है ॥६०॥ इसके अनन्तर एकमात्र जल के द्वारा समस्त लोक के आवृत हो जाने पर बुध एकार्णव कहा करते है और इस भूतल तथा आकाश को वायु जब एकार्णव बना देता है तब उस समय में भाव के नष्ट होने पर कुछ भी नहीं जाना जाता था ॥६१॥ पार्थिव—सामुद्र और हिम से होने वाले जल सभी ओर फैले हुए एक सलिलाख्या को प्राप्त किया करते हैं ॥६२॥

आगतागतिक चैत्र तदा तत्सलिल स्मृतम् ।
प्रच्छाद्य तिष्ठति महीमर्णवाख्य च तज्जलम् ॥६३
आभान्ति यस्मात्ता भाभिभाशब्‍्‍यातिदीप्तिपु ।
भस्म सर्व्वमनुप्राप्य तस्मादम्भो निरुच्यत ॥६४
नानात्वे चव शीघ्रे च धातुर्वं अर उच्यत ।
एकार्णवे तदा यो व न शीघ्रास्तन ता नरा ॥६५
तस्मिन् युगसहस्रान्त दिवसे ब्रह्मणो गत ।
तावन्त कालमेव तु भवन्त्येकार्णव जगत्
तदा तु सर्व्वव्यापारा निवत्त ते प्रजापत ॥६६
एवमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावर जङ्गमे ।
तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्ष सहस्रपात् ॥६७
सहस्रशीर्षा सुमना सहस्रपाद् सहस्रचक्षुर्वदन सहस्रवाक् ।
सहस्रबाहु प्रथम प्रजापतिस्त्रयीपथे य पुरुषो निरुच्यते ॥६८
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता ह्यपूर्व्व एक प्रथमस्तुरायाट ।
हिरण्यगर्भ पुरुषो महान् वै सपद्यत वै तमस परस्तात् ॥६९
चतुर्युगसहस्रान्त सर्वत सलिलप्लुत ।
सुषुप्सुर्प्रकाशा स्वा रात्रि तु कुरुते प्रभु ॥७०

उस समय मे वह जल आगतागतिक कहा गया है। अर्णव के नाम वाला वह जल इस भूमि को ढक कर स्थित रहता है ॥६३॥ क्योकि वह भाभो के द्वारा भी—इस शब्द की व्याप्ति की दीप्तियो मे भामा युक्त होता है सबको भस्म म मनु प्राप्त करता है इसलिये वह भस्म कहा जाता है ॥६४॥ और नानात्व म एव शीघ्र मे धरधातु कही जाती है। उस समय मे एकार्णव मे जो शीघ्र नही है इससे वह नर कहा गया है ॥६५॥ ब्रह्मा के युग सहस्र वाले उस दिन के गत हाने पर उस समय तक ही यह जगत् एकार्णव रहता है और तब प्रज पति के समस्त व्यापार निवृत्त हो जाया करते हैं ॥६६॥ इस प्रकार से उस एक अर्णव मे समस्त स्थावर और जङ्गम क नष्ट हो जाने पर तब ब्रह्मा सहस्र नेत्रो और सहस्र चरणो वाल होन हैं ॥६७॥ सहस्र शीष वाले सुमना—

सहस्र पादों से युक्त सहस्र चक्षु और मुखों से पूर्ण—सहस्र नाक्—सहस्र बाहुओं वाला अग्रीगथ में प्रथम प्रजापति होता है जोकि पुरुष कहा जाता है ।।६८।। आदित्य के समान वर्ण वाला—इस भुवन को गोपा प्रथम तुरापाट् एक अपूर्व ही होता है। वह हिरण्य गर्भ पुरुष तम से परे महान् सम्पन्न होता है ।।६६।। एक सहस्र चारों युगों के अन्त में सब ओर से जल में प्लुन में सोने की इच्छा करने वाला यह प्रभु प्रकाश हीन उग अपनी रात्रि को किया करता है ।।७०।।

चतुर्विधा यदा शेते प्रजा सर्व्वाण्डमण्डिता ।
पदयन्ते त महात्मान काल मप्त महर्पय ।।७१
जनलोकविवर्त्तन्तस्तपसा लब्धचक्षुप ।
भृग्वादयो महात्मान पूर्व्वो व्याख्यातलक्षणा ।।७२
सत्यादीन् सप्तलोकान् वै ते हि पश्यन्ति चक्षुपा ।
ब्रह्माण तं तु पश्यन्ति महाब्राह्मीपु रात्रिपु ।।७३
कल्पाना परमेष्ठित्वात्तस्मादाद्य स पठ्यते ।।७४
स यष्टा सर्वभूताना कल्पादिपु पुन पुन ।
एवमावेशयित्वा तु स्वात्मन्येव प्रजापति ।।७५
अथात्मनि महातेजा सर्वमादाय सर्वकृत् ।
ततस्ते वसते रात्रिं तमस्येकार्णवे जले ।।७६
ततो रात्रिक्षये प्राप्त प्रतिवुद्ध प्रजापतिः ।
मन सिसृक्षया युक्त सर्गाय निदधे पुन ।।७७
एव सलोके निवृत्ते उपशान्ते प्रजापती ।
ब्रह्मनैमित्तिके तस्मिन् कल्पिते वै प्रलयमे ।।७८
देहैर्वियोग सत्वाना तस्मिन् वै कृत्स्नश स्मृत ।
ततो दशेपु भूतेपु सर्व्वेष्वादित्यरश्मिभि ।
देवर्पिम नुवर्य्येप् तस्मिन् सङ्कलने तदा ।।७९
गन्धर्वादीनि सत्वानि पिशाचान्तानि सर्व्वश ।
कल्पादावप्रतप्तानि जनमेवाश्रयन्ति वै ।।८०

जिस समय मे सर्वाण्ड मण्डित चार प्रकार की प्रजा शयन करती है

तो सप्तर्षिगण उस महान् आत्मा वाले काल को देखा करते हैं ।।७१।। जल लोक मे विद्यमान और तप के द्वारा नेत्रों की दृष्टि को प्राप्त करने वाले भृगु आदि महात्मा होते है जिनका पूर्व मे लक्षणों की व्याख्या करदी गई है । सत्य प्रभृति सातो लोकों को वे ही चक्षु के द्वारा देखा करते है । उन महा ब्राह्मी रात्रियों मे वे ब्रह्मा को भी देखा करते है ।।७२।। सप्तर्षिगण अपनी रात्रियों मे सोये हुए काल को देखते है । कल्पो का परमेष्ठी होने से वह आद्य पढा जाया करता है ।।७३ ७४।। वह समस्त प्राणियो का कल्पो के आदि मे पुन पुन स्रष्टा होता है । इस प्रकार से प्रजापति अपनी आत्मा मे ही आवेशयित होता है ।।७५।। इसके अनन्तर महान् तेज वाला सबको आत्मा मे लाकर सब कुछ के करने वाला इसके पश्च त् एकार्णव जल मे जोकि एकदम अन्धकारमय है वहाँ रात्रि मे वास किया करता है ।।७६।। इसके उपरान्त उस रात्रि के क्षय हो जाने पर वह प्रजापति अति बुद्ध होता है और फिर सृजन करने की इच्छा से मनको युक्त करके पुन सर्ग के लिये निविष्ट किया करता है ।।७७।। इस तरह से सत्लोक के निवृत्त होने पर और प्रजापति के उपशान्त होने पर तथा ब्रह्म नैमित्तिक उस कर्म के प्रसयम होने पर सत्त्वो का देहों से वियोग होता है और उसको पूर्वरूप मे कहा गया है । इसके पश्चात् सूर्य की किरणो के द्वारा समस्त प्राणियों के दग्ध हो जाने पर उस समय मे मनुज यक्ष देवर्षियो के उस सङ्कुलन मे गन्धर्व आदि जीव और पिशाचान्त तक कल्प के आदि मे अप्रतस होने हुए जन लोक का आश्रय लिया करते है ।।७८ ७९ ८ ।।

तिर्यग्योनीनि सत्वानि नारकेयानि यान्यपि ।
जने तान्युपपद्यन्ते यावत्सम्प्लवत जगत् ।।८१
व्युष्टायान्तु रजन्या तु ब्रह्मणोऽव्यक्तयानये ।
जायन्ते हि पुनस्तानि सत्वभूतानि कृत्स्नश ।।८२
ऋषयो मनवा देवा प्रजा सर्गाश्च त्रिधा ।
तेषामपीह सिद्धाना निधनोत्पत्तिरुच्यत ।।८३
यथा सूर्यस्य लोकऽस्मिन्नुदयास्तमन स्मृतम् ।
तथा ज मनिरोधश्च भूतानामिह दृश्यते ।।८४

आभूतसंप्लवास्तस्माद्भव संसार उच्यते ।
यथा सर्व्वाणि भूतानि जायन्ते हि वर्षास्विह ।।८५
स्थावरादीनि सत्त्वानि कल्पे कल्पे तथा प्रजा ।
यथार्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्य्यये ।।८६
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्मात्तरात्रिषु ।
प्रत्याहारे च सर्गे च गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।।८७
निष्क्रमन्ते विशन्ते च प्रजाकारं प्रजापतिम् ।
ब्रह्माणं सर्वभूतानि महायोगं महेश्वरम् ।।८८

जो तिर्यक् योनि वाले जीव थे और जो नारकीय जीव थे उस समय में वे सभी सब प्रकार से नष्ट पापों वाले होते हुए दग्ध होगये थे। जब तक जगत् सम्प्लावित रहता है तब तक वे सभी सत्त्व जनलोक में उत्पन्न हुआ करते हैं ।।८१।। अव्यक्त योनि ब्रह्मा के लिये रजनी के व्युष्ट हो जाने पर फिर वे समस्त प्राणी पूर्ण रूप से उत्पन्न होते है ।।८२।। ऋषिगण-मनुवृन्द-देवता-प्रजा समस्त चारों प्रकार की—इन सबका और यहाँ पर सिद्धों का भी निधन होना तथा उत्पन्न होना कहा जाता है ।।८३।। जिस तरह से इस लोक में सूर्य का उदय होना और अस्त होना कहा गया है—उसी तरह से प्राणियों का जन्म और निरोध दिखलाई देता है ।।८४।। उस भूत सम्प्लव से लेकर भव संसार कहा जाता है। जैसे समस्त प्राणी यहाँ वर्षा में उत्पन्न हुआ करते है ।।८५।। जिस तरह ऋतु के समय में पर्यय होने पर अनेक प्रकार के ऋतु के चिह्न होते हैं उसी तरह कल्प-कल्प में स्थावर आदि सत्त्व और प्रजा हुआ करते हैं ।।८६।। ब्रह्मा की आत्त रात्रियों में वे-वे ही प्रत्याहार में और सर्ग में ध्रुव और गतिमान् दिखलाई दिया करते है ।।८७।। महान् योग वाले महेश्वर प्रजा के आकार वाले प्रजापति ब्रह्मा में समस्त प्राणी प्रवेश करते हैं और निष्क्रमण किया करते हैं ।।८७।।

स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ।
व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ।।८६

है। उस स्थान वाले जल से भी तेरह पल होते हैं ॥१ १॥ मागध मान के द्वारा ही जल प्रस्थ का विधान होता है। ये चार उदक प्रस्थ हैं और नालिक घट होता है ॥१ २॥ छेद किये हुए चार अगुल वाले चार हेममाषों के समान दिन में और रात्रि में द्विनालिक मुहूर्त्त होता है ॥१ ३॥ सूर्य की गति विशेष से समस्त मनुष्यों में निश्य ही पाँचवों छः कलाओं का प्रविधान होता है ॥१ ४॥

तदहर्मानुष ज्ञ य नाक्षत्रन्तु दशाधिकम् ।
सावनेन तु मासेन ह्यब्दोऽय मानुष स्मृत ॥१०५
एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रविनिश्चय ।
अह्नाऽनेन तु या सख्या मासत्वयनवार्षिकी ॥१ ६
तदा बद्धमिद ज्ञान सज्ञा या ह्युपलक्ष्यताम् ।
कलाना सुपरीमाणात्काल इत्यभिधीयते ॥१ ७
यदहर्ब्राह्मण प्रोक्त दिव्या कोटी तु तत् स्मृता ।
शतानाश्च सहस्राणि दशद्विगुणितानि च ।
नवतिश्च सहस्राणि तथवान्यानि यानि तु ॥१०८
एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयो विस्मय परमाद्भुतम् ।
सस्थासम्भजन ज्ञानमपृच्छन्नन्तर तदा ॥१ ६
सप्लावनस्य कालस्तु मानुषेणाव सम्मतम् ।
मानेन श्रोतुमिच्छाम सक्षेपाथपदाक्षरम् ॥११०
तेषा श्रुत्वा स देवस्तु वायुर्लोकहिते रत ।
सक्षेपार्द्दिव्यचक्षुष्मान् प्रोवाच भगवान् प्रभु ॥१११
एत राज्यह्नो पूव कीर्त्तिते त्विह लौकिके ।
तासा सख्याय वर्षाग्र ब्राह्म वक्ष्याम्यह द्विजे ॥११२

यह मानुष दिन जानना चाहिये और नक्षत्र तो दश अधिक वाला होता है। सावन मास से यह मानुष शब्द कहा गया है ॥१ ५॥ यह दिव्य अहोरात्र होता है—ऐसा शास्त्र का विनिश्चय है। इस दिन से जो सख्या है वह मास अयन ऋतु और वर्ष की है ॥१ ६॥ उस समय यह बद्ध ज्ञान जो सज्ञा है उसे उप लक्षित करो। कलाओं के सुपरीमाण से काल ऐसा नामसे कहा जाता है ॥१ ७॥

जो ब्रह्मा का दिन कहा गया है वह दिव्यकोटी कही गई है। सौ सहस्र दश और सौ से गुणित होते हैं। और नब्बे सहस्र तथा जो अन्य है वे इस प्रकार के होते हैं ॥१०८॥ इसे श्रवण करके ऋषिगण परम अद्भुत विस्मय को प्राप्त हुए यह संख्या का सम्भजन ज्ञान ऐसा ही अद्भुत था। उस समय अन्तर को पूछा ॥१०९॥ ऋषियों ने कहा—सम्प्लावन होने का समय मानुष के द्वारा ही सम्मत है। हम मान से श्रवण करने की इच्छा करते हैं जो कि संक्षेपार्थ पदाक्षर है ॥११०॥ लोक के हित में रति रखने वाले उस वायुदेव ने उनकी इस बात को सुनकर भगवान् प्रभु जो कि दिव्य नेत्रों वाले थे, संक्षेप से बोले ॥१११॥ ये रात्रि और दिन यहाँ लौकिक पहिले कीर्तित किये हैं। उनके वर्षाग्र की संख्या करके अब दिन के क्षय में जो ग्राह्य है उसे बताऊँगा ॥११२॥

कोटिशतानि चत्वारि वर्षाणि मानुषाणि तु।
द्वात्रिंशच्च तथा कोट्य सङ्ख्याता सङ्ख्यया द्विजै ॥११३
तथा शतसहस्राणि एकोननवति पुन।
आशीतिश्च सहस्राणि एष काल प्लवस्य तु ॥११४
मानुषाख्येण सङ्ख्यात कालो ह्याभूतसम्प्लव।
सप्त सूर्य्यास्तदाग्रेषु तदा लोकेषु तेषु वै ॥११५
महाभूतेषु लीयन्ते प्रजा सर्व्वाश्चतुर्विधा।
सलिलेनाप्लुते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥११६
विनिवृत्ते च संहारे उपशान्ते प्रजापती।
निरालोके प्रदग्धे तु नैशेन तु समावृते।
ईश्वराधिष्ठिते ह्यस्मिस्तदा ह्येकार्णवे तदा ॥११७
तावदेकार्णवो ज्ञेयो यावदासीदह प्रभो।
रात्रिस्तु सलिलावस्था निवृत्ती चाप्यह स्मृतम् ॥११८
अहोरात्रस्तथैवास्य क्रमेण परिवर्त्तते।
आभूतसम्प्लवो ह्येष अहोरात्र स्मृत प्रभो ॥११९
नैनोमये यानि सत्वानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च।
आभूतेभ्य प्रलीयन्ते तस्मादाभूतसम्प्लव ॥१२०

चारसौ करोड़ मानुष वर्ष तथा बत्तीस कोटि द्वय के द्वारा संख्या में प्रख्यात किये गये हैं ।।११३।। तथा सौ सहस्र नवासी और अस्सी सहस्र यह काल प्लव का होता है ।।११४।। यह आभूत सम्प्लव काल मानुषाख्य के द्वारा संख्यात किया गया है। उस समय उन अभ्रलोकों में सात सूर्य होते हैं ।।११५।। चारों प्रकार की समस्त प्रजा महाभूतों में लीन होजाती है। जबकि लोक जल से आप्लुत होजाता है और स्थावर और जङ्गम सब नष्ट हो जाते हैं ।।११६।। संहार के विनिवृत्त होने पर और प्रजापति के उपशान्त होजाने पर बिना प्रकाश वाले प्रकृष्ट रूप से जले हुए होने पर तथा रात्रि के अन्धकार समावृत होने पर उस समय यह एकार्णव केवल ईश्वर से अधिष्ठित होता है ।।११७।। उसका जब तक दिन रहता है तब तक यह एकार्णव जानना चाहिये। जलकी अवस्था ही रात्रि है और उसकी निवृत्ति होजाने पर दिन कहा गया है ।।११८।। उस प्रकार से इसका अहोरात्र क्रम से परिवर्तित हुआ करता है। यह आभूत सम्प्लव प्रभु का अहोरात्र ही कहा गया है ।।११९।। त्रैलोक्य में जो गति वाले ध्रुव सत्त्व हैं वे अभूतों से प्रलीन हो जाया करते हैं इस कारण से इसका नाम आभूत सम्प्लव ऐसा कहा गया है ।।१२०।।

अभूत प्रजानान्तस्माद्भूत प्रजापति ।
आभूत प्लवते यत्र तस्मादाभूतसम्प्लव ।।१२१
शाश्वते चामृतत्वे च शब्दे चामृतसम्प्लव ।
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागता प्रजाः ।
दिव्यसङ्ख्या प्रसङ्ख्याता ह्यपरार्धगुणीकृता ।।१२२
परार्धद्विगुणश्चापि परमायु प्रकीर्त्तितम् ।
एतावान् स्थितिकालस्तु ह्यजस्येह प्रजापतेः ।
स्थित्यन्ते प्रतिसर्गस्य ब्रह्मण परमेष्ठिनः ।।१२३
यथा वायुप्रवेगेन दीपार्चिरुपशाम्यति ।
तथैव प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति ।।१२४
तथा ह्यप्रतिसृष्टे महदादौ महेश्वरे ।
महत्प्रलीयतेऽव्यक्ते गुणसाम्य ततो भवेत् ।।१२५

इत्येष व समाख्यातो मया ह्याभूतसम्प्लव ।
ब्रह्मानैमित्तिको ह्येष सम्प्रक्षालनसयम- ॥१२६
समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्त्तयामि व ।
य इद धारयेन्नित्य श्रृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णश ।
कीर्त्तनाच्छ्रवणाच्चापि महती सिद्धिमाप्नुयात् ॥१२६

समस्त प्रजाओ के आगे हुआ था इससे प्रजापति भूत है और आभूत सम्प्लवित होता है इस कारण से आभूत सम्प्लव इस नाम से इसे कहा जाया करता है ॥१२१॥ और शाश्वत अमृतत्व शब्द मे आभूत सम्प्लव है। जो व्यतीत होगये है वे-वर्त्तमान मे रहने वाले और उसी प्रकार से अनागत अर्थात् भविष्य मे होने वाले समस्त प्रजा की अपरार्थ गुणीकृत दिव्य सख्या होते हैं ॥१२२॥ परादिगुण भी परमायु कही गई है। प्रजापति अजका इतना ही स्थिति का काल होता है। प्रत्येक सर्ग की स्थिति के अन्त मे परमेष्ठी ब्रह्म का स्थिति काल होता है ॥१२३॥ जिस तरह वायु के प्रवेग वाले झोके से दीपो की अर्चि (लौ) उपशान्त होजाया करती है उसी प्रकार से प्रत्येक सर्ग से ब्रह्मा भी उपशान्त होजाया करता है ॥१२४॥ तथा महदादि मे महेश्वर के अप्रति ससृष्ट होने पर महत् अव्यक्त मे प्रलीन हो जाता है तब गुणो की साम्यावस्था होजाया करती है ॥१२५॥ इस तरह मैंने यह आभूत सम्प्लव समाख्यात कर दिया है यह सम्प्रक्षालन सयम ब्रह्मा के निमित्त वाला होता है ॥१२६॥ मैंने यह सक्षेप से कह दिया है। अब आगे आप लोगो को क्या बताऊँ ? इसे जो नित्य ही धारण किया करता है अथवा बार-बार श्रवण किया करता है। इसके कीर्त्तन करने से तथा श्रवण करने से महती सिद्धि को प्राप्त होता है ॥१२७॥

प्रकरण ६३—शिवपुर वर्णन

अमाधारणवृत्तैस्तु हुतशेषादिभिर्द्विजे ।
धर्मवैशेषिकैश्चैव ह्याचूर्णसूक्ष्मदर्शिभि ॥१

ते देव सह तिष्ठन्ति महर्लोकनिवासिन ।
चतुर्द शते मनव कीर्त्तिता कीर्त्तिवधना ॥२
अतीता वर्त्तमानाश्च तथवानागताश्च ये ।
ऋपिभिर्देवतश्च व सह ग धवराक्षस ॥३
म वन्तराधिकारेपु जायन्तीह पुन पुन ।
देवा सप्तपयश्च व मनव पितरस्तथा ॥४
सर्व्वे ह्यपि क्रमातीता महर्लोक समाश्रिता ।
ब्राह्मणे क्षत्रियर्वश्यर्धार्मिक सहित सुराः ॥५
तस्तथ्यकारिभियु क्त श्रद्धावद्भिरदर्पित ।
वर्णाश्रमाणा धर्म्मेषु श्रौतस्मार्त्तेषु सस्थित ।
विनिवृत्ताधिकारास्ते याव म वन्तरक्षय ॥६
महर्लोकेति यत्प्रोक्त मातरिश्वस्त्वया विभो ।
प्रतिलोके च कर्त्तव्यमनेक समधिष्ठिता ॥७
याव तश्च व ते लोका दह्यन्ते ये न ते प्रभो ।
एतन्नः कथय प्रोत्या ८ । हि वेत्थ यथातथम् ॥८

श्री वायुदेव ने कहा—असाधारण चरित्र वाले हुत शेष आदि द्विजो के साथ तथा धम के वशेषिक आपूर्ण सूक्ष्म दर्शियो के साथ और देवो के साथ वे महर्लोक के निवासी होते हुए रहा करते हैं । मे कीर्त्ति के बढाने वाले चौदह मनु बताये गये हैं ॥१ २॥ अतीत–वत्तमान और अनागत जो हैं वे ऋषियो के–देवतो के और ग धर्वों के एव राक्षसो के साथ म वन्तरो के अधिकारो मे बारम्बार उत्पन्न होते हैं । इसी तरह देव–सप्तर्पिगण–मनु और पितृवृन्द हुआ करते हैं ॥३ ४॥ सभी क्रम से अतीत हुए महर्लोक मे समाश्रित होते हैं । ब्राह्मण–क्षत्रिय और वश्यो के सहित सुर वहाँ आश्रय लिया करते हैं ॥५॥ तथ्यो के करने वाले–श्रद्धा से युक्त–दर्प से रहित–युक्त–वर्णाश्रमो के धर्मों मे तथा श्रौत एव स्मात धर्मों म से स्थित उनसे विनिवृत्त अधिकार वाले ये जब तक म व तर का क्षय होता है वहाँ रहा करते हैं ॥६॥ ऋषियो ने कहा—हे मातरिश्वन् ! हे विभो ! आपने महर्लोक–यह कहा है और प्रतिलोक मे अनेको

के द्वारा कर्त्तव्य से समधिष्ठित बताये हैं ॥७॥ हे प्रभो ! और जितने वे लोक है उनमें जो नहीं दग्ध होते है—यह सब हमको बताइये और प्रेम के साथ वर्णन करिये क्योंकि आप सभी कुछ ठीक-ठीक जानते हैं ॥८॥

एवमुक्तस्तदा वायुर्मुनिभिर्विनयात्मभिः ।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं यथातत्त्वेन तत्त्ववित् ॥९
चतुर्दशैव स्थानानि वर्णितानि महर्षिभिः ।
लोकाख्यानि तु यानि स्युर्येषु तिष्ठन्ति मानवाः ॥१०
सप्त तेषु कृतान्याहुरकृतानि तु सप्त वै ।
भूरादयस्तु सत्यान्ताः सप्त लोकाः कृतास्त्विह ॥११
अकृतानि तु सप्तैव प्राकृतानि तु यानि वै ।
स्थानानि स्थानिभिः सार्द्धं कृतानि तु निबन्धनम् ॥१२
पृथिवी चान्तरिक्षं च दिव्यं यच्च महः स्मृतम् ।
स्थानान्येतानि चत्वारि स्मृतान्यार्णवकानि च ॥१३
क्षयातिशययुक्तानि तथा युक्तानि वक्ष्यते ।
यानि नैमित्तिकानि स्युस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥१४
जनस्तपश्च सत्यञ्च स्थानान्येतानि त्रीणि तु ।
ऐकान्तिकानि सत्त्वानि तिष्ठन्तीहाप्रसयमात् ॥१५
व्यक्तानि तु प्रवक्ष्यामि स्थानान्येतानि सप्त वै ।
भूर्लोकः प्रथमस्तेषां द्वितीयस्तु भुवः स्मृतः ॥१६

विनय से युक्त आत्मा वाले मुनियों के द्वारा इस तरह कहे गये वायु देव मधुर वाक्य बोले क्योंकि वे तत्त्वों के वेत्ता थे अतः यथा तत्त्व ही उनके वचन भी थे ॥९॥ श्री वायु ने कहा—महर्षियों ने चौदह ही स्थानों का वर्णन किया है जो कि लोक—इस नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनमें मनुष्य निवास की स्थिति किया करते हैं ॥१०॥ उनमें सात तो कृत हैं और सात अकृत हैं। भूर्लोक आदि नामों से जो सम्ख्यात होते हैं वे ही सात लोक यहाँ कृत होते हैं ॥११॥ और अकृत तो सात ही होते हैं जो कि प्राकृत हैं। स्थानियों के साथ वे स्थान कृत हैं और निबन्धन होते हैं ॥१२॥ पृथिवी और अन्तरिक्ष और दिव्य जो

महर्लोक कहा गया है ये चार स्थान प्राणवक कहे गये हैं ॥१३॥ ये क्षयातिशय से युक्त होते हैं तथा युक्त कहे जायगे। जो नमित्तिक होते है वे प्राभूत सम्प्लव तक रहा करते है ॥१४॥ जन–तप और सत्य ये तीन स्थान हैं जहाँ पर प्राम सयम से एकान्तिक सत्त्व ठहरा करते है ॥१५॥ ये सात स्थान व्यक्त हैं इनको मैं बताता हूँ—भूर्लोक उनमे प्रथम है दूसरा तो भुवर्लोक कहा गया है ॥१६॥

स्वस्तृतीयस्तु विज्ञयश्चतुर्थो वै मह स्मृत ।
जनस्तु पञ्चमो लोकस्तप षष्ठो विभाव्यते ॥१७
सत्यन्तु सप्तमो लोको निरालोकस्तत परम् ।
भूरिति व्याहृते पूर्व भूर्लोकश्च ततोऽभवत् ॥१८
द्वितीय भुव इत्युक्त अन्तरिक्ष ततोऽभवत् ।
तृतीय स्वरितीत्युक्त दिव प्रादुर्बभूव ह ॥१९
व्याहारस्त्रिभिरेतस्तु ब्रह्मलोकमकल्पयत् ।
ततो भू पार्थिवो लोक अन्तरिक्ष भुवः स्मृतम् ॥२०
स्वर्लोको वै दिव ह्यत्र पुराणे निश्चय गतम् ।
भूतस्याधिपतिश्चाग्निस्ततो भूतपति स्मृत ॥२१
वायुर्भुवस्याधिस्पतिस्तेन वायुर्भुवपति ।
भव्यस्य सूर्योऽधिपतिस्तेन सूर्यो दिवस्पति ॥२२
महेतिव्याहृतेनैव महर्लोकस्ततोऽभवत् ।
विनिवृत्ताधिकाराणा देवाना तत्र च क्षय ॥२३
जनस्तु पञ्चमो लोकस्तस्माज्जायन्ति व जना ।
तासा स्वाय भुवाद्याना प्रजाना जननाज्जन ॥२४

तृतीय स्वर्लोक होता है और चतुर्थ महर्लोक जानने के योग्य कहा गया है। जनलोक पाँचवाँ होता है और छठा तपलोक होता है ॥१७॥ सत्यलोक नाम वाला सप्तम लोक होता है इसके आगे निरालोक होता है। पूर्व मे भू–यह व्याहृत होने पर इससे ही भूर्लोक हुआ ॥१८॥ फिर दूसरा भुव–यह कहा गया वह अन्तरिक्ष भुव कहा गया है। तीसरा स्व–यह कहने पर दिव का प्रादुर्भाव हुआ था ॥१९॥ इन तीन व्याहारो के द्वारा ब्रह्मलोक कल्पित हुआ

था। इससे भू पार्थिव लोक है और भुव यह अन्तरिक्ष कहा गया है ॥२०॥ और स्वर्लोक यह दिव है—ऐसा पुराण मे निश्चय को प्राप्त हुआ है। भूत का अधि पति अग्नि है इसके पश्चात् भूत पति कहा गया है ॥२१॥ वायु भुव पति है। भव्य का अधिपति सूर्य होता है इससे सूर्य दिवस्पति कहा गया है ॥२२॥ यह इस तरह व्याहृत होनेसे ही इस प्रकार मे महर्लोक फिर हुआ था। विनिवृत्त अधिकार वाले देवो का वहाँ पर क्षय होता है ॥२३॥ जन पाँचवाँ लोक है उससे जन उत्पन्न हुआ करते हैं। उन स्वायम्भुवादि प्रजाओ के जनन से जन होता है ॥२४॥

यास्ता स्वायम्भुवाद्या हि पुरस्तात्परिकीर्त्तिता ।
कल्पदग्धे तदा लोके प्रतिष्ठन्ति तदा तप ॥२५
ऋभु सनत्कुमाराद्या यत्र सन्त्यूर्द्ध रेतस ।
तपसा भावितात्मानस्तत्र सन्तीति वा तप ॥२६
सत्येति ब्रह्मण: शब्द सत्तामात्रस्तु स स्मृत. ।
ब्रह्मलोकस्तत. सत्य सप्तम स तु भास्कर ॥२७
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा गुह्यकास्तु सराक्षसा ।
सर्वभूतपिशाचाश्च नागाश्च सह मानुपै ।
स्वर्लोकवासिन सर्वे देवा भुवि निवासिन ॥२८
मरुतो मातरिश्वानो रुद्रा देवास्तथाश्विनौ ।
अनिकेतान्तरिक्षास्ते भुवर्लोक्या दिवौकस ॥२६
आदित्या ऋभवो विश्वे साध्याश्च पितरस्तथा ।
ऋषयोऽङ्गिरसश्चैव भुवर्लोक समाश्रिता ॥३०
एते वैमानिका देवास्ताराग्रहनिवासिन ।
इत्येते क्रमश प्रोक्ता ब्रह्मव्याहारसम्भवा ॥३१
भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्च ते स्मृता ।
आरभ्यन्ते तु तन्मार्यं शुद्धास्तेषा परस्परम् ॥३२

जो स्वायम्भुवादि पहिले कहे गये हैं कल्प के दग्ध होने पर उस समय लोक में तप को प्रतिष्ठित किया करते हैं ॥२५॥ ऋभु सनत्कुमार आदि जहाँ पर

ये ऊर्द्ध रेता लोग होते हैं जो तप के द्वारा भावित आत्मा वाले वहाँ पर हैं इससे तप कहा गया है ॥२६॥ सत्य–यह ब्रह्म का शब्द है और वह सत्तामात्र कहा गया है। इससे सत्य लोक जो है वह ब्रह्मलोक सप्तम है और वह भास्कर है ॥२७॥ गन्धव–अप्सरायें–यक्ष–गुह्यकराक्षसो के सहित–समस्त भूत और पिशाच नाग मनुष्यो के सहित ये सब देव स्वर्लोक के निवास करने वाले हैं जोकि भूमि निवासी हैं ॥२८॥ मरुत–मातरिश्वान–रुद्र–देवता तथा अश्विनीकुमार दोनो के अनिकेतान्तरिक्ष है और दिव मे स्थान वाले सब भुवर्लो मय होते हैं ॥२६॥ आदित्य–ऋभु–विश्वेदेव–साध्य–पितर–ऋषिगण और अङ्गिरस ये सब भुवर्लोक मे समाश्रित होते हैं ॥३ ॥ ये ताराग्रह निवासी देव वमानिक होते हैं। ये सब क्रम से ब्रह्म के व्याहार से उत्पन्न होने वाले कह दिये गये है ॥३१॥ भूर्लोक प्रथम लोक है और महदन्त ये कहे गये हैं। परस्पर मे उनकी तन्मात्राओं से शुद्ध धारण किये जाते हैं ॥३२॥

शुक्राद्याश्चाक्षुषान्ताश्च ये व्यतीता भुव श्रिता ।
महर्लोकश्चतुथस्तु तस्मिस्ते कल्पवासिन ॥३३
भूर्लोकप्रथमा लोका महद न्ताश्च ये स्मृता ।
तान् सर्वान् सप्त सूर्यास्ते अर्चिर्भिनिदहन्ति व ॥३४
मरीचि कश्यपो दक्षस्तथा स्वायम्भुवोऽङ्गिरा ।
भृगु पुलस्त्य पुलह क्रतुरित्येवमादय ॥३५
प्रजाना पतय सर्वे वत्त ते तत्र त सह ।
नि सत्त्वा निममाश्च व तत्र ते ह्यूद्ध रेतस ॥३६
ऋभु सनत्कुमाराद्या वराज्यास्ते तपोधना ।
मन्वन्तराणा सर्वेषा सावर्णानां तत स्मृता ।
पतद् ज्ञाना सर्वेषा पुनरावृत्तिहेतव ॥३७
योग तपश्च सत्यञ्च समाधाय तदात्मनि ।
षष्ठे काले निवर्त्त न्ते ततदाहविपर्यये ॥३८
सत्यन्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्मार्गगामिनाम् ।
ब्रह्मलोक समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षण ॥३९

पर्याप्तपारिमाण्येन भूर्लोक समिति स्मृन ।
भूम्यन्तर यदादित्यादन्तरिक्ष भुवः स्मृतम् ।।४०

शुक्राद्य और चाक्षुषान्त जो व्यतीत है वे ध्रुव मे आश्रित होते हैं। महर्लोक तो चौथा है उसमे वे कल्प वासी रहते है ।।३३।। भूर्लोक से प्रथम लोक जो महदन्त कहे गये है उन सबको सप्त सूय अपनी अर्चियो के द्वारा निदग्ध कर दिया करते है ।।३४।। मरीचि–कश्यप–दक्ष–स्वायम्भुव–अङ्गिरा–भृगु–पुलस्त्य–पुलह और क्रतु इत्येवमादि हैं ।।३५।। वे सब प्रजाओ के पति हैं और वहां पर वे उनके साथ रहते हैं। वे वहां नि सत्त्व और निमम एव ऊर्द्ध्वरेता होते हैं ।।३६।। ऋभु और सनत्कुमार आद्य वे सब तपोधन वैराज्य है। सावर्ण समस्त मन्वन्तरो के वे कहे गये हैं जो कि चौदहो लोको के सब के पुनरावृत्ति होने के हेतु होते है ।।३७।। उस समय में योग–तप और सत्य को आत्मामे समाधान करके पश्च काल मे उस अह के विपर्यय मे निवृत्त होजाते हैं ।।३८।। सत्य तो सप्तम लोक है जो कि अपुनर्मार्ग गामियो का लोक होता है। वह अप्रतीघात लक्षण वाला ब्रह्मलोक कहा गया है ।।३९।। पर्याप्त पारिमाण्य से भूर्लोक समिति कहा गया है। भूमि के अन्तर मे जो आदित्य से अन्तरिक्ष है वह भुव कहा गया है ।।४०।।

सूर्यध्रुवान्तर यच्च स्वर्गलोको दिव स्मृत ।
ध्रुवाज्जनान्तर यच्च महर्लोकस्तदुच्यते ।।४१
विख्याता सप्तलोकास्तु तेषा वक्ष्यामि सिद्धय ।
भूर्लोकवासिन सर्वे ह्यन्नादास्तु रसात्मका ।।४२
भुवे स्वर्गे च ये सर्वे सोमपा आज्यपाश्च ये ।
चतुर्थे येऽपि वर्त्तन्ते महर्लोक समाश्रिता ।।४३
विज्ञेया मानसी तेषा सिद्धिर्वै पञ्चलक्षणा ।
सद्यश्चोत्पद्यते तेषा मनसा सर्व्वमीप्सितम् ।।४४
एते देवा यजन्ते वै यज्ञै सर्वै परस्परम् ।
अतीतान् वतमानाश्च वर्त्तमानाननागतान् ।।४५

प्रथमानन्तररिष्ट्वा ह्यन्तरा साम्प्रत पुन ।
निवर्त्ततीत्यासम्ब धोऽतीते देवगणे तत ॥४६
विनिवृत्ताधिकाराणा सिद्धिस्तेषान्तु मानसी ।
तेषां तु मानसी ज्ञ या शुद्धा सिद्धिपरम्परा ॥४७
उक्ता लोकाश्च चत्वारो जनस्यानुविधिस्तथा ।
समासेन मया विप्रा भूयस्त वर्त्तयामि व ॥४८

और जो सूय ध्रुवान्तर मे है वह स्वग लोक दिन कहा गया है। अब से जनान्तर जो है वह महर्लोक कहा जाता है ॥४१॥ ये सात लोक विख्यात है अब उनकी सिद्धियो को बताता हूँ। भूर्लोक के निवास करने वाले सभी अन्न खाने वाले रसात्मक होते है ॥४२॥ भुव मे और स्वग मे जो सब हैं वे सोम पान करने वाले और आज्य पान करने वाले होते हैं। चौथे मे जो रहा करते हैं वोकि महर्लोक को आश्रय किये हुए हैं ॥४३॥ उनकी पाँच लक्षणो वाली मानसी सिद्धि जानने के यो य है। उनके मन से जो भी कुछ अभीष्ट होता है वह तुरन्त ही उत्पन्न हो जाता है ॥४४॥ वे देव समस्त यज्ञो के द्वारा परस्पर मे यजन किया करते हैं। जो अतीत होगये है—जो वत्तमान है और जो अनागत हैं उन सभी को करते हैं ॥४५॥ प्रथमो को अन्तरो के द्वारा यजन करके फिर साम्प्रतो के द्वारा अन्तरो को करते है फिर देवगण के अतीत होने पर आसम्बन्ध निर्वात्तित हो जाता है ॥४६॥ उन विनिवृत्त अधिकार वालो की मानसी सिद्धि हुआ करती है। उनकी शु॰ सिद्धियो की परम्परा मानसी जाननी चाहिए ॥४७॥ चार लोक कह दिये गये हैं तथा हे विप्रवृन्द ! जनकी अनुविधि भी सक्षेप से मैंने बतला दी है मैं पुन उसको तुम्हारे सामने कहता हूँ ॥४८॥

मरीचि कश्यपो दक्षो वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगु ।
पुलस्त्य पुलहश्चैव क्रतुरित्येवमादय ॥४६
पूव ते सम्प्रसूयन्ते ब्रह्मणो मनसा इह ।
तत प्रजा प्रतिष्ठाप्य जनमेवाश्रयन्ति ते ॥५०
कल्पदाहप्रदीप्तेपु तदा कालेषु तेषु च ।
भूरादिषु महान्तषु भृश व्याप्तेष्वथाग्निना ॥५१

शिखा सवर्त्तका ज्ञेया प्राप्नुवन्ति सदा जना ।
यामादयो गणा सर्वे महर्लोकनिवासिन ॥५२
महर्लोकेषु दीप्तेषु जनमेवाश्रयन्ति ते ।
सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते तत्रस्थास्तु भवन्ति ते ॥५३
तेषा ते तुल्यसामर्थ्यास्तुल्यमूर्त्तिधरास्तथा ।
जन लोके विवर्त्तन्ते यावत्सप्लवते जगत् ॥५४
व्युष्टायान्तु रजन्या वै ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनिन ।
अहरादौ प्रसूयन्ते पूर्ववत्क्रमशस्त्विह ॥५५
स्वायम्भुवादय सर्वे मरीच्यन्तास्तु साधका ।
देवास्ते वै पुनस्तेषा जायन्ते निधनेष्विह ॥५६

श्री वायुदेव ने कहा—मरीचि—कश्यप—दक्ष—वसिष्ठ—अङ्गिरा—भृगु—पुलस्त्य—पुलह और क्रतु इत्येवमादि लोग पहिले यहाँ ब्रह्मा के मन से उत्पन्न होते हैं फिर ये प्रजाओं को प्रतिष्ठापित करके जन का ही आश्रय लिया करते हैं ॥४६ ५०॥ कल्पदाह के प्रदीप्त उन कालो मे भू से आदि लेकर महान्त तक अग्नि के अच्छी तरह व्याप्त हो जाने पर सर्वत्तिका शिखा जाननी चाहिए जिसको कि मनुष्य सदा ही प्राप्त किया करते है । यामादि समस्तगण जो महर्लोक के निवास करने वाले हैं ॥५१-५२॥ वे महर्लोक के दीप्त होजाने पर जनलोक का आश्रय ग्रहण कर लेते हैं । वहाँ पर वे सभी सूक्ष्म शरीर वाले होते हुए वहाँ ही अपनी स्थिति किया करते हैं ॥५३॥ उनके वे तुल्य सामर्थ्य वाले और समान ही मूर्त्तियो को धारण करने वाले जब तक यह जगत् सप्लावित होना है जनलोक मे ही विशेष रूप से रहा करते हैं ॥५४॥ अव्यक्त योनि ब्रह्मा की रजनी के व्युष्ट होजाने पर दिन के आदि मे यहाँ पुन पूर्व की भाँति क्रम से उत्पन्न किया करते हैं ॥५५॥ यह निधन होने पर समस्त स्वायम्भुवादि और मरीच्यन्त साधक देव वे फिर उनके जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥५६ ।

यामादय क्रमेणैव कनिष्ठाद्या प्रजापते ।
पूर्वं पूर्वं प्रसूयन्ते पश्चिमे पश्चिमास्तथा ॥५७

वाले व्यासजी के पुत्र और पुराणों के पूर्ण ज्ञाता सूतजी से कहा—॥७ ॥ ऋषिवृन्द बोले—वे वराज जिस आहार वाले जिन सत्वों वाले और जिस आश्रय वाले होकर रहते है और जितने समय तक ठहरते हैं वह हमसे ठीक कहिए ॥७१॥

तदुक्तमृषिभिर्वाक्य श्रुत्वा लोकार्थतत्त्ववित् ।
सूत पौराणिको वाक्य विनयेनेदमब्रवीत् ॥७२
तन प्राप्यन्त त स र्वे शुद्धिशुद्धतमाश्च ये ।
आभूत सम्प्लवास्तत्र दश तिष्ठन्ति त जना ॥७३
सर्वे सूक्ष्मशरीरास्त विद्वासो घनमूर्त्तय ।
स्थितलोकास्थितत्वाच्च तथा भूत न विद्यत ॥७४
ऊचु सनत्कुमाराद्या सिद्धास्त योगधार्मिण ।
ख्याति नमित्तिकी तथा पर्य्याये समुपस्थिते ॥७५
स्थानस्थाने मनश्चापि युगपत्सप्रवर्त्तते ।
ऊचु सर्वे तदान्योऽन्य वराजाच्छुद्धबुद्धय ॥७६
एवमेव महाभागा प्रणव सम्प्रविश्य ह ।
ब्रह्मलोके प्रवर्त्तारस्तत्र श्र यो भविष्यति ॥७७
एवमुक्त्वा तदा सर्वे ब्रह्मान्ते व्यवसायिन ।
योजयित्वा तदा सर्व्वे वर्त्तन्ते योगधर्म्मिण ॥७८
तत्रव सम्प्रलीयन्ते शान्ता दीपाचिषो यथा ।
ब्रह्मकायमथत्तन्त पुनरावृत्तिदुर्ल्लभम् ॥७९
लोक त समनुप्राप्य सर्व्वे ते भावनामयम् ।
आनन्द ब्रह्मण प्राप्य ह्यमृतत्वाय ते गताः ॥८
व राजेभ्यस्तथवोद्ध मन्तरे पद्गुणे तत ।
ब्रह्मलोक समाख्यातो यत्र ब्रह्मा पुरोहित ॥८१

ऋषियों के द्वारा कहे हुए उस वाक्य को श्रवण कर लोकों के अर्थ के तत्व को जानने वाले पौराणिक सूतजी विनय के साथ यह वाक्य बोले ॥७२॥ वे सब जो शुद्धि से शुद्धतम थे वहाँ प्राप्त होते हैं और वहाँ पर वे मनुष्य दश

प्राभूत सम्प्लव तक ठहरा करते है ॥७३॥ वे सब सूक्ष्म शरीर वाले विद्वान् और मन मूर्त्ति वाले है और स्थित लोक मे भ्रास्थित होने से उनका भूत नही होता है ॥७४॥ सनत्कुमार आद्य सिद्ध और योग धर्मी उनके पर्याय के समुपस्थित होने पर नैमित्तिकी ख्याति को कहते है ॥७५॥ स्थान के त्याग करने पर मन भरे एक ही साथ सम्प्रवृत्त होता है । उस समय शुद्ध बुद्धि वाले सब अन्योन्य मे वैराजो को कहते हैं ॥७६॥ इसी प्रकार से ही महाभाग प्रणव मे सम्प्रवेश करके ब्रह्मलोक मे प्रवर्त्तन करने वाले हमारा श्रेय होगा ॥७७॥ इस रीति से कहकर उस समय मे सब ब्रह्मान्त मे व्यवसाय करने वाले योजित करके तब सब योग धर्मी होते हैं ॥७८॥ वहाँ पर ही जैसे दीप की अर्चियाँ शान्त होजाया करती हैं ये सम्प्रलीन हो जाते हैं ॥७९॥ वे सब उस भावनामय लोक को अनुप्राप्त करके और ब्रह्मा के आनन्द की प्राप्ति करके वे अमृतत्व को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥८०॥ वैराजो से उसी प्रकार से ऊर्द्ध मे पद्गुण अन्तर मे ब्रह्मलोक ख्यात है जहाँ ब्रह्मा पुरोहित है ॥८१॥

ते सर्वे प्रणावात्मानो बुद्धशुद्धतपास्तथा ।
आनन्द ब्रह्मण प्राप्यामृतत्वञ्च भजन्त्युत ॥८२
द्वन्द्वैस्ते नाभिभूयन्ते भावत्रयविवर्ज्जिता ।
आधिपत्य विना तुल्या ब्रह्मणस्ते महौजस ॥८३
प्रभावविर्यैश्वर्य्यस्थितिवैराग्यदर्शनै ।
ते ब्रह्मलौकिका सर्वे गति प्राप्य विवर्त्तनीम् ॥८४
ब्रह्मणा सह देवैश्च सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे ।
तपसोऽन्ते क्रियात्मानो बुद्धावस्था मनीषिण ।
अव्यक्ते सम्प्रलीयन्ते सर्वे ते क्षणदर्शिन ॥८५
इत्येतदमृत शुक्र नित्यमक्षयमव्ययम् ।
देवर्षयो ब्रह्मसत्र सनातनमुपासते ॥८६
अपुनर्मार्गगादीना तेषा चैवोर्द्ध्वरेतसाम् ।
कर्माभ्यासकृता शुद्धिर्वेदान्तेषूपलक्ष्यते ॥८७

तत्र तेऽभ्यामिना युक्ता परा काउमुपासते ।
हित्वा शरीर पाप्मानममृतत्वाय ते गता ॥८८

वे सब प्रयत्न की आत्मा वाल तथा वृद्ध एव शुद्ध तप वाल ब्रह्मा के आनन्द का लाभ कर अमृतत्व का सेवन किया करते हैं ॥८२॥ तीनो भावों से विवर्जित वे द्वन्द्वे से अभिभूत नहीं हुआ करते हैं। आधिपत्य के बिना महान् ओज वाले ब्रह्मा के तुल्य हो जाते हैं ॥८३॥ प्रभाव-विजय-ऐश्वय-स्थिनि-वराज और दर्शनों से वे सब विवर्तिनी गति को प्राप्त कर ब्रह्मलौकिक होजाते हैं ॥८४॥ ब्रह्मा और देवो के साथ प्रति सञ्चार सम्प्राप्त करने पर तप के अन्त म क्रियात्मा और बुद्धावस्था वाले मनीषी वे सब क्षणदर्शी होते हुए अव्यक्त म सम्प्रलीन हो जाते है ॥८५॥ देवर्षिगण इस अमृत-शुक्र-विरज-अक्षय सनातन और अक्षय ब्रह्मपद की उपासना किया करते है ॥८६॥ अपुनर्मार्ग म गमन करने वाले ऊर्द्ध रेता उनकी कर्माभ्यास से की हुई शुद्धि वेदान्तो मे उपलक्षित होती है ॥८७॥ वहाँ पर अभ्यास करने वाले-युक्त वे पराकाष्ठा की उपासना करते हैं और पाप युक्त शरीर का त्याग करके अमृत्व को प्राप्त होगये है ॥८८॥

वीतरागा जितक्रोधा सतत सत्यवादिन ।
शान्ता प्रणिहितात्मानो दयावन्तो जितेन्द्रिया ॥८९
नि सङ्गा शुचयश्च व ब्रह्मसायुज्यगा स्मृता ।
अकामयुक्तयें धीरास्तपोभिर्द्ग्धकिल्विषा ।
तेषामत्र शिनो लोका अप्रमेयसुखा स्मृता ॥९०
एतद्ब्रह्मपद दिव्य व्योम्नि दीप्त भास्वरम् ।
गत्वा न यत्र शोचन्ति ह्यमरा ब्रह्मणा सह ॥९१
कस्मादेव पराद्ध ञ्च कश्च च पर उच्यते ।
एतद्व दितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ॥९२
शृणुध्व मे पराद्ध च परिसख्या परस्य च ।
एक दश शतञ्च व सहस्रञ्च व सह्खया ॥९३
विज्ञ यमासहस्रन्तु सहस्राणि दशायुतम् ।
एक शतसहस्रन्तु नियुत प्रोच्यते बुधै ॥९४

तथा शतसहस्राणामर्बुद कोटिरुच्यते ।
अर्बुद दशकोट्यस्तु ह्यब्ज कोटिशत विदु ॥६५
सहस्रमपि कोटीना खर्वमाहुर्मनीषिणः ।
दशकोटिसहस्राणि निखर्वमिति त विदु ॥६६

वीतराग–क्रोध को जीतने वाले–मोह से रहित–सत्य बोलने वाले–शान्त हित आत्मा वाले–दया से पूर्ण–इन्द्रियों को जीतने वाले–राग से हीन र मुनि ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त होने वाले कहे गये है । निष्काम तपो से युक्त जो वीर होते है वे उन तपो से पापो को दग्ध कर देने वाले हो जाते है उनके लोक भय रहित और अप्रमेय सुख से अन्वित कहे गये है ॥८६-९०॥ यह हा स्थान परम दिव्य और व्योम मे भास्वर रहता है जहाँ पर जाकर ब्रह्मा के साथ शोच नही किया करते है ॥९१॥ ऋषियो ने कहा—यह परार्द्ध किस कारण से है और यह पर कौन कहा जाता है । हम अब यह जानना चाहते है तो है श्रेष्ठतम ! वह हमसे कहो ॥९२॥ श्री सूतजी ने कहा— आप लोग मुझसे परार्द्ध के विषय मे श्रवण करो और पर की परसख्या भी सुन लो । एक–दश–शत और सख्या से सहस्र तक जानना चाहिए ॥९३॥ दश सहस्र का अयुत होता है । शत सहस्र का एक नियुत बुधो के द्वारा कहा जाता है ॥९४॥ उसी प्रकार से एक शत सहस्रो का अर्बुद कोटि कहा जाया करता है । दश कोटियो को अर्बुद कहते है और सौ करोड को अब्ज कहा जाता है ॥९५॥ एक सहस्र कोटियो को मनीषीगण खर्व कहते है । दश सहस्र करोडो को निखर्व कहते है ॥९६॥

शत कोटिसहस्राणा शङ्कुरित्यभिधीयते ।
सहस्रन्तु सहस्राणा कोटीना दशधा पुन ।
गुणितानि समुद्र वै प्राहु सख्याविदो जना ॥९७
कोटीना सहस्रमयुतमित्यय मध्य उच्यते ।
कोटि सहस्रनियुता स चान्त इति सज्ञित ॥९८
कोटिकोटिसहस्राणि परार्द्ध इति कीर्त्यते ।
परार्द्धं द्विगुणश्चापि परमाहुर्मनीषिण ॥९९

शतमाहु परिदढ सहस्र परिपद्मम् ।
विनयमयुत तस्मान्नियुत प्रयुत तत ॥१००
अर्बु न्यर्बु दश्च व खर्वु दश्च तत स्मृतम् ।
खवश्च व निखवश्च शङकु पद्म तथव च ॥१०१
समुद्र मध्यमश्च व पराद्ध मपर तत ।
एवमष्टादशतानि स्थानानि गणनाविधौ ॥१०२
शतानीति विजानीयात् सञ्ज्ञितानि महर्षिभि ।
कल्पसख्या प्रवृत्तस्य पराद्ध ब्रह्मण स्मृतम् ॥१०३
तावच्छेषोऽपि कालोऽस्य तस्यान्ते प्रतिसृज्यत ।
पर एष पराद्ध च सख्यात सख्यया मया ॥१०४

सौ सहस्र करोडो को शत—इस नाम से कहा जाता है । सहस्रों करोडो के सहस्र को फिर दशवार गुणित कर देने पर सख्या के वेत्ता लोग उसे समुद्र इस नाम से कहते हैं ॥६७॥ कोटियो का सहस्र अयत है—यह मध्य कहा जाता है । कोटि सहस्र नियुत जो है वह प्र त —इस सज्ञा वाला होता है कोटियों के कोटि सहस्र पराद्ध इस नाम से कहा जाता है । पराद्ध का दुगुना भी मनीषियो के द्वारा परम कहा जाता है ॥६६॥ शत को परिदढ कहते हैं और सहस्र को परिपद्मक कहते हैं । उससे प्रयुत जानना चाहिए और फिर नियत तथा प्रयुत होता है ॥१ ॥ अर्बु द-निर्बु द और खर्बु द कहा गया है । खर्व-निखर्व और फिर शंकु तथा पद्म कहा जाता है ॥१ १॥ समुद्र और मध्यम और इसके पश्चात् पराद्ध होता है । इस तरह से इस गणना की विधि के अठारह स्थान होते है ॥१ २॥ शतानि-यह जानना चाहिए जोकि मनीषियो के द्वारा संज्ञा वाले हुए है । कल्प सख्या मे प्रवृत्त उस ब्रह्मा का पराद्ध कहा गया है ॥१ ३॥ उतना उसका शेष काल भी उसके अ त मे प्रति सृष्ट किया जाता है । यह पर और पराद्ध मैंने सख्या से गिना हुआ किया है ॥१ ४॥

यस्मादस्य पर वीय परमायु परन्तपः ।
परा शक्ति परो धर्म परा विद्या परा धृति ॥१०५

पर ब्रह्म पर ज्ञान परमैश्वर्यमेव च ।
तस्मात्परतर भूत ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते ॥१०६
परे स्थितो ह्यपि पर सर्वार्थेषु तत परः ।
सख्यातस्तु परो ब्रह्मा तस्यार्द्ध तु परार्द्धता ॥१०७
सख्येय चाप्यसख्येय सतत चापि त त्रिकम् ।
सख्येय सख्यया दृष्टमपारार्द्धाद्विभाव्यते ॥१०८
राशौ दृष्टे न सख्यास्ति तदसख्यस्य लक्षणम् ।
आनन्त्य सिकताख्येषु दृष्टवान् पञ्चलक्षणम् ॥१०९
ईश्वरैस्तत्प्रसख्यात शुद्धत्वाद्दिव्यदृष्टिभि ।
एव ज्ञानप्रतिष्ठत्वात् सर्व्वं ब्रह्मानुपश्यति ॥११०
एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे नैमिषेयास्तपस्विन ।
बाष्पपर्य्याकुलाक्षास्तु प्रहर्षाद्गद्गदस्वरा ॥१११
पप्रच्छुर्मातरिश्वान सर्व्वे ते ब्रह्मवादिन ।
ब्रह्मलोकस्तु भगवन् यावन्मात्रान्तर प्रभो ॥११२
योजनाग्रे ण सख्यातः साधन योजनस्य तु ।
क्रोशस्य च परीमाण श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥११३

जिस कारण से इसकी पर वीर्य है—परम आयु–परम तप–परा शक्ति–पर धर्म–परा विद्या–परा वृत्ति–परम ब्रह्म–परम ज्ञान और परम ऐश्वर्य होता है उससे परतर भूत होता है जोकि ब्रह्म से अन्यत् कोई नहीं है ॥१०५-१०६॥ पर में स्थित यह पर है और समस्त अर्थों में पर है उससे पर ब्रह्मा सख्यात होता है और उसका अर्द्ध ही परार्द्धता होती है ॥१०७॥ सख्या करने के योग्य और सख्या न करने के भी योग्य सर्वदा उस त्रिक को सख्या से सख्या करने के योग्य देखा है जो अपरार्द्ध से विभावित किया जाता है ॥१०८॥ राशि के देखने पर सख्या नहीं है वह असख्य का लक्षण है । सिकता नाम वालो का पञ्च लक्षण वाला आनन्त्य देखा है ॥१०९॥ दिव्य दृष्टि वाले ईश्वरो के द्वारा शुद्ध होने से वह प्रसख्यात है । इस प्रकार से ज्ञान प्रतिष्ठ होने से सब ब्रह्म का अनुदर्शन करता है ॥११०॥ यह श्रवण कर वे सब नैमिषेय तपस्वी लोग बाष्पो

से आकुल नेत्रों वाले प्रहृष्ट रूप से गद्गद स्वर वाले हो गये थे ॥१११॥ उन समस्त ब्रह्म वादियों ने वायुदेव से पूछा—हे प्रभो ! हे भगवान् ! ब्रह्मलोक जितना अन्तर वाला है वह योजनाग्र से सख्यायान किया गया है। योजन का साधन और कोस का परीमाण तत्त्व पूर्वक हम लोग सुनने की इच्छा करते हैं ॥११२ ११३॥

तपा तद्वचन श्रुत्वा मातरिश्वा विनीतवाक ।
उवाच मधुर वाक्य यथादृष्ट यथाक्रमम् ॥११४
एतद्वोऽह प्रवक्ष्यामि शृणुध्व मे विवक्षितम् ।
अव्यक्ताव्यक्तभागो वै महास्थूलो विभाव्यत ॥११५
दशव महता भागा भूतादि स्थूल उच्यत ।
दशभागाधिक चापि भूतादि परमाणुक ॥११६
परमाणु सुसूक्ष्मस्तु भावग्राह्यो न चक्षुषा ।
यदभेद्यतम लोके विज्ञ य परमाणु तत् ॥११७
जालान्तरगत भानोर्यत्सूक्ष्म दृश्यत रज ।
प्रथम तत्प्रमाणाना परमाणु प्रचक्षत ॥११८
अष्टाना परमाणूना समवायो यदा भवेत् ।
त्रसरेणु समाख्यातस्तत्पद्मरज उच्यत ॥११९
त्रसरेणवश्च येऽप्यष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृत ।
तेऽप्यष्टौ समवायस्था बालाग्र तत्स्मृत बुध ॥१२०
बालाग्राण्यष्ट लिक्षा स्याद्यूका तच्चाष्टक भवेत् ।
यूकाष्टक यवा प्राहुरङ्गुलन्तु यवाष्टकम् ॥१२१

उनके उस वचन का श्रवण कर विनीत वचन वाले वायुदेव जैसा भी देखा है उसे यथाक्रम से मधुर वाक्य कहने लगे ॥११४॥ वायु ने कहा—यह मैं आपको बतला दूँगा मेरे विवक्षित को आप सुनिये। अव्यक्त भाग निश्चय ही महान् स्थूल विभावित होता है ॥११५॥ महतो के दश ही भाग हैं। भूतादि स्थूल कहा जाता है। दश भागो से अधिक भी भूतादि परमाणुक होता है ॥११६॥ परमाणु बहुत ही सूक्ष्म होता है और वह भावग्राह्य है चक्षु के द्वारा

ग्राह्य नही होता है। जो लोक मे अभेद्यतम होता है उसी को परमाणु जानना चाहिए ॥११७॥ भानु के जाल के अन्तर्गत जो सूक्ष्म रज के कण दिखलाई देते हैं। प्रथम उसके प्रमाण वालो को परमाणु कहते है ॥११८॥ आठ परमाणुओ का समवाय जब हो जाता है तो उसे त्रसरेणु इस नाम से समाख्यात करते है यह पद्मरज कहा जाता है। आठ त्रसरेणुओ का रथरेणु कहा जाता है। आठ रथरेणुओ का जब समवाय होता है तो बुधो के द्वारा बलाग्र कहा गया है ॥११६ १२०॥ आठ बलाग्राओ का एक लिक्षा और आठ लिक्षाओ का एक यूका होती है। आठ यूकाओ का एक यव और आठ यवो का एक अगुल होता है ॥१२१॥

द्वादशागुलपर्व्वाणि वितस्तिस्थानमुच्यते ।
रत्निश्चागुलपर्वाणि विज्ञेयो ह्येकविशति ॥१२२
चत्वारि विशतिश्चैव हस्त स्यादगुलानि तु ।
किष्कुर्द्विरत्निर्विज्ञेयो द्विचत्वारिंशदगुल ॥१२३
षण्णवत्यगुलञ्चैव धनुराहुर्मनीषिण ।
एतद्गव्यूतिसख्याया पादाना धनुष स्मृत ॥१२४
धनुर्दण्डो युग नाली तुल्यान्येतान्यथागुलैः ।
धनुषस्त्रिशत नल्वमाहु सख्याविदो जना ॥१२५
धनु सहस्रे द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते ।
अष्टौ धनु सहस्राणि योजनन्तु विधीयते ॥१२६
एतेन धनुषा चैव योजन तु समाप्यते ।
एतत्सहस्र विज्ञेय शक्रक्रोशान्तरन्तथा ॥१२७
योजनानान्तु सख्यात सख्याज्ञानविशारदै ।
एतेन योजनाग्रेण शृणुध्व ब्रह्मणोऽन्तरम् ॥१२८
महीतलात्सहस्राणा शतादूर्द्ध्वं दिवाकर. ।
दिवाकरात्सहस्रेण तावदूर्द्ध्वं निशाकर ॥१२६
पूर्ण शतसहस्रन्तु योजनाना निशाकरात् ।
नक्षत्रमण्डल कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते ॥१३०

द्वादश अगुलो के पर्वों का एक वितस्ति होता है। जोकि वधो मे द्वारा वितस्ति स्थान कहा जाता है। इक्कीस अगुला का एक पव जानना चाहिये ॥१२२॥ चौबीस अगुलो का एक हस्त होता है। दो रात्रियो का विराम बया लीस अगुल हुआ करते हैं एक किष्कु होना है ॥१२३॥ छयानवे अगुल वाला जो होता है उसे मनीषी लोग एक धनु कहते हैं। यह गव्यूति सख्या म पादो का कहा गया है ॥१२४॥ दो धनुदण्ड वाला नीली है जसे अगुलो के तुल्य हैं। तीनसौ धनुषो का न ल्व सख्या के विद्वान् बन कहते हैं ॥१२५॥ दो सहस्र धनुओं का एक गव्यूति कहा जाता है। आठ सहस्र धनुओं का एक योजन होता है ॥१२६॥ इस धनुष से योजन समाप्त किया जाता है। यह जब एक सहस्र हों तो शक्र क्रोशान्तर होगा है ॥१२७॥ सख्या के ज्ञान रखने वाले पण्डितो के द्वारा योजनो की सख्या की गई है। इस योजनाग्र से ब्रह्मा का अन्तर श्रवण करो ॥१२८॥ महीतल से सौ सहस्र ऊपर दिवाकर होता है। दिवाकर से सहस्र ऊपर निशा कर होना है ॥१२९॥ निशाकर से ऊपर एक पूरे सौ सहस्र समस्त ताराग्रहों का नक्षत्र मण्डल होता है जोकि प्रकाश करता है ॥१३ ॥

शत सहस्र सख्यातो मेरुर्द्विगुणित पुन ।
ग्रहान्तरमथककमूर्ध्व नक्षत्रमण्डलात् ॥१३१
ताराग्रहाणा स वेषामधस्ताच्चरते बुध ।
तस्योर्ध्वंश्चरते शुक्रस्तस्मादूर्ध्व च लोहित ॥१३२
ततो बृहस्पतिश्चोर्ध्व तस्मादूर्ध्वं शनश्चर ।
ऊर्ध्व शतसहस्रन्तु योजनाना शनश्चरात् ॥१३३
सप्तर्षिमण्डल कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते ।
ऋषिभिस्तु सहस्राणां शतदूर्ध्व विभाव्यते ॥१३४
योऽसौ तारामये दिव्ये विमाने ह्रस्वरूपके ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढिभूतो ध्रुवो दिवि ॥१३५
त्रलोक्यस्यष उत्सेधो व्याख्यातो योजनमया ।
मन्वन्तरेषु देवानामिज्या यत्रव लौकिकी ॥१३६

वर्णाश्रमेभ्य इज्या तु लोकेऽस्मिन्या प्रवर्त्तते ।
सर्वेषा देवयोनीना स्थितिहतु स वै स्मृत ॥१३७

त्रैलोक्यमेतद्व्याख्यातमत ऊर्ध्वं निबोधत ।
ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यस्मिंस्ते कल्पवासिन ।
एकयोजनकोटी सा इत्येव निश्चय गतम् ॥१३८

सौ सहस्र संख्या से मेरु द्विगुणित बताया गया है। ग्रहो का एक-एक से ऊपर नक्षत्र मण्डल मे अन्तर होता है ॥१३१॥ समस्त ताराग्रहो के नीचे के भाग में बुध रहता है। उसके ऊपर शुक्र है और उससे ऊपर लोहित चरण करता है ॥१३२॥ उससे ऊपर बृहस्पति और उससे ऊपर शनैश्चर होता है। शनैश्चर से सौ सहस्र योजन ऊपर सप्तर्षियो का मण्डल हुआ करता है जोकि पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ करता है। ऋषियो से सौ सहस्र ऊपर ह्रस्वरूपक इस दिव्य तारामय विमान मे जो यह मेढिभूत उत्तानपाद राजा का पुत्र ध्रुव स्थिर मे प्रकाशित होता है ॥१३३-१३४-१३५॥ मैंने यह त्रैलोक्य का उत्सेध (ऊँचाई) व्याख्यात कर दिया है अर्थात् खुलासा बतला दिया है जोकि योजनो के द्वारा होता है। मन्वन्तरो मे जहाँ पर ही लौकिकी देवो की इज्या होती है ॥१३६॥ जो इज्या यहाँ लोक मे वर्णाश्रमो मे प्रवृत्त हुआ करती है। समस्त देव योनि वालो की वह ही स्थिति का हेतु बताया गया है ॥१३७॥ मैंने यह इस तरह त्रैलोक्य की व्याख्या करदी है अब इससे आगे समझलो। ध्रुव से ऊपर महर्लोक है जिसमे कि वे कल्पवासी रहते हैं। वह एक कोटि योजन है इसी प्रकार निश्चय किया गया है ॥१३८॥

द्वे कोट्यौ तु महर्लोकाद्यस्मिंस्ते कल्पवासिन ।
यत्र ते ब्रह्मण पुत्रा दक्षाद्या साधका स्मृता ॥१३९
चतुर्गुणोत्तरादूर्ध्वं जन लोकात्तप स्मृतम् ।
वैराजा यत्र ते देवा भूतदाहविवर्जिता ॥१४०
षड्गुणात्तु तपोलोकात्सत्यलोकान्तर स्मृतम् ।
अपुनर्मारकामाना ब्रह्मलोक स उच्यते ॥१४१

यस्माद च्यवते भूयो ब्रह्माणं स उपासते ।
एककोटिर्योजनानां पञ्चाशन्नियुतानि तु ॥१४२
ऊर्द्ध्व भागस्ततोऽण्डस्य ब्रह्मलोकात्पर स्मृत ।
चतुरश्च व कोट्यस्तु नियुता पञ्चषष्टि च ॥१४३
एषोऽर्द्धशप्रचारोऽस्य गत्यन्तश्चापर. स्मृत ।
भ्र वाग्रमेतद्व्याख्यात योजनाग्राद्यथाश्रुतम् ॥१४४
अधोगतीना वक्ष्यामि भूताना स्थानकल्पनाम् ।
गच्छति घोरकर्म्माण प्राणिनो यत्र कर्म्मभि ॥१४५
नरको रौरवो रोध सूकरस्ताल एव च ।
तप्तकुम्भो महा वाल णवलोऽथ विमोचन ॥१४६
कृमी च कृमिभक्षश्च लालाभक्षो विशसन ।
अध शिरा पूयवहो रुधिरान्धस्तथैव च ॥१४७
तथा वतरणं कृष्णमसिपत्रवन तथा ।
अग्निज्वालो महाघोर सदशोऽथ श्वभोजन ॥१४८
तमश्च कृष्णसूत्रश्च लोहश्चाप्यसिजस्तथा ।
अप्रतिष्ठोऽथ वीच्यश्चनरका ह्य दमादय ॥१४९

महर्लोक से दो कोटि ऊपर जहाँ वे कल्प पयन्त वास करने वाले हैं औ जहाँ ब्रह्मा के पुत्र दक्ष आदि साधक कहे गये हैं ॥१३९॥ जनलोक से चतुगु र ऊपर तपोलोक बताया गया है जहाँ पर वराज देव रहते हैं जोकि भूत दाह रहित रहा करते है ॥१४ ॥ तपोलोक से षड गुण ऊपर सत्यलोक का अन्त होता है। जो अपुनर्मारको का ब्रह्मलोक कहा जाता है ॥१४१॥ जहाँ से फि कोई भी च्यवन नहीं किया करता है और वह ब्रह्मा की उपासना किया करत है। एक करोड योजन और पचास नियुत ऊपर उससे अण्ड का भाग है ब ब्रह्मलोक से भी पर कहा गया है चार कोटि और पैसठ नियुत है ॥१४२ १४३ इसका यह अर्द्धाश प्रचार अपर गत्यन्त कहा गया है। यह जसा भी सुना गय है योजनाग्र से ध्रुवाग्र की व्याख्या करदी गई है ॥१४४॥ अब अधोगति वाले प्राणियो की स्थान कल्पना को बतलाता हूँ। जहाँ पर घोर कर्म करने वाले

प्राणीगण अपने कर्मों के द्वारा जाया करते हैं ॥१४४-१४५॥ नरकों के नाम ये हैं—रौरव—रोध—सूकर—ताल—तप्तकुम्भ—महाज्वाल—शबल—विमोचन—कृमी—कृमिभक्ष—लालाभक्ष—विशसन—अधशिरा—पूयवह—रुधिरान्ध—वैतरणी—कृष्ण—असिपत्रवन—अग्निज्वाल—महाघोर—सदंश—अभोजन—तम—कृष्णसूत्र—लोह — अग्निज—अप्रतिष्ठ—वीच्यश्च इस प्रकार से ये नरक होते हैं ॥१४६ से १४९॥

तामसा नरका सर्वे यमस्य विषये स्थिता ।
येषु दुष्कृतकर्माणः पतन्तीह पृथक्पृथक् ॥१५०
भूमेरधस्तात्ते सर्वे रौरवाद्या प्रकीर्त्तिता ।
रौरवे कूटसाक्षी तु मिथ्या यश्चाभिशमति ।
क्रूरग्रहे पक्षवादी ह्यसत्य पतते नर ॥१५१
रोधे गोघ्नो भ्रूणहा च ह्यग्निदाता पुरस्य च ।
सूकरे ब्रह्महा मज्जेत्सुराप स्वर्णतस्कर ॥१५२
ताले पतेत्क्षत्रियहा हत्वा वैश्यश्च दुर्गतिम् ।
ब्रह्महत्याश्च य. कुर्याद्यश्च स्याद्गुरुतल्पग ॥१५३
तप्तकुम्भी स्वसागामी तथा राजभटश्च य ।
तप्तलोहे चाश्ववणिक्तथा बन्धनरक्षिता ॥१५४
साध्वीविक्रयकर्त्ता च यस्तु भक्त परित्यजेत् ।
महाज्वाले दुहितर स्नुषा गच्छति यस्तु वै ॥

ये समस्त तामस नरक यमराज के देश मे स्थित होते हैं। उन नरको मे जो पाप कर्मो के करने वाले पृथक् होते हैं वे अपने अपने कृत कर्मों के अनुसार पृथक् पृथक् पतित होते हैं ॥१५०॥ वे सब नरक भूमि के नीचे भाग मे रौरव आदि होते हैं। जो कूटसाक्षी अर्थात् झूठी गवाही देने वाला है और सर्वथा मिथ्या बोलता है वह क्रूरग्रह रौरव नामक नरक मे मिथ्यावादी तथा पक्ष में बोलने वाला जाकर गिरता है ॥१५१॥ रोध नामक नरक मे गौ की हत्या करने वाला तथा भ्रूणो का वध करने वाला और नगर मे आग लगाने वाला जाया करता है। ब्राह्मण का वध करने वाला सूकर मे गिरता है। सुरापान करने वाला और स्वर्ण का चुराने वाला ताल नाम वाले नरक मे गिरता है। क्षत्रिय

का हनन करने वाला तथा वध्य की दुर्गति करने वाला और जो ब्रह्महत्या करता है एवं जो गुरुपत्नी का गमन करता है वह तप्तकुम्भ नरक में जाता है। स्वसा का गमन करने वाला और जो राजभट होता है वह और अश्वों का बेचने वाला तथा बन्धन रक्षिता ये सब तप्तलोह नामक नरक मे पतन प्राप्त किया करते हैं ।।१५२ १५३ १५४।। स्वाध्वी के विक्रय करने वाला और भक्त का परित्याग कर देता है तथा पुत्री एवं स्नुषा का गमन किया करता है वह महा ज्वाल नाम वाले नरक मे गमन करके पापो के फल को भोगता है ।।१५५।।

वेदो विक्रीयते येन वेद दूषयते च य ।
गुरूश्च वावम यन्ते वाक्क्रोशस्ता डयन्ति च ।।१५६
अगम्यगामी च नरो नरक शवल व्रजेत् ।
विमोहे पतिते चौरे मर्यादा यो भिनत्ति च ।।१५७
दुरध्व कुरुते यस्तु कीटलोह प्रपद्यते ।
देवब्राह्मणविद्व ष्टा गुरूणाञ्चाप्यपूजक ।
रत्न दूषयते यस्तु कृमिभक्ष्य प्रपद्यते ।।१५८
पर्य्यश्नाति य एकोऽन्यो ब्राह्मणी सुहृद सुतात् ।
लालाभक्षे स पतति दुर्गन्धे नरके गत ।।१५६
काण्डकर्त्ता कुलालश्च निष्कहर्त्ता चिकित्सक ।
आरामेष्वग्निदाता य पतते स विशसने ।।१६०
असत्प्रतिग्रही यश्च तथवायाज्ययाजक ।
नक्षत्रजीवितो यश्च नरो गच्छत्यधोमुखम् ।।१६१

जिसके द्वारा वेदो का विक्रय किया जाता है और जो वेदो को दूषित किया करता है तथा गुरुगण का जो अपमान करता है एवं वाक्क्रोशों के द्वारा जो ताड़ना किया करते है एवं अगम्या गमन करते है वे सभी शबल नामक नरक मे जाया करते हैं। और विमोह नाम मे पतित होते हैं और जो मर्यादा को तोडते है वे भी उसी नरक मे जाते हैं ।।१५६ १५७।। जो दुरध्व करता है वह कीटलोक नरक मे जाता है। देवो-ब्राह्मणो का द्वेष करने वाला तथा गुरुओ की पूजा न करने वाला और जो रत्न को दूषित किया करता है वह कृमिभक्ष्य

नामक नरक में प्राप्त हुआ करता है ॥१५८॥ जो नर अन्य ब्राह्मणी और गुरु की पुत्री का उपभोग करता है वह दुःख देने वाला जल नामक नरक में जाकर गिरता है ॥१५९॥ शस्त्रकर्त्ता–कुम्हार–चित्र का काम करने वाला तथा चिकित्सा करने वाला एवं ग्राम में आग लगाने वाला व्यक्ति जो होता है वह विशसन नाम वाले नरक में गिरता है ॥१६०॥ असत् वस्तु से प्रतिग्रह का लेने वाला और उसी तरह से जो याजन के अयोग्य है उसका याजन करने वाला तथा नक्षत्रों के द्वारा जो जीविका चलाता है अर्थात् गणक ज्योतिषी मनुष्य होता है वह अधोमुख नामक नरक में जाता है ॥१६१॥

क्षीरं सुरां च मांसं च लाक्षा गन्धं रसांस्तिलान् ।
एवमादीनि विक्रीणन्घोरे पूयवहे पतेत् ॥१६२
ये कुक्कुटानि बध्नाति मार्जारान्सूकरांश्च तान् ।
पक्षिणश्च मृगाञ्छागान्सोऽप्येवं नरकं व्रजेत् ॥१६३
आजीविको माहिषिकस्तथा चक्रध्वजी च यः ।
रङ्गोपजीविको विप्रः शाकुनिर्ग्राम याजकः ॥१६४
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
सुरापो मांसभक्षश्च तथा च पशुघातकः ॥१६५
विश (श्व) स्ता महिषादीनां मृगहन्ता तथैव च ।
पर्वकारश्च सूची च यश्च स्वामिश्वघातकः ।
रुधिरान्धे पतन्त्येते एवमाहुर्मनीषिणः ॥१६६

क्षीर (दूध)–सुरा–मांस–लाख–गन्ध (सुगन्धित पदार्थ)–रस और तिलों को एवं इस प्रकार की वस्तुओं को बेचने वाला व्यक्ति घोर पूय वह नामक नरक में जाकर गिरता है ॥१६२॥ जो मुर्गों को वध करता है तथा मार्जारों को और सूकरों को–पक्षियों को–मृगों को तथा छागों को वध किया करता है वह भी इसी नरक में गिरता है ॥१६३॥ आजीविक–माहिषिक और जो चक्रध्वजी होता है—जो रङ्गों से उपजीविका करने वाला विप्र है तथा शाकुनि एवं ग्राम याजक होता है—अगार को दाह करने वाला–विष देने वाला–कुण्डाशी–सोम का विक्रय करने वाला–मदिरा पीने वाला–मांस भक्षण करने वाला–

एवम् फिर क्रम से ही वर्णन किये हुए नरकों का समझ लो। भूमि के नीचे के भाग में सात ही नरक कहे गये हैं ॥१७६॥ वे क्रम से तामिस्त्रकादि अधम के सूत्र है। रौरव और महा रौरव उत्तम प्रथम है ॥१७७॥ इसके नीचे फिर भी अन्य हीनस्तय कहा गया है। तीसरा काल सूत्र होता है जो महा हर्वि विधि कहा गया है ॥१७८॥ अप्रतिष्ठ चौथा और पाँचवाँ अवीची नाम वाला होता है। उनमें लोह पृष्ठ स्तम जो अविधेय है सातवाँ होता है ॥१७९॥ घोर होने से रौरव कहा गया है और साम्भक बहुत कहा गया है। कुम्भकरण तो शीतात्मा होता है उसके नीचे अधम तप होना है ॥१८०॥ सर्व निकृन्तन कहा गया है। काल सूत्र यह दारुण है। अप्रतिष्ठ में स्थिति नहीं है उसमें कुम्भकरण भ्रम होता है ॥१८१॥ अवीचि नरक दारुण कहा गया है क्यों वह यन्त्र पीड़ित करता है। उससे भी सु विरुण कर्मों के क्षय के कारण लोह नामक नरक होता है ॥१८२॥

तथाभूतो शरीरत्वादविधिम्यस्तु स स्मृत ।
पीडब धवधासङ्गादप्रतीनारलक्षरण ॥१८३
ऊर्द्ध्व शैलमितास्ते सु निरालोकाश्च ते स्मृता ।
दु खोत्कयस्तु सर्वेषु ह्यधमस्य निमित्तत ॥१८४
ऊर्द्ध्व लोके समावेतो निरालोको च तावुभौ ।
कूटाङ्गारप्रमाणश्च शरीरी मूत्रनायक ॥१८५
उपभोगसमर्थेस्तु सद्यो जायन्ति कर्मभि ।
दु ख प्रकषप्रोप्तत्व तपु सर्वेषु वै स्मृतः ॥१८६
यातनाश्चाप्यसस्थेया नारकाणा तथा स्मृता ।
तत्रानुभूयत दु ख क्षीणे कर्मणि वै पुन ॥१८७
तिर्यग्योनौ प्रसूयन्त कर्मशेषे गत तत ।
देवाश्च नारकाश्च व ह्यूर्द्ध्व चाधश्च सस्थिता ॥१८८
धर्माधर्मनिमित्तेन सद्यो जायन्ति मूर्त्तय ।
उपभोगार्थमुत्पत्तिरौपपत्तिककर्मत ॥१८९
पश्यन्ति नारकान्देवा ह्यधोवक्त्रान् ह्यधोगतान् ।
नारकाश्च तथा देवान् सर्वान्पश्य न्त्यधो मुखान् ॥१९०

अनग्रमूलता यस्माद्धारणाश्च स्वभावत ।
तस्मादूर्ध्वमधोभावो लोकालोके न विद्यते ॥१९१
एषा स्वाभाविकी सज्ञा लोकालोके प्रवर्त्तते ।
अथाब्रुवन्पुनर्वायु ब्राह्मणा सत्रिणस्तदा ॥१९२
सर्वेषामेव भूताना लोकालोकनिवासिनाम् ।
ससारे ससरन्तीह यावन्त प्राणिनश्च तान् ॥१९३
सङ्ख्यया परिसङ्ख्याय तत प्रब्रूहि कृत्स्नश ।
ऋषीणा तद्वच श्रुत्वा मारुतो वाक्यमब्रवीत् ॥१९४

तथा भूत शरीर होने अविविम्ब वह कहा गया है। पीढबन्ध और वध के आसङ्ग होने से अप्रतीकार लक्षण वाला होता है ॥१८३॥ वे ऊपर से शैल को गये हुए तथा बिना आलोक वाले कहे गये हैं। अधर्म के निमित्त होने से सब में दुख का उत्कर्ष हुआ करता है ॥१८४॥ ऊर्ध्व भाग मे ये लोकों के समान होते हैं तथा ये दोनों निरालोक होते हैं। और कूटाकार प्रमाणो से शरीरी मूष नायक होता है ॥१८५॥ उपभोग मे समय कर्मों से तुरन्त ही होते हैं। उन सब मे दुखो का प्रकर्ष और उग्रता कहे गये है ॥१८६॥ नरको मे होने वाली यातनाऐं असङ्ख्य कही गई हैं। वहाँ पर फिर क्षीण कर्म मे दुख का अनुभव किया जाता हैं ॥१८७॥ इसके पश्चात् कर्मों के शेष रहने पर जीवात्मा तिर्यक् योनि मे जन्म लिया करते हैं। देवगण और नारकीगण ऊपर और नीचे के भागो मे सस्थित होते है ॥१८८॥ धर्म और अधर्म के निमित्त होने से तुरन्त मूर्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। औपपत्तिक कर्म से उपभोग करने के लिये उत्पत्ति होती है ॥१८९॥ देवगण अधोगत और नीचे की ओर मुख करने वाले नारकी प्राणियो को देखा करते हैं। और नारक समस्त देवों को अवो मुख किये हुए देखते हैं ॥१९०॥ जिस कारण से अनग्रमूलता और स्वभाव से धारण होती है उससे लोकालोक मे ऊर्ध्वभाव तथा अधोभाव नहीं होता है ॥१९१॥ लोकालोक मे यह स्वाभाविकी सज्ञा होती है। इसके अनन्तर उस समय मे सत्र करने वाले ब्राह्मणो ने फिर वायुदेव कहा—॥१९२॥ ऋषियो ने कहा—लोकालोक के निवास करने वाले सभी प्राणियो मे से यहाँ ससार मे जितने प्राणी समरण

विभु होने के कारण यह योग की अग्नि वाला प्रभु ब्रह्मा के अनुग्रह में रत रहते हैं। वे लोक विग्रह होकर सहायता किया करते हैं ।।२१७।। उस ईश्वर के अक्षर ध्रुव-अव्यय-प्रथम औपसर्गिक परम मायामय यमात्र स्थान हैं ।।२१८।। महेश्वर देव माया से युक्त है और माया के द्वारा ही सब कुछ किया करते है। देवों का उप सहार भी इसी प्रकार किया करते हैं। उसका प्रमाण अब कहा जा रहा है। मैं विस्तार के साथ उसे आनुपूर्वी से कहता हूँ। आप लोग उसे मुझसे जान लेव। इस भूलोक से ब्रह्मलोक मर्यादश कोटि तथा पन्द्रह नियुत योजनों से युक्त कहा जाया करता है ।।२१६।।२२ ।। इस ब्रह्म लोक से भी ऊपर एक करोड पचास नियुत योजन भागवताणु स्थित है ऐसा कहा गया है ।।२२१।। यह इनसे ऊपर गमन करने वाला प्रकार है और वहां गति का अन्त होता है ऐसा बताया गया है। परस्पर में गुणों के आश्रय जो है वे नित्य हैं और अपरिसरयेय होते हैं ।।२२२।। प्रसव के धर्म वाली जो प्रकृतियां है वे परम सूक्ष्म है जिनमे अधिकर्ता ब्रह्म ही संज्ञा वाला क्षेत्रज्ञ उत्पन्न होता है ।।२२३।।

तासु प्रकृतिमत्सूक्ष्ममधिष्ठातृत्वमव्ययम् ।
अनुत्याद्य परधाम परमाणु परशेयम् ।।२२४

अक्षयश्चाप्यनुहृयश्च अमूर्तिमू र्त्तिमानसौ ।
प्रादुर्भावस्तिरोभाव स्थितिश्च वाप्यनुग्रह ।।२२५

विधिरन्यरनौपम्य परमाणु महेश्वर ।
सतेजा एष तमसो य परस्तात्प्रकाशक ।।२२६
यदण्डमासीत्तत्सौवर्णं प्रथमन्त्वौपसर्गिकम् ।
बृहत सवतोवृत्तमीश्वराद्वयवजायत ।।२२६
ईश्वरदाद् बीजनिर्भेद क्षेत्रज्ञो बीज इष्यते ।
यानि प्रकृतिमाचष्टे सा च नारायणात्मिका ।।१२८
विभुर्लोकस्य सृष्ट्यर्थ लोकसस्थानमेव च ।
सन्निसग स तन्धा च लोकधातुमहात्मन ।।२२९

पुरस्ताद्ब्रह्मलोकस्य ह्यण्डादव्यक्त ब्रह्मणः ।
तयोर्मध्ये पुरं दिव्यं स्थानं परमं मनोरमम् ॥ २३०
तद्विमहद्वत्स स्थानमीश्वरस्यामितौजसः ।
शिवं नाम पुरं तत्र धारणा जन्मभीरुणाम् ॥ २३१

उसका प्रकृति नामक सूक्ष्म तत्व प्रथम अभिव्यक्त होता है। वह परमाणु परमेश परमात्मा के द्वारा होता है ॥२२४॥ यह क्षण में परिवर्तन करने के अयोग्य किन्तु मूर्ति वाला और यह मूर्तिमान् है जिसका आविर्भाव और तिरोभाव तथा स्थिति भी एक प्रकार का अनुग्रह ही होता है ॥२२५॥ यह परमाणु महेश्वर शम्भु के द्वारा अनुपम विधि होता है। यह उसको परम प्रकाश करने वाला तेज से युक्त होता है ॥२२६॥ जो यह प्रथम सौवर्ण अण्ड ओतप्रोतात्मक अणु होता है। सभी ओर से वृत्त और परम विशाल यह ईश्वर से उत्पन्न हुआ था ॥२२७॥ ईश्वर से बीज का निर्भेद होता है। जो बीज होता है वही बीज होता है। प्रकृति को उस बीज को धारण करने वाली योनि कहा जाता है और यह भी नारायण के स्वरूप वाली होती है ॥२२८॥ विष्णु ने लोक की सृष्टि के लिये लोक सम्पादन किया है लोकों के नाथ उस महात्मा के शरीर से ही यह निर्गत होता है ॥२२९॥ सबसे पहले ब्रह्म होता है और फिर ब्रह्म का अण्ड है। इन दोनों के मध्य में पुर जिसका मनोरम परम दिव्य स्थान होता है ॥२३०॥ अपरिमित ओज वाले विश्वव्यापी उस ईश्वर का स्थान है। वह शिव नाम वाला पुर है और यहाँ पर जन्म मरण के भय से भीत जीवों की रक्षा होती है अर्थात् यही शिवपुर उनका धारण है ॥२३१॥

सहस्राणां शतं पूर्णं योजनानां द्विजोत्तमाः ।
अभ्यन्तरं तु विस्तीर्णं महीमण्डलसंस्थितम् ॥२३२
मध्याह्नार्कप्रकाशेन परेतेजोऽभिमर्दिना ।
शातकौम्भेन महता प्राकारेणाभिरक्षिता ॥ २३३
शिरैश्चतुर्भिः सौवर्णैर्गुंफादामविभूषितैः ।
तपनीयमयैः शुभ्रं र्गाढं गुप्तवेष्टनम् ॥ २३४

तच्चाकाशे पुरं रम्यं दिव्यं घण्टादिनादितम् ।
न तत्र क्रमते मृत्युर्न तपो न जरा श्रमा ॥२३५
न हि तस्य परस्यान्यदुपमा वक्तु मर्हति ।
सहस्राणां शतं पूर्णं योजनानां दिशा दश ॥२३६
तत्परं गोवृषाङ्कस्य तेजसा व्याप्य तिष्ठति ।
भावेन मनसो भूमिर्विन्यस्ता कनकामयी ॥ २३७
रत्नवालुकया तत्र विन्यस्ता गुणुभेऽधिकम् ।
शारदेन्दुप्रकाशानि बालसूर्यनिभानि च । २३८
श्वेतश्च श्यामश्च रक्तानि सौवर्णानि तथैव च ।
रथचक्रप्रमाणानि नीलमरकतप्रभ । २३९
सौकुमार्येण रूपेण गन्धिनाप्रतिमेन च ।
तत्र दिव्यानि पद्मानि वनेषूपवनेषु च ॥ २४०
भृङ्गपत्रनिकाशानि तपनीयानि यानि च ।
श्वेतश्च कृष्णाश्च रक्तानि सुकुमारान्तराणि च ॥ २४१
आतपत्रप्रमाणानि पङ्कजं सवृतानि च ।
भूयः सप्त महानद्यस्तासां नामानि बोधत ॥ २४२
वरा वरेण्या वरदा वरार्हा वरवर्णिनी ।
वरमा वरभद्रा च रम्यास्तस्मिन्पुरोत्तमे ॥ २४३
पद्मोत्पलदलोन्मिश्रं फेनावर्त विग्रहम् ।
जलं मणिदलप्रख्यमावहन्ति सरिद्वरा ॥२४४

हे द्विजोत्तमो ! वह सौ सहस्र योजनों से पूर्ण हैं । उसके अन्दर एक परम विस्तीर्ण महीमण्डल संस्थित होता है ॥२३२॥ मध्याह्न के सूर्य के प्रकाश का भी अभिभवन करने वाला वहां तेज का प्रकाश है । उसका सुवर्ण का विशाल प्राकार होता है जो सूर्य के वक्षस जैसा है ॥२३३॥ सुवर्ण निर्मित चार उसमें द्वार हैं जो कि मुक्ताओं की मालाओं से समलङ्कृत हैं । सोने के समान परम भास्वर वस्त्रों से भली भांति वेष्टित हैं ॥२३४॥ वह पुर अत्यन्त रम्य आकाश में है जो कि घण्टानाद से निनादित एवं अति दिव्य है । वहां

पर मृत्यु-ताप-जरा और श्रम ये कोई भी नही पहुँच सकते हैं। ऐसा अन्य कोई भी पुर या स्थल नही है जिसकी उपमा इस पुर को दी जा सके अर्थात् साराश यह है कि यह अत्यन्त अनुपम है। दशो दिशाओ मे यह सौ सहस्र योजन तक फैला हुआ है ॥२३६॥ वह पुर गोवृषाङ्क के दिव्य तेज से व्याप्त होता हुआ सस्थित रहता है। मन के भाव के द्वारा वहा कनकमयी भूमि विन्यस्त की गई है ॥२३७॥ रत्नो की बालुका के द्वारा वह और भी अधिक शोभा से शोभित है। बाल सूर्य के समान शारदीय चन्द्र के प्रकाश वाले आधे श्वेत और आधे रक्त सुवर्ण निर्मित जैसे वन और उपवनो मे पद्म हैं जिनका प्रमाण रथ के चक्र के समान है और मरकत मणिकी प्रभा के तुल्य उनके नाल हैं। परम सौकुमार रूप है और अप्रतिम गन्ध से युक्त हैं ऐसे दिव्य पद्म वहा पर हैं ॥२३८॥२३९॥२४०॥ भृग पत्र के तुल्य जो तपनीय थे वे आधे कृष्ण और आधे रक्त थे और सुकोमल अन्तर वाले थे ॥२४१॥ आतपत्र (छत्र) के प्रमाण वाले तथा पङ्कजो से सवृत थे। अब सात जो महा नदियां हैं उनके नामो को समझ लो ॥२४२॥ महा नदियों के नाम ये है—वरा-वरेण्या-वरदा-वराही-वर वर्णिनी- वरमा और वरभद्रा। ये सात महानदी उस उत्तम पुर मे परम रम्य है ॥२४३॥ ये श्रेष्ठ नदियां मणिदल के समान अति स्वच्छ जल के प्रवाह वाली थी वह जल पद्मोत्पल दलो से उन्मिश्र था और फेन आदि आवर्त्तो के स्वरूप से युक्त था ॥२४४॥

न तु ब्रह्मर्षयो देवा नासुरा पितरस्तथा ।
न खल्वन्येऽप्रमेयस्य विदुरीशस्य तत्पुरम् ॥ २४५
तत्र ये ध्यानमव्यग्रा सुयुक्ता विजितेन्द्रिया ।
पश्यन्तीह महात्मान पुरन्तद्गोवृषात्मन ॥२४६
मध्ये पुरवरेन्द्रस्य तस्याप्रतिमतेजस ।
सुमहान्मेरुसङ्काशो दिव्यो भद्रश्रिया वृत ॥ २४७
सहस्र पाद प्रासादस्तपनीयमय शुभ ।
अनुपमेयै रत्नैश्च सर्वत स विभूषित ॥२४८

स्फटिकैश्च द्रसङ्कागैर्वैदूर्य सामसप्रभ ।
बालसूर्यप्रभश्च व सौवर्णश्चाग्निसप्रभ ॥ २४६
राजतैश्चापि शुशुभ इन्द्रनीलमय शुभ ।
ईर्दैवज्रमयश्च व इत्येव सुमहाहित ॥२५०

ईश के उस परम सुन्दर पुर की ब्रह्मादिदेव प्रमुख पिधर तथा अन्य कोई भी नही जानते हैं क्यों कि ईश स्वय अप्रमेय है अर्थात् प्रमा के विषय नही है।।२४५।। उस गोवृषात्मा प्रभु के उस पुर को ऐसे ही महाद्‌ आत्मा वाले ही पुरुष देखते है जो ध्यान मे सदा तत्पर रहते है सुयुक्त और विजित इन्द्रियो वाले होते हैं ।।२४६।। उस परम रमणीय श्रेष्ठतम पुर के मध्य मे अप्रमित तेज वाले उस ईश्वर का महश्री से वृत अतिदिव्य और सुविशाल मेरु के सदृश सहस्रपाद प्रासाद है जो परम शुभ एव सुवर्ण के समान है। वह प्रासाद (महल) अनुपम रत्नो के द्वारा सभी ओर से सुविभूषित है। २४७।२४८।। चन्द्रमा के तुल्य स्फटिक मणि और सोम के सदृश प्रभा वाली वदूर्य मणियो से वह सुशोभित था। बालसूर्य अर्थात् प्रात कालीन सूर्य की प्रभा वाली तथा अग्नि के समान प्रभा से युक्त एव सुवर्ण की और राजत (चादी की) वस्तुओ से वह विभूषित था और शुभ इन्द्र नील मणियो से सुन्दर शोभा से युक्त हो रहा था। हीरो से जटित परम दृढ एव शोभा से सम्पन्न वह पुर था ।।२४९।।२५ ।।

ध्वजश्च विविधाकारर्दो व्यङ्कुरधिवासितम् ।
चन्द्ररश्मिप्रकाशाभि पताकाभिरलङ्कृतम् ॥२५१
रुक्मघण्टानिनादश्च नित्यप्रमुदितोत्सव ।
किन्नराणामधीवास सन्ध्याभ्राकारराजितैं ॥२५२
परिवारसमन्तात्तु हेमपुष्पोदकप्रभै ।
यथा हि मेरुशले द्रौ हेमशृङ्गै विराजते ॥२५३
चामीकरमयीभिस्तु पताकाभिस्तथा पुरम् ।
एव प्रासादराजोऽपी भूमिकाभिर्विराजते ॥२५४

वसन्तप्रतिमा यत्र त्र्यम्बकस्य निवेशने ।
लक्ष्मीः श्रीश्च वपुर्मायां कीर्ति शोभा सरस्वती ॥२५५
देव्या वै सहिता ह्येता रूपगन्धसमन्विता ।
नित्या ह्यपरिसङ्ख्याता परस्परगुणाश्रया ।
भूषण सर्वरत्नाना योन्य कान्तिविलासयो ॥२५६
कोटिशत महाभागा विभज्यात्मानमात्मना ।
भगवन्त महात्मान प्रतिमोदन्त्यतन्द्रिता ॥२५७

विविध आकार वाले जनों से अर्थात् जलाशयों म वह युक्त था जोकि दीप्यमान थे। चन्द्रमा की किरणों के तुल्य प्रकाश वाली पताकाओं से वह पुर समलङ्कृत होरहा था ॥२५१॥ सुवर्ण के बने हुए घण्टा वहाँ पर थे जिनकी ध्वनियों से सदा ही प्रमुदित उत्सवों वाला रहता है। किन्नरों के वहाँ अधिवास थे जो सन्ध्याकाल के मेघों के समान शोभा वाले और हेम पुष्पोदक की प्रभा से संयुक्त परिवार वाले वहाँ चारों ओर रहा करते थे। जिस तरह मेरु गिरिराज हो उसी भाँति वह सुवर्ण के शिखरों से युक्त विराजमान है ॥२५२-२५३॥ सुवर्ण की पताकाओं से वह पुर जिस तरह सुशोभित था उसी भाँति यह प्रासाद राज भी भूमिकाओं से विभूषित था। २५४॥ जहाँ पर भगवान् त्र्यम्बक के निवेशन (आलय) में वसन्त की प्रतिमा वाली लक्ष्मी–श्री–वपुर्माया–कीर्त्ति–शोभा–सरस्वती रूप–लावण्य एवं गन्ध से समन्वित वे सब देवी के सहित वहाँ समवस्थित थीं। ये नित्य तथा अपरिसंख्यात (अगणित) थीं जोकि परस्पर में गुणों की आधार थी। ये समस्त प्रकार के रत्नों की भूषण तथा कान्ति और विलास की योनियाँ थी ॥२५५-२५६॥ ये महान् भाग वाली आत्मा से आत्मा को विभक्त करके सैंकड़ों करोड़ थी जोकि अतन्द्रिन होकर अर्थात् अति समाहित होती हुई महान् तम भगवान् को अतिमोहित किया करती है ॥२५७॥

ताभा सहस्रशश्चान्या पृष्ठत परिचारिका ।
रूपिण्यश्च श्रिया युक्ता सर्वा कमललोचना ॥२५८
लीलाविलाससयुक्तै र्भावैरतिमनोहरै ।
गणास्ता सह मोदन्ते शैलार्क पावकोपमै ॥२५९

स्थित है ।।२६९।। बामाग्र करसे गोचर होने वाले अपन्ेश करते हुए सुशाभित हो रहे हैं । आपका निर्घोष महान् भैरव हैं और बल के द्वारा अप्रतिम (अनुपम) ओज वाले हैं । दक्षिण धनुप जोकि परम विचित्र है अत्यधिक शोभा दे रहा है । भगवान् महेश्वर का त्रिशल विद्युत् की आभा के समान एव अमोघ आयुध जोकि शत्रुओ का एकदम नाश कर दने वाला है । उसकी कान्ति से युक्त वायु से जाज्वल्यमान है ।।२७ २७१।।

असिश्च वौजसा श्र ष्ठ शीतरश्मि शशी तथा ।
तेजसा वपुषा कान्त्या देवेशस्य महात्मन ।
शुशुभेऽत्यधिक तत्र वेद्यामग्निशिखा इव ।।२७२
स्थित पुरस्ताद् देवस्य शातकौम्भमयो महान् ।
शुशुभे रुचिर श्रीमान् सोदक सकमण्डलु ।।२७३
असिमावेश्य चाङ्ग पु पाण्डुराम्बर धारिणी ।
उरश्छदेन महता मौक्तिकेन विराजिता ।
चतुभु जा महाभागा विजया लोकसम्मता ।।२७४
देव्या भाद्य प्रतीहारी थोरिवाप्रतिमा परा ।
विभ्राजतो स्थिता चव कृत्वा देवस्य चाञ्जलिम् ।।२७५
तस्या पृष्ठानुगाश्चान्या स्त्रियोऽप्सरोगुणान्विता ।
ता खल्वभिनव कान्तरुपतिष्ठन्ति शङ्करम् ।।२७६
सवलक्षणसम्पन्ना वादित्र रुपबृ हिता ।
उपगायन्ति देवेश गणा गन्धवयोनय ।।२७७
अभ्युन्नतो महोरस्क शरन्मेघसमद्यु ति ।
शोभत नन्दमानश्च गोपतिस्तस्य वेश्मनि ।।२७८

भगवान् महेश्वर ओजस्वियो में परम श्रेष्ठ है और असि के आयुध को धारण किये हुए है तथा शीत किरणो वाला चन्द्र भी विराजमान है । तेज और वपु तथा कान्ति से महान् आत्मा वाले देवो के स्वामी महेश्वर वहाँ पर वैदी मे अग्नि की शिखा के समा अत्यधिक शोभा से युक्त हो रहे थे ।।२७२।। भगवान् महेश्वर देव के आगे एक सुवर्ण का निर्मल महान् परम सुन्दर तथा जल

से भरा हुआ एक कमण्डलु स्थित है जिसकी एक अत्यद्भुत शोभा हो रही थी ॥२७३॥ अपने अङ्गों मे असि को धारण किये हुए तथा पाण्डुर वर्ण के वस्त्र धारण करने वाली एव महान् मोतियो के उरश्छद से विराजित–चार भुजाओ वाली महान् भाग वाली लोक सम्मता विजया वहाँ पर विद्यमान है ॥२७४॥ यह देवी की सर्व प्रथम प्रतीहारी है जोकि अनुपम दूसरी श्री के ही तुल्य है। यह देव के आगे अञ्जलि करके अति विभ्राजमान होती हुई सस्थित रहा करती है ॥२७५॥ उसके पृष्ठ भाग मे अनुगमन करने वाली अन्य स्त्रियाँ हैं जोकि अप्सराओं के गुण से युक्त हैं। वे सब अभिनव एव अति कान्त वाद्यादि के द्वारा भगवान् शङ्कर का उपस्थान किया करती हैं ॥२७६॥ समस्त शुभ लक्षणो से सम्पन्न तथा अनेक वादित्रो से उपवृंहित गन्धर्वो की योनियाँ एव गण भगवान् देवेश का उपगायन किया करते हैं ॥२७७॥ भगवान् गोपति अपने वेश मे परमानन्द करते हुए शोभित होते है। अत्यन्त उन्नत आपका कलेवर है तथा विशाल वक्ष स्थल है और शरत्काल के मेघ के समान आपके शरीर की कान्ति है ॥२७८॥

स्कन्दश्च सपरीवार पुत्रोऽस्यामितवीर्य्यवान् ।
रक्ताम्बरधर श्रीमान्वराम्बुजदलेक्षण ॥२७६
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च चाष्टवान् ।
व्यपेतव्यसनाक्रूरा प्रजाना पालने रता ॥२८०
तै सार्द्ध स महावीर्य्य शोभते शिखिवाहन ।
व्यालक्रीडनकस्तत्र क्रीडते विश्वतोमुख ॥२८१
ये नृपा विबुधेन्द्राणा काञ्चनस्य प्रदायिन ।
ये च स्वायतना विप्रा गृहस्था ब्रह्मवादिन ॥२८२
गूढस्वाध्याय तपसस्तथा चैवोञ्छवृत्तय ।
एते समासदस्तस्य देवेशस्य च सम्मता ॥२८३
मन्वन्तराण्यनेकानि व्यवर्त्तन्त पुन पुन ।
श्रूयता देवदेवस्य भविष्याश्चर्यमुत्तमम् ॥२८४

सुविस्मित होते हुए ऋषियो ने जोकि नमिषारण्य म रहा करत थे और तपश्चर्या करने वाले थे वायुदेव से कहा—॥२६२॥ हे भगवन् ! आप तो सम्पूर्ण प्राणियों के भी प्राण स्वरूप है—सर्वत्र गमन करने वाले है तथा प्रभु है। यह कृपा कर हमको बताइये कि वे सिंह महाभूत कौन हैं और वे कहाँ समुत्पन्न हुए है और उनका क्या स्वरूप है ? ॥२६३॥ वे सिंह किस अपराध से भूतो के प्रभविष्णु अर्थात् समुत्पन्न करने वाले समर्थ स्वामी ने अग्निमय पाशो से पृथक पृथक उन्हे सबद्ध कर रक्खा था ? ॥२६४॥ उन तापस ऋषियो के इस वचन का श्रवण कर वायुदेव यह वाक्य कहा था। महान् आत्मा वाले ईश्वर ने अपने देह से व्यतीत (अलग) करके उन्हे जो रक्खा था वे क्रोध है और उनका विग्रह सिंह का है अर्थात् वे सिंह के शरीर को धारण करने वाल हैं ॥२६५॥

भूतानामभय दत्त्वा पुरा बद्धाग्निबन्धने ।
यज्ञभागनिमित्त च ईश्वरस्याज्ञया तदा ॥२६६
तेषा विधानमुक्त न सिंहेनकेन लीलया ।
दव्या मन्यु कृत ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतु ॥२६७
नि सृता च महादेव्या महाकाली महेश्वरी ।
आत्मन कर्मसाक्षिण्या भूत साद्ध तदानुग ॥२६८
स एष भगवान्क्रोधो रुद्रावासकृतालय ।
वीरभद्रोऽप्रमेयात्मा देव्या मन्युप्रमाज्जन ॥२६९
तस्य वेश्म सुरेन्द्रस्य सवगुह्यतमस्य वै ।
सन्निवेशस्त्वनौपम्यो मया व परिकीर्तित ॥३००
अत पर प्रवक्ष्यामि ये तत्र प्रति वासिन ।
रम्ये पुरवरश्र ष्ठे तस्मिन्बहायभूमिषु ॥३०१
नानारत्नविचित्रेषु पताकाबहुलेषु च ।
सवकामसमृद्धेषु वनोपवनशोभिषु ॥३०२
राजतेषु महान्तेषु शातकौम्भमयेषु च ।
सन्ध्याभ्रसन्निकाशेष कलासप्रतिमेषु च ॥३०

समस्त भूतो को अभय प्रदान करके पहिले वे अग्नि बन्धन से बद्ध किये गये थे। उस समय ऐसा यज्ञ के भाग के भित्ति से ही ईश्वर की आज्ञा से किया गया था ॥२९६॥ उन्हीं गिहो में से विधान से मुक्त एक सिंह ने जगदम्बा देवी के क्रोध को जान कर लीला ही से दक्ष प्रजापति का यह क्रतु (यज्ञ) हत (विध्वस्त) किया था ॥२९७॥ उस समय मे महादेवी से महेश्वरी महाकाली निकली थी जो ब्राह्मण के कर्म की साक्षिणी देवी के अनुगामी भूतों के साथ वर्तमान हुई थी ॥२९८॥ वही यह भगवान् कौन है जो रुद्र के निवास स्थान मे अपना आलय रखने वाला था। यह अप्रमेय आत्मा वाला वीरभद्र नामधारी था क्योंकि जगज्जननी देवी के क्रोध का प्रमार्जन करने वाला था ॥२९९॥ उस सबसे गुह्यतम सुरेन्द्र का वेश तथा उसका अनौपम्य सन्निवेश मैंने तुमको बतला दिया है ॥३००॥ अब इसके आगे वहाँ पर वैहायस भूमि मे जो परम रम्य श्रेष्ठ उमपुर मे प्रतिवासी है इसे मैं तुमको बतलाता हूँ ॥३०१॥ वहाँ के निवास निलय नाना प्रकार के यत्नो से विचित्र बने हुए है। उनमे बहुत-सी पताकायें लगी हुई है और समस्त कामनाओं की समृद्धियों से वे सम्पन्न है। या अनेक वन एवं उपवनो की शोभा से सयुत है।३०२। उनमे कुछ राजत अर्थात् चाँदी से निर्मित हैं तथा बहुत से विशाल सुवर्ण मय है। वे सन्ध्याकाल के मेघो के सदृश हैं और कैलास के ही पूर्णतया तुल्य है ॥३०३॥

इदं शब्दादिभिर्भोगैर्भवस्थानुसारिण ।
प्रासादवर पृष्ठेषु तेषु मोदन्ति सुव्रता ॥३०४
ब्रह्मघोषैरविरता कथाश्च विविधा शुभा ।
गीतवादित्रघोषाश्च सस्तवाश्च समन्तत ॥३०५
सहस्राश्वं वमतुला नानाश्चर्यकृतास्तथा ।
एवमादीनि वर्त्तन्ते तेषा प्रासादमूर्द्ध नि ॥३०६
सहस्रपाद प्रासादस्तपनीयमय शुभ ।
अनौपम्यैर्वरै रत्नै सर्वत परिभूषित ॥३०७
स्फटिकैश्चन्द्रकान्तैर्वैदूर्यमणिसम्प्रभै ।
बालसूर्यमयैश्चापि सौवर्णैश्चाग्निसम्प्रभै ॥३०८

श्रियान्विता कुण्डलिनो मुक्ताहारविभूषिता ।
तेजसोऽभ्यधिका देवै सर्वेना सर्वदर्शिन ॥३१८
विभज्य बहुधात्मान जरामृत्युविवर्जिता ।
क्रीडते विविधर्भावैर्भोगान् प्राप्य सुदुर्लभान् ॥३१९

सब के सब वे बरवानर के मुख वाले है और विश्वरूप–कपर्दी–नील कण्ठ वाले–श्वेत ग्रीवा से युक्त–तीक्ष्ण दाढो वाले तथा तीन नेत्रों वाले हैं ॥३१५॥ सभीके मस्तक पर आधे चन्द्रमा से उष्णीष बना हुआ है और जटा तथा मस्तक पर मुकुट शिव के ही समान धारण करने वाले हैं। सभी के दश भुजायें हैं—सब महान् वीर है और पद्मात की तुग य वाले है ॥३१६॥ वे सब भगवान् भव के सालोक्य को प्राप्त होने वाले भक्त तरुण सूर्य के समान तेज से युक्त हैं और सबने पीतवर्ण के वस्त्र धारण कर रक्खे हैं। उन सब के हाथों में भगवान् भव की ही भाँति पिनाक धनुष लगा हुआ है। सबके वाहन भी गोवृष होते हैं ॥३१७॥ सब श्री से समन्वित होते है और सभी ने कानों से कुण्डल धारण कर रखे हैं। उन सब भक्तो ने मोतियो के हार धारण कर अपने आप को विभूषित बना रक्खा है। ये सब देवों से भी अधिक तेज वाले हैं। समस्त भक्त जो यहाँ निवास करते हैं सर्वज्ञ एव सवदर्शी होते हैं। अर्थात् सभी कुछ भूत–भविष्य वर्तमान के जानने वाले और सब कुछ को प्रत्यक्ष की भाँति देखने वाले हैं ॥३१८॥ व सब अपनी आत्मा को अनेक प्रकार स विभक्त करके सस्थित रहा करते है और वृद्धता तथा मृत्यु से रहित होवे हैं। ये विविध प्रकार के भावों के द्वारा क्रीडा किया करते हैं और परम सुदुर्लभ भोगो को प्राप्त करके आनन्दास्वादन करते हैं ॥३१९॥

स्वच्छन्दगतय सिद्धा सिद्धैश्वार्याधिबोधिता ।
एकादशाना रुद्राणा कोट्योऽनेकमहात्मनाम् ॥३२०
एभि सह महात्मा हि देवदेवो महेश्वर ।
भक्तानुकम्पी भगवान्मोदते पार्वतीप्रिय ॥३२१
नाहन्तेषा तु रुद्राणा भवस्य च महात्मन ।
नानात्वमनुपश्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि व ॥३२२

मातरिश्वाऽब्रवीत्पुण्यामित्येतामीश्वरोऽप्युत ।
अथ ते ऋषय सर्वे दिवाकरसमप्रभा ।
श्रुत्वेमा परमा पुण्या कथा त्र्यंबकी तत ॥३२३
भृशश्चानुग्रह प्राप्य हर्ष चैवाप्यनुत्तमम् ।
सम्भावयित्वा चाप्येना वायुमूचुर्महाबलम् ॥३२४
समीरण महाभाग ह्यस्माक च त्वया विभो ।
ईश्वरस्योत्तम पुण्यमष्टमन्त्वौपसर्गिकम् ॥३२५
तस्य स्थान प्रमाणश्च यथावत्परिकीर्तितम् ।
यो गन्धेन समृद्ध वै परम परमात्मन ॥३२६
महादेवस्य माहात्म्य दुर्विज्ञेय सुरैरपि ।
स्वेन माहात्म्ययोगेन सहस्रस्यामितौजस ॥३२७

स्वच्छन्द गति वाले सिद्ध और अन्य मित्रों के द्वारा विशेष रूप से योजित किये हुए हैं। अनेक महात्माओं एकादश रुद्रों की कोटियाँ हैं ॥३२०॥ इनके साथ महात्मा देवों के देव महेश्वर जो भक्तों पर दया करने वाले पार्वती के प्यारे भगवान् प्रसन्न होते हैं। ६११॥ मैं तो उन रुद्रों को महात्मा मन का नानात्व देखता हूँ यह मैं आपसे बिल्कुल सत्य कहता हूँ ॥३२२॥ मातरिश्वा अर्थात् वायुदेव ने इस पुण्य कथा को कहा था और ईश्वर ने कहा था। इसके अनन्तर दिवाकर के समान प्रभा वाले वे ऋषिगण सब इस परम पुण्य कथा को जो कि त्रैयम्बिकी है, सुनकर और बहुत ही अनुग्रह प्राप्त करके तथा अनुपम हर्ष प्राप्त करके और इसका बहुत आदर करके महान् बलवान् वायु से बोले ॥३२३-३२४॥ ऋषियों ने कहा—हे समीरण ! हे महाभाग ! हे विभो ! आपने हमको ईश्वर का उत्तम अष्टम औपसर्गिक उसके स्थान को और प्रमाण को यथावत् बतलाया है। जो परमात्मा के गन्ध से परम समृद्ध है ॥३२५-३२६॥ महादेव का माहात्म्य देवों के द्वारा भी दुर्विज्ञेय है अर्थात् अमित ओज वाले सहस्र का अपने माहात्म्य के योग से सुरों के द्वारा भी कठिनता से जानने के योग्य है ॥३२७॥

यस्य भक्त्यवसमाहा ह्यानुकम्पार्थमेव च ।
श्राह्वालक्ष्म्या स्वयं जुष्टा या साप्रतिमशालिनी ॥३२८
ज्योत्स्नया व्याप्य खं चन्द्रं विन्यस्ता विश्वरूपधृक् ।
विभूतिर्भ्राजतेऽत्यर्थं देवदेवस्य वेश्मनि ॥३२९
महादेवस्य तुल्याना रुद्राणां तु महात्मनाम् ।
तत्सत्र निखिलेनेदं वक्त्रादमृतनिःस्रवम् ॥३३०
अपीत्वा खलु सर्वस्य भक्त्यास्माभिस्तु सुव्रता ।
नास्ति किञ्चिदविज्ञेयमन्यच्चवानुगामिन ।
प्रश्नं देववरं प्राणं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥३३१
स खलूवाच भगवान्किं भूयो वक्ष्याम्यहम् ।
किं मया चैव वक्तव्यं तद्वदिष्यामि सुव्रता ॥३३२
आदित्या पारिपार्श्वेया सिंहा वै क्रोधविक्रमा ।
वैश्वानरा भूतगणा व्याघ्राश्चानुगामिन ॥३३३
आभूतसम्प्लवे घोरे सर्वप्राणभृतां क्षये ।
किमवस्था भवन्त्येते तन्नो ब्रूहि यथार्थवत् ॥३३४

अनुकम्पा के लिए ही जिसके भक्तो में समोह का अभाव होता है। जो आह्वालक्ष्मी के द्वारा स्वयं सेवित है वह अप्रतिमशालिनी होती है ॥३२८॥ ज्योत्स्ना से आकाश को व्याप्त करके चन्द्र में विन्यस्त विश्व के रूप को धारण करने वाली विभूति देवो के देव के घर मे बहुत ही अधिक भ्राजमान है ॥३२९॥ महात्मा रुद्रो के तुल्य महादेव का वह सब निखिल के द्वारा वक्त्र से अमृत का निस्रव है ॥३३॥ हम भक्ति से सब का पान न करके सुन्दर व्रत वाले हैं। अनुगमन करने वाले को अन्य कुछ भी न जानने के योग्य नहीं है। हे देववर ! हे प्राण ! इस प्रश्न को यथावत् आप बोलने के योग्य है ॥३३१॥ श्री सूतजी ने कहा—वह भगवान् बोले कि अब आगे फिर मैं क्या व्यवहार करूं ? और मुझे क्या कहना चाहिए। हे सुव्रत वालो यह कहूँगा ॥३३२॥ ऋषियो ने कहा—आदित्य-पारिपार्श्वेय- सिंह से क्रोध विक्रम है वैश्वानर- भूतगण और अनुगामी व्याघ्र घोर आभूत सम्प्लव में समस्त प्राणधारियो के

क्षय हो जाने पर ये गृष्ट गिम अवस्था वाले होते हैं इसे आप यथार्थवत् हमको बोलें ॥३३३-३३४॥

एते ये वै त्वया प्रोक्ता सिद्धव्याघ्रगणै सह ।
ये चान्ये सिद्धिसम्प्राप्ता मातरिश्वा जगाद ह ॥३३५
इदञ्च परम तत्त्व समाख्यास्यामि शृण्वताम् ।
विज्ञातेश्वरसद्भावमव्यक्त प्रभव तथा ॥३३६
तत्र पूर्वगतास्तेषु कुमारा ब्रह्मण सुता ।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातन ॥३३७
वोढुश्च कपिलस्तेषामासुरिश्च महायशा ।
मुनि पञ्चशिखश्चैव ये चान्येऽप्येवमादय ॥३३८
तत काले व्यतिक्रान्ते कल्पाना पर्यये गते ।
महाभूतविनाशान्ते प्रलये प्रत्युपस्थिते ॥३३९
अनेकरुद्रकोट्यस्तु या प्रसन्ना महेश्वरी ।
शब्दादीन्विषयान्भोगान्सत्यस्याष्टविधस्त्रयात् (?) ॥३४०
प्रविश्य सर्वभूतानि ज्ञानयुक्तेन तेजसा ।
नैहायपदमव्यग्र भूतानामनुकम्पया ॥३४१
तत्र यान्ति महात्मान परमाणु महेश्वरम् ।
तरन्ति सुमहावर्त्ता जन्ममृत्यूदका नदीम् ॥३४२
तत पश्यन्ति सर्वाण पर ब्रह्माणमेव च ।
देव्या वै सहिता सप्त या देव्य. परिकीर्त्तिता ॥३४३
यत्तत्सहस्र सिहानामादित्याना तथैव च ।
वैश्वानरभूतभव्यव्याघ्राश्चै वानुगामिन ॥३४४

ये सब आपने सिद्ध व्याघ्र गणो के साथ बताये है और जो अन्य सिद्धि को सम्प्राप्त होने वाले हैं वायुदेव ने जिनको कहा था। इस परम तत्त्व को कहूँगा, आप सुनिये। विज्ञान ईश्वर सद्भाव और अव्यक्त प्रभाव को भी कहूँगा ॥३३५-३३६॥ वहा पर उनमे ब्रह्मा के पुत्र कुमार पूर्वगत है जो सनक-सनन्द और तृतीय सनातन है ॥३३७॥ उनमे वोढु-कपिल और महान् यश

वाला आसुरि और पञ्चशिख मुनि और जो अन्य इसी प्रकार के हैं ।।३३८।। इसके पश्चात् काल के व्यतिक्रान्त होने पर तथा कल्पों के पर्याय के गत होने पर महाभूतों के विनाश हो जाने पर तथा प्रलय के प्रत्युपस्थित होने पर अनेक कल्पों की कोटियाँ और प्रसन्न महेश्वरी शब्दादि विषयों को तथा भोगों को सत्य के अष्टविषयक से ज्ञान से युक्त तेज के द्वारा समस्त भूतों में प्रवेश करके प्राणियों पर अनुकम्पा करने से अव्यग्र वहायस पद को प्राप्त होते हैं ।।३३९ ३४० ।। वहाँ पर महान् आत्मा वाले परमाणु महेश्वर में चले जाते हैं और महान् आवर्तों वाली तथा जन्म और मौत के जल वाली नदी को पार किया करते हैं ।।३४१।। इसके अनन्तर वहाँ महादेव को तथा परब्रह्म का दर्शन किया करते हैं। देवी के साथ सात को देखते हैं जो देवियाँ कीर्तित की गई हैं। जो वह सिंहों तथा आदित्यों का सहस्र है तथा अनुगमन करने वाले वश्वानर भूत मध्य व्याघ्र है उनको भी देखते हैं ।।३४२ ३४३ ३४४।।

प्रकरण ६४—प्रलयादि पुन सृष्टि वर्णन

प्रत्याहार प्रवक्ष्यामि परस्यान्ते स्वयम्भुव ।
ब्रह्मण स्थितिकाले तु क्षीणे तस्मिस्तदा प्रभो ।।१
यथेद कुरुतेऽध्यात्म सुसूक्ष्म विश्वमीश्वर ।
अव्यक्ता ग्रसते व्यक्त प्रत्याहारे च कृत्स्नश ।।२
पर तदनुकल्पानामपूर्णे कल्पसङ्क्षये ।
उपस्थिते महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु कस्यचित् ।।३
अन्ते ह्यस्य सम्प्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तथा ।
अन्ते कलियुगे तस्मिन्क्षीणे सहार सज्यते ।।४
सम्प्रक्षाले तदा वृत्ते प्रत्याहारे ह्युपस्थिते ।
प्रत्याहारे तदा तस्मिन् भूतत मात्रसक्षये ।।५

अथाग्नि सवतो व्याप्त आदत्ते तज्जलन्तदा ।
सवमापूय्यतऽर्चिभिस्तदा जगदिद शन ॥११
अर्चिभि सन्तत तस्मिस्तियगूद्‍ वमधस्तत ।
ज्योतिषोऽपि गुण रूप वायुरत्ति प्रकाशकम् ।
प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपार्चिरिव मारुते ॥१२
प्रनष्ट रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसु ।
उपशाम्यति तेजो हि वायुना धूयते महत् ॥१३
निरालोके तदा लोके वायुभूत च तजसि ।
ततस्तु मूलमासाद्य वायु सम्भवमात्मन ॥१४
ऊर्ध्व चाधश्च तियक्च दोधवीति दिशो दश ।
वायोरपि गुण स्पशमाकाश ग्रसत च तत् ॥१५
प्रशाम्यति तदा वायु खन्तु तिष्ठत्यनावृतम् ।
अरूपमरसस्पशमगन्ध न च मूर्तिमत् ॥१६

जलो के अन्दर जो गुण होता है वह रस तेज मे लीन होजाया करता है। तब अन्त म रस तन्मात्रा के सक्षय होने से जल नष्ट हो जाया करते हैं ॥९॥ तेज क द्वारा सहरण वाले जल तेज के स्वरूप को ही प्राप्त कर लिया करते है। सलिल के अस्त हो जाने पर सभी ओर तेज ही दिखलाई दिया करता है ॥१ । इसके पश्चात् सभी ओर व्याप्त तेज स्वरूप अग्नि उस जल को उस समय ग्रहण कर लेता है। धीरे धीरे यह समस्त जगत् सब अर्चियो से पूरित हो जाता है ॥११॥ तब ऊपर–नीचे और इधर–उधर अर्चियाँ फल जाने पर ज्योति का जो प्रकाश रूपी गुण है उस वायु खा जाता है और वह तब प्रलीन हो जाता है जैसे वायु के झोके मे दिये की लौ नष्ट हो जाया करती है ॥१२॥ रूप तन्मात्रा के प्रनष्ट हो जाने क बाद विभा वसु नष्ट रूप वाला हो जाया करता है। तेज वायु के द्वारा उपशान्त होता है तथा वायु भी खूब बहा करती है ॥१३। तेज के वायु स्वरूप हो जाने पर यह समस्त लोक प्रकाशहीन निरालोक हो जाया करता है। इसके पश्चात् यह वायु भी अपने उत्पत्ति स्थान धूत को प्राप्त होकर ऊपर नीचे और तिरछा दश दिशाओ

को कम्पित किया करता है। उस वायु का जो स्पर्श गुण है उसे आकाश ग्रस लिया करता है ॥१४-१५॥ तब यह प्रशमित हो जाता है और अनावृत आकाश में रहा करता है। रूप-रस स्पर्श और गन्ध तथा मूर्त्ति से रहित होता है ॥१६॥

सर्वमापूरयन्नादैः सुमहत्तत्प्रकाशते ।
परिमण्डलन्तत्सुषिरमाकाशं शब्दलक्षणम् ॥१७
शब्दमात्रं तदाकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति ।
तन्तु शब्दगुणन्तस्य भूतादि ग्रसते पुन ॥१८
भूतेन्द्रियेषु युगपद् भूतादौ संस्थितेषु वै ।
अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामस स्मृत ॥१९
भूतादिं ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षण ।
महानात्मा तु विज्ञेय सकल्पो व्यवसायक ॥२०
बुद्धिर्मनश्च लिङ्गश्च महानक्षर एव च ।
पर्यायवाचकै शब्दैस्तमाहुस्तत्त्वचिन्तका ॥२१
सम्प्रलीनेषु भूतेषु गुणसाम्ये तमोमये ।
स्वात्मन्येव स्थिते चैव कारणे लोककारणे ॥२२
विनिवृत्ते तदा सर्गे प्रकृत्यावस्थितेन वै ।
तदाद्यन्तपरोक्षत्वादहष्टत्वाच्च कस्यचित् ॥२३
अनाख्यानादबोधत्वादज्ञानाज्ज्ञानिनामपि ।
आगतागतिकत्वाच्च ग्रहण तत्र विद्यते ॥२४
भावग्राह्यानुमानाच्च चिन्तयित्वेदमुच्यते ।
स्थिते तु कारणे तस्मिन्नित्ये सदसदात्मिके ॥२५
अनिर्देश्या प्रवृत्तिर्वै स्वात्मिका कारणे न तु ।
एव सप्तादयोऽभ्यस्तात्क्रमात्प्रकृतयस्तु वै ॥२६

सबको नादो के द्वारा आपूरित कर वह सुमहत् प्रकाशित होता है। परिमण्डल सुषिर आकाश का शब्द गुण ही लक्षण अर्थात् स्वरूप होता है ॥१७॥ उस समय शब्द मात्र वह आकाश सबको आवृत करके स्थित रहा करता है।

उसके उस शब्द गुण को भूतादि ग्रस लेते है ॥१८॥ भूतेन्द्रियो के एक साथ भूतादि म संस्थित होने पर अभिमानात्मक यह भूतादि तामस कहा गया है ॥१९॥ और बुद्धि लक्षण वाला महान् भूतादि को भी ग्रस लेता है। महान् स्वरूप वाला व्यावसायिक सङ्कल्प जानना चाहिए ॥२ ॥ तत्व के चिन्तक लोग बुद्धि-मन-लिङ्ग-महान् और अक्षर इन पर्याय वाचक शब्दों से उसको कहते है ॥२१॥ तमोमय गुणो के साम्य म भूतो के सम्प्रलीन होने पर और लोकों के कारण की अपनी आत्मा मे ही स्थित होने पर उस समय म सग के विषय रूप से निवृत्त हो जाने पर प्रकृति से अवस्थित होने से किसी के प्राधान्य परोक्ष होने के कारण से-और अदृष्ट होने से—अनाख्यात होने से-अबोध होने से तथा ज्ञानियो को भी अज्ञान से एव अनागविक होने से वह ग्रहण नही होता है ॥२२ २३ २४॥ और भाव ग्राह्य अनुमान से यह सोचकर कहा जाता है। उस नित्य सद् और असत् स्वरूप वाले कारण के स्थित होने पर कारण मे निश्चय ही स्वाभाविक प्रवृत्ति अनिर्देश्य होती है। इस प्रकार से अभ्यस्त क्रम से सप्तादि प्रकृतियां होती है ॥२५ २६॥

प्रत्याहारे तदा सर्गे प्रविशन्ति परस्परम् ।
येनेदमावृत सव मण्डलन्तु प्रलीयते ॥२७
सप्तद्वीपसमुद्रान्त सप्तलोक सपवतम् ।
उदकावरण यच्च ज्योतिषा लीयते तु तत् ॥२८
यत्तजस आवरणमाकाश ग्रसते तु तत् ।
यद्वायव्य आवरणमाकाश ग्रसते तु तत् ॥२९
आकाशावरण यच्च भूतादिर्ग्रसते तु तत् ।
भूतादि ग्रसते चापि महान्वै बुद्धि लक्षण ॥३
महान्त ग्रसतेऽव्यक्त गुणसाम्य तत परम् ।
एतौ सहारविस्तारौ ब्रह्माव्यक्तौ वल पुन ॥३१
सृजते ग्रसत चव विकारान्सगसयमे ।
सहारकायकारणा ससिद्धा ज्ञानिनस्तु ये ॥३२

गत्वा जग्रन्नवीभावे स्थानेष्वेषु प्रसयमात् ।
प्रत्याहारे वियुज्यन्ते क्षेत्रज्ञा कर्मणः पुन ॥३३
साधर्म्यवैधर्म्यकृतसयोगोऽनादिमान्स्तयो ॥३४
एव सर्गेषु विज्ञेय क्षेत्रज्ञेष्विह ब्राह्मणा ।
ब्रह्मविच्चैव विज्ञेय क्षेत्रज्ञानात्पृथक्पृथक् ॥३५

उस समय में तम के प्रत्याहार में परस्पर में प्रवेश किया करते हैं जिससे यह आवृत समस्त ब्रह्माण्ड प्रलीन होता है ॥२७॥ सात द्वीप समुद्रों के ग्रन्त तक पर्वतों के सहित सात लोक और जो भी कुछ ज्योतियों का आवरण है वह सब लीन हो जाता है ॥२८॥ जो तैजस आवरण है उसे आकाश ग्रसित कर लेता है। जो वायव्य आवरण है उसे आकाश ग्रस लेता है ॥२९॥ और जो आकाश का आवरण है उसे भूतादि ग्रस लेता है। बुद्धि के स्वरूप वाला महान् भूतादि को ग्रस लेता है ॥३०॥ इसके पश्चात् गुणों की समता स्वरूप अव्यक्त महान् को ग्रस लेता है। ये ब्रह्मा और अव्यक्त के सहार तथा विस्तार इनके पीछे होते हैं ॥३१॥ सम के साथ में विकारों को सृजन करता है तथा ग्रसता है। सहार कार्य के कारण ससिद्ध जो ज्ञानी होते हैं जगत् में जभी भाव में जाकर इन स्थानों में प्रसयमों को क्षेत्रज्ञ फिर करणों में प्रत्याहार में वियुक्त हो जाते हैं ॥३२-३३॥ जो अव्यक्त है वह क्षेत्र कहा जाता है और जो ब्रह्म है उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं। इन दोनों का अर्थात् अव्यक्त और ब्रह्म का साधर्म्य तथा वैधर्म्य कृत अनादिमान् सयोग होता है ॥३४॥ इस प्रकार से क्षेत्रज्ञ सर्गों में जानना चाहिए। और यहाँ ब्राह्मण क्षेत्र ज्ञान से पृथक् पृथक् ब्रह्मवित् ही जानना चाहिए ॥३५॥

विषयाविषयत्वञ्च क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः स्मृतम् ।
ब्रह्मा तु विषयो ज्ञेयोऽविषय क्षेत्रमुच्यते ॥३६
क्षेत्रज्ञाधिष्ठित क्षेत्र क्षेत्रज्ञार्थं प्रचक्षते ।
बहुत्वाच्च शरीराणा शरीरी बहुधा स्मृत ॥३७
अव्यूहा शङ्कराच्चैव ज्योतिर्वच्च व्यवस्थित ।

राजसी तामसी चव सात्विकी चव वृत्तय ।
गुणमात्रा प्रवत्त'त पुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा ॥५४
ऊर्द्ध्व देवात्मक सत्त्वमधोभागात्मक तम ।
तयो प्रवत्तक मध्ये इहैवावत्त क रज ॥५५

इस प्रकार से यह स्वयम्भू का प्राकृत प्रतिसग कह दिया गया है। समस्त प्राणियो के प्रसयम म करण विद्यमान होते हैं ॥४६॥ हे द्विजवृन्द। यह ही तत्वो का करणो के साथ सयम है। और आवत्तक तत्त्व प्रसयम यही कहा गया है ॥४७॥ श्री सूतजी ने कहा—धम प्रथम तप-ज्ञान तथा शुभ सत्य और अनृत ऊर्द्ध्व भाव और अधोभाव-सुख तथा दु ख-प्रिय और अप्रिय यह सब प्रयाण किय हुए का गुणमात्रात्मक कहा गया है। और उस समय मे बिना इन्द्रियो वाले ज्ञानियो का जो भी कुछ शुभ तथा अशुभ है वह भी गुण मात्रात्मक होता है ॥४८ ४६॥ वह सब प्रकृति मे पुण्य और पाप प्रतिष्ठित होता है। और देहधारियो के स्वभाव मे योन्यवस्था निष्पिक्त होती है ॥५ ॥ ज तुओ का पुण्य और पाप जो प्रकृति म प्रतिष्ठित है। जन्तुगण जो उन्ही अव्यक्त मे स्थित पुण्य और पापो को जीत लेते है क्योकि पुनर्देह मे तथा देहान्यत्व मे होते हैं ॥५१॥ ज तुओ के धर्म और अधम दोनो गुणमात्रा मक होते हैं। यहाँ पर करणो के द्वारा जन्तुओ से कार्य के होने से बद्ध जाया करते है ॥५२॥ सुषेनन क्षेत्रज्ञो मे स्थित गुण प्रलीन हो जाया करते है। सग मे और प्रतिसग मे ससार मे जन्तुगण सयुक्त और वियुक्त होते है और करणो के साथ सञ्चरण किया करते है ॥५३॥ राजसी-तामसी और सात्त्विकी वृत्तियाँ पुरुषो म अधिष्ठित गुणमात्रा तीन प्रकार से प्रवृत्त होती है ॥५४॥ ऊर्द्ध्व मे देवात्मक सत्त्व है और अधोभागात्मक तम है। उन दोनो के मध्य मे प्रवत्तक यहाँ पर ही आवत्तक रजोगुण होता है ॥५५॥

इत्येव परिवत्त ते त्रय स्रोतागुणात्मका ।
लोकेषु सवभूताना तत्र काम विजानता ॥५६
अविद्याप्रत्ययारम्भा आरभन्ता हि मानव ।
एतास्तु गतयस्तिस्र शुभा पापात्मिका स्मृता ॥५

तम साभिभवाज्जन्तुर्यथातथ्य न विन्दति ।
अलस्तद्दर्शनारम्भोऽथ त्रिविध वध्यते तत ।।५८
प्राकृतेन वन्धेन तथा वैकारिकेन च ।
दक्षिणाभि स्तृतीयेन बद्धोऽत्यन्त विवर्त्तते ।।५६
इत्येते वै त्रय प्रोक्ता वन्धा ह्यज्ञानहेतुका ।
अनित्ये नित्यसज्ञा च दु खे च सुखदर्शनम् ।।६०
अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चय ।
येपामेते मनोदोपा ज्ञानदोपा विपर्य्ययात् ।।६१
रागद्वे पनिवृत्तिश्च तज्ज्ञान समुदाहृतम् ।
अज्ञान तमसो मूल कर्म्मद्वयफल रज ।
कर्म्मजस्तु पुनर्देहो महादु ख प्रवर्त्तते ।।६२
श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वग्जिह्वाघ्राणतस्तथा ।
पुनर्भवकरी दु खा कर्म्मणा जायते तु सा ।।६३

इस प्रकार से ये तीन स्रोत गुणात्मक लोको मे समस्त प्राणियो के परिवर्त्तित होते हैं। इसको विशेष रूप से जानने वाले को नही करना चाहिए ।।५६।। मानवो के द्वारा अविद्या प्रत्यय आरम्भ आरब्ध किये जाया करते हैं। ये तीन गतियाँ शुभ और पापात्मिका कही गई हैं ।।५७।। तमोगुण से अभिभव होने से जन्तु याथातथ्य को प्राप्त नही होता है। इसके पश्चात् वह उसत् दर्शन के न होने से तीन प्रकार का वद्ध होता है ।।५८।। प्राकृत वन्ध से तथा वैकारिक वन्ध से और तीसरे दक्षिणाभि से बद्ध हुआ अत्यन्त विवर्त्तित होता है ।।५६।। ये तीनो वन्ध अज्ञान के हेतु वाले कहे गये है। अनित्य मे नित्य होने की सज्ञा और दु ख मे सुख का देखना यह मनोदोप है ।।६०।। जो अपना नही है उस अस्व मे अपना है ऐसा ज्ञान रखना तथा अशुचि मे शुचि अर्थात् पवित्र होने का निश्चय कर लेना जिनके ये मनोदोप और विपयय से ज्ञान दोप होते हैं ।।६१।। राग तथा द्वेप की निवृत्ति वह ज्ञान कहा गया है। अज्ञान तम का मूल होता है। कर्म द्वय का फल रज होना है। फिर कर्म से उत्पन्न होने वाला देह होता है और महा दु ख प्रवृत्त होता है ।।६२।। श्रोत्र से जन्म लेने वाली—नेत्रो से

उत्पन्न होने वाली तथा त्वचा जिह्वा और घ्राण अर्थात् नासिका से पुनर्जन्म करने वाली दुःख स्वरूपा बहु कर्मों की उत्पन्न होती है ॥६३॥

सतृष्णोऽभिहितो बाल स्त्कृतः कर्म्मणा फल ।
तलपालीकवञ्जीवस्तत्रव परि वत्त त ॥६४
तस्मात्स्थूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यत ।
त वक्तमवयार्थ्यैक ज्ञाने यत्न समाचरेत् ॥६५
ज्ञानाद्विजयत सव त्यागाद्बुद्धिर्विरज्यत ।
वैराग्याच्छुद्धयत चापि शुद्ध सत्वेन मुच्यत ॥६६
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि राग भूतापहारिणम् ।
अभिषज्ञाय यो यस्माद्विषयोऽप्यवश्यात्मन ॥६७
अनिष्टमभिषङ्ग हि प्रीतितापविषादनम् ।
दुःखलाभे न तापश्च सुखानुस्मरणा तथा ॥६८
इत्येष वैषयो राग सम्भूत्या कारण स्मृतम् ।
ब्रह्मादौ स्थावरान्त े ससारे ह्याधिभौतिके ।
अज्ञानपूर्वक तस्मादज्ञानन्तु विवजयेत् ॥६९
यस्य चाप न प्रमाण शिष्टाचार स्तथव च ।
वर्णाश्रमविरोधी य शिष्टशास्त्रविरोधक ॥७०
एष मार्गो हि निरधितियग्योनी च कारणम् ।
तिर्यग्योनिगतश्च व कारण स निरुच्यते ॥७१
विविधा यातना स्थाने तिर्यग्योनौ च यद्वि वधे ।
कारणे विषये चत्र प्रतिघातस्तु सवश ॥७२
अनश्यन्तु तत्सव प्रतिघातात्मक स्मृतम् ।
इत्येषा तामसी वृत्तिभू ताधीना चतुर्विधा ॥७३

अपने किये हुए कर्मों के फलो से बाल सतृष्ण कहा गया है। तैल पालीकवद् जीव वहाँ पर ही परिवर्तित होता है ॥६४॥ इससे अनर्थों का स्थूल अज्ञान ही उपदिष्ट होता है। उस एक को वक्त समझ कर ज्ञान मे यत्न करना चाहिए ॥६५॥ ज्ञान से सबकी विजय होती है और त्याग से ~ विरक्त

होती है तथा वैराग्य से शुद्धि होती है और जो शुद्ध होता है वह सत्त्व से मुक्ति प्राप्त किया करता है ॥६६॥ इससे आगे भूताप के हरण करने वाले राग को बतलाऊँगा । जो जिससे अवश्य आत्मा वाले का विषय अभिपङ्ग के लिये होता है ॥६७॥ अनिष्ट अभिपङ्ग निश्चय ही प्रीति ताप का विपाद करने वाला होता है । दु ख लाभ मे ताप तथा सुखानुस्मरण नही होता है ॥६८॥ यह वैराग्य राग सम्भूति का कारण कहा गया है । ब्रह्मा से आदि मे स्थावरो के अन्त मे इस आधिभौतिक ससार मे अज्ञान पूवक सब है इसलिये अज्ञान का त्याग करना ही चाहिए ॥६६॥ जिसके लिये ऋषियो के द्वारा कहा हुआ प्रमाण नही होता है अर्थात् कोई प्रमाण के रूप मे नहीं माना जाता है और शिष्टाचार भी नही होता है । जो वर्णों और आश्रमों का विरोध करने वाला होता है तथा जो शिष्टो के निमित्त शास्त्रो का विरोध करने वाला होता है ॥७०॥ यह मार्ग निरय और तिर्यक् योनि मे कारण बना करता है । वह तिर्यक् योनि गत कारण कहा जाया करता है ॥७१॥ छै प्रकार के तियक् योनिगत कारण कहा जाया करता है ॥७१॥ छै प्रकार के तिर्यक् योनि के स्थान मे अनेक प्रकार की यातनाऐं होती हैं । कारण और विषय मे सब ओर से प्रतिघात होता है ॥७२॥ इस प्रकार से वह समस्त अनैश्वय प्रतिघात के स्वरूप वाला कहा गया है । यह प्राणियो की तामसी वृत्ति चार प्रकार की होती है ॥७३॥

सत्त्वस्थमात्रक चित्त यथा सत्त्वप्रदर्शनात् ।
तत्त्वानाश्च तथा तत्त्व दृष्ट्वा वै तत्त्वदर्शनात् ॥७४
सत्त्वक्षेत्रज्ञनानात्वमेतज्ज्ञानार्थदर्शनम् ।
नानात्वदर्शन ज्ञान ज्ञानाद्ध योगमुच्यते ॥७५
तेन बद्धस्य वै बन्धो मोक्षो मुक्तस्य तेन च ।
ससारे विनिवृत्ते तु मुक्तो लिङ्गेन मुच्यते ॥७६
ति सम्बन्धो ह्यचैतन्य स्वात्मन्येवावतिष्ठते ।
स्वात्मन्यवस्थितश्चापि विरूपाख्येन लिख्यते ॥७७
इत्येतल्लक्षण प्रोक्त समासाज्ज्ञानमोक्षयो ।
स चापि त्रिविध प्रोक्तो मोक्षो वै तत्त्वदर्शिभि ॥ ७८

पूव वियोगो ज्ञानेन द्वितीयो रागसक्षयात् ।
लिङ्गाभावात्तु कवल्य कवल्यात्तु निरञ्जनम् ।।८६
निरञ्जनत्वाच्छुद्धस्तु ततो नेता न विद्यते ।
तृष्णाक्षयात्तृतीयस्तु व्याख्यास मोक्षकारणम् ।।८
निमित्तमप्रतीघाते इष्टशब्दादिलक्षणे ।
अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ।।८१

केवल सत्त्व म स्थित रहने वाला चित्त जिस प्रकार से सत्त्व से दशन से होता है उसी प्रकार से तत्त्व को देखकर तत्त्व दशन से तत्त्वो का होता है ।।७४।। सत्त्व क्षेत्रज्ञो का नानात्व होता है और यह ज्ञानाय दशन है । नानात्व के दर्शन को ज्ञान करते हैं और उस ज्ञान से योग दशन होना है जोकि योग कहा जाता है ।।७५।। उससे जो बद्ध होता है उसका बन्धन होता है और जो उससे मुक्त होता है उसका मोक्ष हुआ करता है । ससार के विनिवृत्त होने पर मुक्त लिङ्ग से छुटकारा पा जाया करता है ।।७६।। नि सम्ब ध अर्थात् सम्ब ध से रहित प्रवतत्य अपनी आत्मा मे ही अवस्थित हुआ करता है । और स्वात्म व्यवस्थित ही विरूपाख्य के द्वारा लिखा जाता है ।।७७।। यह इतना ही सक्षेप से ज्ञान और मोक्ष का लक्षण कहा गया है । वह मोक्ष भी तत्त्वो के देखने वाले पुरुषो के द्वारा तीन प्रकार का कहा गया है ।।७८।। प्रथम नान के साथ वियोग है । दूसरा राग के सक्षय से होता है लिङ्ग के अभाव से कवल्य होता है और कैवल्य से तो निरञ्जन होता है ।।७६।। निरञ्जन होने से शुद्ध होता है फिर नेता नही होता है । तृष्णा के क्षय से तीसरा होता है जोकि मोक्ष का कारण व्याख्यात किया गया है ।।८ ।। इष्ट शब्द आदि स्वरूप वाले अप्रतिघात मे निमित्त होता है । इसके आठ रूप होते हैं जोकि यथाक्रम प्राकृत होते हैं ।।८१।।

क्षेत्रज्ञव्यवसज्यन्ते गुणमानात्मकानि तु ।
अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वराग्य दोषदर्शनात् ।।८२
दिव्ये च मानुषे चव विषये पञ्चलक्षणे ।
अप्रद्व षोऽनभिष्वङ्ग कर्त्तव्यो दोषदशनात् ।।८३

तापप्रीतिविपादाना कार्य्यन्तु परिवर्जनम् ।
एव वैराग्यमास्थाय शरीरी निर्ममो भवेत् ।।८४
अनित्यमशिव दु खमिति बुद्ध्यानुचिन्त्य च ।
विशुद्ध कार्यकरण सत्त्वाभ्येति तरान्तु य ।।८५
परिपक्ककपायो हि कृत्स्नान्दोपान्प्रपश्यति ।
तत प्रयाणकाले हि दोपैर्नैमित्तिकैस्तथा ।।८६
ऊष्मा प्रकुपित काये तीव्रवायुसमीरित ।
स शरीरमुपाश्रित्य कृत्स्नान्दोपान्रुणद्धि वै ।।८७
प्राणस्थानानि भिन्दन्हि छिन्दन्मर्माण्यतीत्य च ।
शैत्यात्प्रकुपितो वायुरूद्‌ध्वन्तु क्रमते तत ।।८८
स चाथ सर्वभूताना प्राणस्थानेष्ववस्थित ।
समासात्संवृते ज्ञाने संवृतेपु च कर्म्मसु ।।८९
स जीवोऽन्यधिष्ठान कर्म्मभि स्वै पुराकृतै ।
अष्टाङ्गप्राणवृत्तीर्वै स विच्यावयते पुन ।।९०
शरीर प्रजहत्सो वै निरुच्छ्वासस्ततो भवेत् ।
एव प्राणै परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते ।।९१

गुणमानात्मक क्षेत्रज्ञो मे अब सज्जित होते हैं। अब इससे आगे दोष दर्शन से वैराग्य को बतलाऊँगा ।।८२।। दिव्य और मानुष पञ्च लक्षण विषय मे दोष दर्शन से प्रद्वेष अनभिषङ्ग करना चाहिए ।।८३।। ताप-प्रीति और विषादो का परिवर्जन करना चाहिए। इस प्रकार से वैराग्य मे आस्थित होकर यह शरीर धारी निमम हो जाता है। अर्थात् इस शरीरी को ममता से रहित हो जाना चाहिए ।।८४।। बुद्धि के द्वारा दु ख अनित्य अशिव है इस प्रकार से अनुचिन्तन करके जो विशुद्ध कार्य का करता है वह सत्त्व की प्राप्ति करता है ।।८५।। फिर परिपक्व कषाय वाला होकर समस्त दोषो को देख लेता है। प्रयाण करने के समय मे निश्चय ही नैमित्तिक दोषो से काया मे प्रकुपित ऊष्मा होते हुए तीव्र वायु मे समीरित हो जाता है वह शरीर मे उपाश्रित होकर समस्त दोषो को रुद्ध कर देता है ।।८६-८७।। प्राण के स्थानो को भेदन करता

हुआ और मर्मों को छेदन करता हुआ आगे चलकर शस्य से प्रकुपित होने वाला वायु ऊर्ध्व भाग को फिर क्रान्त किया करता है ।।८८।। और यह वह समस्त प्राणियों के प्राण स्थानों में अवस्थित रहा करता है। संक्षेप से ज्ञान के संवृत हो जाने पर और समस्त कर्मों के संवृत होने पर वह जीव पुरा कृत अर्थात् पहिले जन्म में किये हुए अपने कर्मों से अनभ्यधिष्ठान हो जाता है। फिर अष्टाङ्ग प्राण वृत्ति वाला वह विच्यावयित हो जाता है ।।८६ ६ ।। शरीर को प्रकृष्टता से त्यागता हुआ वह फिर बिना उच्छ्वासों वाला होता है। इस रीति से प्राणों के द्वारा परित्यक्त होने वाला मृत इस नाम से कहा जाता है ।।६१।।

यथेह लोके खद्योत नीयमानमितस्तत ।
रञ्जन तद्वधे यत्तु नेता नेता न विद्यत ।।६२
तृष्णाक्षयस्तृतीयस्तु व्याख्यात मोक्षलक्षणम् ।
शब्दाद्य विषये दोषविषये पञ्चलक्षणे ।।६३
अप्रद्वेषोऽस्न भिष्वङ्ग प्रीतितापविवर्जनम् ।
वराग्यकारण ह्य त प्रकृतीना लयस्य च ।।६४
अष्टौ प्रकृतयो ज्ञया पूर्वोक्ता व यथाक्रमम् ।
अव्यक्ताद्यास्तु विज्ञ या भूतान्ता प्रकृतलया ।।६५
वर्णाश्रमाचारयुक्ता शिष्टा शास्त्राविरोधिन ।
वर्णाश्रमाणा धर्मोऽय देवस्थानेषु कारणम् ।।६६
ब्रह्मादीनि पिशाचान्तान्यष्टौ स्थानानि देवता ।
ऐश्वर्यमणिमाद्य हि कारण ह्यष्टलक्षणम् । ६७
निमित्तमप्रतिघात इष्टे शब्दादिलक्षणे ।
अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ।।६८

जिस प्रकार से यहाँ लोक में इधर उधर ले जाया गया खद्योत (जुगुनू) रञ्जन होता है और उसके वध होने पर नेता नेता नहीं रहता है ।।६२।। तृष्णा का क्षय तीसरा मोक्ष का लक्षण व्याख्यात किया गया है। शब्दादि विषय में पञ्चलक्षणों वाले दोष विषय म अप्र प अनभिषङ्ग प्रीति और ताप का विव

जैन होना ये वैराग्य के कारण और प्रकृतियों के लय के कारण होते है ।।६३-६४।। पूव मे कथित की हुई आठ प्रकृतियाँ क्रम के अनुसार जानलेनी चाहिये । अव्यक्त आदि प्रकृति लय भूतान्त होते हैं ।।६५।। शिष्ट जो होते हैं वे वर्णों और आश्रमो के धर्मो से युक्त हुआ करते हैं तथा वे शास्त्रो के भी विरोध न करने वाले होते हैं । चार वर्णों और चारो आश्रमो का यह धर्म देवो के स्थानो मे कारण होता है ।।६६।। ब्रह्मा से आदि लेकर पिशाचो के अन्तक आठ स्थान देवता होते हैं । ऐश्वर्य तथा अणिमा आदि अष्ट लक्षण वाला कारण होता है ।।६७।। शब्दादि लक्षण रुप मे जो अप्रतिघात होता है वह निमित्त होता है । ये आठ यथाक्रम आठ प्राकृति रूप होते हैं ।।६८।।

क्षेत्रज्ञेष्वनुसज्यन्ते गणमात्रात्मकानि तु ।
प्रावृट्काले पृथक्त्वेन पश्यन्तीह न चक्षुषा ।।६६
पश्यन्त्येवविध सिद्धा जीव दिव्येन चक्षुषा ।
श्वाविली श्वानपानञ्च योनी प्रविशतस्तथा ।।१००
तिर्य्यगूर्द्ध मधस्ताच्च धावतोऽपि यथाक्रमम् ।
जीवप्राणास्तथा लिङ्ग कारणञ्च चतुष्टयम् ।।१०१
पर्य्यायवाचकैं शब्दैरेकार्थे सोऽभिलिख्यते ।
व्यक्ताव्यक्ते प्रमाणोऽय स वै रूप तु कृत्स्नश ।।१०२
अव्यक्तान्त गृहीत च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितञ्च यत् ।
एव ज्ञात्वा शुचिर्भूत्वा ज्ञानाद्वै विप्रमुच्यते ।।१०३
नष्टश्चैव यथा तस्व तत्त्वाना तत्त्वदर्शनम् ।
यथेष्ट परिनिर्य्याति भिन्ने देहे सुनिर्वृ ते ।।१०४

गुण मात्रात्मिक क्षेत्रज्ञो मे अनुसञ्जित होते है । प्रावृट् अर्थात् वर्षा के समय मे यहाँ पर पृथक्त्व होने मे नेत्र के द्वारा नही देखते है ।।६६।। इस प्रकार वाले जीव को सिद्ध लोग दिव्य चक्षु के द्वारा देखा करते है । श्वाविलि और श्वान के पान वाला तथा तिर्यक् योनियो मे प्रवेश करता हुआ ऊपर और नीचे की ओर दौडता हुआ भी यथाक्रम जीव प्राण तथा लिङ्ग यह चार कारण है ।।१००-१०१।। एक ही अर्थ रखने वाले पर्याय वाचक शब्दो से वह अभि-

लिखित किया जाता है। व्यक्त और अव्यक्त में यह प्रमाण है और वह पूर्णतया रूप होता है ॥१ २॥ जो अव्यक्त के अन्त तक ग्रहण किया हुआ है और क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित है इस रीति से ज्ञान प्राप्त करके और शुचि होकर निश्चय ही ज्ञानसे प्रकृष्ट रूपसे मुक्त होजाता है ॥१ ३॥ जैसे ही तत्त्व और तत्त्वों का तत्त्वदर्शन नष्ट होता है वह भिन्न निवृत देह में स्थित होता है और वह चला जाता है ॥१०४॥

भिद्यते करणाश्चापि ह्यव्यक्ताज्ञानिनस्तत ।
मुक्तो गुणशरीरेण प्राणाद्य न तु मवश ॥१०५
नायन्शरीर मादत्त दग्धे बीजे यथाकुर ।
जीविक सवससारादबीजशरीरमानस ॥१०६
ज्ञानाद्बुद्धशान्छुद्ध प्रकृति सोऽनुवर्त्तते ।
प्रकृति सत्यमित्याहुर्विकारोऽनृतमुच्यते ॥१०७
तत्सद्भावोऽनृत ज्ञेय सद्भाव सत्यमुच्यते ।
अनामरूपक्षेत्रज्ञनामरूप प्रचक्षते ॥१ ८
यस्मात्क्षेत्र विजानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते ।
क्षेत्रप्रत्ययतो यस्मात्क्षेत्रज्ञ शुभ उच्यते ॥१०९
क्षेत्रज्ञ स्मव्यते तस्मात्क्षेत्र तज्ज्ञैर्विभाव्यते ।
क्षेत्रत्वप्रत्यय दृष्ट क्षेत्रज्ञ प्रत्ययी सदा ॥११०
क्षयणात् करणाच्चैव क्षतत्राणात्तथैव च ।
भोज्यत्वाद्विषयत्वाच्च क्षेत्र क्षेत्रविदो विदु ॥१११
महदाद्य विशेषान्त सवरूप्य विलक्षणम् ।
विकारलक्षण तद्व साक्षरक्षरमेव च ॥११२
तमेव च विकारन्तु यस्माद्व क्षरते पुन ।
तस्माच्च कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते ॥११३

इसके अनन्तर जो अव्यक्त ज्ञानी होता है उसका करण भी भिद्यमान होता है। गुण शरीर प्राणाद्य से सभी प्रकार से मुक्त होता है ॥१ ५॥ फिर वह मुक्त हुआ प्राणी अन्य शरीर को धारण नहीं किया करता है जिस तरह

बीज के दग्ध हो जाने पर फिर उससे अंकुर नहीं होते हैं उसी रीति से यज्ञीयात्मा बीज शरीर मानस संसार में चतुर्दश ज्ञान से शुद्ध हुआ वह प्रकृति का अनुवर्तन किया करता है। सत्य को प्रकृति कहते हैं और जो विकार होता है वह अनृत कहा जाता है ॥१०६-१०७॥ उसका सद्भाव अनृत जानना चाहिये और सद्भाव सत्य कहा जाता है। अनाम रूप वाले क्षेत्रज्ञ का नाम रूप कहा जाता है ॥१०८॥ जिससे क्षेत्र को जानते हैं उससे वह क्षेत्रज्ञ कहा जाया करता है। जिस क्षेत्र के प्रत्यय से क्षेत्रज्ञ शुभ कहा जाता है ॥१०९॥ उससे क्षेत्रज्ञ का स्मरण किया जाता है। उन ज्ञाताओं के द्वारा विविध रूप से कहा जाया करता है। क्षेत्रज्ञ का प्रत्यय जब दृष्ट होता है तो क्षेत्रज्ञ सर्वदा प्रत्ययी होता है ॥११०॥ क्षयण से और क्षरण से ही तथा क्षत त्राण से भोज्य होने से और विषय के होने से क्षेत्र को वैसा लोग क्षेत्र जानते हैं ॥१११॥ महत् से आद्य और विशेष के अन्त तक विलक्षण सर्वरूप होता है। यह निश्चय ही विकार लक्षण वाला क्षर ही होता है ॥११२॥ फिर उस ही विकार को जिससे वह क्षर होता है और उसही कारण से क्षर ऐसा अभिहित हुआ करता है ॥११३॥

सुखदुःखमोहभावाद् भोज्यमित्यभिधीयते ।
अचेतनत्वाद्धि विषयस्तद्धि धर्म्मविभुः स्मृतः ॥११४
न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतस्तु तत् ।
अक्षरं तेन चाप्युक्तमक्षीणत्वात्तथैव च ॥११५
यस्मात्पुर्य्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते ।
पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरुषेत्यभिधीयते ॥११६
पुरुष कथयत्स्वाय कथन्तज्ज्ञैर्विभाव्यते ।
शुद्धो निरञ्जनाभासो ज्ञानाज्ञानविवर्जितः ॥११७
अस्ति नास्तीति सोऽन्यो वा बद्धो मुक्तो गतः स्थितः ।
नैहैतिकान्तमिदं यथोक्तमस्मिन्न विद्यते ॥११८
शुद्धत्वात्तु हेयो वैरदृष्टत्वात्स्वदर्शनः ।
आत्मप्रत्ययकारी सा स्नूनश्चापि हेतुकम् ।
भावग्राह्यमनुमान्य चिन्तयन्न प्रमुच्यते ॥११९

यदा पश्यति ज्ञातारं ज्ञाताथ दर्शनात्मकम् ।
दृश्यादृश्येषु निर्दृश्य तदा तद्धर वरम् ॥१२०

सुख-दुःख और मोह के भाव भोग इस नाम से कहे जाते हैं। अचेत के होने से जो विषय है वह ही परम विभु कहा गया है ॥११४॥ वह विकार का प्रसूत न तो क्षीण होता है और न क्षर ही होता है और उस ही रीति से उससे अक्षीण होने के कारण से अक्षर ऐसा कहा गया है ॥११५॥ जिससे वह पुरी मे अनुशयन किया करता है उस कारण से वह पुरुष ऐसा कहा जाया करता है। पुर प्रत्यधिक जिससे होता है वह पुरुष इस नाम से बोला जाया करता है ॥११६॥ पुरुष कहो इसके अनन्तर उसके ज्ञाताओं के द्वारा वह शुद्ध निरञ्जनाभास और ज्ञान तथा अज्ञान से रहित को विभावित किया जाता है ॥११७॥ है और नहीं है—इससे अथवा वह अन्य है बद्ध एव मुक्त गया हुआ स्थित है। उभय नहींतिकान्त निर्देश्य सूक्त नहीं होता है ॥११८॥ शुद्ध होने से वह देश्य नहीं है और द्रष्ट होने से समदर्शन होता है। आत्मा का प्रत्यय कारी होता है। सारभूत हेतुरु भाव ग्राह्य एव अनुमान्य का चिन्तन करता हुआ मोह को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥११९॥ जब जिस समय ज्ञातार्थ दर्शनात्मक ज्ञाता को देख लेता है तब उस समय दृश्यादृश्यों मे निर्देश्य उसका श्रेष्ठ उद्धार होता है ॥१२ ॥

एवं ज्ञात्वा स विज्ञाता ततः शान्ति नियच्छति ।
कार्य्ये च कारणे चैव बुद्ध्यादौ भौतिके तदा ॥१२१
सम्प्रयुक्तो वियुक्तो वा जीवतो वा मृतस्य च ।
विज्ञाता न च दृश्येत पृथक्त्वेनेह सर्वशः ॥१२२
स्वेनात्मानं समात्मानं कारणात्मा नियच्छति ।
प्रकृतौ कारणे चैव स्वा मन्येवोपतिष्ठति ॥१२३
अस्ति नास्तीति सोऽन्यो वा ह्यहामुत्रेति वा पुनः ।
एकत्वं वा पृथक्त्वं वा क्षेत्रज्ञपुरुषेति वा ॥१२४
आत्मवान् स निरात्मा वा चेतनोऽचेतनोऽपि वा ।
कर्त्ता वा सोऽप्यकर्त्ता वा भोक्ता वा भोज्यमेव वा ॥१२५

यज्ज्ञात्वा न निवर्त्तन्ते क्षेत्रज्ञे तु निरञ्जने ।
अवाच्य तदनाख्यानादग्राह्यत्वादहेतुनि ॥१२६

इस प्रकार से वह विशेष रूप से ज्ञान रखने वाला फिर शान्ति को प्राप्त किया करता है। कार्य में और कारण में तथा बुद्धि आदि भौतिक में उस समय सम्प्रयुक्त अथवा वियुक्त होता हुआ, जीवित का अथवा मृत का विज्ञाता यहाँ सब प्रकार से पृथक्त्व होने से दिखाई नहीं देता है ॥१२१-१२२॥ कारणात्मा वह अपने से आत्मा को और उस आत्मा को प्राप्त करता है। प्रकृति में और कारण में अपनी ही आत्मा में उप तिष्ठमान होता है ॥१२३॥ है और नहीं है—यह अथवा वह अन्य है-यहाँ अथवा परलोक में है-एकत्व है अथवा पृथक्त्व है—क्षेत्रज्ञ है अथवा पुरुष है-वह आत्मवान् अथवा निरात्मा है-चेतन है अथवा अचेतन है-वह कर्त्ता है किम्वा वह अकर्त्ता है-वह भोक्ता अथवा भोज्य ही है-यह जानकर क्षेत्रज्ञ निरञ्जन में निवृत्त नहीं होते हैं। अपितु उसमें अनाख्यान होने से तथा अग्राह्य होने से यह कहने योग्य नहीं है ॥१२४-१२५-१२६॥

अप्रतर्क्यमचिन्त्यत्वादबाध्यत्वाच्च सर्वश ।
नाभिलिम्पति तत्तत्त्व सम्प्राप्य मनसा सह ॥१२७
क्षेत्रज्ञे निर्गुणे शुद्धे शान्ते क्षीणे निरञ्जने ।
व्यपे(ये)तसुखदु खे च निरुद्धे शान्तिमागते ॥१२८
निरात्मके पुनस्तस्मिन्वाच्यावाच्यो न विद्यते ।
एतौ सहारविस्तारौ व्यक्ताव्यक्तौ सत पुन ॥१२९
सृजते ग्रसते चैव ग्रस्त पर्यवतिष्ठते ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठित सर्वं पुन सर्व प्रवर्त्तते ॥१३०
अधिष्ठानप्रवृत्तेन तस्य ते बुद्धिपूर्वकम् ।
साधर्म्यवैधर्म्यकृतसयोगो विधिलस्तयो ।
अनादिमान् स सयोगो महापुरुषज स्मृत ॥१३१
यावन्न सर्गप्रतिसर्गकालस्तावन्न तिष्ठति सुसंश्रिसध्य ।
पूर्वं हितव्ये तदबुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तते तत्पुरुषार्थमेव ॥१३२

एषा निसर्गप्रतिसर्गपूर्व प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ।
अनाद्यनन्ता ह्यभिमानपूर्वक विलासयन्ती जगदभ्युपैति ।।१३३
इत्येष प्राकृत सर्गस्तृतीयो हेतुलक्षण ।
उक्तो ह्यस्मिंस्तदात्यन्त कविभिस्तत्प्रमुच्यते ।।१३४

अचि य होने से और सब प्रकार से अवाप्य होने से अप्रतर्क्य है। मनके साथ उस तत्त्व को सम्प्राप्त करके वह अभिलिप्त नहीं होता है ।।१२७।। क्षेत्रज्ञ—शुद्ध—निगु ण—शान्त—क्षीण—निरञ्जन व सुख और दु ख व्यपेत होते हुए निरुद्ध होकर शान्ति को प्राप्त होजाते हैं ।।१२८।। वह निरात्मा होता है इसलिये उसमें फिर कुछ भी वाच्य तथा अवाच्य नहीं रहता है। वे सहार और विस्तार तथा व्यक्त और अव्यक्त फिर सृजन करता है और ग्रसन करता है और ग्रस्त होता हुआ पयवस्थित रहता है। क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित सभी फिर प्रवृत्त होता है ।।१२६ १३ ।। अधिष्ठान प्रवृत्त होने से उसके बुद्धिपूर्वक साधर्म्य और वधर्म्य से किया हुआ सयोग उन दोनों का विधि से वह अनादिमान् सयोग होता है और महा पुरुष से जायमान कहा गया है ।।१३१।। और जितना सर्ग तथा प्रतिसर्ग का काल है उतना सुसन्निरुद्ध होकर रहता है। पहिले हितत्व मे वह अबुद्धि पूर्वक प्रवृत्त होता है और पुरुषार्थ ही होता है ।।१३२।। यह निसर्ग और प्रतिसर्ग पूर्वक प्राधानिकी ईश्वर कारिता है जो अनाद्यन्त वाली अभिमान पूर्वक विलास करती हुई जगत् को प्राप्त होती है। यह हेतु लक्षण वाला तृतीय प्राकृत सर्ग है जोकि कहा गया ह उसमें अत्यन्त रूप से कवियो के द्वारा प्रमुक्ति प्राप्त की जाती है ।।१३४।।

प्रकरण ६५—सृष्टि वर्णन

सूत सुमहदाख्यान भवता परिकीर्तितम् ।
प्रजाना मनुभि सार्द्ध देवानामृषिभि सह ।।१
पितृण धवभूताना पिशाचोरगरक्षसाम् ।
* याना दानवाना च यक्षाणामेव पक्षिणाम् ।।२

अत्यद्भुतानि कर्म्माणि विधिमान्धर्म्मनिश्चय ।
विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ।।३
तत्कथ्यमानमस्माक भवता श्लक्ष्णया गिरा ।
मन कर्णसुख सौते प्रीणात्याभूतसम्भवम् ।।४
एवमाराध्य ते सूत सत्कृत्य च महर्षय ।
पप्रच्छुः सत्रिण सर्वे पुन सर्गप्रवर्त्तनम् ।।५
कथ सूत महाप्राज्ञ पुन सर्ग प्रपत्स्यते ।
बन्धेषु सम्प्रलीनेषु गुणसाम्ये तमोमये ।।६
विकारेस्त्वविसृष्टेषु ह्यव्यक्ते चात्मनि स्थिते ।
अप्रवृत्तौ ब्रह्मणस्तु महासायुज्यगैस्तदा ।
कथ प्रपत्स्यते सर्गस्तन्न प्रब्र हि पृच्छताम् ।।७

ऋषियो ने कहा–हे सूतजी ! महान् आख्यान का वर्णन किया है जिसमें मनुओ के साथ प्रजाओ का तथा ऋषियो के साथ देवो का पूरा वर्णन है । इस आख्यान मे पितृ–गन्धर्व–भूत–पिशाच–उरग–राक्षस–दैत्य–दानव–यक्ष और पक्षियो के अत्यद्भुत कर्मो का वर्णन भी किया गया है । इसमें आपने विधि से युक्त धर्म का भी निश्चय बताया है । इसमे विचित्र कथाओ के योग है तथा श्रेष्ठतम अग्र्य जन्म का भी वर्णन किया है ।।१-२-३।। हे सौते ! आपतो अपनी अतीव श्लक्ष्ण सुन्दर वाणी से मन तथा कानो को परम सुख सम्प्रयुक्त करते हुए सभी कुछ का वर्णन करके समस्त प्राणियो को प्रसन्नता प्रदान किया करते हैं ।।४।। इस प्रकार से उन महर्षियो ने सूतजी का समाराधन एव भली भाँति सत्कार करके पुन उन सत्रधारियो ने सर्ग के प्रवर्त्तन के विषय मे उनसे पूछा था ।।५।। हे सूतजी ! आपतो महान् पण्डित हैं । यह सर्ग फिर कैसे होगा क्योंकि समस्त बन्ध जब प्रलीन होजाते हैं और इस तमोमय मे गुणो की समता होजाया करती है ? समस्त विकार तो उस समय मे विसृष्ट रहते ही नहीं हैं क्योंकि यह अव्यक्त आत्मा में ही स्थित होजाया करता है । महान् सायुज्य को प्राप्त होने पर ब्रह्म की प्रवृत्ति उस समय मे होती ही नही है फिर यह सर्ग कैसे होता है ? हम सब यही आपसे पूछना चाहते हैं सो आप कृपा करके वर्णन कर दीजिये ।।६-७।।

एवमुक्त स्तत सूतस्तदासौ लोमहर्षण ।
व्याख्यातुमुपचक्राम पुन सर्गप्रवर्त्तनम् ॥८
अह वो वर्त्त यिष्यामि यथा सर्ग प्रपत्स्यते ।
पूर्ववत्स तु विज्ञेय समासात्त निबोधत ॥९
दृष्ट चवानुमेयश्च तव वक्ष्यामि युक्तित ।
तस्माद्वाचो निवर्त्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह ॥१०
अव्यक्तवत् परोक्षत्वाद् ग्रहण तद्दुरासदम् ।
विकार प्रतिसदृष्ट गुणसाम्ये निवर्त्त ते ॥११
प्रधान पुरुषाणाञ्च साधर्म्यणेव तिष्ठति ।
धर्माधर्म्मौ प्रलीयेते अव्यक्तौ प्राणिना सदा ॥१२
सत्त्वमात्रात्मको धर्म्मो गुणसत्त्वे प्रतिष्ठित ।
तमोमात्रात्मकोऽधर्म्मो गुणे तमसि तिष्ठति ॥१३
अविभागवतावेतौ गुणसाम्यस्थितावुभौ ।
सर्वकार्य्यं बुद्धिपूर्व प्रधानस्य प्रपत्स्यते ॥१४

इस प्रकार से महर्षियो के द्वारा जब सूतजी से कहा गया तो वे लोम हर्षण पुन सर्ग की प्रवृत्ति का वर्णन करने का आरम्भ करने लगे थे ॥८॥ हे ऋषियो । मैं आप सबको बतलाता हूँ कि यह सर्ग किस प्रकार से प्रवृत्त हुआ करता है । यह पूर्व की भाँति ही जानने के योग्य है । अत यहाँ पर अतीव सक्षेप म इसे समझलो ॥९॥ यह दृष्ट तथा अनुमान करने के योग्य है । मैं युक्ति से सब को बतलाता हूँ । वहाँ से मन के साथ वाणी भी निवृत्त हो जाया करती है और किसी की भी पहुच नहीं होती है ॥१ ॥ अव्यक्त की ही भाति यह परोक्ष वस्तु है और इसका ग्रहण करना अत्यन्त कठिन है । गुणो की साम्यावस्था प्रति सहृष्ट हो जाने पर वह विकारो से पुन निवृत्त होगी है ॥११॥ पुरुषो के साधर्म्य से ही प्रधान स्थित होता है । प्राणियो के धर्म और अधर्म अव्यक्त होकर सदा प्रलीन हो जाया करते है ॥१२॥ सत्त्वमात्रा त्मक एक धर्म गुण सत्त्व मे प्रतिष्ठित रहा करता है । तमोमात्रात्मक अधर्म तमोगुण मे स्थित रहा करता है ॥१३॥ ये दोनो गुण–साम्य मे स्थित रहने

हुये उस समय मे विभाग से रहित होते है। प्रधान के समस्त कार्य मे बुद्धि पूर्वक ही प्रवृत्त होगे ।।१८।।

अबुद्धिपूर्वं क्षेत्रज्ञ अधिष्ठास्यति तान् गुणान् ।
एव तानभिमानेन प्रपत्स्येत पुरस्तदा ।।१५
यदा प्रवर्त्तितव्यन्तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयो ।
भोज्यभोक्तृत्वसम्बन्ध प्रपत्स्येते युतावुभौ ।।१६
तस्माच्छ्रणमव्यक्त साम्ये स्थित्वा गुणात्मकान् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठित तच्च वैपम्य भजते तु तत् ।।१७
तत प्रपत्स्यते व्यक्त क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयो. ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठित सत्व विकार जनयिष्यति ।।१८
महदाद्य विशेपान्त चतुर्विशगुणात्मकम् ।
क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुपस्य प्रवत्स्यते ।।१६
ब्रह्माण्डे प्रथम सोऽथ भविता चेश्वर पुन ।
ततो ज्ञेयस्य कृत्स्नस्य सर्वभूतपति शिव ।।२०
ईश्वर सर्व्वमुक्ताना ब्रह्मा ब्रह्ममयो महान् ।
आदि देव प्रधानस्यानुग्रहाय प्रवक्ष्यते ।।२१।।

यह क्षेत्रज्ञ बिना ही बुद्धि के योग किए हुए उस समय उन गुणो मे अधिष्ठित रहा करता है। इस प्रकार से उस समय मे उन गुणो को पहले प्रवृत्त कराया जाता है ।।१५।। जिस समय मे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दोनो को प्रवृत्त करना होता है तो ये दोनो ही भोज्य और भोक्ता इसके सम्बन्ध की प्राप्ति किया करते हैं ।।१६।। इसके गुण स्वरूपो को साम्यावस्था मे स्थित करके वह कारण अव्यक्त क्षेत्रज्ञ मे अधिष्ठित होता है और वही जब विपमावस्था को प्राप्त होते है तो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनो का व्यक्त स्वरूप हो जाता है। क्षेत्रज्ञ मे अधिष्ठित स व विकार को उत्पन्न किया करता है ।।१७-१८।। महत्तत्व से आरम्भ करके विशेष के अन्त पर्यन्त और चौबीस गुणो के स्वरूप वाला क्षेत्रज्ञ पुरुष का और प्रधान का रूप हो जाया करता है ।।१६।। इस ब्रह्माण्ड मे वह प्रथम होता है। इसके अनन्तर फिर ईश्वर होता है। इसके

पश्चात् इस सम्पूर्ण ज्ञेय (जानने के योग्य) का समस्त भूतों का स्वामी शिव होता है ॥२०॥ समस्त भक्तों का ईश्वर महान् ब्रह्ममय ब्रह्मा है। वह प्रधान के अनुग्रह के लिये आदि देव कहा जायगा ॥२१॥

अनाद्यौ स्वयमुत्पन्नावुभौ सूक्ष्मौ तु तौ स्मृतौ ।
अनादिसयोगयुतौ सव क्षत्रज्ञमेव च ॥२२
अबुद्धि पूवक युक्तौ मशकौ तु वरौ तदा ।
अप्रत्ययमनाद्य च स्थितावुदकमप्स्यश ॥२३
प्रवृत्त पूवत पूव पुन सर्गं प्रपत्स्यत ।
अज्ञागुण प्रवत्तन्त रज सत्वतमात्मकम् ॥२४
प्रवृत्तिकाले रजसाभिपन्नमहत्वभूतादिविशेष्यताश्च ।
विशपता चेन्द्रियताश्च यान्ति गुणावसाने पतिभिर्मनुष्या ॥२५
सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिन सन्निमित्तकम् ।
रज सत्वतमा व्यक्ता विधर्म्माण परस्परम् ॥२६
आद्यन्ता सम्प्रपत्स्य ते क्षत्रतज्ज्ञास्तु सवश ।
ससिद्धकाय्यकरणा उत्पद्य तऽभिमानिन ॥२७
सर्वे सत्वा प्रपद्यन्त ह्यव्यक्तात्पूर्वमिव च ।
प्रसूत या च सुवहा साधिकाश्चाप्यसाधिका ॥२८

वे दोना अनाद्य है और स्वयमुत्पन्न होने वाले है तथा सूक्ष्म कहे गये हैं एव अनादि सयोग से युक्त है यह सब क्षेत्रज्ञ ही है ॥२२॥ ये अबुद्धि पूर्वक उस समय मशक वर हैं तथा अप्रत्यय एव अनाद्य उदक मे स्थित रहा करते हैं ॥२३॥ पूर्व से भी पूव सर्ग के प्रवृत्त होने पर ये यक्त प्रवृत्ति को प्राप्त होने वाले होते हैं। अज्ञागुणो के द्वारा रज सत्व तमात्मक होकर प्रवृत्त होते हैं। ॥२४॥ प्रवृत्ति के काल म रजोगुण से अभिपन्न महत्त्व भूतादि विशेष्यता तथा विशेपता और इन्द्रियता को मनुष्य गुणो के अवसान मे पतियो के साथ प्राप्त होते हैं ॥२५॥ सत्य के अभिध्यायी उसके सन्निमित्तक ध्यायी हैं। व्यक्त रज-सत्व और तम परस्पर मे विधर्मा होते है ॥२६॥ आदि और अन्त मे सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ हो जाते है। ससिद्ध कार्य के कारण अभिमान वाले

उत्पन्न होते हैं ॥२८॥ समस्त सत्व पहले ही अव्यक्त से प्रतिपन्न होते हैं। जो कि सुवहामायिका और अमाधिकारों का प्रसव करती है ॥२८॥

ससरन्तस्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणै सह ।
कार्य्याणि प्रतिपत्स्यन्ते उत्पद्यन्ते पुन पुन ॥२६
गुणमात्रात्मकार्थं च धर्म्माधर्म्मौ परस्परम् ।
आरम्भन्तीह चान्योन्य वरेणानुग्रहेण च ॥३०
सर्वे तुल्याः प्रसृष्टार्थ सर्गादौ यान्ति विक्रियाम् ।
गुणास्तत्प्रतिधावन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३१
गुणास्ते यानि सर्वाणि प्राक् दृष्टे प्रतिपेदिरे ।
तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृष्टमाना पुन पुनः ॥३२
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्म्माधर्म्मावृतानृते ।
तद्भाविता प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३३
महाभूतेषु नानात्वमिद्रियार्थेषु मूर्त्तिषु ।
विप्रयोगाश्च भूताना गुणेभ्य सप्रवर्त्तते ॥३४
इत्येष वो मया ख्यात पुनः सर्ग समासत ।
समासादेव वक्ष्यामि ब्रह्मणोऽथ समुद्भवम् ॥३५

वे सब सत्व स्थान और प्रकरणों के साथ यहाँ संसरण करते हुए पुन-पुन उत्पन्न होते है और कार्यों को प्राप्त किया करते हैं ॥२६॥ यहाँ पर वे सब परस्पर में गुणमात्र स्वरूप वाले धर्म और अधर्म की वर तथा अनुग्रह से आरम्भ किया करते हैं ॥३०॥ सब तुल्य हैं और प्रसृष्ट होने के लिये सर्ग के आदि विक्रिया को प्राप्त हुआ करते हैं। उनके प्रति गुण धावन किया करते हैं। जो-जो जिसकी रुचता है वे गुण सृष्टि में पूर्व जो थे उन सबको प्राप्त हो जाते हैं और वे ही सृष्टमान होते हुए पुन पुन प्रतिपन्न होते हैं ॥३१-३२॥ हिंस्र-अहिंस्र, मृदु-क्रूर, धर्म-अधर्म, और आवृत तथा अनृत मे तत्तत् भावो से भावित होते हुए जो जिसको रुचता है प्रपन्न हुआ करते हैं ॥३३॥ इन्द्रियार्थ मूर्त्तियों में और महाभूतो मे नानात्व होता है। भूतो के विप्रयोग गुणो से संवृत्त हुआ करते

है ॥३४॥ यह मैंने सक्षेप से पुन सर्ग का वर्णन कर दिया है। अब सक्षेप से ही ब्रह्म का समुद्भव कहूँगा ॥३५॥

अव्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात् ।
प्रधानपुरुषाभ्यान्तु जायते च महेश्वर ॥३६
स पुन सम्भावयिता जायते ब्रह्मसंज्ञित ।
सृजते स पुनर्लोकानभिमानगुणात्मकान् ॥३७
अहङ्कारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि चात्मन ।
युगपत् सम्प्रवर्त्तन्ते भूताख्येन्द्रियाणि च ।
भूतभेदाश्च भूतभ्य इति सर्ग प्रवर्तत ॥३८
विस्तरावयवस्तस्या यथाप्रज्ञ यथाश्रुतम् ।
कीर्तित वा यथा पूर्व तथैवाभ्युपधार्यताम् ॥ ३९
एतच्छ्रुत्वा नमिषेयास्तदानी लोकोत्पत्ति संस्थिति च व्ययश्च ।
तस्मिन् सत्रेऽवभृथ प्राप्य शुद्धा पुण्य लोकमृषयः प्राप्नुवन्ति ॥४०
यथा यूप विधिवद्देवतादीनिष्ट्वा चवावभृथ प्राप्य शुद्धा ।
त्यक्त्वा देहानायुषोऽन्त कृतार्था पुण्याँल्लोकान्प्राप्य यथेष्ट चरिष्यथ४१
एत त नमिषेया इष्ट्वा सृष्ट्वा च व तदा ।
जग्मुश्चावभृथस्नाता स्वर्ग सर्वे तु सत्रिण ॥४२

सत् और असत् स्वरूप वाले तथा नित्य उस अव्यक्त कारण से और प्रधान पुरुषो से महेश्वर समुत्पन्न होते है ॥३६॥ वह फिर सम्भावयित ब्रह्मा संज्ञा वाला होता है और वह अभिमान गुणात्मक लोको का सृजन किया करता है ॥३७॥ महत् तत्त्व से अहङ्कार उत्पन्न होता है और उस अहङ्कार से भूतो की तन्मात्राऐ उत्पन्न होती है और फिर एक ही साथ भूत तथा इन्द्रियाँ समुत्पन्न हुआ करते हैं। भूतो से भूतो के भेद होते हैं—इस प्रकार से यह सर्ग प्रवृत्त हुआ करता है ॥३८॥ उनका विस्तरावयव मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार और जैसा कुछ सुना था उसके अनुसार तुम्हारे सामने कह दिया है। जैसा पहिले कहा था वैसा ही इसे समझ लेना चाहिए॥३९॥ नमिषारण्य के निवास करने वाले ऋषियो ने उस समय यह श्रवण करके जिसमे लोको की उत्पत्ति—

सम्पिति और उपसहृति थी उस सत्र मे अवभृथ को—प्राप्त करके शुद्ध होने वाले ऋषिगण परम पुण्य लोक को प्राप्त होते हैं ।।४०।। जिस प्रकार से आप लोग विधि-विधान के साथ देवता आदि का यजन करके और अवभृथ को प्राप्त करके शुद्ध हुए आयु के अन्त मे देहो का परित्याग करके जिनके द्वारा सभी अर्थों की प्राप्ति कर ली गई है और सफल हो चुके हैं फिर परम पुण्य लोकों की प्राप्ति करके यथेष्ट विचरण करेंगे ।।४१।। ये सब नैमिषारण्य वासी मुनिगण यजन और सृजन करके उस समय मे अवभृथ स्नान करने वाले सब स्वर्ग लोक को चले गये थे ।।४२।।

विप्रास्तथा यूयमपि चेष्ट्वा वहुविधैर्मखैः ।
आयुषोऽन्ते ततः स्वर्गं गन्तारोऽथ द्विजोत्तमा ।।४३
प्रक्रिया प्रथमे पादे कथावस्तुपरिग्रह ।
अनुपङ्ग उपोद्घात उपसहार एव च ।।४४
एवमेतच्चतुष्पाद पुराण लोकसम्मतम् ।
उवाच भगवान् साक्षाद्वायुर्लोकहिते रत ।।४५
नैमिषे सत्रमासाद्य मुनिभ्यो मुनिसत्तमा ।
तत्प्रसादादसदिग्ध भूतोत्पत्तिलयानि च ।।४६
प्राधानिकीमिमा सृष्टि तथैवेश्वरकारिताम् ।
सम्यग्विदित्वा मेधावी न मोहमधिगच्छति ।।४७
इद यो ब्राह्मणो विद्वानितिहास पुरातनम् ।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि तथाध्यापयतेऽपि च ।।४८
स्थानेषु स महेन्द्रस्य मोदते शाश्वती समा ।
ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोदते ।।४९

हे विप्रोत्तमो ! हे विप्रगण ! इसी प्रकार से भी आप लोग भी बहुत प्रकार के मखो के द्वारा यजन करके आयु के अन्त मे स्वर्गलोक मे चले जाओगे ।।४३।। पुराण के प्रथम पाद में कथा वस्तु का परिग्रह होता है और फिर अनुपङ्ग—उपोद्घात तथा उपसहार होता है ।।४४।। इस प्रकार से यह चार पादो वाला पुराण लोक सम्मत होता है । लोक-हित मे रत रहने

वाले भगवान् वासुदेव ने साक्षात् यह कहा है ॥४५॥ नमिप क्षेत्र मे मुनिगण से किये हुए सत्र को प्राप्त करके हे मुनि श्रेष्ठो ! वहाँ उनके प्रसाद से सन्देह रहित हो जाता है और भूतो की उत्पत्ति तथा लय यह प्राधानिकी अर्थात् प्रधान से होने वाली सृष्टि तथा ईश्वर के द्वारा कराई हुई सृष्टि का भली भाँति ज्ञान प्राप्त करके मेधावी पुरुष फिर कभी मोह को प्राप्त नही होता है ॥४६ ४७॥ कोई विद्वान् ब्राह्मण इस पुरातन इतिहास का श्रवण करता है अथवा किसी को श्रवण कराता है या इसे को पढा देता है वह फिर महेन्द्र के स्थानो मे अनेक वर्षों तक मोद प्राप्त किया करता है तथा ब्रह्मा सायुज्य को प्राप्त करने वाला होकर ब्रह्मा के साथ मोक्ष को प्राप्त हो जायगा ॥४८ ४९॥

तथा कीर्त्तिमता कीर्त्ति प्रजेशाना महात्मनाम् ।
प्रथयन्पृथिवीशाना ब्रह्मभूयाय गच्छति ॥५०
धन्य यशस्यमायुष्य पुण्य वेदश्च सम्मतम् ।
कृष्णाद्द पायनेनोक्त पुराण ब्रह्मवादिना ॥५१
मन्वन्तरेश्वराणा च य कीर्ति प्रथयेदिमाम् ।
देवतानामृषीणाञ्च भूरिद्रविणतजसाम् ।
स सर्वैमु च्यते पाप पुण्यञ्च महदाप्नुयात् ॥५२
यश्चेद श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि ।
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३
यश्चेद श्रावयेच्छ्राद्ध ब्राह्मणान्पादमन्तत ।
अक्षय सार्वकामीय पितॄ स्तत्रोपतिष्ठति ॥५४
यस्मात्पुरा ह्यनन्तीद पुराण तेन चोच्यते ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपाप प्रमुच्यते ॥५५
तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्या प्रधानत ।
इतिहासमिम श्रु त्वा धर्माय विदधे मतिम् ॥५६
यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकूपाणि सवश ।
तावत्कोटि सहस्राणि वर्षाणा दिवि मोदते ।
ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा दवस सह मोदते ॥५७

उन कीर्ति वाले महात्मा प्रजाओं के ईश और पृथिवी के स्वामियों की कीर्ति का विस्तार करते हुए यह ब्रह्म भूय अर्थात् ब्रह्म के ही स्वरूप प्राप्त करने के लिये ही जाया करता है ॥५०॥ ब्रह्मज्ञानी श्रीकृष्ण द्वैपायन के द्वारा कथित यह पुराण परम धन्य है तथा श्रुति पुण्यमय है। यह आयु के प्रदान करने वाला-यश बढाने वाला और वेदों के द्वारा सम्मत है ॥५१॥ मन्वन्तरों के ईश-अधिक द्रविण तथा तेज वाले देवता और ऋषि वंश कीर्ति को जो प्रथित किया करता है वह सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है तथा महान् पुण्य को प्राप्त किया करता है ॥५२॥ जो विद्वान् इसको पर्व-पर्व पर इसका श्रावण कराता है वह पापों को नष्ट करने वाला और स्वर्ग को भी जीत लेने वाला ब्रह्म के सदृश ही होजाता है ॥५३॥ और जो इसको श्राद्ध में अन्त का पाद ही ब्राह्मणों को श्रवण कराता है वह अक्षय समस्त कामनाओं से पूर्ण पितरों को करके स्वयं भी वहाँ पर उपस्थित हुआ करता है ॥५४॥ जिसके द्वारा यह पुराण पहिले कहा जाता है और जो इसके निरुक्त को जानता है वह सम्पूर्ण पापों से प्रमुक्त होजाता है ॥५५॥ इसी प्रकार से तीनों वर्णों में प्रधानतया जो मनुष्य इस पुनीत पुराण का श्रवण करके धर्म के लिये अपनी मति करता है उसके शरीर में जितने रोमों के छिद्र होते हैं उतने ही सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त वह दिवलोक में रहकर मोद प्राप्त किया करता है ॥५६॥

सर्वपापाहरं पुण्यं पवित्रञ्च यशस्वि च।
ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने ॥५८
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पतिः।
बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनन्तरम् ॥५९
सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेन्द्राय वै पुनः।
इन्द्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ॥६०
सारस्वतस्त्रिधाम्ने च त्रिधामा च शरद्वते।
शरद्वतस्त्रिविष्टाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान् ॥६१
वर्षिणे चान्तरिक्षो वै सोऽपि त्रय्यारुणाय च।
त्रय्यारुणो धनञ्जये स च प्रादात्कृतञ्जये ॥६२

कृतञ्जयात्तृणञ्जयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ ।
गौतमाय भरद्वाज सोऽपि निर्यन्तरे पुन ।।६३
निर्यन्तरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय च ।
स ददौ सोमशुष्माय स ददौ तृणबिन्दवे ।।६४

समस्त पापों का हरण करने वाला—परम पुण्यमय—पवित्र और यश से परिपूर्ण शास्त्र ब्रह्माजी ने वायुदेव के लिये प्रदान किया था ।।५८।। उस वायु देव से इसे उशना कवि ने प्राप्त किया था और भार्गव शुक्र से इसकी प्राप्ति बृहस्पति ने की थी । फिर बृहस्पति ने सविता देव को इसको बताया था और इसके अनन्तर सविता ने मृत्यु देव को कहा था । मृत्युदेव ने इन्द्रदेव को बताया था । इन्द्रदेव ने वसिष्ठ मुनि को कहा था तथा वसिष्ठ ने सारस्वत को बताया था ।।५९ ६ ।। सारस्वत ने त्रिधामा को इसे बताया था और फिर त्रिधामा ने भारद्वाज को इसको सुनाया था । भारद्वाज ने त्रिविष्ट को और त्रिविष्ट ने इसका ज्ञान अन्तरिक्ष को दिया था । अन्तरिक्ष ने वर्षी को इस पुराण का ज्ञान प्रदान किया था और वर्षी ने त्र्यारुण को बताया था त्र्यारुण ने धनञ्जय को और धनञ्जय ने कृतञ्जय को इसका ज्ञान दिया था ।।६१ ६२।। कृतञ्जय से तृणञ्जय ने प्राप्त किया था तथा तृणञ्जय से भरद्वाज मुनि ने इसे पाया था । भरद्वाज ने गौतम को प्रदान किया और निर्यन्तर को प्रदान किया था । निर्यन्तर ने इसका ज्ञान वाजश्रव को प्रदान किया था । उसने फिर इसे सोमशुष्म को दिया था । सोमशुष्म ने तृणबिन्दु को प्रदान किया था ।।६३ ६४।।

तृणबि दुस्तु दक्षाय दक्ष प्रोवाच शक्तये ।
शक्ते पराशरश्चापि गर्भस्थः श्रु तवानिदम् ।।६५
पराशराज्जातुकर्णस्तस्माद्द्वै पायन प्रभु ।
द्वै पायनात्पुनश्चापि मया प्राप्त द्विजोत्तमा ।।६६
मया वै तत्पुन प्रोक्त पुत्रायामितबुद्धये ।
इत्येव वाचा ब्रह्मादिगुरुणा समुदाहृता ।।६७
नमस्कार्याश्च गुरव प्रयत्नेन मनीषिभि ।
धन्य यशस्यमायुष्य पुण्य सर्वार्थसाधकम् ।।३८

पापघ्नं नियमेनेदं श्रोतव्यं ब्राह्मणैः सदा ।
नाशुचौ नापि पापाय नाप्यसंवत्सरोषिते ॥६९
नाश्रद्धानाविदुषे नापुत्राय कथञ्चन ।
नाहिताय प्रदातव्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥७०
अव्यक्तं वै यस्य योनिं वदन्ति व्यक्तं देहं कालमन्तर्गतञ्च ।
वह्निं वक्त्रं चन्द्र सूर्यौ च नेत्रे दिशः श्रोत्रे घ्राणमाहुश्च वायुम् ॥७१
वाचो वेदाश्चान्तरिक्षं शरीरं क्षितिं पादौ तारका रोमकूपान् ।
सर्वाणि चाङ्गानि तथैव तानि विद्यास्सर्वा यस्य पुच्छं वदन्ति ॥७२
तं देवदेवं जननं जनानां सर्व्वेषु लोकेषु प्रतिष्ठितञ्च ।
वरं वराणां वरदं महेश्वरं ब्रह्माणमादिं प्रयतो नमस्ये ॥७३

तृणबिन्दु ने इसको दक्ष को श्रवण कराया था। दक्ष ने शक्ति को दिया था तथा शक्ति से गर्भ में ही स्थित पराशर ने इसका श्रवण किया था ॥६५॥ पराशर से जातुकर्ण्य ने तथा जातुकर्ण्य से द्वैपायन ने इसका ज्ञान प्राप्त किया था और हे द्विजोत्तमो ! द्वैपायन महर्षि से मुझे इसके ज्ञान प्राप्त करने का सौभाग्य मिला था ॥६६॥ वायुपायन ने कहा—मैंने फिर इस पुराण रत्न का ज्ञान अमित बुद्धि पुत्र को प्रदान किया था। इसी प्रकार से यह ब्रह्मादि गुरु वर्ग के द्वारा वाणी से यह पुराण कहा गया है। मनीषियों को समस्त गुरु वर्ग को सब प्रथम प्रणाम करना चाहिए यह पुराण परम धन्य है—यश तथा आयु के प्रदान करने वाला परम पुण्यमय और सम्पूर्ण अर्थों का साधक है ॥६७-६८॥ यह पुराण पापों के नाश करने वाला है। ब्राह्मणों को इसका श्रवण नियम पूर्वक सर्वदा करना चाहिए। यह परम पवित्र एवं अत्युत्तम पुराण है। इसका श्रवण अशुचि-पापी और ऐसा जो एक वर्ष से कम पास में रहा हो कभी भी उसका श्रवण नहीं कराना चाहिए। जो श्रद्धालु न हो—विद्वान् न हो तथा पुत्र रहित हो एवं अहित हो उसे किसी भी प्रकार से इसका श्रवण नहीं करावे ॥६९-७०॥ जिसकी योनि अव्यक्त है तथा देह को व्यक्त और काल को अन्तर्गत कहते हैं। वह्नि को मुख—चन्द्र और सूर्य को नेत्र—दिशाओं को श्रोत तथा वायु को घ्राण कहा गया है। वेदों को जिसकी वाणी तथा अन्तरिक्ष को

शरीर—क्षिति को चरण एव तारकों को रोमकूप बताया गया है । उसके अन्य भी सम्पूर्ण अङ्ग भी उसी प्रकार के जानने चाहिए और सभी जिसके पुत्र कहे जाते हैं उस देव को जो जनो का जन्म स्थान है और सब लोकों मे प्रतिष्ठित है । वरों मे भी वरदान देने वाले आदि ब्रह्मा महेश्वर को प्रसन्न होकर नमस्कार करता हूँ ॥७१-७२ ७३॥

प्रकरण ६६—व्यास सश्य वर्णन

सूत सूत महाभाग त्वया भगवता सता ।
व्यासप्रसादाधिगतशास्त्रसम्बोधनेन च ॥१
अष्टादशपुराणानि सेतिहासानि चानघ ।
उपक्रमोपसहार विधिनोक्तानि कृत्स्नश ॥२
पुराणेष्वेषु बहवो धर्मास्ते विनिरूपिता ।
रागिणाश्च विरागाणां यतीना ब्रह्मचारिणाम् ।
गृहस्थाना वनस्थाना स्त्रीशूद्राणा विशेषत ॥३
ब्राह्मणक्षत्रियविशा ये च सङ्करजातय ।
गङ्गाद्या या महानद्यो यज्ञव्रततपांसि च ॥४
अनेकविधदानानि यमाश्च नियम सह ।
योगधर्मा बहुविधा सांख्या भागवतास्तथा ॥५
भक्तिमार्गा ज्ञानमार्गा वैराग्यानिललीरजा ।
उपासनविधिश्चोक्त कर्मसशुद्धिचेतसाम् ॥६
ब्राह्म शव वष्णव च सौर शाक्त तथाहृतम् ।
षड दर्शनानि चोक्तानि स्वभावनियतानि च ॥७

शौनक आदि ऋषियो ने कहा—हे सूतजी ! आप तो महान् भाग वाले है आपने भगवान् व्यास देव से भली भाँति ज्ञान पूर्वक परम उनकी कृपा के प्रसाद से इस शास्त्र का अध्ययन किया है हे निष्पाप ! आपने अष्टादश पुराण

रहता है ॥८॥ यह नहीं जाना जाता है कि व्यास महर्षि अथवा आपने इसमें कुछ गोपन किया है। यहाँ पर आप हमारे संशय का छेदन कीजिए क्योंकि पूर्ण पौराणिक है ॥९॥ श्री सूतजी ने कहा—हे शौनक ! आप ध्यान पूर्वक श्रवण करो मैं इस सुदुर्लभ प्रश्न का उत्तर देता हूँ। अति गोप्य तम वस्तु आख्येय नहीं होती है ॥१ ॥ पराशर मुनि के पुत्र महर्षि व्यास देव ने समस्त वेदों के अर्थ से घटित पौराणिकी कथा का सम्पादन करके फिर चित्त में चिन्तन किया था ॥११॥ मैंने वर्णों तथा आश्रमों के पालन करने वाले लोगों के धर्म को भली भाँति कथन किया है और वेद के अविरोध रखते हुए बहुत प्रकार के मुक्ति के मार्गों का भी निरूपण कर दिया है ॥१२॥ सूत्र के निर्णय में जीव ईश्वर और ब्रह्म का भेद निरस्त किया है और श्रुति से युक्त विचार द्वारा पर ब्रह्म का निरूपण किया है ॥१३॥ परम ब्रह्म अक्षर है और परमात्मा ही परम पद होता है जिसके प्राप्त करने के लिये ही ब्रह्मचर्य से आदि लेकर वानप्रस्थ एवं यति के व्रत कहते हैं ॥१४॥

आचरन्ति महाप्राज्ञा धारणाश्च पृथग्विधाम् ।
आसन प्राणरोधश्च प्रत्याहारश्च धारणा ॥१५
ध्यान समाधिरेतानि यमश्च नियमैः सह ।
अष्टाङ्गानि यदर्थञ्च चरन्ति मुनिपुङ्गवा ॥१६
यदर्थं कर्म कुर्वन्ति वेदाज्ञामात्रतत्परा ।
परापरधिया सम्यग् निष्कामा कलिलोज्झिता ॥१७
यज्ञक्षये निराकर्त्तु पापाचरणमात्मन ।
गङ्गादितीर्थचर्याणि निषेवन्ते शुचिव्रता ॥१८
तद्ब्रह्म परम शुद्धमनाद्यन्तमनामयम् ।
नित्य सर्वगतं स्थाणु कूटस्थ कूटवर्जितम् ॥१९
सर्वेन्द्रियचराभास प्राकृतेन्द्रियवर्जितम् ।
दिक्कालाद्यनवच्छिन्न नित्य चिन्मात्रमव्ययम् ॥२०
अध्यास्त सर्वमत्र विश्वमेतत्प्रकाशते ।
विश्वस्मिन्नपि चान्वेति निर्विकारञ्च रज्जुवत् ॥२१

महान् पण्डित लोग धारणा को एक प्रकार का आचरण किया करते हैं। मुनियों में श्रेष्ठ लोग यम और नियमों के साथ आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि-इन आठ अङ्गों को जिसके लिये किया करते हैं ॥१५-१६॥ वेद की केवल आज्ञा में ही परायण रहने वाले सगापण की बुद्धि से कलिलोज्झित और निष्काम होते हुए भली भाँति जिसके लिये कर्म किया करते हैं ॥१७॥ जिसकी ज्ञप्ति (ज्ञान) के लिये शुचि व्रत वाले होकर अपनी आत्मा के पाप के आवरणों का निराकरण करने के लिये गङ्गा आदि महान् तीर्थों का आचरण और सेवन किया करते हैं ॥१८॥ वह ब्रह्म परम शुद्ध आदि-अन्त से रहित-अनामय-नित्य-सब में रहने वाला-स्थाणु-कूटस्थ-कूटवर्जित-सर्वेन्द्रिय वराभाग-प्राकृत इन्द्रियों से वर्जित-दिशा और काल आदि से अनवच्छिन्न-नित्य-चिन्मात्र अर्थात् ज्ञान स्वरूप-अव्यय और सपक्षत् अध्यात्म है जिसमें यह विश्व प्रकाशित होता है और इस विश्व में भी सिरियार रज्जु की भाँति अनुगमन किया करता है ॥१९-२० २१॥

सम्यग्विचारितं यद्वत्फेनोर्मिबुद्बुदोदकम् ।
तथा विचारितं ब्रह्म विश्वस्मान्न पृथग्भवेत् ॥२२
सर्वं ब्रह्मैव नानात्वं नास्तीति निगमा जगुः ।
यस्माद्भवन्ति ब्रह्माण्डकोटयो न भवन्ति च ॥२३
यदुन्मेषनिमेषाभ्यां जगतां प्रलयोदयौ ।
भवेतां या परा शक्तिर्यदाधारतया स्थिता ॥२४
यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं यदिदं स्मृतम् ।
यदज्ञानाज्जगद्भाति यस्मिन् ज्ञाते जगन्न हि ॥२५
असत्यं यज्जडं दुःखमवस्त्विति निरूपितम् ।
विपरीतमतो यद्वै सच्चिदानन्दमूर्त्तिकम् ॥२६
जीवे जाग्रति विश्वाख्यं स्वप्ने यत्तैजसं स्मृतम् ।
सुषुप्तौ प्राज्ञसंज्ञं तत्सर्वावस्थासु संस्मृतम् ॥२७
यच्चक्षुषां चक्षुरथ श्रोत्राणां श्रोत्रमस्ति च ।
त्वक् त्वचां रसनं तस्य प्राणं प्राणस्य यद्विदुः ॥२८

गोलोकवासी भगवानक्षरात्पर उच्यते ।
तस्मादपि पर कोऽसौ गीयत श्रुतिभि सदा ।।३८
उद्दिष्टो वेद वचनैर्विशेषो ज्ञायत कथम् ।
श्रुतर्वार्थोऽन्यथा बोध्य परतस्त्वक्षरादिति ।।३९
श्रुत्यर्थे सशयापन्नो व्यास सत्यवतीसुत ।
विचारयामास चिर न प्रपेदे यथातथम् ।।४०
विचारयन्नपि मुनिर्नापि वेदार्थनिश्चयम् ।
वेदो नारायण साक्षाद्यत्र मुह्यन्ति सूरय ।।४१
तथापि महतीमार्त्ति सता हृदयतापिनीम् ।
पुनर्विचारयामास क व्रजामि करोमि किम् ।।४२
पश्यामि न जगत्यस्मिन्सर्वज्ञं सर्वदर्शनम् ।
अज्ञात्वाऽन्यतम लोके सन्देहविनिवर्त्तकम् ।।४४

इस प्रकार से चिन्मात्र (केवल ज्ञान स्वरूप) गुणो से रहित तथा भेद से वर्जित ब्रह्म मे जो कि गोलोक की सज्ञा वाले मे कृष्ण दीप्यमान होता है—ऐसा मैने श्रवण किया है ।।३६।। इससे परे कुछ भी निगम और आगमों मे भी नही है । तोभी निगम परात्पर अक्षर से भी पर गोलोक मे नित्य निवास करने वाले भगवान् है—ऐसा कहा जाता है । श्रुतियो के द्वारा सदा उससे भी परे यह कौन है—यह सदा गाया जाता है ।।३७।। वेद के वचनो के द्वारा जो उद्देश्य है वह विशेष कैसे जाना जाता है अथवा 'परतोऽक्षरात्' इस अंश का श्रुति का अर्थ अन्य प्रकार से जानना चाहिये । इस प्रकार से सत्यवती के आत्मज व्यासदेव ने इस श्रुति के अर्थ मे सशय को प्राप्त होकर अधिक समय तक विचार किया था किन्तु तोभी यथार्थ अर्थ को प्राप्त नही होसके थे ।।३८।। ३९ ४०।। श्री सूतजी ने कहा—इस तरह बहुत समय तक विचार करते हुए भी व्यास मुनि वेद के अर्थ का निश्चय नही कर सके थे । वेद तो साक्षात् नारायण भगवान् का स्वरूप है जहाँ पर बडे २ महामनीषी भी मोह को प्राप्त होजाया करते हैं ।।४१।। सत्पुरुषो के हृदय को ताप पहुँचाने वाली बडी भारी आर्त्ति (पीडा) को वे प्राप्त होकर फिर विचार करने लगे थे कि अब इस हृदय के

संशय को निवारण करने के लिये मैं किसके समीप में जाऊँ और क्या उपाय करूँ ।।४२।। इस जगत् में मैं ऐसा सर्वज्ञ और सब कुछ को देखने वाला किसी को भी नहीं देखता हूँ । इस तरह अन्य किसी को भी लोक में इस अपने सदेह को निवृत्त कर देने वाला न देखकर उन्होंने तपस्या करने का ही निर्णय किया था ।।४३।।

मेरो कुहरिणी गत्वा चचार परमं तपः ।
यत्र कार्त्तस्वरस्फूर्जज्योत्स्नासमूहैर्निरन्तरजा ।।४४
सदा प्रधावते दिव्वक्तम स्तोम दृगन्तुदम् ।
चकास्ते यत्र परमं कान्तारमतिसुन्दरम् ।।४५
नानाद्रुमलताकुञ्जकूजत्पक्षिनिनादितम् ।
क्षुत्पिपासाभयक्रोधतापग्लानिविवर्जितम् ।।४६
जलाशयैर्बहुविधैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ।
जातरूपशिलानद्धतटसञ्चारपक्षिभिः ।।४७
युक्तमम्भोज पवनैः सेव्यमानं समन्ततः ।
शिवैरध्यासितम्भावैर्हिस्रैः सत्त्वैः समुज्झितम् ।।४८
निर्जनं दिव्यलतिकाप्रियखण्डविराजितम् ।
शुकैः पारावतैः र्दृर्दुरैरुन्मदन्मत्तकोकिलम् ।।४९
उत्पतत्पधरजसा पाटलामोददिङ्मुखम् ।
तत्रापि काञ्चनी दिव्या गुहा परमशोभना ।।५०

फिर व्यास मुनि ने मेरु पर्वत की गुफा में जाकर परम उग्र तप किया था जहाँ पर सुवर्ण की स्फुरित ज्योत्स्ना के समूह से निरन्तर पूर्ण प्रकाश रहा करता है ।।४४।। और सदा ही नेत्रों को पीडा देने वाला चारों ओर फैला हुआ अन्धकार का समुदाय प्रवाधित होता है । जहाँ पर वन अत्यन्त सुन्दर स्वरूप से प्रकाशित होता रहता है ।।४५।। उस वन में अनेक प्रकार के वृक्ष तथा लताएं सुशोभित हैं और उन पर पक्षियों का कलरव हुआ करता है जोकि बहुत ही श्रुति प्रिय है । वह वन भूख-प्यास-भय-क्रोध-ताप और ग्लानि से रहित हैं ।।४६।। वहाँ बहुत से अनेक प्रकार के सुन्दरतम जलाशय हैं जिनमें कमलिनी

के समूहों की सुषमा छाई हुई है और सुवर्ण की शिलाओं से उनके तटों का निर्माण हो रहा है तथा वहाँ अनेक पक्षियों का सञ्चार बराबर होता रहा करता है ।।४७।। वह वन पक्षियों की मिश्रित वायु से सेव्यमान है तथा कल्याण प्रद भावों में युक्त और हिंसक जीवों से रहित है ।।४८।। वहाँ एकदम निर्जन स्थान है और वह परम दिव्य लताओं के द्वारा अत्यन्त शोभायमान है जहाँ शुक और पारावत अत्यन्त सुन्दर है और मत्त कोकिलों की मधुर ध्वनि श्रवण गोचर हुआ करती है ।।४९।। सभी दिशाओं में पद्मों की पराग उड़कर फैली हुई पाटलवर्ण एवं सुगन्ध दिखाई देती है और घ्राण को परम आमोद प्राप्त होता है। उसमें भी सुवर्ण की एक अत्यन्त दिव्य और अधिक शोभा से युक्त गुफा है ।।५ ।।

ता प्रविश्य जिताहारो जितचित्तो जितासन
सस्मार वेदाश्चतुरस्तदेकाग्रमना मुनि ।।५१
त्रयी जगाम शरदा शतस्य स्मरतोऽस्य हि ।
प्रादुरासस्ततो वेदाश्चत्वारश्चारुदर्शना ।।५२
स्फुरत्पद्मपलाशाक्षा जटामुकुटधारिण ।
कुशमुष्टिकराम्भोजा मृगत्वड मण्डितासका ।।५३
स्वर षोडशभि क्लृप्त वदना प्रणवान्तरा ।
कचवर्गोद्भववर्णौ पश्चाभयवपाणय ।।५४
पवगदक्षजरणा वामपान्तास्तवगत ।
तेषाम तस्थवर्णाभौ येषा कुक्षिद्वयात्मकौ ।।५४
नाभिनिद्रा कान्तपृष्ठा भोदरा यरलवोल्कचा ।
अग्निदक्षाशरुचिरा धराग्रीवा मृतासका ।।५६
अन्तस्थसन्धिसस्थाना वैखरीवाग्विजृम्भिता ।
अपश्य मधुरामेषा हृदयाम्भोजकल्पिताम् ।।५७
हृदेभगवत साक्षादाविर्भावस्थली हि सा ।
काशीमपश्यद् भ्रूमध्य मालामाधारसस्थिताम् ।।५८

उस गिरि गुफा में व्यास मुनि ने प्रवेश किया था और आहार-चित्त तथा आसन को जीत कर वहाँ पर मुनि ने अत्यन्त एकाग्र मन करके चारों वेदों के अर्थ का भली भाँति स्मरण किया था ॥५१॥ इस प्रकार से स्मरण करते हुए मुनि को तीन सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे। इसके अनन्तर वहाँ चारों वेदों का प्रादुर्भाव हुआ था जिसका दर्शन परम सुन्दर था ॥५२॥ वे चारों मूर्तिमान् वेद कमल के समान सुन्दर नेत्रों से युक्त थे तथा मस्तक पर जटा एवं मुकुट धारण करने वाले थे। उनके हस्त कमलों में कुशाग्रों का पुञ्ज था और कन्धे पर मृगछाला पड़ी हुई थी ॥५३॥ षोडश स्वरों से उनके मुख अलङ्कृत थे जिनके मध्य में प्रणव था। कवर्ग और चवर्ग से उत्पन्न होने वाले वर्णों के द्वारा उनके पाँचों अवयव और हाथ थे ॥५४॥ प वर्ग से उनका दाहिना चरण था और तवर्ग से वाम पाद की रचना थी। उनकी दोनों कुक्षियाँ अन्त स्थ (य र ल व) वर्णों से युक्त थी ॥५५॥ नाभि निद्रा वाले-कान्त (सुन्दर) पृष्ठ (पीठ) वाले-मोदर तथा वर लव कच (केश) वाले थे। अग्नि दक्षाश से अत्यन्त रति-धरा की ग्रीवा (गरदन) वाले और कन्धों वाले थे ॥५६॥ अन्तस्थों से सन्धियों के सस्थान से समन्वित थे तथा वैखरी वाणी से विजृम्भित होने वाले थे। इनके हृदय कमल से कल्पित मथुरा को व्यास मुनि ने देखा था ॥५७॥ वह मथुरा भगवान् हरि की साक्षात् आविर्भाव होने की स्थली थी। भृकुटियों के मध्य में आकार से सस्थित माया स्वरूपिणी को तथा काशीपुरी को देखा था ॥५८॥

लिङ्गदेशे तत. का-चीभवन्ती नाभिमण्डले ।
कण्ठस्था द्वारकाभेपा प्रयाग प्राणग तथा ॥५९
सव्यापसव्ययोस्तेषां गङ्गाऽपि यमुना नदी ।
मध्ये सरस्वती साक्षाद् गयाक्षेत्र तथानने ॥६०
हनुग्रीवाभिव्यगत प्रभासक्षेत्रमुत्तमम् ।
बदर्याश्रममेतेषा ब्रह्मरन्ध्रं ददर्श ह ॥६१
पौण्ड्रवर्धननेपालपीठ नयनयोर्युगे ।
पीठ पूर्णगिरिनाम ललाटे समदृश्यत ॥६२

कण्ठे च मथुरापीठ काञ्चीपीठ कटिस्थितम्
जालन्धर तथा पीठ स्तनदेशेष्वदृश्यत ॥६३
भृगुपीठ कण्ठदेशे ह्ययोध्या नासिकापुटे ।
ब्रह्मारन्ध्र स्थित ब्राह्म शव सीमन्तसीमनि ॥६४

लिङ्ग देश मे काञ्चीपुरी को और नाभि मण्डल मे अवन्तीपुरी को देखा था। कण्ठ देश मे संस्थित द्वारका को तथा आत्मों मे गमन करने वाले प्रयाग का दर्शन किया था ॥५६॥ उन वैदो मे बाईं और दाहिनी ओर मे गङ्गा तथा यमुना नदी को देखा था। उनके मध्य मे सरस्वती नदी थी और मुख के देश मे साक्षात् गया क्षेत्र था ॥६ ॥ ठोडी और ग्रीवा (गरदन) के मध्य मे रहने वाला उत्तम प्रभास क्षेत्र था। इसके ब्रह्मरन्ध्र मे बदर्याश्रम था जिसका स्पष्ट तप व्यास मुनि ने वर्णन किया था ॥६१॥ दोनों देसो मे पौण्ड्र वर्धन नेपाल पीठ था और ललाट मे पूर्ण गिरिनाम वाला पीठ देखा था ॥६२॥ कण्ठ मे मथुरा पीठ तथा कटि प्रदेश मे काञ्ची पीठ था। तथा जालन्धर पीठ स्तन देश मे दिखाई दिया था ॥६३॥ कण्ठ देश मे भृगुपीठ और नासिका देश मे अयोध्या पीठ था। ब्रह्मारन्ध्र मे ब्राह्म पीठ था और सीमान्त की सीमा मे शव पीठ था ॥६४॥

शाक्त जिह्वाग्र विपणा वैष्णव हृदयाम्बुजे ।
सौर चक्षु प्रदेशस्थ बौद्धञ्छायासु सङ्गतम् ॥६५
सौत्रामणि कण्ठदेशे पशुबन्धमथोरसि ।
वाजपेय कटितटे ह्यग्निहोत्र तथानने ॥६६
अश्वमेध कटितटे नरमेधमथोदरे ।
राजसूय शिरोदेशे आवसथ्य तथाऽधरे ॥६७॥
ऊर्ध्वोष्ठ दक्षिणाग्निश्च गार्हपत्य मुखान्तरे ।
हव्य श्रुतौ मन्त्रभेदास्तथा रोमस्ववस्थितान् ।
भृत्यरिव महाराज पुराणन्यायमिश्रित ॥६८
संहिताभिश्च तन्त्रैश्च पृथक्पृथगुपासितान् ।
श्रम ज्ञानापासनाभिजनानुग्रहकारकान् ॥६९

दृष्ट्वा सुविस्मितमना मुनि कृष्णो वभूव तान् ।
ब्रह्मतेजोमयान्दिव्यास्तपतोऽर्कानिव च्युतान् ।
ज्वलतोऽग्नीनिवोदर्कान्कोटीन्दुसमदर्शनान् ।।७०

शाक्त पीठ जिह्वा के अग्र भाग में स्थित था तथा हृदय कमल मे वैष्णव पीठ था। सौर पीठ वक्षु प्रदेश मे स्थित था तथा वौद्ध छायाओ मे सङ्कृत था ।।६५।। कण्ठ प्रदेश मे सौत्रामणि उर मे पशुबन्ध–कटितट मे वाज पेय तथा आनन मे अग्नि होत्र था ।।६३।। कटितट मे अश्व मेध–उदर में नरमेध शिरोदेश मे राजसूय तथा अधर मे आवसथ्य था ।।६७।। ऊपर के ओष्ठ मे दक्षिणाग्नि–मुख के अन्दर में गार्हपत्य अग्नि–श्रुति मे (कान मे) हव्य तथा रोमो मे अवस्थित मन्त्र वेदो को देखा था। न्याय मिश्रित पुराणो मे इस भाँति सेवित थे जैसे भृत्यो के द्वारा कोई महाराज हो ।।६८।। सहिताओ के और तन्त्रो के द्वारा पृथक् २ समुपासित एव कर्म, ज्ञान और उपासनाओ के द्वारा जनो पर अनुग्रह करने वाले उन वेदो को देख कर कृष्ण द्वैपायन मुनि अत्यन्त विस्मित मन वाले हो गये थे। वे ब्रह्म तेज से परिपूर्ण–परम दिव्य–सूर्य के समान तपे हुए – जलती हुई अग्नि के तुल्य उदर्क एव करोडो चन्द्रो के समान दिखलाई देने वाले थे ।।७६-७०।।

ववन्दे सहसोत्थाय दण्डवत्पतितो मुनि ।
कृतार्थोऽह कृतार्थोऽह कृतार्थोऽहमितीरयन् ।।७१

अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफल मन ।
अद्य मे सफलश्चायुर्यद्भवन्तोऽक्षिगोचरा ।।७२
अलौकिक लौकिकञ्च यत् किञ्चिदपि विद्यते ।
न तद्वोऽविदित वेद्य भूत भव्य भवच्च यत् ।।७३।
न प्रवृत्तिफला यूप दर्शयन्तोऽपि तान्सदा ।
यदृच्छाकरसङ्कोचविधानायेह रागिणाम् ।।७४
प्रपञ्चस्यापि मिथ्यात्वे ब्रह्मत्वे वा विधीतरौ ।
न मृषारागविषयौ तत्सङ्कोचविधिक्षयौ ।।७५

अतो लोकहितान् न परमार्थ निरूपणे ।
स्योक्ता स्वर्गादिविषया नश्वरा इति निन्दिता ॥७६
अधिकारिविभेदेन कर्मज्ञानोपदेशतः ।
त्रात सर्व जगन्न न शब्दब्रह्मात्मसमूर्तिभि ॥७७

इस प्रकार के स्वरूप वाले उनका दर्शन प्राप्त कर व्यास मुनि सहसा उठ कर खड़े हो गये और दण्ड की भांति पड़ कर उनकी वन्दना की थी तथा व्यास मुनि अपने मुख से दण्डवत् प्रणाम करते हुए यह कहते जा रहे थे—मैं कृतार्थ होगया—मैं सफल होगया और पूर्ण मनोरथ वाला हो गया हूँ ॥७१॥ आज मेरी सम्पूर्ण आयु सफल हो गई कि आप मेरी आँखों के समक्ष में प्रत्यक्ष रूप से गोचर होगये हैं ॥७२॥ आपके लिए कुछ भी अविदित नहीं है। भूत-भव्य और वर्त्तमान सभी आपको वेद्य है ॥७३॥ उन सब को सर्वदा देखते हुए भी आप लोग प्रवृत्ति फल वाले नहीं हैं। क्यों कि इस संसार में रागी पुरुष यदृच्छा कर सङ्कोच से विधान करने वाले होते है ॥७४॥ इस प्रपञ्च के मिथ्यात्व होने पर भी तथा ब्रह्मत्व मे विधि निषेध उसके सङ्कोच विधि और क्षय मृषाराग के विषय नहीं हैं ॥७५॥ अतएव लोकहितों के द्वारा परमार्थ के निरूपण मे आपने से कहे हुए स्वर्गादि के विषय नाशवान् हैं इस लिए निन्दित होते हैं ॥७६॥ शब्द ब्रह्म की मूर्त्ति वाले आपने अधिकारी के भेद से कर्म और ज्ञान के उपदेश के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् की निश्चय ही रक्षा की है ॥७७॥

अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि भवन्तश्च कृपालवः ।
कर्मणा फलमादिष्टं सर्गं कामकचेतसाम् ॥७८
ईशार्पितधिया पुंसा कृतस्यापि च कर्मण ।
चित्तशुद्धिस्ततो ज्ञानं मोक्षश्च तदनन्तरम् ॥७९
मोक्षो ब्रह्म स्वयमित्येव सच्चिदानन्दमेव यत् ।
सर्वं समाप्यते तस्मिञ्ज्ञाते यद्धि कृताकृतम् ॥८०
यन्नि सङ्ग चिदाकाशं ज्ञानरूपमसंवृतम् ।
निरीहमचलं शुद्धमगुणं व्यापकं स्मृतम् ॥८१

विकारेषु विनश्यत्सु निर्विकारं न नश्यति ।
यथान्धतमसा व्याप्तलोकस्य रविरोजसा ॥८२
लोहस्येव मणिस्तद्वदरणिश्चानले यथा ।
यदाभासेन सा सत्ता प्रतिपद्य विजृम्भते ॥८३
जीवेश्वरादिरूपेण विश्वाकारेण चाप्यहो ।
तस्यामपि प्रलीनायां कूटस्थश्च यदेकलम् ॥८४
भवद्भिरेव निर्णीतं तत्तथैव न संशयं ।
तथापि मम जिज्ञासा वर्त्तते केवलं हृदि ॥८५
अतोऽपि परमं किञ्चिद्वर्त्तते किल वा न वा ।
तद्वदन्तु महाभागा भवन्तस्तत्त्ववर्शना ॥८६

यदि आप मेरे ऊपर कृपालु है तो मैं आपसे अब यह ही पूछना चाहता हूँ कि कर्मा का फल आदिष्ट किया है और कामना से पूर्ण चित्त वालों का सर्ग बताया है। ईश्वर में समर्पित बुद्धि वाले मानवों के किये हुए कर्म से भी चित्त की शुद्धि होती है फिर इसके अनन्तर ज्ञान होता है और इसके पश्चात् मोक्ष होता है ॥७८-७९॥ मोक्ष ब्रह्म के साथ ऐक्य को ही कहा जाता है जोकि सत्-चित् और आनन्द स्वरूप है। जो भी कुछ कृत तथा अकृत है वह उसके ज्ञात करने पर सभी कुछ समाप्त हो जाता है ॥८०॥ जो सङ्ग रहित-चिदाकाश-ज्ञानस्वरूप वाला-असवृत-निरीह-अचल-शुद्ध-बिना गुण वाला और व्यापक कहा गया है ॥८१॥ समस्त विकारों के विनष्ट होजाने पर भी वह विकार रहित है अतएव नष्ट नहीं होता है। वह तो इस प्रकार है जैसे अन्धकार से व्याप्त लोक के लिये ओज से रवि होता है ॥८२॥ लोहे को मणि की भाँति और अनल में अरणि के समान वह होता है। जिसके आभास से वह सत्ता को प्राप्त होकर विजृम्भित है ॥८२॥ यह जीव और ईश्वर के स्वरूप में विश्व का आकार होता है। इसके भी प्रलीन होजाने पर एक कूटस्थ रहता है ॥८४॥ यह सभी कुछ आपने निर्णय किया है और वह उसी प्रकार का ही है, आपके इस कथन में कुछ भी संशय नहीं है। तो भी मेरे हृदय में केवल एक जिज्ञासा होती है ॥८५॥ वह जिज्ञासा यही है कि इससे भी

भागे कुछ है या नहीं है। हे महान् भाग वालो! आप यही कृपा कर मुझे बताइये क्योंकि आप तो तत्वों के पूर्ण ज्ञाता है ॥८६॥

यच्छ्रुत्व फलमेवेह जनुषो मे कृतार्थता ।
एव ब्रुवन्तमनघ व्यास सत्यवतीसुतम् ।
साधु साध्विति सङ्कीर्त्य प्रत्यूचु निगमा वच ॥८७
साधु साधु महाप्राज्ञा विष्णुरात्मा शरीरिणाम् ।
अजोऽपि जन्म सम्पद्य लोकानुग्रहमीहसे ॥८८
अन्यथा ते न घटते ससारकर्मबन्धनम् ।
अस्पृष्टो मायया देव्या कदाचिज्ज्ञानगूहया ॥८९
बिभर्षि स्वेच्छया रूप स्वेच्छयैव निगूहसे ।
अस्मत्सम्मत एवार्थो भवता सम्प्रदर्शित ९०
पुराणेष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि च नकधा ।
अक्षर ब्रह्म परम सर्वकारणकारणम् ॥९१
तस्यात्मनोऽध्यात्म भावतया पुष्पस्य गन्धवत् ।
रसवद्वा स्थित रूपमवेहि परम हि तत् ॥९२
अनुभूत तदस्माभिर्जाते प्राकृतिके लये ।
अक्षरात्परतस्तस्माद्यत्पर केवलो रस ।
न च तत्र वय शक्ता वाच्यातीते तदात्मना ॥९३

यहाँ इसका श्रवण करना ही मेरे जीवन का फल है और इसके करने से मेरे जन्म की सफलता होगी। इस प्रकार से बोलने वाले अघरहित सत्यवती के पुत्र व्यास महर्षि से साधु–साधु (अच्छा–अच्छा)—यह कहकर निगमों (वेदों) ने वचन कहे थे ॥८७॥ वेदों ने कहा—बहुत अच्छा है आप महान् प्राज्ञ हैं और शरीर धारियों के विष्णु आत्मा हैं। आप अजन्मा होकर भी जन्म धारण कर लोकों के अनुग्रह की इच्छा करते हैं ॥८८॥ अन्यथा आपको इस ससार का कर्म बन्धन घटित नहीं होता है ज्ञान से गूढ माया देवी से अस्पृष्ट आप अपनी ही इच्छा से स्वरूप को धारण करते हैं और स्वेच्छा से ही उसे निगूहित किया करते हैं। हमारे सम्मत जो अर्थ है वही आपने भी प्रदर्शित

किया है ॥८९-९०॥ पुराणों में—इतिहासों में और सूत्रों में भी इस ही प्रकार से नहीं बताया गया है। अक्षर परम ब्रह्म है और सब कारणों का भी कारण है ॥९१॥ आत्मा स्वरूप उससे भी अलग भावना से पुष्प की गन्ध की भाँति अथवा रस के समान वह परम रूप स्थित रहता है—ऐसा उसे जान लो ॥९२॥ प्राकृतिक लय के होजाने पर हमने अनुभव किया है। इस प्रकार से परे केवल ब्रह्म ही होता है। वाङ्मनस इस पारातीत उसमें पहुँचने का समर्थ नहीं है ॥९३॥

प्रकरण ६७—गया माहात्म्य

अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१
सनकाद्यैर्महाभागैर्देवर्षिः स च नारदः ।
सनत्कुमारं पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्वकम् ॥२
सनत्कुमार मे ब्रूहि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमम् ।
तारकं सर्वभूतानां पठतां शृण्वतां तथा ॥३
वक्ष्ये तीर्थवरं पुण्यं श्राद्धादौ सर्वतारकम् ।
गयातीर्थं सर्वदेशे तीर्थेभ्योऽप्यधिकं शृणु ॥४
गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मणा क्रतवेऽर्थितः ।
प्राप्तस्य तस्य शिरसि शिला धर्मो ह्यधारयत् ॥५
तत्र ब्रह्माऽकरोद्यागं स्थितश्चापि गदाधरः ।
फल्गुतीर्थादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशम् ।
गयासुरस्य विप्रेन्द्र ब्रह्माद्यैर्दैवतैः सह ॥६
कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम् ।
श्वेतकल्पे तु वाराहे गयायागमकारयत् ॥७
गयानाम्ना गया ख्याता क्षेत्रं ब्रह्माभिकाङ्क्षितम् ।
काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रान्नरकाद्भयभीरवः ॥८

मागे कुछ है या नहीं है। हे महान् भाग वालो ! आप यही कृपा कर मुझे बताइये क्योंकि आप तो तत्त्वों के पूर्ण ज्ञाता हैं ॥८६॥

यच्छ्रुत्व फलमेवेह जनुषो मे कृतार्थता ।
एव ब्रुवन्तमनघ व्यास सत्यवतीसुतम् ।
साधु साध्विति सङ्कीत्य प्रत्यूचु निगमा वच ॥८७
साधु साधु महाप्राज्ञा विष्णुरात्मा शरीरिणाम् ।
अजोऽपि जन्म सम्पद्य लोकानुग्रहमीहसे ॥८८
अन्यथा ते न घटते ससारकर्मबन्धनम् ।
अस्पृष्टो मायया देव्या कदाजिज्ज्ञानगूहया ॥८९
बिभर्षि स्वेच्छया रूप स्वेच्छयैव निगूहसे ।
अस्मत्सम्मत एवार्थो भवता सम्प्रदर्शित ९०
पुराणेष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि च नकधा ।
अक्षर ब्रह्म परम सर्वकारणकारणम् ॥९१
तस्यात्मनोऽप्यात्म भावतया पुष्पस्य गन्धवत् ।
रसवद्वा स्थित रूपमवेहि परम हि तत् ॥९२
अनुभूत तदस्माभिजति प्राकृतिके लये ।
अक्षरात्परतस्तस्मात्स्पर केवलो रस ।
न च तत्र वय शक्ता शब्दातीते तदात्मका। ॥९३

यहाँ इसका श्रवण करना ही मेरे जीवन का फल है और इसके करने से मेरे जन्म की सफलता होगी। इस प्रकार से बोलने वाले अघरहित सत्यवती के पुत्र व्यास महर्षि से साधु-साधु (अच्छा-अच्छा)—यह कहकर निगमों (वेदों) ने वचन कहे थे ॥८७॥ वेदों ने कहा—बहुत अच्छा है आप महान् प्राज्ञ हैं और शरीर धारियों के विष्णु आत्मा हैं। आप अजन्मा होकर भी जन्म धारण कर लोकों के अनुग्रह की इच्छा करते हैं ॥८८॥ अन्यथा आपको इस ससार का कर्म बन्धन घटित नहीं होना है ज्ञान से गूह माया देवी से अस्पृष्ट आप अपनी ही इच्छा से स्वरूप को धारण करते हैं और स्वेच्छा से ही उसे निगूहित किया करते हैं। हमारे सम्मत जो अर्थ है वही आपने भी प्रदर्शित

किया है ॥८६-६०॥ पुराणो मे—इतिहासो मे और सूत्रो मे भी एक ही प्रकार से नही बताया गया है। अक्षर परम ब्रह्म है और सब कारणो का भी कारण है ॥६१॥ आत्मा स्वरूप उसके भी आत्म भावना से पुष्प की गन्ध की भाँति अथवा रस के समान वह परम रूप स्थित रहता है—ऐसा उस जान लो ॥६२॥ प्राकृतिक लय के होजाने पर हमने अनुभव किया है। उस अक्षर से परे केवल रस ही होता है। शब्दात्मक हम शब्दातीत उसमे पहुँचने को समर्थ नही है ॥६३॥

प्रकरण ६७—गया माहात्म्य

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्रसंशय ॥१
सनकाद्यैर्महाभागैर्देवर्षि. स च नारद ।
सनत्कुमार पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्व्वकम् ॥२
सनत्कुमार मे ब्रूहि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमम् ।
तारक सर्वभूताना पठता शृण्वता तथा ॥३
वक्ष्ये तीर्थवर पुण्य श्राद्धादौ सर्वतारकम् ।
गयातीर्थं सर्वदेशे तीर्थेभ्योऽप्यधिक शृणु ॥४
गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मणा क्रतवेऽर्थित ।
प्राप्तस्य तस्य शिरसि शिला धर्मो ह्यधारयत् ॥५
तत्र ब्रह्माऽकरोद्याग स्थितश्चापि गदाधर ।
फल्गुतीर्थादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशम् ।
गयासुरस्य विप्रेन्द्रब्रह्माद्यै देवतै सह ॥६
कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम् ।
श्वेतकल्पे तु वाराहे गयायागमकारयत् ॥७
गयानाम्ना गया ख्याता क्षेत्र ब्रह्माभिकाङ्क्षितम् ।
काङ्क्षन्ति पितर पुत्रान्नरकाद्भय भीरव ॥८

प्रागे कुछ है या नहीं है। हे महान् भाग वालो ! आप यही कृपा कर मुझे बताइये क्योंकि आप तो तत्त्वों के पूर्ण ज्ञाता हैं ॥८६॥

यच्छ्रव फलमेवेह जनुषो मे वृतार्थता ।
एव ब्रुवन्तमनघ व्यास सत्यवतीसुतम् ।
साधु साध्विति सङ्कीर्त्य प्रत्यूचु निगमा वच ॥८७
साधु साधु महाप्राज्ञा विष्णुरात्मा शरीरिणाम् ।
अजोऽपि जन्म सम्पद्य लोकानुग्रहमीहसे ॥८८
अन्यथा ते न घटते ससारकर्म्मबन्धनम् ।
अस्पृष्टो मायया देव्या कदाजिज्ज्ञानगूहया ॥८९
बिभर्षि स्वेच्छया रूप स्वेच्छयैव निगूहसे ।
अस्मत्सम्मत एवार्थो भवता सम्प्रदर्शित ९०
पुराणेष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि च नकथा ।
अक्षर ब्रह्म परम सवकारणकारणम् ॥९१
तस्यात्मनोऽप्यात्म भावतया पुष्पस्य गन्धवत् ।
रसवद्वा स्थित रूपमवेहि परम हि तत् ॥९२
अनुभूत तदस्माभिर्जति प्राकृतिके लये ।
अक्षरात्परतस्तस्माद्यत्पर केवलो रस ।
न च तत्र वय शक्ता शब्दातीते तदात्मकाः ॥९३

मेरी इसका श्रवण करना ही मेरे जीवन का फल है और इसके करने से मेरे जन्म की सफलता होगी। इस प्रकार से बोलने वाले अघरहित सत्यवती के पुत्र व्यास महर्षि से साधु-साधु (अच्छा-अच्छा)—यह कहकर निगमों (वेदों) ने वचन कहे थे ॥८७॥ वेदों ने कहा—बहुत अच्छा है आप महान् प्राज्ञ हैं और शरीर धारियों के विष्णु आत्मा हैं। आप अजन्मा होकर भी जन्म धारण कर लोकों के अनुग्रह की इच्छा करते हैं ॥८८॥ अन्यथा आपको इस ससार का कर्म बन्धन घटित नहीं होता है ज्ञान से गूह माया देवी से अस्पृष्ट आप अपनी ही इच्छा से स्वरूप को धारण करते हैं और स्वेच्छा से ही उसे निगूहित किया करते हैं। हमारे सम्मत जो अर्थ है वही आपने भी प्रदर्शित

किया है ॥८६-६०॥ पुराणो मे—इतिहासों मे और सूत्रो मे भी एक ही प्रकार से नही बताया गया है। अक्षर परम ब्रह्म है और सब कारणो का भी कारण है ॥६१॥ आत्मा स्वरूप उसके भी आत्म भावना से पुष्प की गन्ध की भाँति अथवा रस के समान वह परम रूप स्थित रहता है—ऐसा उसे जान लो ॥६२॥ प्राकृतिक लय के होजाने पर हमने अनुभव किया है। उस अक्षर से परे केवल रस ही होता है। शब्दात्मक हम शब्दातीत उसमे पहुँचने को समर्थ नही हैं ॥६३॥

प्रकरण ६७—गया माहात्म्य

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्रसंशय ॥१
सनकाद्यैर्महाभागैर्देवर्षि स च नारद ।
सनत्कुमार पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्वकम् ॥२
सनत्कुमार मे ब्रूहि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमम् ।
तारक सर्वभूताना पठता शृण्वता तथा ॥३
वक्ष्ये तीर्थवर पुण्य श्राद्धादौ सर्वसारकम् ।
गयातीर्थं सर्वदेशे तीर्थेभ्योऽप्यधिक शृणु ॥४
गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मणा क्रतवेऽर्थित ।
प्राप्तस्य तस्य शिरसि शिला धर्मो ह्यधारयत् ॥५
तत्र ब्रह्माऽकरोद्याग स्थितश्चापि गदाधर ।
फल्गुतीर्थादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशम् ।
गयासुरस्य विप्रेन्द्रब्रह्माद्यैर्दैवतै सह ॥६
कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम् ।
श्वेतकल्पे तु वाराहे गयायागमकारयत् ॥७
गयानाम्ना गया ख्याता क्षेत्र ब्रह्माभिकाङ्क्षितम् ।
काङ्क्षन्ति पितर पुत्रान्नरकाद्भय भीरव ॥८

वायुदेव ने कहा—इसके आगे मैं अब अत्युत्तम गया का माहात्म्य बताता हूँ। जिसका श्रवण कर मानव समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।१।। सूतजी ने कहा—सनकादि महान् भाग वालों से युक्त देवर्षि नारद ने सनत्कुमार से विधि के साथ प्रणाम करके पूछा था ।।२।। नारदजी ने कहा—हे सनत्कुमार ! मुझे आप समस्त तीर्थों में सर्वोत्तम जो तीर्थ हो उसे बताओ। जो समस्त प्राणियों का पान या श्रवण करने पर उद्धार करने वाला हो ।।३।। सनत्कुमार ने कहा—मैं समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ परम पुण्यमय और श्राद्ध आदि में सबको तार देने वाला गया तीर्थ को बताता हूँ। यह गया तीर्थ है और सब देश में सम्पूर्ण तीर्थों से भी अधिक है। इसका तुम लोग श्रवण करो ।।४।। ब्रह्मा के द्वारा प्रार्थित गयासुर ने क्रतु के लिये तपश्चर्या की थी। प्राप्त होने वाले उसके शिर पर धर्म ने शिला को धारण किया था ।।५।। वहाँ पर ब्रह्मा ने याग किया था और गदाधर भी वहाँ पर स्थित थे। फल्गु तीर्थ आदि के स्वरूप से वह अहर्निश निर्विघ्न अव वाला था। विप्रेन्द्र ब्रह्मादि देवों के साथ यज्ञ करने वाले ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को गृह आदि प्रदान किये थे। वाराह श्वेत कल्प में गया याग कराया गया था ।।६ ७।। ब्रह्मा के द्वारा अभिकांक्षित यह क्षेत्र गया के नाम से बना—यह ख्यात हुआ था। पितृगण पुत्र नरक के भय से भीरु होते हुए इसकी इच्छा किया करते हैं ।।८।।

गया यास्यति य पुत्र स नस्त्राता भविष्यति ।
गयाप्राप्त सुतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत् ।
पद्भ्यामपि जल स्पृष्ट्वा सोऽस्मभ्य कि न दास्यति । ९
गयां गत्वान्नदाता य पितरस्तेन पुत्रिण ।
पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तम कुलम् ।
नो चेत्पञ्चदशाह वा सप्तरात्रि त्रिरात्रिकम् ।।१०
महाकल्पकृत पाप गयां प्राप्य विनश्यति ।
पिण्ड दद्याच्च पित्रादेरात्मनोऽपि तिलैर्विना ।।११
ब्रह्महत्या सुरापान स्तेय गुर्वङ्गनागम ।
पाप तत्सङ्गज सर्व गयाश्राद्धाद्विनश्यति ।।१२

आत्मजोऽप्यन्यजो वापि गयाभूमौ यदा तदा ।
यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तं नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥१३

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥१४

जो पुत्र गया को जायेगा वह ही हमारा त्राता अर्थात् उद्धार करने वाला होगा । गया में प्राप्त होने वाले अपने पुत्र को देखकर पितरों को बहुत ही उत्सव होता है अर्थात् बड़ा आह्लाद हुआ करता है । अपने पैरों से भी जल का स्पर्श करके वह हमको क्या नहीं देगा ॥९॥ जो गया में जाकर अन्न को दान करने वाला है पितृगण उसी से पुत्र वाले हुआ करते हैं । जो तीन पक्ष तक वहाँ निवास करने वाला होता है वह अपने सात कुलों को पवित्र कर दिया करता है । अन्यथा पन्द्रह दिन तक सात रात्रि पर्यन्त अथवा तीन रात्रि तक ही वहाँ निवास करने से गया में प्राप्त होकर रहने वाले का महापातक कृत पाप भी विनष्ट हो जाया करता है । पिण्डों के बिना भी अपने पितृगण को वहाँ जो दिया करता है वह ब्रह्म हत्या–सुरापान–स्तेय (चोरी)–गुरु पत्नी का गमन और संसर्ग से समुत्पन्न सम्पूर्ण पाप गया के श्राद्ध से नष्ट हो जाते हैं ॥१०-११-१२॥ आत्मज हो या अन्यज भी हो जिस–किसी भी समय में गया की भूमि में जिसके नाम से पिण्ड का पातन करता है वह उसको शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करा देता है ॥१३॥ ब्रह्म का ज्ञान–गया का श्राद्ध–गौ के गृह में मृत्यु और कुरुक्षेत्र में निवास ये चार प्रकार की पुरुषों की मुक्ति बताई गई है ॥१४॥

ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम् ।
वासेन किं कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गयां व्रजेत् ॥१५

गयायां सर्व्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः ।
अधिमासे जन्मदिने चास्तेऽपि गुरुशुक्रयो ॥१६

न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ ।
तथा दैवप्रमादेन प्रहतेषु ग्रहेषु च ।
पुनः कर्म्माधिकारी च श्राद्धकृद् ब्रह्मलोकभाक् ॥१७

के ऋण से मुक्त हो जाया करता है ।।२७।। जो शिर मे श्राद्ध करता है वह अपने सौ कुलो का उद्धार किया करता है । जब वह घर से गया को चलना आरम्भ करता है उसी समय से पितरो के स्वर्गारोहण का कार्य प्रारम्भ करता है और उसके एक २ कदम चलने मे स्वग का सोपान बन जाता है ।।२८।।

पदे पदेऽश्वमेघस्य यत्फल गच्छतो गयाम् ।
तत्फलश्च भवेन्नून समग्र नात्र सशय ।।२६
पायसे नापि चरुणा सक्तुना पिष्टकेन वा ।
तण्डुल फलमूलाद्य र्गयाया पिंडपातनम् ।।३०
तिलकल्केन खडेन गुडेन सघृतेन वा ।
केवलेनव दघ्ना वा ऊर्जेन मधुनाऽथ वा ।।३१
पिण्याकं सघृत खड पितृभ्योऽक्षयमित्युत ।
इज्यते वातव भाज्य हविष्या न मुनीरितम् ।।३२
एकत स्ववस्तूनि रसवन्ति मधूनि हि ।
स्मृत्वा गदाधराङ घ्र य•ज फल्गुतीर्थाम्बु चैकत ।।३३
पिडासन पिंडदान पुन प्रत्यवनेजनम् ।
दक्षिणा चान्न सङ्कल्पस्तीथश्राद्ध ष्वय विधि ।।३४
नावाहन न दिग्बन्धो न दोषो दृष्टिसम्भव ।
सकारुण्येन कत्त व्य तीथ श्राद्ध विचक्षण ।।३५

गया को गमन करने वाले के एक-एक पद म अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है । उसको सम्पूर्ण फल अवश्य ही मिलता है—इसमे कुछ भी सशय नही है ।।२६।। पायस से—चरु—सत्तू—तण्डुल और फल—मूलादि के द्वारा गया मे पिण्ड का पातन करना चाहिए ।।३ ।। तिलो का कल्क—खाँड—गुड और घृत अथवा केवल दही या ऊर्ज्ज मधु के द्वारा पिण्ड पातन करे । पिण्याक तथा सघृत खाँड पितरो को वहा अक्षय होता है । अथवा ऋतु का मुनीरित हविष्यान्न भोज्य मे यजन किया जाता है ।।३१ ३२।। एक और रसवाली समस्त वस्तुयें तथा मधु बने और गदाधर के चरण कमल का स्मरण करके एक और फल्गु तीथ का जल रखे ।।३३।। पिण्डासन पिण्डदान और फिर

प्रत्यवने जन–दक्षिणा और अन्न का सङ्कल्प करे—यह ही तीर्थो के श्राद्धो मे विधि होती है ॥३४॥ वहाँ पर न तो कोई आवाहन ही होता है और न दिग्बन्ध किया जाता है। दृष्टि से उत्पन्न होने वाला भी दोष वहा नही होता है। विचक्षण पुरुषो को कारुण्य के सहित तीर्थ श्राद्ध करना चाहिए ॥३५॥

अन्यत्रावाहिता काले पितरो यान्त्यमु प्रति ।
तीर्थे सदा वसन्त्येते तस्मादावाहन न हि ॥३६
तीर्थश्राद्ध प्रयच्छद्‌भि पुरुषै फलकाङ्क्षिभि ।
काम क्रोध तथा लोभ त्यक्त्वा कार्य्या क्रियाऽनिशम् ॥३७
ब्रह्मचार्य्येकभोजी च भूशायी सत्यवाक्छुचि ।
सर्व्वभूतहिते रक्त स तीर्थफलमश्नुते ॥३८
तीर्थान्यनुसरन्धीर पाषण्ड पूर्व्वतस्त्यजेद् ।
पाष ड स च विज्ञेयो यो भवेत्कामकारत ॥३९
तीर्थेषु ये नरा धीरा कर्म कुर्व्वन्ति तद्‌गता ।
यदा ब्रह्मविदो वेद्य वस्तु चानन्यचेतस ।
प्रविशन्ति परेशाख्य ब्रह्म ब्रह्मपरायणा ॥४०
यास्ते वैतरणी नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता ।
साऽवतीर्ण गयाक्षेत्रे पितृणा तारणाय वै ।
स्नातो गोदो वैतरण्या त्रि सप्तकुलमुद्धरेत् ॥४१
तथाऽक्षयवट गत्वा विप्रान्सन्तोषयिष्यति ।
ब्रह्मकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनाऽर्च्चयेत् ।
तैस्तुष्टैस्तोषिता सर्व्वा पितृभि सह देवता ॥४२
गयाया न हि तत्स्थान यत्र तीर्थ न विद्यते ।
सान्निद्धय सर्व्वतीर्थाना गयातीर्थं ततो वरम् ॥४३
मीने मेषे स्थिते सूर्य्ये कन्याया कार्मुके घटे ।
दुर्ल्लभ त्रिषु लोकेषु गयाया पिडपातनम् ॥४४
मकरे वर्त्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययो ।
दुर्ल्लभ त्रिषु लोकेषु गयाश्राद्ध सुदुर्ल्लभम् ॥४५

गयाया पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः ।
न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ।।४६

अन्य स्थानों में आवाहन किए हुए ही पितृगण श्राद्ध करने वाले के समीप आया करते हैं किंतु तीर्थ में तो ये सर्वदा ही निवास किया करते हैं अतएव वहां इनका आवाहन नहीं किया जाता है ।।३६।। तीर्थों में श्राद्ध देने वाले पुरुष जो फल की आकांक्षा रखते हैं उनको काम-क्रोध और लोभ का त्याग करके ही निरन्तर श्राद्ध की क्रिया करनी चाहिए ।।३७।। ब्रह्मचारी-एक बार भोजन करने वाला-भूमि पर शयन करने वाला-सत्यवक्ता-पवित्र तथा समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाला पुरुष तीर्थ के फल को प्राप्त किया करता है ।।३८।। तीर्थों का अनुसरण करने वाले धीर पुरुष को चलन के पहले ही से पाषण्ड का त्याग करना चाहिए । जो कामना की भावना से किया जाता है वही पाषण्ड समझना चाहिए ।।३६।। जो पुरुष परम धीर होकर वहां तीर्थों में पहुंच कर अपना तीर्थोचित कर्म किया करते हैं जिस तरह ब्रह्म के ज्ञाता लोग अनन्य चित्त होते हुए जानने के योग्य वस्तु में ब्रह्म में जो कि परिज्ञास्य है ब्रह्म परायण होकर प्रवेश किया करते हैं उसी भांति तीर्थों के सेवों को भी करना चाहिए ।।४ ।। जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध वतरणी नदी है वह गया के क्षेत्र में पितरों के तारने के लिए अवतीर्ण हो जाती है । बोध अर्थात् गौ का दान करने वाला वतरणी में स्नान करके अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर देता है ।।४१।। उसी भांति अक्षय पर जाकर विप्रों को सन्तोष देना चाहिए । ब्रह्म कल्पित विप्रों को द्रव्य कन्यादि से अर्चन करें । तुष्ट हुए उनके द्वारा समस्त देवगण पितरों के साथ तोषित हो जाया करते हैं ।।४२।। गया में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहां कोई तीर्थ न विराजमान हो । वहां गया में तो सभी तीर्थों का सान्निध्य होता है अतएव वह परम श्रेष्ठ तीर्थ है ।।४३।। मीन-मेष-कन्या-धन और कुम्भ पर सूर्य के स्थित होने पर गया में जाकर पिण्ड का पातन करना तीनों लोकों में दुर्लभ कार्य होता है ।।४४।। मकर के वर्तमान होने पर तथा चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण के समय में गया में श्राद्ध करना तीनों लोकों में परम दुर्लभ कार्य है ।।४५।। गया में पिंड दान करने से जिस फल की

प्राप्ति मानव किया करता है उसको मैं कल्प कोटि शत के समय मे भी वर्णन नही कर सकता हूँ ॥४६॥

यज्ञश्चक्रे गयो राजा बह्वन्ने बहुदक्षिणम् ।
यत्र द्रव्य समूहाना सख्या कर्तुं न शक्यते ॥४७
प्रशसन्ति द्विजास्तस्मा देशे देशे सुपूजिता ।
गय विष्णवादयस्तुष्टा वर ब्रूहीति चाब्रुवन् ॥४८
गयस्तान्प्रार्थयामास ह्यभिशप्ताश्च ये पुरा ।
ब्रह्मणा ते द्विजा पूता भवन्तु क्रतुपूजिता ॥४६
गयापुरीति मन्नाम्ना ख्याता ब्रह्मपुरी यथा ।
एवमस्तु वर दत्त्वा चान्तर्दधु सुरा ॥५०

सनत्कुमार जी बोले—नारदजी ! किसी समय राजा गय ने बहुत अन्न और बडी-बडी दक्षिणाओं वाले इतने यज्ञ किये कि उनमे व्यय होने वाले द्रव्य की सख्या की गणना कर सकना सम्भव नही ।४७॥ देश-देश के ब्राह्मण भली प्रकार पूजे जाकर और पूर्ण तृप्त होकर वहाँ से गये और सवत्र राजा गय की प्रशसा करते रहे। राजा के इस महान् पुण्य काम से सन्तुष्ट होकर विष्णु आदि देवगणो ने राजा से वर मांगने को कहा ॥४८॥ राजा ने उनसे प्रार्थना की कि यदि आप वर देना चाहते हैं तो गया के जिन ब्राह्मणो को प्राचीन काल मे ब्रह्माजी ने शाप दिया था उन्हे उसे मुक्त कर दीजिये और वे यज्ञो मे पूजित होकर पवित्र हो जायें ॥४६॥ यह गया पुरी मेरे नाम पर ब्रह्मपुरी की तरह पवित्र और विख्यात हो जाय। देवगण 'ऐसा ही' कहकर उनकी प्रार्थनाओ को स्वीकार करके अन्तर्धान होगये ॥५०॥

यत्र तत्र स्थितो देवा ऋषयोऽपि जितेन्द्रियाः ।
आद्य गदाधर ध्यायञ्छ्राद्धपिण्डादिदानत ॥५१
कुलाना शतमुद्धृत्य ब्रह्मलोक नयेत् पितृन् ।
गया गयो गया दित्यो गायत्री च गदाधर ॥५२
गया गयासुरश्चैव षडेते मुक्तिदायका ।
गयाख्यानमिद पुण्य य पठेत्सतत नर. ॥५३

शृणुयाच्छ्रद्धया यस्तु स याति परमां गतिम् ।
पाठयेद्वा गयाख्यानं विप्रेभ्यः पुण्यकृन्नरः ॥५४
गयाश्राद्धं कृतं तेन कृतं तेन सुनिश्चितम् ।
गयाया महिमानञ्च ह्यभ्यसेच्च समाहितः ॥५५
तेनेष्टं राजसूयेन ह्यश्वमेधेन नारद ।
लिखेद्वा लेखयेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकम् ।
तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मी सुप्रसन्ना भविष्यति ॥५६

इस पुरी मे स्थान-स्थान पर देवताओं के अतिरिक्त जितेन्द्रिय ऋषि भी विराजमान है। आदि गदाधर देव का ध्यान करके यहाँ श्राद्ध और पिण्डदान करने वाला सौ पीढियो का उद्धार करके उनको स्वर्ग का अधिकारी बना देता है। गयागय गयादित्य गायत्री गदाधर गया और गयासुर—ये छः गया' मे मुक्ति प्रदान करने वाले है। इस पुण्यदायक गयाख्यान को जो व्यक्ति सदा पढता रहता है ॥५१ ५२ ५३॥ अथवा जो पुण्यशाली इसे श्रद्धापूर्वक सुनता है और ब्राह्मणो से इसका पाठ कराता है वह निर्विघ्न रूप से गया श्राद्ध करता है। जो मनुष्य अन्त करण से महातीर्थ गया की महिमा का चिन्तन करता है हे नारद वह मानो राजसूय और अश्वमेध यज्ञो का अनुष्ठान ही कर लेता है। जो गयाख्यान की पुस्तक को स्वयं लिखता है अथवा दूसरे से लिखाता है या पुस्तक की पूजा करता है। उसके घर म लक्ष्मी की स्थिर और प्रसन्न रहती है ॥५४ ५५ ५६॥

वायुपुराण का चतुर्थ चरण (उपसंहार) में गयामाहात्म्य समाप्त

॥ वायु पुराण समाप्त ॥